कौन ध्यान देता है?

लेखक

स्व० हरिनारायण आप्टे

अनुवादक

श्रीनिवास कोचकर





साहित्य अकादेमी की ओर से

भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली

Kochkar of the (Marathi novel) *Pan Lakshant Kon Gheto*, by H. N. Apte. Sahitya Akademi, New Delhi. (1961) Price Rs. 7.00

प्रथम संस्करण, १९६१

प्रकाशक .
साहित्य अकादेमी, नई दिल्ली की ओर से
भारती साहित्य मन्दिर, दिल्ली

मुद्रक
आर० के० प्रिन्टर्स,
कमला नगर, दिल्ली

मूल्य : ७.०० रुपये

१

उस दिन की याद आते ही आज भी मुझे हँसी आ जाती है और आनन्द से मन विभोर हो उठता है। हमारे पडोस की 'ठकी' के भाई का अभी-अभी विवाह हुआ था और घर मे शादी की बहुत सारी मिठाइयाँ बच रही थी। मुझे भी मेरी माँ की ओर से थोडी-बहुत मिठाई मिलने का आश्वासन मिल चुका था, और भैया ने कहा था कि वह दूल्हा के लिए सेहरा बना देगा। इस तरह पूरी तैयारी के साथ गुडिया-गुड्डे का ब्याह उसी दिन शाम को गोधूलि मुहूर्त्त मे करने का हमने आयोजन किया था। मैं वर की माँ बनी थी और 'ठकी' वधू की माँ। विवाह के पहले दिन कौन किसकी माँ बनेगी, इस बात को लेकर हम दोनो मे खूब झगडा हो चुका था। ठकी चाहती थी कि वह वर की माँ बने और मैं चाहती थी कि मैं बनूँ। अन्त मे भैया ने इस गुत्थी को सुलझा दिया। उसने पर्चियाँ उठाने का सुझाव दिया। फिर उसने पर्चियाँ लिखी और आँखे मूँदकर पर्ची उठाने के लिए ठकी से कहा। ठकी को विश्वास था कि वही वर की माँ बनेगी, किन्तु उठाई गई पर्ची को खोलकर भैया ने मेरा नाम पढकर सुनाया। भैया पर हम दोनो को पूर्ण विश्वास था। उसीके कहने पर हम लोग चला करते थे। उसने ठकी को और भी समझाया, "देखो ठकी, तुम्हारे घर तो अभी-अभी तुम्हारे भैया का सचमुच का ब्याह हुआ है, फिर तुम क्यो झगडा करती हो ? कम-से-कम झूठ-मूठ का ही ब्याह हमारे घर होने दो!" भैया की बात सुनकर ठकी की उदासी जाती रही। वह खिल उठी। किन्तु भैया की बात सुनकर मुझे कुछ विषाद हुआ। क्योंकि ठकी को उसके भाई के ब्याह मे बनाव-सिगार करके उछलती-कूदती देखकर मैं भी अपने मन मे सोचा करती थी कि अपने भैया के ब्याह मे मैं भी ऐसा ही करूँगी। भैया के ब्याह के लिए मै बहुत उत्सुक हो उठी थी। किसी लडकी के बारे मे बातचीत चलती देखकर मै सोचा करती थी कि अवश्य ही यह

सम्बन्ध निश्चित हो जायेगा, किन्तु अन्त मे फिर टॉय-टॉय-फिस हो जाती थी। और अब तो विवाह के मुहूर्त्त भी समाप्त हो चुके थे।

जैसा कि मैं कह चुकी हूँ कि भैया की बात सुनकर मुझे विषाद हुआ, इसलिए मैंने उससे कहा, "ऐसा क्यो कहते हो भैया! अगले वर्ष तुम्हारा भी तो ब्याह होगा। कल ही माँ कहती थी कि आगामी बैसाख मे अवश्य ही तुम्हारा ब्याह होगा। और जानते हो वधू कौन होगी?" इतना कहकर मैंने मुस्कराते हुए ठकी की ओर देखा। मेरी बात सुनकर ठकी ने मुह बनाकर त्योरियाँ चढा ली, किन्तु मीठी मुस्कान के साथ कहा, "चलो हटो, हमे ऐसी बाते पसद नही। आगे से मैं कभी तुम्हारे घर नही आऊँगी। क्या यही सुनाने को मुझे खेल के बहाने अपने घर बुलाया था?"

मैंने हँसकर कहा, "बाप रे बाप! इतना गुस्सा न दिखाओ! मानो अभी से तुम मेरी बडी भाभी बन गई हो।"

यह सुनकर तो ठकी उठकर चल दी। भैया ने झट से उसका हाथ पकडकर कहा, "अरे छोडो भी इसकी बातो को! यह तो शरारती है। देखो यमू, अब मैं तुम्हारे मोती नही पिरोऊँगा और न तुमसे कभी बात ही करूँगा।"

भैया ने अतिम शब्दो का उच्चारण क्रोधाभिभूत होकर अवश्य किया था, किन्तु उसी समय ठकी की ओर देखकर चुपके से हँसते हुए भी मैंने उसे देख लिया था। इसलिए उसकी बात सुनकर हँसते हुए मैंने कहा, "भैया, अभी तो ब्याह भी नही हुआ और ठकी का पक्ष लेकर तुम मेरे साथ झगडा करने लगे?"

यह सुनकर तो ठकी एकदम वहाँ से उठकर चली गई और भैया ने भी मेरे साथ बोल-चाल बन्द कर दी। अब दूसरा कोई चारा न देखकर मै भागकर ठकी के घर गई और उसे पुकारने लगी। किन्तु उसकी ओर से कोई उत्तर न मिला। निराश होकर मैं अपने घर लौट आई। आकर देखती हूँ कि ठकी और भैया आपस मे घुल-घुलकर बाते कर रहे है। मैं ताड गई, ठकी भैया से कह रही थी कि, पैर पडे बिना भैया मुझसे बात न करे। बहुतेरी मिन्नते करने और फिर कभी ऐसा मजाक न करने का मुझसे वचन लेने के बाद मुझे क्षमा किया गया। तब खेल का कार्यक्रम और गुडिया का ब्याह निश्चित हुआ।

उस दिन शनिवार होने से भैया सवेरे ही स्कूल हो आया था और अब उसे

दिन-भर की छुट्टी थी। हम सब विवाह की तैयारियो मे जुट पडे। मैंने मोतियो की पुडिया लाकर भैया को दी और वह सेहरा बनाने मे व्यस्त हो गया। माँ ने चोली सीते समय कपडे के बचे हुए टुकडे मुझे दिए थे। उन रेशमी और मखमल के टुकडो की तह जमाकर मैं वधू के लिए साडियो की व्यवस्था कर रही थी। मेरे सामने समस्या थी कि वहू के लिए किस समय कौन-सी साडी-चोली रखी जाय और वधू की माँ को उपहार के रूप मे कौन-सी पोशाक भेट की जाय। मैंने निश्चय कर लिया था कि दूल्हा पहले तो लडकी वालो से सोने की जजीर माँगेगा और वह न मिलने पर कम-से-कम हीराजडी अँगूठी अथवा तीन तोले का छल्ला लिये बिना तो वह मानेगा ही नही। ठकी को हर तरह से झुकाऊँगी। आखिर मैं लडके की माँ और वह लडकी की माँ जो है। पैर पर झुकाए बिना उसे नही छोडूँगी। उसे खूब ताने दूँगी, कटु शब्दो से उसकी खूब पूजा करूँगी। इस प्रकार की योजनाओ की उधेड-बुन मे मैं लगी हुई थी। बीच-बीच मे भैया से भी मैं इसीके बारे मे सलाह-मशविरा करती जाती थी। जब भैया ने सेहरा बनाने का काम पूरा कर लिया तब मैंने टीका भेजने के लिए ठकी को सदेशा भिजवाया। इसी बीच एक और आफत आ गई। माँ ने वहाँ आकर कहा, "यमे, सुन्दरी (मेरी छोटी ढाई वर्ष की बहन) को भी अपने खेल मे शामिल कर लो।"

मैंने माँ से बहुतेरा कहा कि सुन्दरी हमारा खेल बिगाड देगी रोयेगी, गदगी फैलायेगी। किन्तु माँ ने एक न मानी और सुन्दरी को मेरे सामने बिठाकर वह चली गई। मुझे गुस्सा आ रहा था और सुन्दरी भी रोने लगी थी। उसे उठाकर गोद मे लेते हुए मैंने कहा, "माँ भी अजीब है, हमे खेलने तक नही देती।" खेल के रग मे कोई कुछ काम करने अथवा छोटे भाई-बहन को खिलाने के लिए कहे तो मन झल्ला उठता है। जिसे इसका अनुभव होगा वह मेरी बात का समर्थन ही करेगा। किन्तु मेरी बात सुनकर भैया ने मुझसे कहा, "यमे, माँ को भी अजीब कहती हो? आजकल तुम्हारा दिमाग ठिकाने पर नही है।"

"नही भैया, अचानक मेरे मुँह से निकल गया। अब फिर कभी ऐसा नही कहूँगी।" यह कहकर मैंने उसके क्रोध को शात किया।

थोडी ही देर मे ठकी ने टीके की तैयारी की। पाँच-सात लडकियो को

लेकर वह द्वारचारे के मगल-गीत गाने लगी। यह देखकर मैंने भी दूसरी दो-चार लड़कियों को बुलाकर अपने यहाँ की व्यवस्था कर ली। माँ ने खाने-पीने की बहुत सारी चीजें दी थी और हमारा कार्यक्रम जोरो से चल रहा था। मै यहाँ से वहाँ दौड-धूप कर रही थी, यहाँ तक कि एक बार सुन्दरी को लेकर मै गिर पड़ी थी। गिरते ही सुन्दरी ने जोरो से चीखना शुरू कर दिया। उसकी चीख सुनकर माँ दौडकर वहाँ आई और नाराज होकर कहने लगी, "ठहरो, मै अभी तुम्हारा खेल समाप्त किये देती हूँ।"

चोरों की भाँति मै चुपके से एक ओर कोने मे जाकर खडी हो गई। फिर भैया ने बीच-बचाव किया तब जाकर कही खेल आरम्भ हुआ। कोई चार बजने का समय होगा। हमारे कोलाहल से ऊबकर ठकी की माँ ने आदेश दिया कि हमारे घर ही जाकर खेला जाय। तब सारी लडकियाँ और लडके हमारे घर एकत्रित हुए और एक हगामा मच गया। हँसने, चीखने, चिल्लाने की कोई सीमा ही नही रही। पाँच बजते-बजते भाँवरें पडने लगी। मगल-गीत गाए जा रहे थे। भैया नकल उतारने मे निपुण था। पुरोहित का स्वाँग रचकर वह तरह-तरह के मत्रों का उच्चारण कर रहा था और उन्हें सुनकर हम सब जोर-जोर से हँस रहे थे। चिल्ला रहे थे। खूब हुडदग मचा था। किन्तु दूसरे ही क्षण सारा कोलाहल शान्त हो गया। अचानक पिताजी दफ्तर से घर आ गए और हमे डाटने लगे, "बदमाशों ने परेशान कर रखा है। निकलो यहाँ से। और क्यो बे गधे, तू बारह साल का धीगडा हो गया और फिर भी इन लडकियो मे इनके खेल खेलता है? चल निकल यहाँ से। और इस छोकरी को तो—"इन शब्दो को सुनते ही मैं वहाँ से भाग गई। मुझसे भागा भी नही जा रहा था। शरीर काँप रहा था। सुन्दरी वही बैठी रोती रही। दूसरी लडकियाँ पहले ही भाग गई थी। मैं भागकर सीधी रसोईघर मे माँ के पीछे जाकर छुप गई। वह मुझसे बार-बार पूछ रही थी, "क्यो, क्या हुआ?" किन्तु मेरे मुह से शब्द ही नही निकल रहा था। जरा अपने को सँभालकर मैं कुछ कहने ही जा रही थी कि तभी भैया वहाँ आ गया और घबराए हुए स्वर से कहने लगा, "माँ, तुम्हे पिताजी तुरन्त अभी ऊपर वाले कमरे मे बुला रहे है। जल्दी चलो! न जाने आज उनका बर्ताव कैसा हो रहा है?"

उसकी बात सुनकर माँ का चेहरा उतर गया। भैया से एक-दो प्रश्न

पूछकर वह ऊपर चली गई। भैया भी उसके पीछे जा रहा था, किन्तु पीछे से उसके कुर्ते का छोर पकड कर मैने उसे ठहरा लिया। धीमे स्वर मे मैंने पूछा, "क्या पिताजी ने तुम्हे और कुछ कहा था ?" चिढकर उसने कहा, "चलो हटो यहाँ से। मै तुम्हारे साथ कभी बात न करूँगा। तुम बडी स्वार्थी हो। पिताजी के सामने मुझे अकेला छोडकर तुम भाग गई।"

उसके शब्द सुनकर मुझे दुख हो रहा था। मन्द स्वर से मैंने कहा, "ऐसा न कहो भैया! मैं घबरा गई थी। तुम्ही बताओ, यदि मैं बडी और तुम छोटे होते तो क्या तुम ऐसा न करते? पिताजी को मैंने आज तक इतना नाराज होते नही देखा था।"

इस तरह उसकी बहुतेरी मिन्नते करने पर हम दोनो मे सधि हो गई थी। पिताजी के बर्ताव के सम्बन्ध मे हम आपस मे चर्चा कर रहे थे। भैया ने कहा, "पिताजी आज हमसे बहुत नाराज है। वे हमे घर से निकाल देगे। उन्होने साफ शब्दो मे मुझसे तो कह दिया है कि, "ठहर बदमाश, आज तुझे घर से निकालकर ही दम लूँगा। एक पल भी इस घर मे नही ठहरने दूँगा। और तेरे साथ उस छोकरी को भी। दुष्टो ने परेशान कर रखा है।"

यह सुनकर मेरे तो होश उड गए। किन्तु भैया ने खूब ढाढस बँधाया। हमारी धारणा थी कि पिताजी हमे जरूर घर से निकाल देगे, हम भिखारी बन जायँगे। भैया ने कहा, "अभी मेरा अक्षर जम नही पाया है, नही तो कही क्लर्की करके दोनो का पेट पाल लेता। हम लोग पिताजी के पैर छूकर उनसे क्षमा माँग लेगे, 'गलती हो गई, फिर कभी ऐसा नही करेगे', ऐसी मिन्नतें करेगे। इतना कहने पर भी यदि वे नही मानते तो फिर दूसरा चारा ही नही। मैं मधुकरी माँगकर दोनो का गुजारा कर लूँगा। घबराओ नही, मैं कभी तुम्हारा साथ नही छोडूँगा।"

इस तरह हम दोनो मनसूबे बाँध रहे थे तभी मन्द गति से माँ हमारे पास आई थी। आज भी मैं माँ का उस दिन का चेहरा स्पष्ट रूप से अपनी आँखो के सामने देख रही हूँ। उसकी आँखो से आँसू बहकर गालो पर टपक रहे थे। आँखे लाल हो रही थी। हमे वहाँ देखकर क्षण-भर के लिए वह सन्न रह गई थी। दूसरे ही क्षण उसने अपने-आपको सम्हालकर आँखे पोछ ली और शान्त गम्भीर स्वर मे हमसे कहा, "आज रात की गाडी से हमे दादा जी के घर गाँव

जाना है । चलो, ऊपर जाकर अपनी चीज-बस्त बाँधकर तैयार हो जाओ !" उसके शब्द सुनकर हमारी जो मन स्थिति हुई थी उसकी कल्पना ही की जा सकती है।

हमारी मन स्थिति की कल्पना करने के सम्बन्ध मैं मैंने जो ऊपर उल्लेख किया है उसका विशेष कारण है । बच्चो का मन कितना चचल होता है इस बात को ध्यान मे रखकर जो पाठक ऊपर के वाक्य पढेगे वे ही उसका स्पष्ट आशय समझ सकते है । माँ ऊपर से रोती हुई आई और उसने "चलो, आज रात की गाडी से हमे दादाजी के घर, गाँव जाना है," ऐसा कहा । यह सुनकर हमे दु ख हुआ, आश्चर्य हुआ, मन अस्वस्थ हुआ और सबसे आश्चर्य की बात यह कि सुनकर मुझे कुछ आनन्द भी हुआ था। इसका भी एक कारण था । पाँच वर्ष पहले मैं माँ के साथ दादाजी के घर गई थी । उस समय मेरी आयु बहुत कम थी । मैं निरी अबोध थी । भैया को वहाँ की सब बातो का स्मरण था। मुझे वह वहाँ की बहुत-सी बाते बताया करता था । इसलिए गाँव जाने की मुझे तीव्र इच्छा हो रही थी । भैया की बाते सुनकर मै सोचा करती थी कि गाँव मे खूब मौज होगी। अनायास आज गाँव जाने का मौका आया देखकर मुझे कुछ आनन्द हो रहा था। किस कारण हमे गाँव जाना है और किस प्रकार जाना है आदि बातो का विचार मेरे मन को छू नही रहा था।

माँ के शब्द सुनकर मैंने भैया की ओर देखा किन्तु उसके चेहरे पर आनन्द का भाव दिखाई नही दे रहा था । माँ ने भी इससे अधिक और कुछ नही कहा। मैं माँ से कुछ पूछ-ताछ करना चाहती थी किन्तु इसी समय सीढियो पर किसी के भारी पैरो उतरने की आवाज सुनकर डर से मैंने पीछे मुडकर देखा—पिता जी वहाँ खडे थे । गरजकर उन्होने कहा, "ये शैतान यहाँ भी मौजूद है। इन्हें आज सबक सिखाना ही होगा ।" इतना कहकर उन्होने भैया का हाथ पकडा और उसके मुँह पर तमाचा जमाते हुए कहा, "चल निकल यहाँ से । जाकर पढने बैठ। दिन-भर घर मे उधम मचा रहता है । और क्यो री, वहाँ जो सामान फैलाकर रखा है उसको कौन उठायगा ?" इतना कहकर उन्होने मुझे भी हाथ पकडकर खीचना चाहा, किन्तु झट से उनका हाथ दूर हटाते हुए माँ ने कहा, "यह क्या कह रहे है आप, बच्चो पर क्यो गुस्सा उतारते है ? इनका इसमे क्या दोष है ?"

मौका पाकर मै वहाँ से भाग गई। मैं इतनी द्रुत गति से भाग रही थी कि सीढियाँ चढते हुए मेरे पैर लडखडा गए थे और मै गिर पड़ी थी। मेरे एक हाथ की सब चूडियाँ झड गई थी, और घुटने मे काफी चोट लगी थी, किन्तु मै वहाँ क्षण-भर के लिए भी न रुकी। उठकर भागते ससय मैने सुना था—

"सब इन्हीका दोष है—ये ही अभागे है—न जाने इनके भाग्य मे ..." पिताजी का भाषण पूरा होने के पूर्व ही मै ऊपर चली गई थी। ऊपर जाकर मैंने यहाँ-वहाँ फैली हुई खेल की चीजो को समेटना आरम्भ कर दिया था। वस्त्र, आभूषण, मोतियो की माला तथा खाद्य-पदार्थ आदि समेटने मे मैं व्यस्त हो गई थी। इसी समय भैया भी वहाँ आ गया था। उसका मुख म्लान हो रहा था। मैं एकटक उसकी ओर देख रही थी और वह मुझे ताक रहा था। किसी के मुह से शब्द नही निकल रहा था। उसके कोमल कपोलो पर पिताजी की पाँचो उँगलियो के चिन्ह उपडे हुए देखकर मेरा मन रो उठा। किन्तु किसी तरह मैंने अपने-आपको सम्हाल लिया था। बहुत देर तक हम दोनो उसी अवस्था मे निस्तब्ध मौन खडे रहे थे। देखते-देखते यकायक मैंने भैया के गले मे बाँहे डाल दी और फूट-फूटकर रोने लगी। उसकी आँखो से भी आँसुओ की झडी लग रही थी। अपने आँसूओ को पोछते हुए उसने कहा, "यमे, क्या तुम पागल हो गई हो ? यदि पिताजी हमे इस अवस्था मे देख ले तो क्या कहेगें ? चलो, यह सब सामान लेकर हम ऊपर वाले कमरे मे जाकर बैंठे।"

इतना कहकर उसने मुझे दूर हटाया। मेरी बाँहो को दूर हटाते समय उनके ध्यान मे आया कि मेरे हाथ मे चूडियाँ नही है। तब चूडियाँ झडने का ब्यौरा मैंने उसे सुनाया। मेरा चूडियो से रिक्त हाथ देखकर पिताजी अवश्य नाराज होगें, इस बात का सोच-विचार करते हुए हम दोनो तीसरी मजिल वाले कमरे मे जाकर बैठ गए थे।

तीसरी मजिल का वह कमरा पक्का नही था। आकार मे वह दोनो ओर से ढलुआँ, और बीच मे ऊँचा था। वहाँ हमे अपनी चीज-बस्त रखने और भैया को पढाई करने के लिए जगह दी गई थी। ऊपर आते ही हमारे सामने पहला प्रश्न चूडियो का था। चूडियो से खाली हाथ देखकर अवश्य ठुकाई होगी, इस बात का डर लग रहा था। किन्तु इसे किस तरह छिपाया जा सकता था। बहुत सोच-विचार के बाद भैया ने एक तरकीब ढूँढ निकाली थी। मेरे दूसरे

हाथ मे पाँच-छ चूडियाँ थी, उनमे से कुछ उतारकर दूसरे हाथ मे पहना दी जायँ यही भैया का सुझाव था। मैने सहमत होकर झट से इस काम को पूरा किया, किन्तु दुर्भाग्य ने यहाँ भी साथ नही छोडा था। एक हाथ से निकालकर दूसरे मे डालते समय एक चूडी और चटक गई थी। फिर भी दोनो हाथो मे चूडियाँ हो गई थी। इस काम से छुट्टी पाकर मैं अपना सामान एकत्र करके बक्स भरने मे जुट गई थी। भैया एक किताब खोलकर पढने बैठ गया था। कभी-कभी वह मेरे कार्य मे सहायता भी कर रहा था। आपस मे हम लोग बात-चीत भी कर रहे थे। अर्थात् हमारी बातचीत का विषय पिताजी के बर्ताव के बारे मे ही था।

हमारे पिताजी स्वभाव से शीघ्रकोपी थे, किन्तु आज का उनका क्रोध कुछ विशेष रूप लिये हुए था। सीढियो पर गिरते समय मैंने जो उनके शब्द सुने थे, उन्हे मैंने भैया को सुना दिया था। भैया ने भी उनका सभाषण सुना था। निष्कर्ष यह निकाला गया कि पिताजी आज बहुत ही नाराज है और दो-चार दिन उनकी दृष्टि से बचे रहने मे ही हमारी भलाई है। अब विषय चल उठा है तो मैं पिताजी के स्वभाव के बारे मे कुछ बातें कह देना आवश्यक समझती हूँ, जिससे मेरी इस कहानी को समझने मे आगे चलकर सुगमता होगी।

हमारे पिताजी शरीर से हृष्ट-पुष्ट और काफी लम्बे थे। उनका वर्ण गोरा था और आँखे कुछ कजी थी। कहा जा सकता है कि देखने मे वे भव्य तथा उग्र थे और उनका स्वभाव भी उनके रूप के अनुरूप था। उनके सामने जाने से हम लोग डरते थे। हमारा नौकर शिवराम भी, जिसे मैं बचपन से ही अपने घर मे देखती आई हूँ, उनके सामने जाने से घबराता था। केवल माँ उनसे नही डरती थी। उसे भी कभी-कभी डाट पड जाती थी। लेकिन केवल उतने ही समय के लिए। माँ से वे कुछ दबते थे। इसका कारण बहुत दिनो बाद मेरे ध्यान मे आया था। कारण केवल इतना ही था कि जब पिताजी नाराज हो जाते थे तो माँ उनका जरा भी विरोध नही करती थी। उनकी हाँ-मे-हाँ मिलाकर बात को टाल देती थी। किन्तु जब उनका गुस्सा उतर जाता था तब वही बात उन्हे नये सिरे से समझाकर वह उनसे करवा लेती थी। माँ के इस गुण का उल्लेख केवल मैं ही नही करती अपितु स्वय पिता जी को भी मैंने उनके बारे मे कई बार कहते हुए सुना है। पिताजी स्वभाव

से जिद्दी थे। किन्तु माँ इतनी समझदार थी कि वह उनकी जिद को हटाकर अपनी बात उन्हे मनाकर छोडती थी। पिताजी के किसी प्रस्ताव को माँ पहले मान्य कर लेती थी। फिर कुछ देर बाद धीरे से उस बात का विषय निकालकर, उसकी कठिनाइयो का चतुराई से वर्णन कर, योग्य दिशा मे उस बात को बदल देती थी। माँ की विशेषता यह थी कि जिस विषय मे स्वय उनका अथवा गृहस्थी के बारे मे कोई सम्बन्ध नही रहता था उसमे वह कभी दखल नही देती थी। हमारे पडोस मे ठकी रहती थी। उसकी माँ राधाबाई से माँ का बहुत मेल-जोल था। एक दिन राधाबाई ने माँ से कहा, "क्यो यशोदाबाई, तुम्हारे पतिदेव हर किसी से नाराज हो जाते है, चिढ जाते है, किन्तु तुमसे नाराज होते मैंने उन्हे कभी नही देखा। इसका क्या रहस्य है ? हमारे 'ये तो हमेशा कहा करते है कि, वासुदेवराव स्वभाव से इतना तेज है फिर भी अपनी पत्नी के सामने उसकी एक नही चलती। तुम्हारे पास ऐसी कौन-सी जडी-बूटी है ? जरा मुझे बता दो तो मैं भी उसका कुछ प्रयोग करके देख लूँ। हमारे घर भी कभी-कभी ऐसा अवसर आ जाता है। उस गुस्से से तो बस भगवान् ही बचाये। इसलिए कहती हूँ कि मुझे भी कुछ बता दो।"

राधाबाई का भाषण सुनकर माँ ने हँसकर कहा, "बा, राधाबाई मुझे सीधी-सादी देखकर मेरा मजाक उडा रही हो !" इस प्रकार बातचीत होते-होते माँ ने राधाबाई को अपने बर्ताव का रहस्य बताया था। उस समय माँ ने जो कहा था वह मेरे मन मे इतना गहरा उतर गया है, कि मैं उसे आजीवन भूल नही सकती। इस बात का मुझे आश्चर्य है कि उस समय और उसके बाद भी मैं एक नादान लडकी थी फिर भी माँ की यह बात मेरे मन मे कैसे घर कर गई। उसे सुनकर मुझे क्या लाभ हुआ था और मेरे भावी जीवन मे वह किस प्रकार सहायक हुई, इसे मैं आज नही कह सकती। क्योकि अपनी जीवनी को मैं माँ के उस बोधामृत का ही प्रतिबिम्ब मानती हूँ। जीवन मे मुझे कई कठिनाइयो से सामना करना पडा, किन्तु उनसे बचकर निकलने मे मुझे माँ के वे शब्द तथा उनसे प्राप्त थोडी-बहुत शिक्षा ही सहायक सिद्ध हुई है। आज इस समय जब मैं यह लिखने के लिए बैठी हूँ तो मुझे माँ का सम्पूर्ण जीवन स्पष्ट रूप से दिखाई दे रहा है। मैं पिताजी का वर्णन कर रही थी और बीच मे ही माँ के बारे मे कह रही हूँ। कथा-भाग को आगे बढाने से

पूर्व अपने कुटुम्बियो का वर्णन करना भी आवश्यक है। हमारी माँ बहुत ही सुन्दर थी। उसका मन उदार था। कहाँ तक उसका वर्णन किया जाय। उसकी बोल-चाल का ढग, हम बच्चो को सिखाने-पढाने की पद्धति आदि सभी बाते अवर्णनीय है। मैने इस जीवन मे जो-कुछ थोडा भला कार्य किया उसका सारा श्रेय दो ही व्यक्तियो की शिक्षा-दीक्षा को दिया जा सकता है। यह दो व्यक्ति याने मेरी माँ और दूसरे , क्या उनका भी नाम लेना पडेगा ? विशेषत पहली शिक्षा से मेरी मनोभूमि उपजाऊ बन जाने से ही दूसरी शिक्षा ग्रहण करने का मुझे सामर्थ्य प्राप्त हो सका था। मेरी माँ देवता थी। कोई यह न समझे कि वह मेरी माँ थी इसलिए मैं उसकी स्तुति कर रही हूँ। मुझे विश्वास है कि आगे चलकर उनकी शिक्षा द्वारा प्राप्त मेरे जीवन के परिणामो को देखकर पाठक मेरे इस मत से महमत होगे।

पिताजी कलक्टरी मे हैड क्लर्क थे और डेढ सौ रुपया वेतन पाते थे। खेती-बाडी की आय भी पर्याप्त थी। पिताजी दादाजी के इकलौते बेटे थे फिर भी उन दोनो मे अनबन रहती थी। इसके कई कारण हो सकते है, किन्तु मुख्य कारण यह था कि दोनो का स्वभाव एक-सा था। दोनो ही जिद्दी थे। 'हम करे सो कायदा' यह दोनो की विशेषता थी। दादाजी बडे तुनुकमिजाज, जमदग्नि के ही अवतार थे। माँ कहती थी कि दादाजी के समस्त गुण पिताजी मे उतर आए थे। दादी का भी कुछ यही नमूना था। इस कारण दादाजी और दादी मे सदा अनबन बनी रहती थी। कभी-कभी तो चार-छै महीने के लिए उन दोनो मे बातचीत भी बन्द हो जाती थी। सास होने के नाते दादी ने माँ को बहुत तग किया था, किन्तु माँ ने सब-कुछ सहकर अन्त मे उस तेज मिजाज वाली सास से भी वाहवाही ली थी।

मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि दादाजी के साथ पिताजी की नही बनती थी। कभी-कभी दादी पिताजी के यहाँ आकर रहती थी किन्तु दादाजी कभी नही आते थे। कारण यह था कि एक बार दादाजी पिताजी के घर आये थे। पिताजी के घर वैश्वदेव (एक धार्मिक विधि जो भोजन के पहले की जाती है।) नही किया जाता था। दादाजी का आग्रह था कि घर मे प्रतिदिन वैश्वदेव होना नितान्त आवश्यक है। वैश्वदेव स्वय पिताजी को अथवा भैया को, जिसका अभी-अभी यज्ञोपवीत सस्कार हुआ है, करना

चाहिए। पिताजी का कहना था कि सरकारी नौकरी होने से हमेशा स्थानान्तर होता रहता है, इसलिए ऐसी धार्मिक विधियो का पालन नही किया जा सकता। इस जरा-सी बात को लेकर दोनो मे तनातनी हो गई। अन्त मे, 'जिस घर मे ऐसे नास्तिक और सुधारक लोग रहते है, जिस घर मे नैवेद्य वैश्वदेव भी नही होता, उस घर मे भोजन करना याने भगी के घर अन्न खाना है,' ऐसा कहकर दादाजी घर से उठकर बाहर निकल गए। पिताजी अपने स्थान पर वैसे ही डटे रहे, जरा भी अपनी जगह से नही हटे। आखिर माॅ कुल-मर्यादा को क्षण-भर के लिए दूर हटाकर दादाजी के पीछे भागकर गई और उनके हाथ-पैर जोडकर, आप नही लौटेगे तो मैं भी अन्न ग्रहण नही करूँगी, ऐसा उन्हे समझा-बुझाकर घर लौटाकर ले आई। तमाशबीन एकत्र हो गए थे। माॅ लज्जा से गडी जा रही थी। आखिर दादाजी कुछ सोच-समझकर घर लौट आए थे। हाथ-पैर धोकर उन्होने दो कौर पेट मे डाले। सध्या समय फिर किसी बात को लेकर बाप-बेटे मे झगडा हो गया था और दादाजी दूसरे दिन सोकर उठते ही, कुछ खाये-पिये बिना पहली गाडी से ही अपने गाॅव चल दिए थे। उसके बाद फिर वे कभी पिताजी के घर नही आये। पिताजी के साथ और मेरे साथ भी दादाजी कभी ढग की बातचीत नही करते थे। वे केवल माॅ और भैया से बोला करते थे। माॅ से उन्हे विशेष स्नेह था। भैया को भी वे बहुत चाहते थे, किन्तु मुझे देखकर कहते कि यह छोकरी अपनी दादी-जैसी और बाप-जैसी बनेगी। लडका अवश्य अपनी माॅ-जैसा होगा। दादाजी की इस बात को सुनकर दादी नाराज हो जाती थी, क्योकि मैं उसकी लाडली थी। भैया को भी वह चाहती थी, किन्तु कुछ कम मात्रा मे। कारण वह दादाजी को प्रिय था न।

दादाजी के घर जाने की बात सुनकर मुझे खुशी हुई थी और भय भी मालूम हो रहा था। वहाॅ दादी है, इस कल्पना से खुशी होती थी, किन्तु वहाॅ दादाजी भी है, यह सोचकर मन घबरा उठता था।

कुटुम्बियो का यह वर्णन कुछ अधिक हो गया है, इसलिए इसे यही समाप्त कर देना ठीक होगा। जिस दिन की घटना मै कहने जा रही थी, अब वही पुन. प्रारम्भ करती हूँ।

२

गत परिच्छेद मे मैने कहा है कि भैया से मेरी कई विषयो को लेकर बातचीत हो रही थी। बातचीत का मुख्य विषय था पिताजी का बर्ताव। बातचीत करते-करते अँधेरा हो गया था। रात मे हमे तीसरी मजिल पर बैठने की मनाही थी। दूसरी मजिल के कमरे मे बैठकर ही भैया रात मे पढा करता था। मैं भी भोजन के बाद नीद आने तक उसीके पास बैठी रहा करती थी। किन्तु आज हम दोनो मे से कोई भी नीचे जाना नही चाहता था। भूख के मारे पेट मे चूहे दौड रहे थे। भूख से मैं बेचैन हो उठी थी। दोपहर मे खेलने के लिए हमे जो मिठाइयाँ मिली थी उन्हे खाने का भी हमे अवसर नही मिला था। विवाह-विधि के पश्चात् पगत का आयोजन था, किन्तु पिताजी के क्रोध ने सारी योजना पर पानी फेर दिया था। इतना ही नही, वह वधू की माँ से नाक रगडवाने की योजना जिस वर की माँ ने निश्चित की थी वह अब इस अँधेरे मे आकर बैठी थी और पिटाई के डर से सीढियाँ उतरने की भी उसमे हिम्मत नही थी। वर की माँ इस प्रकार परेशान थी और उसने अपने बेटे को, अर्थात् गुड्डे को, खेल का सामान रखने के सन्दूक मे छिपाकर रख दिया था। बेचारी वधू की ओर कौन ध्यान देता है? पडी होगी कल-मुही कही जाकर। जहाँ सास परेशान थी वहाँ बहू को कौन पूछता है। आज लिखते समय मैं उस दिन की घटना को रोचक ढग से लिख रही हूँ किन्तु उस दिन मुझ पर जो बीती थी उसे मैं ही जानती हूँ। जब बिलकुल अँधेरा हो गया तब भैया ने कहा, "यमुना, चलो हम नीचे चले! भोजन तैयार होगा। समय पर न जाने से पिताजी नाराज हो जायँगे।"

उसकी बात मुझे भी जँच गई। हम आपस मे जाने के बारे मे बातचीत ही कर रहे थे, किन्तु जाने के लिए कोई न उठता था। किन्तु वहाँ कब तक ठहर सकते थे। एक किताब हाथ मे लेकर, मुझे उठाते हुए भैया ने कहा, "चलो!" मैंने भी जाना ही ठीक समझा। किन्तु यह कार्य इच्छा के विरुद्ध किया जा रहा था। अँधेरा हो जाने पर मैं उस कमरे मे कभी क्षण-भर के लिए भी नही रुकती थी, किन्तु आज रात-भर मैं वहाँ ठहर सकी। भूख के मारे जान निकली जा रही थी। खेल के उत्साह मे और विवाह के बाद होने वाली पगत

की आशा मे मैने दोपहर को भी कुछ नही खाया था। किन्तु पिटाई के भय से नीचे जाने की इच्छा नही हो रही थी।

दबे पॉव भैया के साथ मै नीचे उतर आई। भैया सीधा दीये के पास गया और किताब खोलकर पढने बैठ गया। गरदन नीचे झुकाकर पढने मे व्यस्त होने का उसका केवल दिखावा-मात्र था। भूख के मारे पढाई मे कैसे ध्यान लग सकता है। मैं भी चुपके से उसके पास जाकर बैठ गई। धीमे स्वर मे मै उससे कुछ पूछती, किन्तु वह मुझे चुप रहने के लिए कह देता था। मै जानना चाहती थी कि पिताजी कहॉ है ? क्योकि उनका कोट और टोपी कमरे मे दिखाई नही दे रहे थे। किन्तु भैया मौन बैठा रहा, ऊपर नजर उठाकर भी नही देखता था। इसी समय मॉ ऊपर आ गई। हमे देखकर उसने कहा, "तुम यहॉ बैठे हो ? चलो भोजन करने के लिए। वे बाहर गये है। न जाने कब लौटेगे। तुम खा-पीकर सो जाओ। चलो, मैं तुम्हे परोसे देती हूँ।"

"खा-पीकर सो जाओ" ये शब्द मुझे कुछ विचित्र मालूम हुए थे। क्योकि मॉ जब ऊपर से रसोईघर मे आई थी तब उसने कहा था कि आज रात को हमे दादाजी के घर, गॉव जाना है। इसलिए मैंने पूछा, "क्यो, गॉव नही जाना है ?" उत्तर मे मॉ ने कहा, "नही विचार बदल गया है। कम-से-कम चार-आठ दिन तो जाना नही होगा।" उसका उत्तर सुनकर मुझे खुशी हुई थी और दुख भी हुआ था। साथ ही जाने का विचार क्यो बदल गया इसका कारण जानने की उत्सुकता भी थी। खुशी की बात तो यह थी कि पिताजी बाहर चले गए थे और उनके घर लौटने से पहले हमे भोजन कर लेना था। नित्य-क्रम के अनुसार सुबह-शाम हमे पिताजी के साथ भोजन करने बैठना पडता था। दोपहर की छुट्टी मे भैया घर लौटता था तो उसके साथ कुछ खाना-पीना हो जाता था। पिताजी के साथ बैठकर भोजन करना हमे बहुत अखरता था। विशेषत भोजन करते समय पिताजी का क्रोध हमेशा उमड पडता था। शायद ही कभी उन्होने हॅसते-खेलते सतोष के साथ भोजन किया हो। भैया से पढाई के बारे मे पूछ-ताछ भोजन के समय ही होती थी। दफ्तर मे यदि कोई बात हो गई हो तो उसका गुस्सा भोजन करते समय ही निकलता था। और भी गुस्सा करने लायक जो कुछ हो वह भोजन के समय ही निकलता था। पिताजी के स्वभाव का वर्णन करते समय मैं भान खो देती हूँ। जिन बातो का

उल्लेख नही करना चाहिए उनके बारे मे भी सब-कुछ कह जाती हूँ। एक बात का और स्मरण हो रहा है, कहे बिना जी नही मानता। एक दिन की बात है, पिताजी भोजन करने के लिए बैठे थे—पहला कौर हाथ मे लेते ही उसमे उन्हे एक लम्बा बाल दिखाई दिया था। देखते ही उनके क्रोध ने उग्र रूप धारण किया। थाली लेकर माँ कुछ परोसने के लिए पास आई थी। गुस्से से बेताब होकर पिताजी ने माँ की थाली को हाथ से झटककर फेक दिया और भरी थाली को ठुकराकर वे उठकर चल दिए। मुँह से गाली-गलौज चल रही थी। इस तरह पिताजी का स्वभाव बडा ही विचित्र था। किन्तु धन्य है हमारी माँ। उस समय कुछ न कहकर माँ चुप बैठी रही। हमे भोजन कराया और कुछ देर बाद पिताजी के पास जाकर, अपने मोहक सभाषण से उन्हे समझा-बुझाकर वह उन्हे भोजन करने के लिए ले आई। बचपन मे मैने जो कुछ देखा और जिसका चित्र हमेशा के लिए मेरे मन मे चित्रित हो गया है, उनमे से एक ऊपर की घटना थी। न जाने माँ के पास कौन-सी दिव्य शक्ति थी। बडी हो जाने पर मैं सोचा करती थी कि यदि पिताजी शान्त प्रकृति के होते और हर बात मे माँ का कहना मानकर चलते तो असन्तोष के क्षण उनके जीवन मे कभी न आते। माँ की महत्ता का वर्णन करने के लिए मेरे पास शब्द नही है। उसका नाम निकलते ही मन चाहता है कि हर समय उसका नाम स्मरण करती रहूँ और उसके गुणो का वर्णन किसी को सुनाती रहूँ। माँ-जैसी स्त्रियाँ कई घरो मे विद्यमान होगी—कही नही होगी, ऐसा तो मैं नही कह सकती, किन्तु माँ की विशेषता कुछ और ही थी। पिताजी विलक्षण क्रोधी, माँ को हर समय दुःख दिया करते थे, फिर भी माँ ने कभी अपने पडोसियो को अपने दुःख की गाथा नही सुनाई। प्रत्यक्ष उसकी माँ काशी-यात्रा से लौटते समय आठ दिन के लिए हमारे घर ठहर गई थी, किन्तु माँ ने उसे भी अपने दुःख के बारे मे कभी एक शब्द नही सुनाया। माँ-बेटियो मे जो बातचीत होती उसे मैं सुना करती थी। मुझे और काम भी क्या था। खाना-पीना, और माँ-नानी के पास बैठकर उनकी बाते सुनते रहना, यही मेरा काम था।

हाँ, तो भोजन करने के लिए हम लोग नीचे चले गए। बडे जोर की भूख लग रही थी, इसलिए डटकर खाना खाया, किन्तु डर लग रहा था कि

कही पिताजी न आ जायँ। आखिर भोजन करके हम दोनो ऊपर चले गए थे। कुछ ही देर बाद मुझे ऊँघ आने लगी और मैं बिस्तरे पर जाकर सो गई। आगे मैं जो कहना चाहती हूँ उसे मैंने कब और कैसे सुन पाया था यह जानने के लिए हम लोगो के बिस्तरे किस प्रकार लगाए गए थे यह बताना आवश्यक है। हमारा दालान बहुत बडा था इसलिए उसके एक हिस्से मे मैं और भैया सोया करते थे और दालान के दूसरे छोर पर पिताजी का बिस्तरा लगाया जाता था। हम दोनो अभी छोटे थे और किसी दूसरे कमरे मे रात को सुलाया जाने पर किसी बात से डरने की सम्भावना होने से, मजबूरन यह व्यवस्था की गई थी। माँ और पिताजी के मत से यह व्यवस्था ठीक नही थी, किन्तु और क्या किया जा सकता था।

बिस्तरे पर लेटते ही मुझे नीद आ गई थी। मैं इतनी जल्दी सो गई थी कि भैया आकर मेरे पास कब सोया, पिताजी घर कब लौटे, लौटने पर और कुछ बातचीत हुई थी या नही, मुझे किसी बात का कुछ पता नही। दिन-भर की उछल-कूद के कारण अथवा बाल्यावस्था की नीद के कारण मैं गाढी नीद मे सो गई, किन्तु इसका परिणाम यह हुआ कि बहुत सुबह मेरी नीद खुल गई थी। दीवार पर टँगी घडी मे चार घटे बजे थे। इसी समय मैंने सुना —

"तुम्हारा यहाँ से चला जाना ही अच्छा होगा। न जाने कैसी मुसीबत आ जाय।"

"जाने के लिए मुझे इन्कार नही है, किन्तु मेरा कहना है कि हमारे यहाँ रहने से मुसीबत अधिक तो नही होगी और यदि मुसीबत आनी ही है तो वह हमारे चले जाने से टलेगी भी नही।"

"मुझे वेदान्त की चर्चा नही करनी है, तुम चुपचाप चली जाओ, यही अच्छा है। जो बाते स्त्रियो के समझ से परे है उनमे दखल देने की आवश्यकता नही। जो मुझे करना नही चाहिए था, उसे मैं कर चुका तुम्हारे मना करने पर भी किया—अब उसका फल भोगना ही होगा। ऐसे समय यदि तुम भी मेरी बात न मानोगी तो तन मे राख मलकर बैरागी बनने की मुझ पर नौबत आ जायगी।"

इसी प्रकार पिताजी और भी कुछ कहते रहे, किन्तु माँ ने कोई उत्तर

नही दिया। पॉच बजने पर वह उठकर नीचे चली गई। मै वैसी ही बिस्तरे पर लेटी रही। मेरे मन की बडी विचित्र अवस्था हो रही थी। माता-पिता की एकान्त मे की गई बातचीत को मैंने सुना, इसका मुझे बहुत दु ख हो रहा था। मेरी माँ ने मुझे जो शिक्षा दी थी उसमे एक बात यह भी थी कि, किसी की एकान्त मे की गई बातचीत को चोरी से सुनना महा पाप है। यदि अपनी इच्छा के विरुद्ध ऐसा मौका प्राप्त हो तो बातचीत करने वालो को अपने अस्तित्व की सूचना किसी प्रकार दे देनी चाहिए। मजबूरन सुनना पडा, इसमे हमारा क्या दोष था, इस प्रकार का समर्थन करके, किसी की गुप्त बातचीत सुनना अति निन्द्य है। ऐसा हमे माँ ने सिखाया था। पिताजी का शब्द सुनते ही, खाँसकर अथवा अन्य मार्ग से, मैं जाग रही हूँ इसकी सूचना देना मेरे लिए आवश्यक था। किन्तु पिताजी का पहला वाक्य "न जाने कैसी मुसीबत आ जाय" सुनकर मेरा दिल धडकने लगा था और माँ की शिक्षा मैं भूल गई था। न सुनने का प्रयत्न करना तो दूर रहा। उलटे सोत्कठ होकर मैं उनकी बातचीत सुन रही थी। मेरे मन मे प्रश्न उठ रहा था कि यह सब क्या है ? माँ का उत्तर भी विलक्षण था। 'अपने माँ-बाप पर ऐसी कौन-सी विपदा आ पडी है ?" पिताजी ने ऐसा कौन-सा काम किया है जिसका फल उन्हे भोगना ही पडेगा ?" मेरी कुछ समझ मे नही आ रहा था।

इस उधेड-बुन मे ही दिन निकल आया था। भैया भी जाग उठा था। मैंने जो बातचीत सुनी थी उसे भैया को सुनाना उचित होगा अथवा नही, इसका निर्णय मैं नही कर पाई थी। किन्तु हम लोगो का गाँव जाना निश्चित हो गया था इसलिए सामान बाँधने, पडोसियो से विदा लेने, खाने-पीने मे ही समय निकल गया। दोपहर को बारह बजे की गाडी से हम लोग गाँव जाने के लिए रवाना हुए।

मौका पाकर मैंने भैया से इतना अवश्य कह दिया था, तुम्हे एक मजे का बात सुनानी है।

बचपन की हर एक घटना, जिससे दिल पर चोट नही लगती, मजे की बात ही तो होती है।

३

सुख हो अथवा दुःख, बाल्यावस्था मे किसी भी मनोभाव का परिणाम अधिक समय तक नही बना रहता यह सब जानते है, इसलिए इसका विस्तार से वर्णन करने की आवश्यकता नही है। यहाँ मुझे केवल इतना ही कहना है कि दोपहर को रेलगाडी पर चढने की गडबड मे मैने सुबह जो सभाषण सुना था उसे अब भूल-सी गई थी। आज तक रेलगाडी पर चढने की चाह से, मैं किसी को गाँव जाता देखती तो मेरा मन उसके साथ जाने के लिए उतावला हो उठता था। आज स्वय मुझे ही रेलगाडी से प्रवास करने का सुअवसर प्राप्त हुआ था और विशेष खुशी की बात यह थी कि पिताजी हमारे साथ नही थे। कहने की आवश्यकता नही कि पिताजी हमारे साथ नही आए थे। अपने दफ्तर के मुन्शी को, जिनका नाम कृष्णाजी पत था, हमे पहुँचाने के लिए, उन्होने हमारे साथ कर दिया था। इस खुशी के सामने, सुबह सुनी हुई बातचीत का खेद, जिसका मै अच्छी तरह अर्थ भी नही समझ पाई थी, भला कितनी देर तक ठहर सकता था?

बहुत-से लोग ऐसे भी होते है जिन्हे बडी उम्र हो जाने पर प्राकृतिक सौन्दर्य आदि देखने का उल्लास नही रहता। किन्तु बाल्यावस्था मे ऐसा नही होता। इस अवस्था मे हर बात देखने को जी चाहता है। अर्थ समझ मे आये या न आये, किन्तु हर चीज को देखने की चाह रहती है। इस दृष्टि से, रेलगाडी मे खिडकी के पास वाली जगह पर कौन बैठेगा, इस बात को लेकर हम भाई-बहनो मे विवाद छिड गया था। भैया का कहना था कि वह बडा है इसलिए खिडकी के पास बैठना उसे आवश्यक है और मै कहती थी कि, छोटी होने से वहाँ बैठने का केवल मुझे ही अधिकार है। इस विवाद मे, खिडकी से बाहर झाँकते समय भैया के सिर से टोपी नीचे गिर गई थी। किन्तु भाग्यवश अभी गाडी चली नही थी और हमारा सामान ढोने वाला कुली भी समीप खडा था। उसे कहकर माँ ने टोपी मँगवा ली थी। इसके बाद, किसका धक्का लगने से टोपी गिरी थी, इस बात को लेकर विवाद छिड गया। आखिर माँ ने भैया से कहा, "तुम तो समझदार हो, आओ, यहाँ मेरे पास आकर बैठ जाओ!" यह

कहकर माँ ने भैया को अपनी ओर खीचा और त्यौरियाँ चढाकर मेरी ओर देखा, किन्तु मेरा ध्यान माँ की त्यौरियो की ओर नही था। इतना झगडा हो जाने पर, आखिर मेरी ही जीत रही, इसी खुशी मे मै मस्त हो रही थी। माँ की हल्की-सी डाँट सुनकर भैया चुप हो गया था। मैने टेढी दृष्टि से उसकी ओर देखा और उसने भी इशारे से सूचित किया कि, अच्छा, देख लूँगा। किन्तु मैं तो अपनी ही खुशी मे मग्न थी। मुझे भैया की क्या परवाह थी। ठीक इसी समय दूसरी ओर की खिडकी के पास जो दो स्त्रियाँ बैठी थी, उन्होने भैया के उदास चेहरे को देखकर उसे अपने समीप बुलाया और खिडकी के पास बैठने के लिए उसे जगह दे दी। इसी समय गाडी भी चलने लगी। मेरा स्वभाव कुछ विचित्र था। भैया को दूसरी ओर खिडकी के पास बैठा देखकर मेरा मन कह रहा था कि मुझे वहाँ बैठने को मिलता तो कितना अच्छा होता। अब भैया उधर के सुन्दर दृश्यो को देख सकेगा और मैं देखने से रह जाऊँगी। किन्तु अब मै उसके पास जा भी नही सकती थी इसलिए अपने स्थान पर बैठी मुँह को ऊँचा उठाकर भैया वाली खिडकी से बाहर का दृश्य देखने का प्रयत्त करती रही। जरा-जरा-सी बातो का इतना सूक्ष्म वर्णन करते देखकर पाठको को आश्चर्य हो सकता है, किन्तु मनुष्य-स्वभाव की विशेषताओ से परिचित होने के लिए ऐसे वर्णन उपयुक्त सिद्ध होते है। बचपन की कुछ बाते ऐसी होती है जो आगे चलकर मनुष्य-स्वभाव का एक अग बन जाती है। यदि माँ-बाप द्वारा समय पर ही उनकी ओर ध्यान दिया गया तो उनका निर्मूल होना असम्भव नही है। अर्थात् अच्छी और बुरी, दोनो प्रकार की आदतो पर यह नियम लागू हो सकता है।

जब बिलकुल आरम्भ से ही मैं अपनी जीवनी लिखने जा रही हूँ तब यह बताना भी आवश्यक है कि बचपन मे मेरा स्वभाव कैसा था, आगे चलकर उसने कौन-सा रूप धारण किया और उसके लिए कौन-सी घटनाएँ कारणभूत थी। यद्यपि मैं अपनी जीवनी लिख रही हूँ, फिर भी मैं कोई अनोखी स्त्री नही हूँ। इसलिए मेरी जीवनी मुझ-जैसी पचासो स्त्रियो की जीवनी हो सकती है। इसमे वर्णित घटनाएँ भिन्न हो सकती है, किन्तु हमारा जीवन-क्रम प्राय. एक-सा ही होता है। इसलिए जहाँ तक सभव हो जरा-जरा-सी बातो का भी वर्णन करने का मेरा विचार है। फिर भी रेलगाडी की समस्त बातो का वर्णन करने की आवश्यकता नही है। भैया ने और मैंने क्या-क्या मनसूबे बाँधे थे, कितनी बार

मैंने उससे माफी माँगी थी और फिर कितनी बार उसके साथ झगडा किया था, हर स्टेशन पर कोई चीज बिकती देखकर उसे लेने के लिए मैंने और सुन्दरी ने माँ को कैसा परेशान किया था आदि तमाम बातो का अपना बचपन याद करने से अथवा जिनके छोटे बच्चे है उनका अनुभव याद आने से सहज ही मे ध्यान आ जायगा। मेरी इस हठ से माँ को कितनी परेशानी होगी, इसका मुझे अन्दाज होता तो कितना अच्छा होता। उस दिन माँ कितनी अस्वस्थ थी इसे मै आज जानती हूँ। उस दिन मुझे इस बात की जरा भी कल्पना नही थी।

हमारे दादाजी का घर रेलवे-स्टेशन के समीप ही कोई सात-आठ कोस की दूरी पर था। सडक भी अच्छी थी। स्टेशन पर हम लोग चार-साढे चार बजे पहुँच गए थे। माँ ने कृष्णाजी पत को बैलगाडी ठीक करने के लिए कहा। जिस गाँव मे स्टेशन था उसमे हमे ठहरने के लिए कोई घर नही था यह बात नही, किन्तु दूसरे के घर जाकर ठहरना माँ को पसन्द नही था। इसलिए गाँव हमे शीघ्रता से पहुँचना था। बैलगाडी भी मिल गई। कृष्णाजी पत ने सुझाया था कि बच्चो को भूखे-प्यासे गाँव ले जाने की अपेक्षा रात-भर गाँव मे केलकर जी के यहाँ मुकाम किया जाय और सुबह गाँव चला जाय। किन्तु माँ ने उनकी बात को टाल दिया। उसने कहा, "हमारे साथ परौठे है, शाम को सात बजे रास्ते के कुएँ पर बच्चो को खिला दूँगी। सुन्दरी की खीर भी बच रही है।" इतना कहकर माँ ने पोटली हाथ मे उठा ली। हमे तो प्रवास करने की चाह थी, इसलिए माँ का कहना हमे उचित मालूम हुआ। कृष्णाजी पत ने सामान उठाकर गाडी मे रख दिया और गाडी चल दी। कृष्णाजी पत गाडी मे नही बैठे थे। उन्होने कहा, "शाम का समय है—कुछ दूर चलकर पैर सीधे कर लूँ" उन्हे पैदल चलते देखकर भैया ने भी पैदल चलने की इच्छा व्यक्त करके माँ से आज्ञा चाही थी। माँ ने उसे चलने की इजाजत दे दी। उसे पैदल चलते देखकर मैं कब रुक सकती थी। मैंने भी माँ से पूछा, किन्तु उसने मना कर दिया। बार-बार जिद करने पर वह कुछ नाराज हो गई और मुझे दूर धकेलते हुए उसने कहा, "जा—तेरी तबियत से जो आये सो कर," इतना कहकर उसने सुन्दरी को उठाया और वह गाडी मे जाकर बैठ गई। धकेलने से मैं गिर पडी और रोने लगी थी। इतना हो जाने पर पैदल चलने का प्रश्न ही समाप्त हो चुका था। कृष्णाजी पत ने मुझे उठाकर गाडी मे बिठा दिया और गाडी चल दी। भैया पहले ही आगे

निकल गया था। उसे इस बात का शायद पता नही था। कृष्णाजी पत भी आगे निकल गए। मै गाडी मे बैठी फूट-फूटकर रो रही थी। माँ का मेरी ओर ध्यान नही था। वह मौन बैठी थी। सुन्दरी ऊँघने लगी थी, इसलिए माँ ने उसे एक ओर सुला दिया। मेरा रोना बन्द नही हुआ था। इस प्रकार एक घण्टा बीत गया। अकस्मात् मा ने मुझे अपनी ओर खीचकर छाती से लगा लिया। मैने देखा कि माँ रो रही है। उसको रोती देखकर मै सहम गई। अपना रोना भूलकर मैं एकदम माँ के गले मे लिपट गई। कुछ देर बाद माँ ने कहा, "यमे, तू समय को नही पहचानती" यह कहते हुए उमका कण्ठ रुँध-सा गया था। ये शब्द तीर बनकर मेरे सीने मे चुभ गए थे। उन शब्दो मे से माँ का टूटा हुआ दिल उमड आया था। उमकी विवेचना और उस विवेचना के कारण उसके दिल की कसक उन शब्दो के द्वारा पूर्ण रूप मे प्रकट हो रही थी। इम बात को मै आज समझ पाई हूँ। यदि उस ममय समझ पाती तो मैने अपनी माँ को दुख न दिया होता। उसके शब्द सुनकर मै और अधिक उसके गले से लिपट गई। हम दोनो ही रो रही थी। मेरी कल्पना है कि सुबह से या उसके पहले दिन से जो दुख एकत्रित हो रहा था वह एकात मिलते ही माँ की इच्छा न रहने पर भी इम प्रकार फूट पडा था। शायद वह वहुत-कुछ कहना चाहती थी, किन्तु मुझ-जैसी अबोध बालिका से वह क्या कह मकती थी? यह सोचकर वह मौन बैठी रही। कुछ देर बाद उमने कहा, 'यमे, दादी से न कहना कि मै रो रही थी।" इतना कहकर वह फिर मौन हो गई थी। बहुत देर तक हम दोनो एक-दूसरी की ओर देखती हुई चुपचाप बैठी थी। कुछ देर बाद ऊँघ आ जाने से मै लेट गई थी। किन्तु उसी समय कृष्णाजी पत भागते हुए गाडी के पास आ गए थे। भीत स्वर मे उन्होने कहा, "गणपति कही दिखाई नही दे रहा है"—

"क्या कह रहे हो?" माँ ने घबराकर पूछा।

४

प्रश्न करते समय माँ की उस विकृत मुद्रा को देखकर कृष्णाजी पत ने क्या सोचा होगा, कहा नही जा सकता। उनके मुँह से घबराहट के कारण शब्द भी नही फूट रहा था। गाडीवान आगे बैठकर मजे मे गाडी हाँक रहा था। उसे इस घटना का पता भी नही था। "क्या कह रहे है आप ?" ऐसा कहकर माँ चलती गाडी मे कूद पडी और "चलो उसकी खोज करे," ऐसा कहकर कृष्णाजी पत से पहले वह आगे निकल गई। जाते समय उसने केवल इतना ही कहा, "यमे, गाडी मे सुन्दरी सोई है—"मै जोर से रोने लगी। कृष्णाजी पत माँ के पीछे कब चले गए इसका भी मुझे भान नही था। कुछ देर बाद गाडीवान ने पीछे मुडकर मुझसे कहा, "क्या बात है ? तुम क्यो रो रही हो ?" उसके प्रश्न का ठीक से उत्तर न देकर रोते हुए मैने कहा, "न जाने मेरा भैया कहाँ खो गया।" आश्चर्य से गाडी वाले ने पूछा— "हाँ—कहाँ चला गया ? और माँ जी भी चली गई ?' मै उसके प्रश्न का कोई उत्तर न देकर वैसे ही रोती रही। न जाने क्या सोचकर गाडीवान ने गाडी रोक दी, बैलो को गाडी से अलग करके उनके सामने कुछ घास चरने को डाल दी और पागल स्वय भी चलता बना। रोने की धुन मे मेरे ध्यान मे यह बात नही आई। उस बेचारे ने इस बात को तनिक भी नही सोचा कि गाडी मे ये दो अबोध बालिकाएँ अकेली क्या करेगी ? जब वह बहुत दूर निकल गया तब होश आने पर मैं उसे पुकारने लगी थी। किन्तु कही से किसी ने मेरी पुकार का उत्तर नही दिया। अब मै घबरा गई। दीया-बत्ती का समय हो रहा था। कोई राहगीर भी नही दिखाई दे रहा था। न कही से किसी की आवाज सुनाई दे रही थी। ऐसे समय मै उस निर्जन स्थान मे अकेली गाडी मे बैठी थी। आज भी उस दिन की स्मृति से मेरी आँखो मे आँसू छलछला आते है, इसीसे उस दिन मै कितनी रोई थी इसकी कल्पना की जा सकती है। उस उम्र मे यदि एक घर से दूसरे घर मे जाना हो तो हाथ मे दीया लेकर किसी साथी के बिना मै नही जाती थी। और उस निर्जन वन मे—वन ही तो था वह—तमाम असबाब पास मे लेकर अकेली उस गाडी मे बैठी थी और सुन्दरी मेरे सामने सोई थी। उस समय के मेरे नन्हे मन मे

क्या-क्या शकाएँ उठ रही थी और भय से मैं किस प्रकार काँप रही थी इसका यथातथ्य वर्णन करना असम्भव है। डर के मारे मैं रोना भूल गई थी और सामान की पोटलियो को चारो ओर बिछाकर एक चद्दर से सारे बदन को ढाँककर मैं उन पर सो गई थी। भय से दिल बैठा जा रहा था। जरा कहीं खटका सुनकर लगता था कि अब कोई आया। उस उम्र मे चोरो की अपेक्षा भूतो का डर अधिक रहता है। इस डर से मैने चादर चारो ओर से खूब लपेट ली थी। जगल मे गाडी खडी थी और मैं पसीने से नहा रही थी, फिर भी मैंने चादर को शरीर से नही हटाया! एक-एक क्षण प्रहर-जैसा बीत रहा था। मन-ही-मन भगवान् को मना रही थी। हनुमानजी को चोला बोला था पीपल को परिक्रमा डालने की मानता की थी। कृष्ण भगवान् को माखन-मिश्री देने का वायदा किया था। कहाँ तक बचपन के उन विचारो को कहा जाय।

कुछ समय और बीत गया—पक्षियो की चहचहाहट कम होती जा रही थी और अँधेरा बढता जा रहा था। उस मूर्ख गाडीवान ने गाडी को बिलकुल बीच रास्ते मे ही खोल रखा था। मुझे भास हो रहा था कि पीछे से कोई दूसरी गाडी आ रही है। कान देकर मै सुनने लगी। दूसरा विचार आया कि "हम-जैसो की ही गाडी होगी तो ठीक है और यदि गाडी मे कोई बदमाश लोग हो तो ।" इस विचार के साथ ही वह गाडी हमारी गाडी के पीछे आकर खडी हो गई थी। मैं उठकर अपनी जगह बैठ गई। उस गाडी का गाडीवान चिल्लाकर कह रहा था—

"ओ गाडी वाले, गाडी को एक तरफ हटा ले! अजीब आदमी है, बीच ही मे गाडी खोलकर रास्ता रोक रखा है।"

उत्तर मे मैंने कहा, "अरे हमारा गाडीवान भैया को खोजने के लिए गया है।" यह सुनते ही वह गाडी वाला अपनी गाडी से कूदकर हमारी गाडी के पास आया। गाडी मे झाँककर उसने हमारे माल-असबाब को और मुझे देखा। सुन्दरी को वह नही देख पाया था। वह भी अपनी गाडी मे अकेला ही था। शायद कही लकडी आदि पहुँचाकर अब खाली गाडी लेकर अपने घर लौट रहा था।

गाडी मे मुझे अकेली देखकर सात्वना देते हुए उसने मुझसे पूछा कि

मामला क्या है ? मैंने भी पूरी कहानी उसे सुना दी। वह मेरी बात सुनने का बहाना कर रहा था, किन्तु हाथो से पोटलियो को टटोलता जा रहा था। यह देखकर मैने कहा, "अरे भाई, यह क्या कर रहे हो ? हमारी पोटलियाँ क्यो खोल रहे हो ?"

मेरा प्रश्न सुनते ही उसने मुझे डाँटकर कहा, "चुप रह, नही तो मैं तुझे उठाकर कुएँ मे फेक दूँगा।" लाख कोशिश करने पर भी मुझसे नही रहा गया और मैं फूट-फूटकर रोने लगी। रोते-रोते मैं माँ, गाडी वाले और कृष्णाजी पत का नाम लेकर पुकार रही थी। मुझे चिल्लाते देखकर उस शैतान ने मेरे मुँह पर कसकर तमाचा मारा। "और चिल्लायगी," कहकर उसने मुझे गाडी से उठाया और कुछ दूरी पर जमीन पर पटक दिया। जमीन पर पडा एक बडा काँटा मेरी पिडली मे चुभ गया था। मुँह पर जोर का तमाचा लगने से मेरे दाँत होठो मे गड गए थे और वहाँ से खून बह रहा था। जाते-जाते गाडी वाले ने कहा, "और चिल्लायगी तो पत्थर से सिर फोड़ दूँगा—याद रखना ! मैं यहाँ पास ही मे हूँ।"

मै अपनी जगह चुपचाप सिसकती हुई पडी रही। सुन्दरी का भी मुझे ध्यान नही रहा। लेकिन कब तक मै चुपचाप रह सकती थी। फिर जोर से रोने लग गई थी। मैने काँटे को निकालकर फेका और भागने के विचार से उठकर खडी हो गई। इसी समय मैंने सुना —"यमे, तुम कहाँ हो ?" इन शब्दो को सुनकर मुझे जो खुशी हुई थी उसका वर्णन करना असम्भव है। भैया के उन शब्दो को सुनकर मै समझ पाई थी कि मुझे भैया से कितना प्यार है। उसके शब्दो को सुनकर मुझमे अपार शक्ति आ गई थी। जोर से चिलाकर मैंने कहा, "मै यहाँ हूँ।" इसी समय सुन्दरी को गोद मे लेकर माँ और श्री कृष्णाजी पत मेरे समीप आ गए और मुझसे पूछने लगे कि, मैं यहाँ कैसे आई और गाडीवान कहाँ है ? सामान को अस्त-व्यस्त पाकर और गाडी मे सुन्दरी को अकेली रोती देखकर वे लोग ताड गए थे कि अवश्य कोई विपरीत घटना हुई है। मेरे मुँह से सब-कुछ सुन लेने पर माँ ने मुझे उठाकर छाती से लगा लिया और "मैं कैसे तुम दोनो बच्चियो को अकेला छोडकर चली गई ?" ऐसा कहकर रोने लगी। तब भैया ने और कृष्णाजी पत ने उसे सात्वना देकर शान्त किया और हम सब लोग अपनी गाडी के पास

आये । पोटलियों को सुरक्षित पाकर सभी को आश्चर्य हो रहा था । कृष्णाजी पंत ने तर्क किया था कि उन लोगों के आने की आहट पाकर गाडी वाला खाली हाथ भाग गया है । इतने में हमारा गाडीवान भी लौटकर आ गया । अपना मन शान्त हो जाने पर मैंने भैया से कहा, "लेकिन यह तो बताओ कि तुम कहाँ चले गए थे ?" मेरा प्रश्न सुनकर वह हँस दिया । तब माँ ने उसे हँसने के लिए डाँट दिया । उसकी कहानी इस प्रकार थी—

वह पैदल जा रहा था । साथ में कुछ राहगीर और चले जा रहे थे । कृष्णाजी पंत कुछ पीछे रह गए थे । किसी राहगीर ने एक पक्षी की ओर उंगली उठाकर कहा, 'वह देखो चाष पक्षी !" हमारे भैया ने कहीं किसी किताब में पढा था कि चाष पक्षी के दाहिनी ओर से जाने में बडा लाभ होता है । फिर क्या था । भाई साहब उस प्रयत्न में जुट गए । राहगीर आगे चले गए । वह पक्षी इस पेड से उस पेड पर उडता हुआ रास्ते से बहुत दूर चला गया । ये हजरत उसके पीछे घूम रहे थे । आखिर इधर-उधर उडता हुआ वह पक्षी अगोचर हो गया । जब पक्षी दिखाई नहीं दिया तब कहीं हमारे भैया को होश आया । तब रास्ता खोजा गया, किन्तु पता नहीं चल रहा था । कृष्णाजी पंत बहुत दूर तक इसी धुन में चले जा रहे थे कि भैया आगे जा रहा है । किन्तु बहुत दूर तक पीछा करने पर भी जब भैया दिखाई नहीं दिया तब वे उसे पुकारने लगे । किन्तु कहीं से प्रत्युत्तर न पाकर वे चिन्तित हो उठे । निराश होकर कृष्णाजी पंत पीछे लौट आए थे और भैया के खो जाने की सूचना उन्होंने माँ को दी थी । माँ हम बच्चों को प्राणों से भी अधिक चाहती थी । भैया के खो जाने की बात सुनकर वह गाडी से कूद पडी थी और उसे खोजने के लिए चली गई थी । उसने यह भी नहीं सोचा था कि गाडी में दो अबोध बालिकाएँ अकेली बैठी हैं । उसने आस-पास के खेतों पर जाकर भैया को खोजा । रह-रहकर उसके मन में शंका उठ रही थी कि कानों की बालियों ने तो भैया का कोई घात-पात नहीं किया ? इसी समय उसका प्राणस्वरूप भैया सामने से आता हुआ दिखाई दिया । भैया के साथ एक किसान आ रहा था । किसानों को अपने आस-पास के दस-पाँच कोस तक की जानकारी रहती है । जब कहीं रास्ते का पता न चला तब भैया ने खेतों में जाकर पूछ-ताछ की थी कि अमुक

गॉव को जाने के लिए कौन-सा रास्ता है ? किसी खेत पर तीन-चार किसान बैठे थे। उनमे से किसी ने भैया से उसके घर वालो का नाम पूछा। भैया ने पिताजी तथा दादाजी का नाम बताया। वह किसान हमारे घर वालो से भली-भॉति परिचित था। उसने हमारे पूरे कुनबे की जानकारी भैया को देकर कहा, "चलो मेरे साथ, मै अभी तुम्हे तुम्हारी गाडी तक पहुँचा दूँगा।" भैया को साथ लेकर वह किसान आ रहा था कि रास्ते मे मॉ और कृष्णाजी पत से उनकी भेट हो गई थी।

इस प्रकार एक-दूसरे की बाते सुन लेने पर थोडी ही देर मे हमारी गाडी वहॉ से चल दी और कुछ देर बाद उस बडे कुएँ के पास जा पहुँची। वहॉ जाकर हम लोगो ने खाना खाया। रास्ते मे मैने मॉ को उन मिन्नतो और मानताओ के बारे मे कहा जो कुछ देर पहले मैने भगवान् से की थी। उन्हे सुनकर भैया खिलखिलाकर हँस पडा। उसने कहा, "यमे, आखिर तुम जात की लड़की हो न ? तुम्हे तो रोना-धोना और भगवान् के लिए मानता करना ही आता है। जरा मेरी ओर देखो ! मै तो रोया नही। अपनी बालियो को छिपाने के लिए मैने कान अँगोछे से ढॉक लिए थे। और निडर होकर हर मिलने वाले से रौब के साथ रास्ता पूछ रहा था।"

"अरे रहने दो तुम्हारा रौब। मुझ-जैसा किसी गाडी वाले से मुकाबला हो जाता तो तुम्हारा सब रौब धरा रहता।"

"तुम्हारी तरह यदि वह मुझे उठाता तो मै उसका हाथ काट लेता। तुम्हारी तरह रोता हुआ न बैठता।"

भैया की बाते सुनकर मै चिढ गई थी। मैने मॉ से उसकी शिकायत की। मॉ के डॉटने पर हम दोनो ही चुप हो गए। यथा समय हम लोग गॉव पहुँच गए थे।

बढती हुई उम्र के साथ बचपन की बहुत-सी बाते विस्मृति की गोद मे हमेशा के लिए सो गई है, किन्तु जब-जब भैया से भेट हो जाती है तब-तब इस यात्रा का स्मरण मुझे अवश्य हो जाता है।

विवाह के बाद हम पति-पत्नी का परिचय हो जाने पर एक दिन ऐसे ही बातो-बातो मे मैंने अपनी इस यात्रा की कथा उन्हे सुनाई थी। सुनकर उन्होने कहा,- "अच्छाजी ! तो चोरो के हाथ से बचा हुआ रत्न हमे प्राप्त हुआ है ?" जब

कभी भैया हमारे घर आता था तो मुझे चिढाने के लिए 'वे' भैया से कहा करते थे, "क्यो गणपतराव, चोरो ने भी जिस रत्न को नही चुराया उसे आखिर तुमने हमारे गले मढ दिया ?"

५

जैसा कि गत परिच्छेद में कहा गया है, हम लोग यथा समय सकुशल घर पहुँच गए थे। रास्ते मे जिस सकट का हमे सामना करना पडा था उसके सम्बन्ध मे दो-चार दिन तक चर्चा चलती रही। पडोस के लोगो मे से किसी ने कहा, "माँ भी अजीब है जो इतनी छोटी बच्चियो को अकेला छोडकर लडके की खोज मे चली गई," कोई मुझे चिढाने के लिए कहता, "माँ को तुमसे विशेष प्यार नही है, यदि तुम्हे चोर उठा ले जाते तो किसी को विशेष दु ख नही होता।" मैं उनकी बात सच मानकर खीझ उठती थी, किन्तु यदि भैया समीप मे होता था तो वह मुझे समझा-बुझाकर शात कर देता था।

इस प्रकार दो-चार दिन बीत जाने पर घर मे कुछ निराला ही वातावरण निर्माण हुआ था। एक दिन भैया को अपने कमरे मे ले जाकर दादाजी ने उससे पूछा, "क्यो गणु, तुम लोग यहाँ क्यो आये ? अचानक यहाँ आने का क्या कारण था ?" किन्तु उत्तर मे भैया ने कहा, "मैं कुछ नही जानता।" और उसका कहना सच भी था। हम बच्चो को इसकी जरा भी जानकारी नही थी। किन्तु बूढे लोगो की इच्छा रहती है कि उन्हें हर बात की जानकारी हो। पिताजी और दादाजी का पत्र-व्यवहार होते मैंने कभी नही देखा था। किस कारणवश पिताजी ने हम लोगो को भेजा था इस बात का पत्र भेजकर पूछने पर स्पष्टीकरण हो सकता है, इसकी दादाजी को बहुत कम आशा थी। मैंने दादाजी को दादी से कई बार कहते सुना था कि, "जिस गाँव को जाना नही उसका रास्ता मालूम करने से क्या लाभ," इसी आशय का उत्तर पिताजी

दगे । दादी ने भी माँ से कई बार पूछा था, किन्तु हर बार माँ ने यही उत्तर दिया था कि "मै कुछ नही जानती । बच्चो को लेकर गाँव चली जाओ, ऐसा मुझसे कहा गया और इन्हे लेकर मैं यहाँ चली आई ।"

माँ का उत्तर सुनकर मुझे आश्चर्य हुआ था । क्योकि मैं जानती थी कि हम लोगो के यहाँ आने का कारण माँ को बखूबी मालूम है, फिर उसने दादी को कैसे कहा कि वह कुछ नही जानती ? अपनी शका भैया के सामने प्रकट करने पर उसने कहा, "माँ को कारण अज्ञात होगा तभी तो उसने इस प्रकार उत्तर दिया है । यमे, शायद तुम्हारी जीभ मे नोक नही है, तभी तुम इस प्रकार की फालतू बातचीत किया करती हो !" यह कहकर उसने मेरा मुँह खोलकर कहा, "देखो, मेरा कहना कितना सही है !"

भैया की बात सुनकर मुझे गुस्सा आ गया ! किस दृष्टि से मैंने अपनी शका भैया के सामने प्रकट की और उसने उसका कैसा विपरीत अर्थ निकला है । मुझे चिढता देखकर भैया मुझे और भी चिढाता रहा ! दुबारा मेरा मुँह खोलने का प्रयत्न करने पर मैंने उसकी उँगली मे काट लिया । वह जोर से चिल्ला उठा । अब माँ मेरी पिटाई करेगी इस डर से मैं भी जोर-जोर से रोती हुई सीधी दादी के पास जा पहुँची । दादी ने बहुतेरा पूछा कि बात क्या है, किन्तु मैं केवल भैया—अ अ अ कहकर रोती रही । तब दादी ने भैया को चार गालियाँ देकर कहा, "बडा ही नटखट लडका है, आखिर किसका नाती है, उन्ही-जैसा तो होगा !" उस समय दोपहर के एक बजे का समय होगा । दादी ने मुझे अपने पास पुचकारकर सुला लिया । कुछ देर बाद न जाने किस विचार से, धीमे स्वर मे उसने मुझसे कहा, "क्यो यमे, तुम्हे मालूम है तुम्हारे पिताजी ने तुम लोगो को अचानक यहाँ क्यो भेज दिया ?"

दादी द्वारा कोई बात पूछी जाने पर, और मालूम होने पर उसे छिपाना बच्चो के लिए कोई साधारण बात नही है । और फिर लाड-दुलार के साथ पूछा जाने पर तो मुँह से बात निकल ही जाती है ! वैसे तो मै विशेष कुछ नही जानती थी, किन्तु दादी के उस विश्वासपूर्ण प्यार-भरे स्वर को सुनते ही, जिस दिन हम लोग गाँव आने के लिए रवाना हुए थे, उसी दिन सुबह माँ और पिताजी का जो सभाषण मैने सुना था उसका मुझे स्मरण आ गया । उसी प्रकार गाडी मे मुझे छाती से लगाकर माँ किस प्रकार रोई थी इसकी

स्मृति भी ताजी हो गई थी। माँ ने उस बात को दादी से न कहने के लिए मुझे जतलाया था, किन्तु माँ की आज्ञा को मै भूल गई और दादी के पूछने पर उसके गले मे बाँहे डालकर धीरे धीरे मैने मुझे जो कुछ मालूम था वह उसे सुना दिया। उसने और भी कई प्रश्न पूछे थे, किन्तु इससे अधिक मुझे और कुछ नही मालूम था। मेरी बात सुनकर दादी कुछ घबराई-सी मालूम दी। चट से उठकर वह दादाजी के कमरे मे चली गई। मेरे मुँह से उसने जो कुछ सुना है उसे वह अब दादाजी से जाकर कह देगी, यह सोचकर मै भी उसके साथ दादाजी के कमरे मे चली गई थी।

कमरे मे जाते ही दादीने कहा "देखा, मेरी बिटिया रानी कितनी सयानी है! उसने मुझे सब-कुछ बता दिया! आपका गणा तो निरा बुद्धू है।" हम भाई-बहनो के बारे मे जब कभी चर्चा चला करती थी तो हमारे नामो का उल्लेख इसी प्रकार किया जाता था।

दादाजी ने कहा, 'अरे यह क्या बतायगी! लहगा पहनने और नाक पोछने की भी तो इसमे अक्कल नही है!"

'और तुम्हारे उस लाडले को बडी अक्कल है। चौदह साल का घोडा हो गया फिर भी एक पत्र पढने का भी सलीका नहीं है। यहाँ आने से पहले क्या-क्या हुआ था, इनका ब्यौरा मेरी बच्ची ने मुझे सब सुना दिया है!"

अन्तिम शब्द सुनकर दादाजी की आँखे कुछ फैल-सी गई थी। क्या हुआ था, इसे सुनने के लिए वे आतुर हो उठे थे। दादी तो उन्हे सुनाने के लिए उस कमरे मे आई थी। मेरे मुँह से उसने जो कुछ सुना था, उसमे कुछ और नमक-मिर्च मिलाकर उसने सारी कथा दादाजी को सुना दी। सुनकर दादाजी कुछ चिन्तित हो गए थे। दादा के चेहरे का रग भी उड गया था। भर्राई-सी आवाज मे दादाजी ने कहा, "यह सब क्या है? वह हमसे सारी बाते क्यो छिपाया करता है? क्या हम उसके कोई नही होते? जा यमे, अपनी माँ को जरा इधर भेज दे—और हाँ, उसके साथ तू मत आना! चुगल-चोट्टी! माँ-बाप का सभाषण चोरी से सुनती है? और मैंने जब पूछा तो मुझे कुछ नही बताया और अपनी दादी को सब बता दिया! वाह, क्या नमूने है दादी और उसकी नातिन के! चल, जा निकल यहाँ से, और अपनी माँ को यहाँ भेज दे!"

उनका भाषण सुनकर मैं सहम गई। डर से भागती हुई मैं पिछले आँगन

मे चली गई जहाँ माँ थी। सूखने के लिए बिछाई हुई दाल पर वहाँ माँ हाथ फेर रही थी। घबराकर मैंने कहा, "माँ, तुम्हे दादाजी ने बुलाया है, जल्दी जाओ!" मेरी घबराहट देखकर माँ ने पूछा, 'क्यो, किस लिए?" किन्तु उसका उत्तर देने के लिए मै वहाँ कैसे ठहरती? मुझे भय लग रहा था कि, जब माँ को यह मालूम हो जायगा कि मैने ही दादी को सब-कुछ बता दिया है तो मुझ पर अवश्य नाराज हो जायगी। माँ नही जानती थी कि इस बारे मे मुझे भी कुछ जानकारी है। यदि मुझे कुछ मालूम था तो मुझे माँ को कह देना था, इसके विपरीत मैने दादी से कहा था। वह भी माँ के जतलाने पर कि दादी से न कहना। इसलिए मुझे भय था कि माँ मुझे अवश्य दड देगी। मुझसे गलती अवश्य हुई थी—मैने माँ की आज्ञा का पालन नही किया था। अब माँ के हाथो से बचने के लिए क्या किया जाय? अक्ल काम नही दे रही थी तब मुझे भैया की याद आ गई। वह अवश्य कोई मार्ग निकाल सकता है। लेकिन उसके पास मै किस मुँह से जा सकती हूँ? अभी तक उसकी उँगलियो पर मेरे दाँतो के चिन्ह बने होगे! वह मुझे कैसे क्षमा कर सकता है? इसी उधेड-बुन मे मै बडे आँगन मे चली गई थी। वहाँ बैठा भैया टटेरो को छीलकर गाडी बना रहा था। मै चुपके से उसकी बगल मे जाकर बैठ गई। उसके बोलने के पहले ही मै उसके सामने गिडगिडाने लगी थी, किन्तु वह तो मेरा उस्ताद था न! मेरी ओर ध्यान न देकर उसने अपना सामान उठाया और वहाँ से प्रस्थान करने की तैयारी कर ली। उसे वहाँ से जाते देखकर मैने झट से उसका हाथ पकड लिया, किन्तु उसे झटककर उसने कहा, "देखो यमे, तुम मुझसे न बोला करो! मैने निश्चय कर लिया है कि अब कभी तुमसे नही बोलूँगा। तुम अपने दाँतो के निशान देख रही हो?" इतना कहकर वह वहाँ से चला गया। अब मेरा दिल टूट-सा गया। भैया का मुझे बडा भरोसा था। मै उसे परमात्मा-स्वरूप माना करती थी। उसका सहारा टूट जाने से मैं रो उठी। आज भैया मुझसे नाराज है और माँ भी अब अवश्य नाराज होगी, इस कलपना से मेरी सिसकियाँ बँध गई थी। आँगन मे एक बेल-पत्र का पेड था और उसीके नीचे शिवजी की एक पिडी रखी थी। मै वहाँ जाकर बैठ गई और फूट-फूटकर रोने लगी। शिवजी को हाथ जोडकर मै प्रार्थना करती रही कि किसी प्रकार मुझे इस सकट से बचा लो!

सवा पैसे की सिन्नी चढाना भी मैने स्वीकार कर लिया था। प्रार्थना करते-करते सध्या हो गई थी, फिर भी घर मे जाने का साहस नही हो रहा था। इतने मे "यमे" सम्बोधन के साथ किसी की क्रोधभरी आवाज मुझे सुनाई दी।

माँ की उस क्रोधभरी पुकार को सुनकर मेरा दिल धडकने लगा था। किये गए अपराध का प्रायश्चित्त अवश्य ही भोगना था। इसलिए न्यायाधीश के सामने चोर जिस प्रकार भयभीत होकर जाता है उसी प्रकार मैं भी माँ के सामने जा रही थी। समस्या यह थी कि माँ बिलकुल दरवाजे मे ही अडी खडी थी। इधर-उधर से बचकर भागने का रास्ता नही था। किन्तु सौभाग्य से मुझे आती देखकर माँ अन्दर चली गई थी। मैं भी उसके पीछे आहट लेती हुई झट से दादी के पास पहुँच गई। दादी का आश्रय अपराधी नातियो के लिए किसी गढ का आश्रय पाने-जैसा ही होता है। मैंने सोचा, 'अब मुझे स्वय ब्रह्मा भी दड नही दे सकते फिर औरो की तो बात हो क्या है!'

उस दिन दादी के पास बैठकर ही मेरे सब कारोबार चलते रहे। दादी से दूर हटने का साहस मुझमे नही था। दूर हटते ही कही माँ ने पकड लिया तो ? इस भय से भोजन होते ही मै दादी के बिस्तरे पर उसकी चादर ओढकर सो गई थी। हम लोग एकत्र नही रहते थे इसलिए दादी के पास सोने की मुझे आदत नही थी। किन्तु आज का दिन कुछ विचित्र ही था। उस दिन रात को स्वप्न मे भी मैंने माँ और दादाजी के क्रोध का अनुभव किया था। किन्तु सुबह मैं जब जाग गई तो मैने देखा कि मेरे शरीर पर हाथ रखे माँ उदास होकर बैठी है! मुझे जागी देखकर अत्यन्त मृदु स्वर मे माँ ने कहा, "यमे, बेटी, आज तक मैने तुम्हे कई अच्छी बाते सिखाई, किन्तु देखती हूँ उनका कोई लाभ नही हुआ। मुझे इसका बहुत दु ख है। पहली बात यह है कि ऐसे सभाषण को तुम बच्चो को सुनना नही चाहिए था और यदि सुन भी लिया तो जिसकी बात हो उसीसे कहनी चाहिए न कि किसी दूसरे से! इसके बारे मे दादी ने जब मुझे पूछा था तो मैंने उत्तर मे जो कहा था उसे तो तुमने सुना था न ? किन्तु तेरी इस विशेष चातुरी ने मुझे व्यर्थ मे झूठी सिद्ध कर दिया। तुम्हे इस बात को सोचना चाहिए था कि उनके मना करने से ही मैंने उस प्रकार का उत्तर दिया था। तुमने दादी से कह दिया इसका मुझे दु ख नही है, किन्तु तुम्हारी यह आदत बहुत बुरी है। ऐसी आदत

पड जाने पर ससुराल मे तुम्हारा क्या हाल होगा ? अब तुम छोटी तो नही हो ! तुम्हारी इस उम्र मे तो मेरे ब्याह को चार वर्ष हो चुके थे। राम-राम ! मै नही जानती थी कि तुम इतनी शरारती हो ! इस अपराध के लिए तुम्हे दड दिया जाता है कि कुछ समय के लिए तुम्हारे साथ बातचीत करना बिलकुल बन्द !"

माँ के अन्तिम शब्द सुनकर मुझे बहुत दु ख हुआ था। क्योकि मैं जानती थी कि माँ जो कहती है उसे करके दिखाती है। उस समय उसके हाथो दो-चार तमाचे खाकर भी मुझे इतना दु ख नही होता जितना कि उसके न बोलने का निश्चय सुनकर हुआ था।

६

मैं पहले ही एक बार बता चुकी हूँ कि माँ जब कभी किसी बात का निश्चय कर लेती थी तो उसका पालन पूर्ण रूप से किया करती थी। उसका मुझसे बात न करने का प्रण पद्रह दिन तक बना रहा। उसके साथ बोलने का मैंने कई बार प्रयास भी किया, किन्तु वह व्यर्थ रहा। दादी के सामने मैं माँ से बोलने का प्रयास किया करती थी, किन्तु "हाँ", "नही" कहकर वह चुप हो जाती थी। आखिर एक दिन न जाने क्या सोचकर उसने मेरे साथ भाषण करना आरम्भ कर दिया। किन्तु मुझे उसने फिर वही उपदेश दिया, कि जिस बात से अपना सम्बन्ध न हो उसके बारे मे कभी नही बोलना चाहिए, किसी एक की बात सुनकर उसका उल्लेख दूसरे से नही करना चाहिए। और जब मैंने उसके कहने के अनुसार व्यवहार करने का उसे वचन दे दिया तब जाकर उसने मेरे साथ पूर्ववत् भाषण करना आरम्भ किया।

दो महीने और बीत गए। इस बीच मे पिताजी दो-चार दिन के लिए

गाँव आए थे और जाते समय अपने साथ माँ, सुन्दरी और भैया को ले गए थे। भैया को वे ले जाना नही चाहते थे, किन्तु उसकी पढाई मे बाधा आयगी इस कारण उसे ले गए। मुझे गाँव मे ही छोड दिया गया। मै जाने के लिए बहुत रोई, किन्तु मेरी बात कौन मानता था! माँ ने भी शायद मुझे ले चलने के लिए कहा, किन्तु पिताजी ने किसी की बात नही मानी। मुझे दादी के पास छोडकर सब लोग चले गए।

इस बीच मे क्या-क्या हो रहा था इसकी मुझे पूर्ण रूप से जानकारी नहीं है, किन्तु दो-चार दिन बाद दादाजी के नाम से पिताजी का जो पत्र आया उससे मैने अदाज लगा लिया कि उनकी नौकरी के बारे मे कुछ चल रहा है। क्योकि दादाजी को दादी से कहते हुए मैने सुना था, "जैसी करनी करोगे वैसे ही फल पाओगे! यदि रुपया जमा न किया जाता तो क्या होता? लेकिन कौन सुनता है! ओहदा चाहिए! लो ओहदा! नौकरी बनी रही तो भाग्य समझो!" दादाजी की बात का वास्तव मे क्या अर्थ था, इसे मै नही समझ पाई। मेरी समझ मे केवल इतना ही आया था कि पिताजी की नौकरी छूटने का बहुत-कुछ अदेशा है।

पिताजी के जाने के बाद कुछ दिनो तक कोई विशेष घटना नही घटी थी। सब-कुछ स्थिर-स्थावर-सा दिखाई दे रहा था। पिताजी की ओर से भी कुशल-समाचार आता रहा। पास-पडौस की औरतें दादी के पास आकर कहा करती थीं, "लो, अब तुम्हारे लिए यह हुडी आ गई है। कब ब्याह करने का विचार है? समय से करना ही अच्छा है! यह छोटी-सी दुलहन खूब जँचेगी। आजकल देखो न, ब्याह के समय लडकियाँ कितनी बडी हो जाती है! कोई दस वर्ष की, तो कोई ग्यारह वर्ष की! अभी-अभी मै पूना गई थीं तो वहाँ मैने एक चौदह वर्ष की दुलहन देखी थी! छी! क्या यह विवाह की उम्र होती है? लडकियो का विवाह इतनी उम्र तक न करने मे उनके माता-पिताओ को लज्जा कैसे नही आती? वह लडकी इतनी बडी थी कि घूँघट निकाले बिना उसका काम नही चल सकता था! तुम अपनी नातिन का विवाह छोटी उम्र मे ही कर देना! पास के गाँव मे फडके जी रहते है, उनका लडका अच्छा है! होगा कोई तेरह वर्ष का! उनका विचार भी इस वर्ष

विवाह करने का है। वे लोग अच्छी-सी लडकी की तलाश मे है! देखो, यदि तुम्हारा तय हो जाय तो!"

इस प्रकार घर मे चर्चा आरम्भ हो गई थी। हमारी दादी भी उन्ही-जैसी थी। उन लोगो की हाँ-मे-हॉ मिलाकर उसने भी मेरे लिए वर ढूँढने का कार्य आरम्भ कर दिया था। दो-चार बार मुझे देखने के लिए भी लोग आए थे। मजे की बात तो यह है कि मुझे ये सब बाते बहुत भाती थी! कोई मुझे देखने आ रहा है, यह सुनकर मुझे खुशी होती थी। पडौस की सात-आठ वर्ष की लडकियो का विवाह होते देखकर मेरे मन मे भी विचार आया करता था कि इन लड़कियों-जैसे, नये-नये कपडे पहनकर तथा सिर से लेकर पैरो तक तरह-तरह के आभूषणो से लदकर, पैर मे पहनी पाजेबो की ताल पर मैं भी ठुमकती हुई ससुराल से मायके और मायके से ससुराल आया-जाया करूँगी! नई दुलहन को देखने के लिए आये हुए लोग मुझसे पति का नाम बताने के लिए आग्रह करेगे तब मैं शर्म से गर्दन नीचे की ओर झुकाकर मना कर दूँगी। फिर अधिक आग्रह करने पर दिखाने के लिए तो जबर्दस्ती, किन्तु वास्तव मे अत्यन्त खुशी से मैं उस प्रियतम का नाम उच्चारण करूँगी। दूसरी लडकियो की तरह पति के साथ एक ही थाली मे भोजन करने बैठकर उनके मुँह मे निवाला देने का सुअवसर कब प्राप्त होगा, इसकी मुझे तीव्र चाह हो रही थी।

यह सुनकर किसी को आश्चर्य हो सकता है कि इतनी छोटी उम्र मे मेरे मन मे इस प्रकार के विचार कैसे आते होगे? किन्तु इसमे आश्चर्य की कोई बात नही है। मेरे अपने अनुभव से तथा अपनी सहेलियो के मुँह से सुनी बातो के आधार पर मेरी यह धारणा हो गई थी कि विवाह से बाल-बच्चे तथा चक्की, चूल्हा इसके अतिरिक्त स्त्रियो को अन्य बातो की जानकारी नही होती। बिलकुल बचपन से ही हमे सुनाया जाता है, "लडकियो के लिए ये ढग अच्छे नही, कल ससुराल जाना है। हॉ, इस प्रकार पालथी मारकर बैठना लडकियो को शोभा नही देता। लडकियो की जात है, अधिक लाड करना ठीक नही होगा। न जाने भगवान् इन लड़कियो को क्यो पैदा करता है? आदि।" केवल उदारहण के लिए मैंने उपरोक्त वाक्यो का उल्लेख किया है, किन्तु इससे भी अधिक तीखे शब्दो का हम लडकियो के लिए उपयोग किया जाता है। इस प्रकार की बाते उस अबोध अवस्था मे सुनकर हमारे बाल-मन पर कितना

दुष्परिणाम होता है! मन मे विचार आता है कि हम लडकियो का जन्म स्वय अपने सुख के लिए नही होता। बचपन मे बाप, यौवन मे पति और वृद्धावस्था मे लडको को सुख देने के लिए ही हम स्त्रियो ने जन्म लिया है। 'भगवान् न बनाये किसी की घर वाली और न बनाये नौकर।' यह कहावत निरर्थक थोडे ही है!

विवाह-बरातें, अलकार-आभूषण आदि विषयो के अतिरिक्त चर्चा के लिए हमारे पास और कौन-से विषय हो सकते है? दूसरो के घर की फालतू बातो पर चर्चा करना, यही हमारा सबसे बडा उद्योग रहता है। किसी की बहू ने पेचदार बुन्दो का गजरा पहना था, किसी की घर वाली ने तिकोनी बिंदिया बनवाई है, सराटे की लडकी पद्रह वर्ष की हो चुकी, खराटे की लडकी 'सयानी' हो चुकी, फिर भी उसका विवाह नही किया जा रहा है। ऐसे ही विषयो को लेकर हम लोगो मे चर्चा चला करती थी।

दादी मेरे विवाह के लिए उतावली हो रही थी। मेरे लिए अच्छा-सा वर ढूंढने के लिए उसके अपने प्रयत्न चल रहे थे और दादाजी अपने स्वभावानुसार दादी के प्रयत्नो मे बाधाएँ डाल रहे थे, किन्तु वे स्वय भी किसी अच्छे वर की खोज मे थे। किसी उद्योग का बधन न होने से उन्हे पर्याप्त समय मिल जाता था, इसलिए आस-पास के गाँवो मे जाकर उनका वर-सशोधन-कार्य चला करता था। किन्तु उनके पसन्द किये लडके दादी को बिलकुल पसद नही आते थे और दादी की पसदगी से दादाजी घृणा करते थे। इसी बात को लेकर एक दिन उन दोनो मे खूब ठन गई। दादाजी पूजा मे बैठे थे, क्रोध मे आकर उन्होने शालिग्राम उठाकर दादी की ओर फेक मारा। निशाना कुछ चूक गया था, नही तो दादी का सिर फूट जाता। फिर भी दादाजी की बक-झक चलती रही। उसे सुनकर दादी भी गुस्से से तिलमिला उठी थी। वह रसोई बना रही थी। चूल्हे से लडकियो को बाहर निकालकर उसने एक लोटा पानी चूल्हे मे उँडेल दिया और पिछवाडे के दरवाजे मे रोती—बड-बडाती जा बैठी। इस झगडे का कारण केवल इतना ही था कि दादी ने किसी वर का उल्लेख किया था, तो दादाजी ने कहा, "वह घर अच्छा नही है, लडका निकम्मा है। इससे अच्छा घर तो मैंने देखा है।"

उत्तर मे दादी ने कहा, "मैं जानती हूँ, तुमने जो घर देखा है, वह बिलकुल

खराब है। तुम पुरुष तो केवल ऊपरी दिखावट को ही देखते हो। घर की बातो का तुम्हे क्या पता ! उस घर की सास बहुत दुष्ट है, वह तो मेरी बच्ची की खाल नोच लेगी।"

बस, इन्ही बातो को लेकर विवाद बढता गया और इस प्रकार उसकी इतिश्री हुई थी। दादाजी सिर पर पगडी बाँधकर कही बाहर चले गए, दादी भी एक धोती बिछाकर रसोईघर मे जाकर लेट गई। मैं पागल की तरह यहाँ से वहाँ घूम रही थी। सौभाग्य से उस दिन घर मे खाने को और कुछ नही था, इसलिए दादी ने सुबह मुझे भात बनाकर खिला दिया था। नही तो उन दोनो की तरह मुझे भी दोपहर तक भूखा रहना पडता।

अन्त मे एक घर ऐसा मिल गया था जो दादाजी और दादी दोनो को पसन्द था। मुझे उस घर की बहू बनाने के लिए दोनो एकमत हो गए थे। फिर पिताजी को पत्र लिखा गया, किन्तु पद्रह-बीस दिन तक उनकी ओर से कोई उत्तर न आता देखकर दादाजी ने स्वय उनके यहाँ जाना तय किया। इसी समय पिताजी की ओर से पत्र का उत्तर आया, जिसमे लिखा था, "अभी लडकी छोटी है, हम भी सकटापन्न है, आप इस बात का विचार त्याग दे।"

इस पत्र को पढकर दोनो ही आग-बबूला हो गए। मेरा विवाह नही हो रहा है, इस बात का मुझे भी दु ख हुआ।

७

गत परिच्छेद मे कहे अनुसार पिताजी का पत्र आने पर दादाजी और दादी मे प्रतिदिन किसी-न-किसी बात को लेकर झगडा हो जाया करता था। दादाजी ने तो सौ-पचास गालियो का उच्चारण करके कसम उठाई कि भविष्य मे लडके के सम्बन्ध मे चर्चा भी नही करूँगा। हमारे यहाँ पुरुषो को एक बुरी आदत होती है। क्रोध मे अथवा हास्य-विनोद मे उनके मुख से सहज ही

अपशब्दो का उच्चारण हो जाया करता है। ऐसे समय उन्हे इस बात का जरा भी ध्यान नही रहता कि उनके आस-पास कौन लोग बैठे है। गदे शब्दो का उच्चारण करते समय उन्हे अपनी माँ-बहनो तक का भी ध्यान नही रहता। कई लोगो को तो ऐसी बुरी आदत होती है कि घर की औरतो के सामने वे अपने मित्रो के साथ गदे शब्दो मे हँसी-मजाक करने मे जरा भी नही हिच-किचाते। मेरे विचार मे पुरुषो की इस आदत को सुधारने के लिए एक ही उपाय किया जा सकता है। यदि पुरुषो के समाज मे महिलाओ का आवागमन पर्याप्त मात्रा मे हो तो सम्भवत पुरुषो की यह आदत सुधर सकती है।

यह देखा गया है कि वृद्धो द्वारा किये गए निश्चय या तो अन्त तक बने रहते है या फिर कुछ ही दिनो मे भुला दिए जाते है। दादाजी ने भी अपनी शपथ के अनुसार दस-पद्रह दिन तक मेरे विवाह के बारे मे नाम भी नहीं लिया। किन्तु दादी छटपटा रही थी। कभी-कभी वह बड-बडाने लगती, 'हम लोगो की तो कोई सुनता ही नही। बूढो का तो समयानुसार चल बसना हीं अच्छा होता है। उनकी कोई पूछ-ताछ नहीं है। कहते है कि लडकी अभी छोटी है। अरे, इस उम्र मे ब्याही जाकर मैं तो अपनी ससुराल मे आ गई थी। अब तो हर बात मे खिलवाड-सा हो गया है। इस उम्र मे विवाह नही किया जायगा तो क्या लडकी 'सयानी' हो जाने पर किया जायगा ? तुम्हें विवाह के लिए नही आना है तो न आओ! इतना दिमाग क्यो बताते हो ? हम ही लडकी का विवाह कर देगे।'

इस प्रकार मुँह चला करता था। विशेष बात यह थी कि हर कोई उनसे कहता, 'क्यो, क्या विवाह निश्चित हो गया ?' पडोस की स्त्रियाँ तो उनके पीछे ही पड गई थी। कोई कहती, 'देखो, इतना अच्छा घर हाथ से न जाने देना। दहेज मे दो सौ अधिक देने पडे तो भी पीछे न हटना। वह घर तो इतना अच्छा है कि जितना दहेज दो उतना ही कम है। नख से शिख तक लडकी आभूषणो से लदी रहेगी। और उस घर के लोग बडे सज्जन है। आगे चलकर दस-बारह वर्ष तक उनके यहाँ कोई विवाह-कार्य होने की सम्भावना नही है। इसलिए इस विवाह-कार्य को वे लोग ठाट-बाट से करना चाहते है। सास अब बूढी हो गई है, इसलिए उन लोगो की इच्छा है कि उसके सामने लडके का विवाह शीघ्र हो जाय।' इस प्रकार किसी को कहते सुनकर दादी के

मन मे उथल-पुथल मच जाती थी। पहले तो बात यहाँ तक बढ गई था कि केवल विवाह-विधि होनी शेष रह गई थी। किन्तु पिताजी का पत्र आ जाने से मामला बिलकुल गोल हो गया था। किसी से असली बात कही भी तो नही जा सकती थी। क्या अपने मुँह से यह कहा जा सकता था कि हमारे लडके ने अपनी बेटी का विवाह करने के लिए मना कर दिया है ? यह सुनकर लोग-बाग क्या कहेगे ? अन्त मे एक दिन दादाजी के समीप जाकर रुआसी होकर दादी ने कहा था, "अब तो किसी को मुँह दिखाने मे भी शर्म आती है। जाकर घर देखा, जन्म-पत्री मिलाई, सब-कुछ किया और अब विवाह का नाम भी नही लेते। लडके वालो का क्या है, किन्तु इसमे बात तो हमारी ही बिगडती है। इस प्रकार चुप बैठने से कैसे काम चलेगा ? मैने बात को इतना आगे बढाया यह आप ही के भरोसे पर ही तो ’

दादी का भाषण सुनकर दादाजी भी सोच-विचार मे डूब गए। "मैंने जो किया वह आप ही के भरोसे तो किया।" यह सुनकर शायद मन-ही-मन प्रसन्न होकर उन्होने कहा, "तुम जरा धीरज धरो, मै सब तुम्हारी इच्छा के अनुसार ही करूँगा। मै इस लडके से थोडे ही डरता हूँ। कल ही उसे लिख दूँगा कि हम लोग इस विवाह को किये बिना नही रहेगे। मुहूर्त निश्चित हो जाने पर तुम्हे सूचना दे दी जायगी। यदि विवाह मे तुम्हे सम्मिलित होना हो तो आ जाना, नही तो तुम्हारी मर्जी ! कन्या-दान भी हम ही कर देगे। तुम्हारे बिना कोई काम नही रुकेगा। यदि तुम्हारी यह धारणा हो कि लडकी तुम्हारी है और उस पर हमारा कोई अधिकार नही है तो यह बिलकुल गलत है। इस समय लडकी हमारे घर है और हम चाहे जो कर सकते है। यदि तुम चाहते हो तो अपने लडके के बारे मे अपने मन की कर सकते हो ! साफ-साफ लिख दूँगा। इस प्रकार लिखने मे क्या मुझे उसके बाप का डर है ?"

उनका अन्तिम वाक्य सुनकर मुझे हँसी आ गई थी। दादी ने भी हँसकर कहा, "आपने क्या कहा, कुछ ध्यान है आपको ?" यह सुनकर तो मैं हँसी के मारे लोट-पोट हो गई थी। किसी प्रकार मेरी हँसी रोके नही रुकी। दादाजी भी उस दिन कुछ खुश मालूम होते थे। मेरे साथ वे भी हँस पडे। उन्होने कहा, "क्यो री 'मुझे क्या उसके बाप का डर है।' यह सुनकर तुझे हँसी आ रही है। तब तू ही बता, क्या मैं अपने, आपसे डरता हूँ।" यह सुनकर

दादी भी हँस पडी। उस दिन घर का वातावरण अच्छा रहा, क्योकि सायकाल तक दादाजी और दादी मे किसी बात पर झगडा नही हुआ था।

मैंने कही पढा है कि तूफान आने से पहले वातावरण बिलकुल शान्त हो जाता है। उसी प्रकार कोई विपदा आने से पहले मन अपूर्व आनन्द से विभोर हो उठता है। कई लोगो को मैंने कहते हुए सुना है कि अवर्णनीय आनन्द प्राप्त होने पर मनुष्य को समझ लेना चाहिए कि शीघ्र ही कोई महान् सकट आने वाला है। मैने जिस दिन का ऊपर उल्लेख किया है ठीक उसके दूसरे दिन पिता जी का पत्र आया। पत्र पढते ही दादाजी का मुख विवर्ण हो गया। दादी समीप खडी थी। उसने जानना चाहा कि पत्र मे क्या लिखा है ? किन्तु दादाजी ने कोई उत्तर नही दिया। दादी के मन मे मेरे ब्याह की बात घर किये बैठी थी, इसलिए उन्होने यह सोचकर कि विवाह के बारे मे ही कुछ लिखा होगा, दादाजी से कहा, "क्यो, क्या फिर कोई अपमानजनक बात लिखी है उसने ? हद कर दी इस मूरख ने तो।"

इस पर भी दादाजी का मुँह नही खुला तब तो दादी को विश्वास हो गया कि अवश्य ऐसी ही कोई ऊटपटाँग बात पत्र मे लिख दी है। दादी और कुछ कहना चाहती थी तभी क्रोध से काँपते हुए दादाजी मेरे समीप आकर कहने लगे, "अभागी लडकी, चल हट यहाँ से। हर समय बडो के साथ आकर बैठेगी। निकल यहाँ से।" इन शब्दो को सुनकर मेरे पैरो-तले से जमीन खिसक गई। मै दादी के पीछे जाकर छिपना चाहती थी, किन्तु मेरे विचार को ताडकर दादाजी ने मेरा हाथ पकड लिया और एक तमाचा जमाकर मुझे वहाँ से बाहर निकाल दिया। मैं बाहर जाकर फूट-फूटकर रोने लगी। मेरा पक्ष लेकर दादी शायद दादाजी से झगड रही थीं, क्योकि बाहर मुझे दादी का भाषण सुनाई दे रहा था। वह कह रही थी, "तुम्हे तो जरा भी दया नही, उस छोकरी ने तुम्हारा क्या बिगाडा था ? उसे मार डालोगे तब तुम्हारा कलेजा ठडा होगा।"

पत्र की बात तो दूर रही, इसी बात को लेकर उन दोनो मे झगडा होता रहा। किन्तु कुछ देर बाद एकदम सन्नाटा-सा छा गया। मेरे पेट मे चूहे कूद रहे थे। किन्तु दादी बाहर नही आ रही थी। और दादाजी के सामने जाने का मुझे साहस नहीं हो रहा था। मैं अपनी जगह बैठी रही। कुछ देर बाद

दादी ने मुझे पुकारा, किन्तु मैं वैसी ही बैठी रही। मन मे विचार आ रहा था कि दादी के खूब मनाने पर ही भीतर जाऊँगी। आखिर मुझे अन्दर ले जाने के लिए दादी मेरे पास आई। उसे देखकर मैने फिर रोना शुरू कर दिया। उसने बहुतेरा भीतर चलने के लिए कहा, किन्तु मैने एक न मानी। तब चिढकर उसने कहा, "अच्छा तो अब वे स्वय आकर तुझे ले जायँगे।" इसी समय दादाजी की पुकार सुनकर मै झट से भीतर चली गई।

दादी ने मुझे बहलाकर कुछ मिठाई खाने को दी। वातावरण बिलकुल शान्त था। कोई किसी से बात नही कर रहा था। प्रतिदिन दोपहर के भोजन के समय अवश्य कुछ चख-चख हुआ करती थी। किन्तु आज दादाजी मौन बैठे भोजन कर रहे थे। दादी ने धीमे स्वर मे कहा, "तो कल ही पत्र लिख दिया जाय कि सब लोगो को यहाँ भेज दे" इस पर भी दादाजी ने कोई उत्तर नही दिया, केवल उसकी ओर क्रोध-भरी दृष्टि से देखा। उनके मौन मे क्रोध के साथ ही दुःख की छटा भी स्पष्ट दिखाई दे रही थी। किसी तरह दिन बीत गया। कोई किसी से बात नही कर रहा था। रात मे मैं सो गई थी, किन्तु बहुत सुबह जब मेरी आँख खुली तो मैंने दादी को पैर फैलाकर चिन्तामग्न बैठी देखा। दादी इतने तडके कभी नही उठती थी। वृद्धावस्था के कारण उसे नीद कम आती थी फिर भी देर तक वह बिस्तरे पर पडी रहती थी। आज उसे इस प्रकार बैठी देखकर मुझसे न रहा गया और मैंने पूछा, "बडी माँ, आज तुम इस प्रकार क्यो बैठी हो ? पिताजी ने पत्र मे क्या लिखा है ?"

८

मैंने दादी से पूछा, किन्तु उसने कोई उत्तर नही दिया। मुझे पूर्ण विश्वास था कि मैं पूछूँ और दादी उसका उत्तर न दे, यह कभी नही हो सकता।

दूसरो की बात तो मुझे मालूम नही, किन्तु मेरा अपना अनुभव है कि बच्चो के

लिए दादी सबसे प्यारी होती है। माँ से अधिक बच्चे अपनी दादी पर विश्वास करते है और उन्हे उससे अधिक ममता होती है। हर कोई मना कर दे, किन्तु दादी के पास जाते ही चाही गई चीज अवश्य मिल जाती है। किसी ने यदि पीटा हो तो दादी के पास शिकायत ले जाने पर योग्य निर्णय हो जाता है और मारने वाले को उचित दण्ड दिया जाता है। एक नही, इस प्रकार की पचासो बाते कही जा सकती है। दादी को कोई वस्तु दी जाने पर, अथवा घर मे कुछ लाने पर उसका अधिकाश नातियो के लिए अवश्य रखा जायगा। और यदि इकलौता नाती हो अथवा अन्य नातियो की अपेक्षा किसी एक से दादी को अधिक प्यार हो, तब तो उसके भाग्य के बारे मे कहना ही क्या है। हमारे घर मे अधिक लोग नही थे और मैं भी दादी के पास अधिक नही रहती थी फिर भी वह मुझे वहुत प्यार करती थी। अन्य लोग जब इस बात का निर्देश करते तो वह कहा करती थी, "अरे मेरे लिए यमी क्या, और गणू क्या, सभी एक-से है।" किन्तु दिन-प्रतिदिन उसे मुझसे अधिक प्यार होता जा रहा था। मुख्य कारण यह था कि स्वभावत लडकियो मे जो लाघव होता है उसकी मुझमे कमी नही थी। मैं हर समय उसकी इच्छा के अनुसार काम किया करती थी, इसीलिए मैंने सोचा था कि पूछने पर दादी मुझे अवश्य कह देगी।

मैंने प्रश्न किया, किन्तु मुझे उत्तर नही दिया गया। 'शायद उसने मेरी बात सुनी न हो,' ऐसा सोचकर मैंने उठकर उसकी गोद मे सिर रख दिया और उसके गले मे बाँहे डालकर, उसका सिर नीचे की ओर झुकाते हुए अकुलाये स्वर मे उससे कहा, "बडी माँ, बताओ न, तुम इस प्रकार उदास क्यो बैठी हो ? क्या पिताजी ने पत्र मे कोई विशेष बात लिखी है ?" फिर भी उसने कुछ नही कहा। तब उसके मुख के निकट अपना मुँह सटाकर मैंने कहा, "क्या बात है ? बताओ न ! बोलती क्यो नही ?" यह सुनकर दादी ने कहा, "यमे, तुझ-जैसी बच्ची से क्या कहा जाय। अच्छी भली नीद छोडकर इतनी जल्दी क्यो उठ गई ? सो जा चुपके से।" इस प्रकार उसने कह तो दिया, किन्तु इसी समय गरम-गरम एक बूंद मेरे हाथ पर टपक पडी, जिससे मैं जान गई थी कि उसकी आँखो से आँसू टपक रहे है और अवश्य ही कोई विपरीत घटना हुई है।

बचपन से ही मेरा स्वभाव बडा जागरूक रहा है। किसी बात का आभास मिल जाने पर उसकी छान-बीन किये विना मुझे चैन नही आता। उसका कारण जानने के लिए हर तरह के उपाय किया करती थी। हर किसी से पचासो प्रश्न किया करती थी और उसकी ओर से दुतकारी जाने पर भी मन को शान्ति नही मिलती थी। यह अवगुण—इसे मैं अवगुण ही मानती हूँ, क्योकि कोई बात सीमा से बाहर होकर अपने काबू मे रहने की अपेक्षा उसका अपने ऊपर काबू हो जाय तो वह अवगुण ही कहलायगा—अब भी मुझमे कुछ अश मे बाकी हैं, क्योकि बचपन से लेकर आज तक ऐसी बहुत थोडी घटनाएँ घटी है जिनसे वह निशेष हो जाता। इसके विपरीत उसे बढावा मिलने मे पोषक घटनाएँ होती रही। वास्तव मे जिनके साथ मेरे जीवन का गठबन्धन हुआ था उनके सदुपदेश से यह बुरी आदत नष्ट होनी थी, किन्तु उसको बढावा ही मिलता गया। कालेज आदि के कार्य-क्षेत्र की छोटी-छोटी बातो का भी उल्लेख रात मे मेरे पास अवश्य किया जाता था। यदि कभी ऐसा कहा गया कि, "यह बात तुम स्त्रियो की समझ मे नही आ सकती, इसे सुनकर तुम्हे कोई आनन्द न होगा," तो मै कलमुँही कह देती थी, कि "फिर जरा-जरा-सी बात मुझसे क्यो कहते हो ?" किन्तु इस प्रकार कहना केवल एक दिखावा था। वास्तव मे तो मुझे इस बात पर गर्व था कि मुझसे छोटी-सी बात भी छिपाई नही जाती है। किन्तु यह क्या—बचपन की बाते लिखते समय यह अगली बातो का स्मरण किसलिए ? इससे तो मन उद्विग्न हो उठता है।

कहने का तात्पर्य यह कि अपने इस स्वभाव के अनुसार ही मैं दादी के पीछे पड गई। अपनी स्वाभाविक लाघवता से उसके गालो से अपने गाल सटाकर मैने कहा, "बडी माँ, तुम्हे इस प्रकार बैठी देखकर मुझे अच्छा नही लगता। बताओ न, क्या बात है ?" मुझे ऐसा लग रहा था, जैसे बात मालूम हो जाने पर उस विपदा का परिहार करने की मुझमे शक्ति है। उस समय का हम दोनो का वह चित्र आज भी मुझे स्पष्ट दिखाई दे रहा है।

कुछ देर मौन रहकर दादी ने कहा, "यमे, हर बात मे दखल देने की तुझे बडी आदत है। लडकियो की जात को, चुप रहने को कहा जाय तो चुप रहना चाहिए। चल, सो जा ! नीद नही आ रही हो तो मैं 'भूपाली' अथवा

'व्यकटेश स्तोत्र' कहती हूँ, उसे सुन !" ऐसा कहकर उसने अपनी प्रिय भूपाली 'जागियो गोपाल लाल भोर भैयो प्यारे,' कहना आरम्भ कर दिया।

दादी के कण्ठ से गाई गई भूपाली सुनने मे बडा आनन्द आता था। यह नही कि उसका कण्ठ मधुर था, किन्तु भूपाली अथवा अन्य कोई भक्तिरस पूर्ण भजन गाते समय ऐसा लगता था जैसे दादी ने उसमे अपना हृदय उँडेल दिया है। बीच-बीच मे वह मुझे भजन का अर्थ भी बता दिया करती थी। अरुणोदय के समय जब दादी भूपाली गाया करती थी तो उसे सुनने के लिए मैं अवश्य जाग उठती थी। कभी-कभी वह 'व्यकटेश स्तोत्र' कहा करती और कठिन शब्दो का अर्थ मुझे समझाती थी। कोई और समय होता तो दादी के भजन मे मैं तल्लीन हो जाती, किन्तु इस समय मेरे प्रश्न का उत्तर न देकर मेरा निषेध किया गया था, इसलिए उसका भजन मुझे अच्छा नही लग रहा था। नाराज होकर मैने चादर से अपना सारा शरीर ढाँप लिया। कुछ समय बीत जाने पर भी दादी ने मुझसे नही पूछा कि, "यमे, चादर ओढकर क्यो सो गई ? क्या मुझसे नाराज हो गई ?" और भूपाली गाती रही तो मुझे सदेह होने लगा कि शायद उसे मेरी नाराजी का पता नही चला। इसलिए उसके शरीर से सटकर मैने शरारत करना आरम्भ कर दिया। मेरे शरीर की गठरी को दूर सरकाकर उसने केवल इतना ही कहा, "अरे, यह क्या कर रही है ? अच्छी तरह सो जा—" किन्तु मेरे लिए इतने ही शब्द पर्याप्त थे। मैंने मुँह फुलाकर कहा, "नही सोऊँगी—और आइन्दा तुमसे कभी कुछ नही पूछूँगी—" मैंने इतना कहा था और बाहर से किसी की आवाज सुनाई दी, "दरवाजा खोलो—बडी माँ, दरवाजा खोलो!" मैने आवाज को पहचान लिया और अपनी कृत्रिम नाराजगी को भूलकर हडबडाकर कहा, "बडी माँ, भैया और पिताजी, पुकार रहे है—" दादी ने जाकर दरवाजा खोल दिया और सब लोग घर मे आ गए। पिताजी, माँ, भैया और हमारा नौकर शिवराम तथा माँ की गोद मे बैठी सुन्दरी (जो तीन वर्ष की हो चुकी थी फिर भी माँ की गोद के बिना चलना नही चाहती थी) सबको अचानक आया देखकर मैं स्तभित हो गई थी। क्योंकि इन लोगो के आने की घर मे कोई चर्चा होती मैंने नही सुनी थी। केवल एक ही दिन दादी को दादाजी से कहते सुना था कि, सब लोगो को यहाँ भेजने के लिए पत्र लिखा जाय। किन्तु इस बात को मैं भूल गई थी। भैया के

आने की मुझे सबसे अधिक खुशी थी। मैंने झट से उठकर अपने बालो को सँवारा और माँ के सम्मुख जाकर हाथ फैलाते हुए प्यार से सुन्दरी से कहा, "आओ मेरे पास!" किन्तु वह ऊँघ-सी रही थी और माँ को छोडकर मेरे पास आना नही चाहती थी। उसने मेरी ओर से मुँह फेर लिया।

इन लोगो के अचानक आ जाने से दादाजी अथवा दादी को कोई आश्चर्य नही हुआ। जैसे उन्हे मालूम था कि किसी दिन ये लोग अवश्य ही यहाँ आयँगे।

भैया के आ जाने से मैं फूली नही समा रही थी। एकाकीपन से मैं कुछ ऊब-सी गई थी। मैं आस-पडौस मे खेलने जाया करती थी—किसी तरह अपना मन बहलाने का प्रयत्न किया करती थी, किन्तु भैया की बात कुछ अलग ही थी। उसका स्वभाव हँसोड था। नित्य नये खेल खोजने मे वह प्रवीण था। उसे चित्र बनाने का शौक था, कभी वह टटेरो को छीलकर उसकी गाडी, घोडा आदि बनाया करता, और कभी कागज के गुब्बारे बनाया करता था। हर बात मे वह सिद्धहस्त था। हम लडकियो के खेलो को भी वह खूब खेल लेता था। कचे और चीये उछालने के खेल मे वह मुझे हरा देता और फिर चिढाया करता था, तब मै भी चिढकर उसे कहा करती थी—"स्त्रियो मे पुरुष दुमकटा," फिर हम दोनो मे झगडा हो जाता था। शरमा जाने की बारी मेरी ही रहती थी और वह भी उदारता पूर्वक क्षमा करने मे पीछे नही रहता था। इस प्रकार हम दोनो मे दिन-भर खेल-कूद होता रहता था। यद्यपि हम दोनो मे झगडा होता रहता था, फिर भी अपार स्नेह से हम दोनो परिपूर्ण थे। हम दोनो मे से किसी को कोई कुछ कह देता तो हम आपस मे एक-दूसरे का पक्ष-समर्थन करने मे चतुर थे। माँ तो हमेशा कहा करती थी कि ये दोनो आपस मे खूब लडते-भिडते रहते है और फिर कुछ देर बाद न जाने किस प्रकार सब-कुछ भूल जाते है। माँ या दादी पडौस वालो से कहा करती थी कि, "यमुना जब डेढ-दो वर्ष की थी तब यदि भैया को कोई डाँटता था तो यह जोर से रोने लगती थी। इसका यह तमाशा देखने के लिए लोग-बाग झूठ-मूठ भैया को डाँट देते थे और फिर बडी मुश्किल से समझा-बुझाकर यमुना को चुप किया जाता था।"

कारण कुछ भी हो, किन्तु हम भाई-बहन का आपस मे अत्यधिक प्यार

था। भाई-बहनो मे हम-जैसा प्रेम शायद ही कही देखने मे आया हो। बचपन से ही हम दोनो ने कभी किसी बात को एक-दूसरे से नही छिपाया। मुझे जरा-सी किसी बात का आभास मिलते ही मैं चट से उसे भैया को जाकर सुना देती थी और उसी प्रकार भैया भी मुझसे कह दिया करता था।

प्रात काल के नाश्ते आदि कार्यो से निवृत्त हो जाने पर मैने भैया को अपना घरौदा दिखाया था। दादी ने इस घरौदे के लिए छोटे-छोटे चूल्हे बना दिए थे, छोटे कुल्हड दिये थे—इन सब वस्तुओ को मै भैया को दिखा रही थी, किन्तु रह-रह कर मेरे मन मे विचार उठ रहा था कि ये लोग अचानक यहाँ कैसे चले आए ? भैया से कारण पूछने के लिए मैं बहुत उत्सुक हो रही थी, किन्तु माँ और दादी आस-पास ही थी, । उन्होने यदि सुन लिया, विशेषत अगर माँ ने यह जान लिया तो भैया से जानकारी मिलने की अपेक्षा वह मुझे इस बारे मे कुछ न बताये इसीकी व्यवस्था हो जायगी और सम्भवत मुझे कुछ 'पारि-तोषिक' भी दिया जायगा। इसलिए मैने उससे नही पूछा था। सबसे अधिक भय था तो पिताजी का ! वे तो मूर्तिमान परशुरामजी के अवतार थे। फिर भी खेलने के लिए बाहर आ जाने पर, मौका देखकर मैने भैया से पूछ लिया। किन्तु उत्तर मे भैया ने कहा, "मैने भी सोचा था कि तुमसे कह दूँ, किन्तु माँ ने मना किया है। इसके बारे मे किसी से कुछ न कहने के लिए माँ ने मुझे बार-बार जतलाया है। और तुम्हारे पेट मे तो कोई बात ठहरती ही नही, इसलिए तुमको कहना सर्वथा अनुचित सिद्ध होगा।"

भैया का उत्तर सुनकर मैने कहा, "वाह भैया ! अब तुम भी ऐसी बाते करने लगे !" कहने के लिए मैं उसे बहुत देर तक मनाती रही। वास्तव मे बात यह नही थी कि वह मुझसे कहना नही चाहता था, वह तो केवल मेरा मजाक उडा रहा था। अन्त मे उसने कहा, "मै बताऊँगा अवश्य, किन्तु मेरी बात किसी के कानो तक न पहुँचने पाय, नही तो फिर कभी कुछ नही कहा करूँगा और न कभी तुम पर विश्वास ही करूँगा !" इस प्रकार बार-बार मुझे सजग करके वह मेरे समीप आया और चारो ओर देख-भालकर उसने धीरे से मेरे कान मे कह दिया। उसकी बात सुनकर मेरी समझ मे नही आ रहा था कि ऐसा क्यो हुआ ? फिर भी मैं इतना अवश्य समझ सकी थी कि जो हुआ है, वह बहुत बुरा हुआ है। मेरी उम्र की दृष्टि से कई बाते ऐसी थी जो

मेरी समझ से बाहर थी, किन्तु कई बाते ऐसी भी थी जिनके बारे मे मुझ-जैसा ज्ञान बहुत ही थोडी लडकियो को होगा। भैया की बात सुनकर मेरा मुख म्लान हो गया था और भैया का भी वही हाल हो रहा था। कुछ क्षण तक हम दोनो एक-दूसरे की ओर शून्य दृष्टि से देखते रहे। अन्त मे मैने प्रश्न किया, "बिलकुल ?" भैया ने कहा, "नही, अभी बिलकुल तो नही कहा जा सकता, किन्तु परसो कष्णाजी पन्त माँ से कह रहे थे कि इसका कोई भरोसा नही।"

इस पर मैं कुछ कहने ही जा रही थी कि भीतर से दादाजी ने भैया को पुकारा और हम दोनो भीतर चले गए। भैया ने जो बात मुझसे कही थी वह मेरे मन मे अवश्य थी, किन्तु फिर भी उम्र की दृष्टि से पर्याप्त समझ होने पर भी बाल्यावस्था की, सब-कुछ भूल जाने की जो स्वाभाविक देन होती है, वह मुझमे अधिक होने से कुछ समय पश्चात् मैं उस बात को भूल गई थी।

पिताजी, तथा माँ आदि के आने के दो-तीन दिन बाद दोपहर के समय दादाजी के कमरे मे, न जाने किस बात को लेकर जोर से झगडा होता हुआ मालूम दिया। मैं भैया से कुछ कहना ही चाहती थी, इतने मे क्रोधावेश से कहे गए शब्द हमे सुनाई दिये—"आप क्यो इस मामले मे दखल देते हैं। सकट आने पर मैं स्वय देख लूँगा। मैंने किया है तो मैं ही उसे पार लगाऊँगा।"

ये शब्द पिताजी के थे। दादाजी चुप थोडे ही बैठ सकते थे, वे भी खूब बडबडा रहे थे। मामला अधिकाधिक बढता ही जा रहा था। इतने मे माँ ने हम दोनो को पिछवाड़े की ओर बुलाया और पीछे के दरवाजे से हमें लेकर पडौस मे जा बैठी। उस समय मैं माँ के बर्ताव का अर्थ नही समझ पाई थी। क्योकि अपना घर छोडकर दूसरो के घर जाकर बैठने की उसकी आदत नही थी, किन्तु उस दिन चार घटे बैठी रही थी और वह भी हमे साथ लेकर। इसका कारण आगे चलकर मेरी समझ मे आया था। हमारी माँ एक अद्वितीय स्त्री थी। उसके स्वभाव के बारे मे पहले एक बार मैं लिख चुकी हूँ, किन्तु उसकी चतुराई और व्यवहार-कुशलता अवर्णनीय है। माँ-जैसी शान्त प्रकृति की स्त्री भी मैंने दूसरी नही देखी। सकट के समय भी धैर्य उसका साथ नही छोडता था। आगा-पीछा सोचकर वह कार्य किया करती थी। उसकी अनुपस्थिति मे

पिताजी कई बार उसकी प्रशसा किया करते थे। (अर्थात् यदि प्रसन्न चित्त हो तो) माँ की चतुराई का परिचायक ही उसका उस दिन का बर्ताव था। पिताजी और दादाजी मे विवाद छिड जाने पर उनके मुँह से किन शब्दो का उच्चारण होगा और झगडा क्या रूप धारण कर लेगा, इसका कोई ठिकाना थोडे ही था। इसलिए इस प्रकार का अनुचित सभाषण हम बच्चो द्वारा सुना जाना युक्त न होने से हमे घर से बाहर ले जाने की कल्पना उसे सूझी थी। जिस प्रकार माँ चतुर, शान्त एव दक्ष थी, उसी प्रकार यदि पिताजी ने शान्त स्वभाव पाया होता और वे सदैव माँ का कहना माना करते तो उनका जीवन सुखपूर्ण होता और हम बच्चो को भी जो शिक्षा प्राप्त हो सकी उससे अधिक योग्य शिक्षा का लाभ होकर हमे कुछ विशिष्ट दिशा प्राप्त हो सकती थी। जो शिक्षा हमे प्राप्त हुई थी वह अपर्याप्त नही थी फिर भी एकागी अवश्य थी। पिताजी की ओर से उसमे पर्याप्त वृद्धि नही हो पाई थी। हमारी पढाई के बारे मे मेरी काहे की पढाई! मैं तो ठीक से अ आ भी लिखना नही जानती थी। कभी पाठशाला मे जाकर दो-चार अक्षर सीख लिये थे। बस! किन्तु भैया की पढाई के बारे में भी यही हाल था। किसी दिन सनक आ जाने पर पिताजी भैया से पूछ बैठते थे—कक्षा मे कौन-सा नबर है? यदि नबर कुछ गिरा हुआ होता तो डाँट देते थे। व्यर्थ मे दो-चार तमाचो का पारितोषिक भी उसे मिल जाता था। इस प्रकार लडके की पढाई की ओर ध्यान दिया जाता था। माँ हमें पीटती नही थी, फिर भी हमे उसका डर बना रहता था। पिताजी से डरते थे उनकी पिटाई के कारण, किन्तु माँ से क्यो डरते थे यह नही कहा जा सकता। मैं अपनी जीवनी लिखते समय माँ-बाप का वर्णन तीसरी बार कर रही हूँ। किन्तु क्या करूँ। स्मरण होते ही माँ के बारे मे कुछ कहे बिना मन नही मानता। अब फिर इसे न दुहराने का निश्चय करके मैं अपनी जीवनी आगे लिख रही हूँ।

बहुत देर तक पडौस मे बैठे रहने के बाद जब माँ के साथ हम घर लौटे तब घर मे झगडे का कोई चिन्ह शेष नही रहा था। सध्या के समय पिताजी बाहर चले गए थे। रात को भोजन आदि यथा समय समाप्त हुआ था, किन्तु पिताजी और दादाजी से कोई सभाषण नही हुआ। रात को सोने के पहले पिताजी ने शिवराम को बुलाकर कहा, "देखो, कल सुबह हम लोगो को यहाँ

से जाना है, एक गाडी किराये पर ले आओ। गाडी दरवाजे पर खोलने को कह दो और कुछ पेशगी गाडी वाले को दे दो। सुबह चार बजे उठकर निकलना होगा। समझे ?" इतना कहकर वे शयन-कक्ष मे चले गए थे। उनके जाने का मेरे सामने कोई प्रश्न नही था, केवल भय इस बात का था कि कही अपने साथ वे भैया को तो नही ले जा रहे है ? किन्तु भैया और माँ को कुछ समय के लिए यही छोड जाने का निश्चय किया गया था—अर्थात् जिस कारण-वश उन्हे यहाँ लाया गया था वह कारण समाप्त हो जाने की अवधि तक।

बिलकुल तडके पिताजी और शिवराम ने घर से प्रस्थान किया। शिवराम पिताजी को स्टेशन तक पहुँचाने के लिए गया था। सुन्दरी की देख-भाल और घर का काम-काज करने के लिए उसे हमारे पास छोड दिया गया था।

९

पिताजी को गये लगभग एक महीना हो चुका था। हमारे दिन बडी खुशी से बीत रहे थे। भैया के पीछे स्कूल का झंझट नही था, फिर भी माँ उसे पढाई के लिए बैठा देती थी और कभी-कभी मुझे भी दादा से छिपाकर उसके पास पढने के लिए बैठा देती थी। माँ की बहुत इच्छा थी कि मैं कुछ पढना-लिखना सीख लूँ। वह स्वय देवनागरी लिपि से भली भाँति परिचित थी। 'पाडव प्रताप' आदि पोथियो को वह अच्छी तरह पढ लेती थी। किन्तु मुझे यह लिखना-पढना बिलकुल नही भाता था। जब दादी का सहारा नही मिल पाता था तब मजबूर होकर मुझे भैया के पास पढने के लिए बैठना पडता था, किन्तु जहाँ तक मेरा वश चलता था मै टाला-टूली किया करती थी।

पिताजी जब से गये थे तब से उनका कोई पत्र नही आया था। वे दादाजी से झगडा करके गये थे। आज नही तो कल पत्र आयगा, इस आशा मे एक

महीना बीत गया था। डेढ-दो महीने हो गए, फिर भी कोई पत्र नही आया। न किसी के हाथ कोई चिट्ठी अथवा सदेशा ही आया। इस कारण माँ और दादी के चेहरे पर हमेशा उदासी छाई रहती थी। दादाजी क्रोधी और गर्वीले थे, फिर भी उनकी मुख-मुद्रा बदल गई थी। उनका अटल निश्चय था कि स्वय कोई पत्र नही लिखूँगा। दो दुराग्रहियो का सघर्ष था, किन्तु उससे परेशान थी दादी और बेचारी माँ। माँ को रात मे भी नीद नही आती थी। रात को जब मेरी नीद खुल जाती थी तब टटोलकर देखने पर मैं उसे बिस्तरे पर बैठी पाती अथवा "क्या है यमे," यह उनके शब्द सुन लेती थी। आखिर माँ से नही रहा गया। एक दिन भैया को एक ओर ले जाकर उसने भैया के हाथों पिताजी के नाम एक पत्र लिखवाया। वह खूब जानती थी कि जाते समय बाप-बेटे मे जो झगडा हुआ था उसीका यह परिणाम है। विशेषत साधारण परिस्थिति मे यदि पिताजी की ओर से कोई पत्र न आता, तो विशेष चिंता करने की आवश्यकता नही थी, किन्तु इस समय परिस्थिति भिन्न थी। समय बडा टेढा था। न जाने किस समय क्या हो जाय! हो सकता है कि .... किन्तु पिताजी के बारे मे मै अधिक क्या लिख सकती हूँ! जाने दीजिए!

भैया द्वारा लिखवाया गया पत्र भेजे आठ-दस दिन हो गए थे, किन्तु पिताजी की ओर से कोई चिट्ठी अथवा सदेशा नही आया देखकर सब लोग चिंता से व्यथित हो रहे थे। मेरी उम्र कम थी। कुछ बाते मेरी भी समझ मे आ जाती थीं। इसलिए पिताजी की ओर से पत्र न आने से मुझे भी अच्छा नही लग रहा था। भैया मुझसे बडा था, उसे तो इस बात का बहुत दुख हो रहा था। माँ और दादी की अवस्था तो बहुत ही शोचनीय हो रही थी। विशेषत उन दोनो का तो यह हाल था कि, "जबर मारे और रोने न दे।" पत्र के बारे मे दादाजी से केवल दादी ही कुछ कह सकती थी। किन्तु उनसे कुछ कहने का उसे साहस नही हो रहा था। इसका कारण यह था कि पिता-पुत्र मे जब कहा-सुनी हो रही थी तब अत मे दादाजी ने एक अभद्र और वीभत्स गाली का उपयोग करके, भविष्य मे बेटे के किसी काम मे दखल न देने की तथा वह जिन्दा है या मर गया इसकी भी पूछ-ताछ न करने की कसम उठाई थी। यह बात मुझे कई वर्ष बाद मालूम हुई थी। उन्होने किन शब्दो का प्रयोग किया था यह भी मुझे मालूम हुआ था, किन्तु उनका यहाँ उल्लेख

करना ठीक नही होगा। मैं लिखना नही चाहती तथा अन्य लेखको को भी ऐसे शब्दो का साहित्य-क्षेत्र से बहिष्कार करना चाहिए। हमारे दादाजी मुह-फट और क्रोधी थे तथा बोलते समय उन्हे युक्तायुक्त का विचार नही रहता था। ऐसे वृद्धो की सख्या हमारे समाज मे कम नही है।

दादाजी द्वारा इस प्रकार भयकर शपथ उठाने पर पिताजी को पत्र लिखने के बारे मे दादी उन्हे किस मुह से कह सकती थी। माँ भी उन्हे कैसे कह सकती थी। जब उसे इस बात का भरोसा ही नही था कि कहने से वे पत्र लिख देगे अथवा उनके द्वारा लिखे गए पत्र का पिताजी का उत्तर दे देगे। ऐसी परिस्थिति से सब लोग मन-ही-मन कुढ रहे थे। किसी की समझ मे नही आ रहा था कि क्या किया जाय ? आखिर सास-बहू ने मिलकर चुपचाप पिताजी के पास नौकर को भेजना निश्चित किया और उसके अनुसार शिवराम को जाने-आने का किराया तथा भैया द्वारा लिखा पत्र देकर भेजा गया। शिवराम को गये चार दिन हो चुके थे। दूसरे दिन उसके लौटने का अन्दाजा लगाया गया था। सायकाल दिया-बत्ती का समय था। दादी कही बाहर चली गई थी। उसके साथ भैया भी गया था। मै यहाँ-वहाँ घूम रही थी। दिया-बत्ती के बाद मै कही अकेली बैठ ही नही सकती थी। किसी-न-किसी मनुष्य के आस-पास घूमा करती थी। इसलिए मैं माँ को खोज रही थी, किन्तु उसका पता नही चल रहा था। घर मे अँधेरा हो रहा था और अँधेरे मे जाकर उसे खोजना मेरे लिए असम्भव था। दादाजी आँगन मे कुछ काम कर रहे थे, किन्तु उनके पास जाने का प्रश्न ही नही था। मैंने माँ को बहुतेरा पुकारा। कही से आवाज न आने पर मे पूजा-गृह मे चली गई। वहाँ जाकर मैंने देखा, ठाकुरजी के सामने हाथ जोडकर माँ बैठी थी। न जाने किस भाव से मैं उसके पीछे की ओर जाकर खडी हो गई और अचानक उसके गले मे बाँहे डालकर गद्गद् स्वर मे मैंने कहा," माँ, आज तुम इस प्रकार क्यो बैठी हो ?" मैने देखा, उसकी आँखो से आँसू झर-झर कर बह रहे थे। उन्हे देखकर मैं सहम गई और चुपचाप एक ओर जाकर खडी हो गई। किन्तु माँ के मुह से एक शब्द भी नही निकला था। कुछ देर तक वह उसी अवस्था मे बैठी रही। किन्तु शायद दादी और भैया के आने की आहट पाकर वह झट से उठकर खडी हो गई और आँखे पोछकर पूजा-गृह से बाहर निकल आई। उसे देखते ही दादी ने पूछा, "क्यो, शिवराम

वापस आ गय। ? नही ? तो अब क्या किया जाय ?" इस पर माँ ने केवल इतना ही कहा था, "कल आ जायगा" और वह रसोई-घर मे चली गई।

किसी बात को कहने-सुनने के लिए हम भाई-बहन मे ही आदान-प्रदान हो सकता था। इसलिए कुछ देर बाद ही मैंने आज जो बात देखी थी उसका उल्लेख भैया से किया। मेरी बात सुनकर भैया ने कहा, "यमे, यदि कल शिवराम लौटकर नही आया तो मेरा निश्चय है कि मै स्वय पिताजी के पास जाऊँगा। और वहाँ की हाल-हकीकत सुनाकर माँ का समाधान करूँगा। यमे, हमारी माँ-जैसी दुनिया मे कोई दूसरी नही होगी। और पिताजी ऐसी अच्छी माँ को भी दु ख देते रहते है। उनका और दादाजी का झगडा हुआ होगा किन्तु दादी और हम लोगो ने उनका क्या बिगाडा है ? मैने उन्हे दो पत्र भेजे, किन्तु एक का भी उनकी ओर से उत्तर नही आया। यमे, तुम भी माँ को परेशान करती हो। कल उसने सुन्दरी का कुर्ता धोने के लिए तुमसे कहा था, क्यो नही धोया तुमने ? 'मैं नही धोऊँगी' कहकर खेलने के लिए भाग गई थी ?"

"भैया, तुम तो मेरी जरा-जरा-सी गलतियो को ढूँढा करते हो ! पडौस की लडकी मुझे बुला रही थी। उसके यहाँ जाने की गडबडी मे मैंने धोने से इकार कर दिया था। किन्तु इस जरा-सी बात को लेकर तुम मुझे ताने दे रहे हो ? क्या तुम नही कभी मना कर देते ?"

"नही, तुम-जैसा उत्तर मैने आज तक माँ को कभी नही दिया। और फिर आज-जैसी उसकी मन स्थिति मे तो कभी नही देता।"

"चलो रहने दो ! एक बार नही, पचासो बार दिखा दूँगी।"

"अच्छा तो दिखा देना !"

इस प्रकार हम दोनो मे तनातनी हो गई थी, किन्तु आखिर मैंने गम खाकर कहा, "अच्छा, अब छोडो इस बात को। भविष्य के लिए हम दोनो निश्चय कर ले कि माँ को किसी प्रकार का दु ख नही देगे और उसकी हर आज्ञा का पालन किया करेंगे।"

मेरी बात को भैया ने मान लिया और हम दोनो ने कसम उठा ली। फिर पिताजी के पास जाने विषयक उसके सुझाव पर हम दोनो बाते करते रहे।

उसने कहा, "एक बार इसके सम्बन्ध मे माँ से कहना होगा। यदि वह सम्मति दे दे तो ठीक है, अन्यथा मैं बिना सम्मति के ही चला जाऊँगा।"

"उससे छिपकर ?"

"हाँ।"

"और खर्चे के लिए रुपये ?"

"रुपयो की क्या आवश्यकता है ? मेरे पास एक अठन्नी पडी है। चार दिन के खाने के लिए काफी है। मैं पैदल ही चला जाऊँगा।"

"मैं तुम्हे अकेला नही जाने दूगी। मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।"

"वाह ! क्या तुम पागल हो गई हो ?"

भैया की बात का मुझे विश्वास नही हो रहा था। पास मे पैसा-टका नही, और यह जरा-सा लडका इतनी दूर जाकर पिताजी का समाचार कैसे लायगा ? मन मे यह विचार भी आ रहा था कि शायद वह चला जायगा। इसलिए मैं भी उनके साथ जाऊँ। मैने उससे कहा, "नही भैया, मैं भी तुम्हारे साथ चलूँगी।" मेरी बात सुनकर वह हँस दिया था। किसी प्रकार वह अपनी हँसी को रोक नही सकता था। हंसते-हँसते वह लोट-पोट हो गया था। उसके हँसने की आवाज सुनकर, दादी जो कही पास से जा रही थी, हमारे समीप आ गई। उसने कहा, "अरे गणपति, क्या बात है ? किस बात का तुझे इतना हर्ष हो रहा है ?"

और मै, "देखो बडी माँ, भैया—" इतना कहकर भैया की भावी यात्रा की बात उससे कहने जा रही थी तभी भैया ने मेरी ओर आँखे तरेरकर देखा और दाँत पीसकर इशारे से मुझे चुप रहने की धमकी दी। उसका इशारा पाकर मैंने चट से कहा, "कुछ नही बडी माँ, भैया तो व्यर्थ मे हँसा करता है।" किन्तु

दादी कब मानने वाली थी। और शायद उसने भैया के इशारे को देख लिया था, इसलिए उसने कहा, "क्यो रे, इसे छेडता है और ऊपर से उसे ही धमकाता है। मै देख रही हूँ, तू आजकल बहुत शैतान होता जा रहा है। ठहर जा, किसी दिन तुझे ऐसा सबक सिखाऊँगी कि तू भी याद करेगा।"

दादी ने इस प्रकार डॉटा, किन्तु भैया ने कुछ नही कहा। शायद मै कुछ बक दूँ इस भय से उसने मेरे पैर मे नोचकर इशारे से बताया—'खबरदार जो कुछ कहा तो!' दादी शायद इस इशारे को नही जान पाती, किन्तु उसके नोचने से मेरे मुँह से स्-स्-स्-स् शब्द निकल गया। मेरा शब्द सुनकर दादी के ध्यान मे आ गया और उसने भैया का कान पकडकर जोर से ऐंठ दिया। किन्तु भैया ने मुँह से एक शब्द भी नही निकाला।

दादाजी और दादी का प्रेम तो हँसिया और कद्दू-जैसा था। उनकी रुची एक-दूसरे से सर्वथा विपरीत थी। दादी हमेशा मेरा पक्ष लिया करती थी। इसका कारण चाहे कुछ भी हो, किन्तु मुख्य कारण यह था कि दादाजी मुझे नही चाहते थे। इसी प्रकार दादाजी को भैया प्रिय होने का कारण भी यही था कि वह दादी को अप्रिय था। वास्तव मे बात यह थी कि, दादाजी कुछ भी कहे, वह ठीक हो या न हो, पर दादी का मत निश्चय ही उसके विरुद्ध होता था और यदि दादी कुछ कहती तो दादाजी ठीक उसके विरुद्ध निर्णय देते थे। कभी ऐसा होते नही देखा गया कि दादी ने कुछ कहा और वह ठीक से हो गया। स्त्री होने के कारण दादी की बात कौन मान लेता। किन्तु समय आने पर, केवल शब्दो से ही क्यो न हो, वह अपनी जिद्द पर अडी रहती थी। मेरी और भैया की जरा-सी बात को लेकर कितना बडा अनर्थ हो गया था।

दादी ने भैया का कान पकडकर जोर से ऐंठा, फिर भी उसने उफ नही की, चुपचाप बैठा रहा। शायद इसीसे नाराज होकर दादी ने उसके मुँह पर तमाचा जमाया। तमाचा जोर से लगा होगा तभी भैया तिलमिलाकर चीख उठा। दादी कभी मारती नही थी, कई बार उसने उसे डॉटा था। मेरी तुलना मे वह उसे कम प्रिय था। किन्तु फिर भी आज तक उसने भैया को मारा नही था। मेरे विचार मे मनुष्य जब किसी बात से ऊब जाता है तब उसका अपने-आप पर काबू नही रहता। यही हाल दादी का हुआ होगा। पिताजी का पत्र न आने से उसका मन अस्वस्थ हो उठा था और उस अवस्था की सनक मे ही

उसका हाथ भैया पर उठ गया था। भैया की चीख सुनकर दादाजी वहाँ आ गए। और दादी को उस पर हाथ छोडते देखकर वे आपे से बाहर हो गए। उन्होने गालियाँ देना आरम्भ कर दिया। इतना हो जाने पर दादी ने भैया को छोड देना था, किन्तु उसे और जोश चढ रहा था—गुस्से मे आकर उसने भैया के एक तमाचा और जड दिया। फिर क्या था। दादाजी के बारे मे कहना ही क्या है! उन्होने आगे बढकर एक झटके मे भैया को अलग किया और अभद्र गालियाँ बकते हुए दादी को दूर ढकेल दिया। दादी भी बक-झक करती रही। आखिर बात यहाँ तक बढ गई कि दादाजी ने ताव मे आकर दादी के मुह पर एक थप्पड जमा दिया और कहा, "लातो तले रौंद दूँगा जो कभी इस लडके पर हाथ उठाया तो—" किन्तु इतने पर ही बात समाप्त नही होनी थी। उनकी दृष्टि मुझ पर पड गई। मै पहले ही डर गई थी। मेरे पैरो तले से जमीन खिसक गई। किन्तु बूढी दादी को थप्पड पडते ही मैं अवाक रह गई। यह क्या हो रहा है, मेरी समझ मे नही आ रहा था। किन्तु दादाजी की दृष्टि मुझ पर पडते ही मेरा क्या हाल हुआ होगा इसका वर्णन करने की आवश्यकता नही। मैं डर के मारे काँप रही थी। मुझे विश्वास हो गया था कि आज मैं जीवित नही रह सकती। दादाजी की मुझ पर दृष्टि पडते ही मेरा ध्यान दादी से हटकर आत्म-रक्षण के मार्ग की खोज मे व्यस्त हो गया था। इतने ही में दादाजी के शब्दो को मैंने सुना—"इसीने आग लगाई होगी। चुगली खाने की इसे बडी बुरी आदत है।" इन शब्दो के साथ ही मेरी बाँह पकडकर मेरे मुँह पर एक जोर का तमाचा मारा। मेरी कनपटी सुन्न हो गई और आँखो मे अँधेरा-सा छा गया। बस इतना ही मुझे स्मरण है। आगे चलकर आधे-पौने घण्टे तक क्या होता रहा, इसका मुझे जरा भी स्मरण नही। शायद मुझे मूर्छा आ गई थी अथवा पहला थप्पड खाकर सुन्न हो जाने से आगे जो तमाचे पडते रहे उनका मुझे भान ही न रहा। किन्तु कुछ देर बाद जब मैंने देखा तो दादाजी और भैया वहाँ मौजूद नही थे। केवल दादी अकेली जमीन पर पडी थी। उसे इस प्रकार पडी देखकर मैने क्या सोचा था इसका मुझे स्मरण नही है—स्मरण केवल इतना ही है कि उसे उस दशा मे देखकर मैं झिसकती हुई उसके समीप गई और उसकी बगल मे सोने का प्रयत्न कर रही थी कि उसने मुझे दूर धकेल दिया। फिर भी मै जबर्दस्ती करके उसकी बगल मे सो गई।

इसमे अधिक मुझे कुछ स्मरण नही है। आज लिखते समय उस दिन का चित्र मेरी आँखो के सामने स्पष्ट दिखाई दे रहा है। इसके बारे मे कई दिन तक चर्चा चलती रही और मैने तथा भैया ने दादाजी के उस दिन के बर्ताव के लिए उन्हे दोष लगाया था। वे हमारे दादाजी थे इसलिए उनके बारे मे कुछ अधिक कहने का मुझे अधिकार नही, किन्तु यदि किसी दूसरे वृद्ध के बारे मे मुझे लिखना होता तो मैं उसे अवश्य ही पशु कह देती। देखिये न, इतनी वृद्धा स्त्री—पास मे उसके नाती खडे थे, और उस वृद्ध ने अपनी वृद्धा स्त्री के मुँह पर थप्पड जमा दिया। आखिर यह सब क्या था! मैं जानती हूँ कि कई लोग मेरी इस बात का विश्वास नही करेगे और कई लोगो को मेरा यह कथन बुरा लगेगा, किन्तु क्या किया जाय। मैं अपनी जीवनी को यथातथ्य लिखना चाहती हूँ। इसमे अनहोनी बात का समावेश नही किया गया है। किसी बात को बढा-चढाकर कहने का मेरा उद्देश्य नही है।

उपरोक्त घटना घट जाने के बाद रात के भोजन के सम्बन्ध मे कुछ लिखना अनावश्यक है। जब यह हगामा मचा था तब माँ कहाँ थी, इसे मैं नही जानती, किन्तु कुछ समय पश्चात् वह दादी के पास आई और भोजन करने के लिए चलने का आग्रह करती रही। दादी उठ नही रही थी, और न दादाजी भोजन करने के लिए आ रहे थे। आखिर माँ ने हम दोनो को भोजन करवाया। मुझे तो बडी जोर की भूख लग रही थी। शायद दादाजी का तमाचा खाकर उस पर रोने का व्यायाम हो जाने से वह अधिक प्रज्वलित हो उठी थी। भोजन के बाद मैं और भैया बिस्तरे पर जाकर सोने के बारे मे सोच रहे थे, किन्तु भैया के पास जाकर सोने मे मुझे डर लग रहा था। वह जरूर सोच रहा होगा कि मेरे ही कारण इतना बखेडा खडा हो गया था। किन्तु पहले भैया जाकर बिस्तरे पर सो गया था, उसके बाद मैं भी धीरे से उसके लिहाफ मे घुस गई थी। मैं उसकी ओर पीठ करके सो गई थी। वह मौन था और उसे मौन देखकर मेरा मन अस्वस्थ हो उठा था। बेचेनी से मै करवटे बदल रही थी, फिर भी वह चुप पडा रहा। उसने अपना हाथ तक नही हिलाया। हमारी माँ के अधिकाश गुण भैया मे विद्यमान थे। उन्ही गुणो मे से दृढ निश्चय एक था। किन्तु बाल्यवस्था मे इस गुण का उस पर जितना प्रभाव था उतना आगे चलकर युवावस्था मे नही रहा। हो सकता है कि बदलती परिस्थितियो के कारण

और जिस व्यक्ति का उस पर अधिक प्रभाव था उसके शिकजे मे फँस जाने से उसका यह गुण अप्रतिभ हो गया हो। कुछ भी हो, किन्तु उस दिन रात को उसने मेरे साथ भाषण नही किया। कुछ देर बाद मैं भी सो गई। रात मे किसी समय मेरी नीद उचट गई थी। न जाने क्यो, उस समय भैया ने पिताजी के पास जाने के सम्बन्ध मे जो कुछ कहा था उसका मुझे स्मरण हो आया था, और जैसा कि उसने कहा था, कही वास्तव मे वह चला तो नही गया यह देखने के लिए मैने उसकी दिशा मे हाथ बढाकर उसे टटोलने का प्रयत्न किया, किन्तु भैया बिस्तरे पर नही था। यह बात मेरे ध्यान मे आते ही मै माँ और दादी को पुकारने लगी—माँ शायद जग रही थी। मेरी पुकार सुनकर उसने कहा, "यमे क्या है बेटा ? क्यो चिल्ला रही हो ? रोने की क्या बात है ?" किन्तु केवल "भैया" शब्द के अतिरिक्त मेरे मुँह से दूसरा शब्द नही निकल रहा था। माँ ने झट से दिया जलाया और देखा तो भैया बिस्तरे पर मौजूद नही था। मैं रो रही थी और "भैया भैया चला गया—" ऐसे अधूरे वाक्यो का उच्चारण कर रही थी। आखिर माँ ने दादाजी को जगाकर कहा, "गणू का कही पता नही है—" यह सुनकर दादाजी अवाक रह गए। भैया का नाम लेकर उन्होने उसे जोर-जोर से पुकारना शुरू किया, किन्तु कही से प्रत्युत्तर नही मिला। यह होते-होते मै कुछ सम्हल गई थी। मैने माँ को, उस दिन सध्या को भैया ने जो कहा था उसका ब्यौरा सुना दिया। मेरी बात सुनकर माँ ने दादाजी को सब हाल बता दिया। हाल सुनते ही भैया के पीछे जाने के लिए दादाजी ने सिर पर पगडी बाँध ली। दरवाजे से बाहर निकलते समय दादाजी ने मेरी ओर देख-कर कहा, "नादान, तूने हमे पहले ही क्यो नही कहा ?" माँ ने ऊँचे स्वर मे कहा, "साथ मे किसी आदमी को लेते जाइएगा—" किन्तु माँ की बात को अनसुनी करके वे चले गए।

इस घटना के कारण माँ के मन मे क्या-क्या विचार चल रहे होगे, इसकी तो केवल कल्पना ही की जा सकती है। विभिन्न विचारो का इस समय उसके मन मे तूफान उठा होगा। अपना लडका गया—वह कहाँ गया होगा—कान की बालियो के लालच मे किसी ने उस पर हमला तो नही किया होगा—इस प्रकार पचासो तर्क-कुतर्कों ने उसे परेशान कर दिया होगा। अपना लडका कितना मातृ-भक्त है और अपने लिए वह अपनी जान की बाजी लगाने पर

किस प्रकार उतारू हो गया है, यह सोचकर समाधान पाने की उसके पास बिलकुल गुजाइश ही नही थी। इस प्रकार का विचार उसके मन को छू तक न सका होगा। वह तो आँखो मे प्राण समेटकर भैया की राह देख रही थी। सुन्दरी रो रही थी, मैने उसे उठाकर गोद मे ले लिया था, फिर भी उसका रोना बन्द नही हो रहा था। माँ का ध्यान उसकी ओर नही था। दादी का भी यही हाल हो रहा था। उसके मुँह से तो शब्द भी नही निकल रहा था। बहुत देर के बाद ठठी साँस छोडकर उसने केवल इतना ही कहा, "इस वर्ष न जाने कैसे-कैसे सकटो का सामना करना है। हे परमात्मा! अब तो तुम्हारे हाथ मे ही हमारी लाज है।" माँ चुप बैठी थी। कर भी क्या सकती थी। होते-होते अरुणोदय हो गया। दादाजी को गये भी बहुत समय बीत चुका था। भैया का कोई पता नही लगा। रात को वह कब उठकर चला गया, इसे कोई नही जानता था। इन दिनो माँ को रात मे सहसा नीद नही आया करती थी, किन्तु उस दिन उसे भी नीद आ गई थी और भैया उठकर कब चला गया, इसे वह भी न जान सकी। उसके जाने की आहट किसी को नही मिली। इस बात का सभी को आश्चर्य हो रहा था, किन्तु केवल आश्चर्य करने से ही क्या हो सकता था। सब लोग उसे देखने के लिए छटपटा रहे थे। अचानक मुझे उसके रास्ते मे खोये जाने वाली घटना का स्मरण आ रहा था और विश्वास हो रहा था कि अबकी बार भी वह अवश्य लौटकर आ जायगा।

होते-होते सुबह के आठ बज चुके थे। न भैया का पता लगा, और न दादाजी का। माँ और दादी की आँखे रो-रोकर लाल हो गई थी। मेरा तो बहुत ही बुरा हाल हो गया था। सुदरी नासमझ थी, किन्तु रो-रोकर उसने आफत मचा दी थी। आखिर माँ ने उसे दूध पिलाने के लिए गोद मे ले लिया था। पडौस के लोग-बाग और किसान हमारे घर आकर ठडी आहे भरते और कहते थे, "इस प्रकार चुप-चाप कैसे चला गया? क्या किसी ने देखा भी नही? इस लडकी ने उसकी बात रात मे ही अपनी माँ अथवा और किसी से क्यो नही कह दी?" इस प्रकार पचासो प्रश्न किये जाते थे और व्यर्थ का कोलाहल मचा रखा था। उनमे से कोई काम नही आ रहा था।

दस बजने का समय हो गया था, फिर भी कोई नही आया। तभी दादी को किसी बात की याद आई और उसने कहा, "यह सुतरा नौकर भी तो

लौटकर नही आया। आज वह अवश्य लौटेगा। सम्भवत रास्ते मे वह गणू को मिल जायगा और वे दोनो साथ-साथ लौटेंगे। अब चिता की कोई विशेष बात नही है। आश्चर्य तो इस बात का है कि यह नादान लडका सनकी की तरह उठकर कैसे चला गया ? रात मे उसे घर से अकेला जाने मे डर तक नही लगा ? जब वह घर से गया होगा तब न जाने चाँदनी रात भी थी या नही ?"

दादी की बात का माँ ने कोई उत्तर नही दिया था। दादी ने मेरी ओर मुडकर देखा। दादी का धीरजता से भरा हुआ भाषण माँ पर कोई असर न कर सका। किन्तु मुझ पर उसका अवश्य अच्छा असर हुआ था। मेरा मन कह रहा था कि रास्ते मे भैया को शिवराम मिलेगा और उसके साथ भैया अवश्य लौट आयगा। ऐसा विश्वास होने का एक कारण और भी था और वह यह था कि ये पेट मे लगी भूख। मुझे भूख नही लगती तो शायद इतनी जल्दी यह आशा भी उत्पन्न न हो पाती। अथवा ऐसा भी कहा जा सकता है कि इस प्रकार की आशा मेरे मन मे उत्पन्न होने से मेरे पेट मे जो चूहे उछल-कूद मचा रहे थे, उनकी मुझे याद आ गई थी। किन्तु इस बारे मे मै कह कैसे सकती थी ? सुन्दरी अपने मजे मे थी, उसे विशेष खट-पट करने की आवश्यकता नही थी। उसके लिए रोते ही खाना हाजिर हो जाता था। किन्तु मै सुन्दरी का अनुकरण कैसे कर सकती थी ? मुझे रोते देखकर लोग-बाग यही समझते थे कि बेचारी भाई के खो जाने से रो रही है, और मुझे समझाने-बुझाने का प्रयत्न करते थे। किन्तु यदि मै कह देती कि मुझे भूख लग रही है तो लोग कहते, "बडी अजीब लडकी है—भाई तो खो गया है और यह नदीदी खाने के लिए मर रही है।" शायद मेरा म्लान मुख देखकर दादी को मेरी भूख का अन्दाजा लग गया था। उसने माँ से कहा, "चलो उठो, अब चिता करने की कोई आवश्यकता नही—रास्ते मे शिवराम गणू को मिल जायगा और वे दोनो साथ ही लौटकर आ जायँगे। और कही अधिक दूर नही गया होगा तो इनसे ही भेट हो जायगी। अब तक तो उन दोनो ने आधा रास्ता भी तय कर लिया होगा। अब जरा इस लडकी की ओर ध्यान दो—उसे जरा समझाओ—बारह बजे का समय हो रहा है—सुबह से इसने कुछ नही खाया है। अरे हाँ, यमे, कल रात का कुछ बचा होगा। चल, मै तुझे

भात परोसे देती हूँ ।" इतना कहकर दादी भीतर की ओर मुड ही रही थी कि इतने मे सामने से, जिसका सभी लोगो को इतजार था, शिवराम आता हुआ दिखाई दिया, किन्तु उसके साथ भैया नही था।।

११

फिर क्या था। एक हगामा मच गया। पिताजी के पास जाकर उनका समाचार लाने के बारे मे भैया ने जो निश्चय किया था उसे जानकर सब लोगो का अनुमान था कि वह सीधे रास्ते से गया होगा, किन्तु रास्ते मे जब वह नौकर को नही मिला तब निश्चय ही वह रास्ता भूलकर किसी दूसरे गाँव की ओर चला गया होगा, ऐसा अनुमान किया जा रहा था। नौकर के घर मे आते ही सब लोगो ने आकर उसे घेर लिया और प्रश्नो की उस पर बौछार कर दी ? "गणु कहाँ है ? क्या गणु तुम्हे रास्ते मे नही मिला ?" जिस काम के लिए उसे भेजा गया था उसके बारे मे कोई कुछ नही पूछ रहा था। पर नौकर सिवाय इसके और क्या कह सकता था कि, "नही, रास्ते मे मैने किसी को नही देखा।"

यह सुनकर मैंने उससे पूछा—"कोई नही, क्या दादाजी भी नही मिले ?"

"नही।"

"यह कैसे हो सकता है। सम्भव है कि गणू रास्ता भूल गया हो, किन्तु उनसे तो भेट होती —"सदिग्ध स्वर मे माँ ने कहा। उसकी आँखो मे आँसू उमड आए थे, किन्तु बरबस वह उन्हे रोक रही थी। उसके मन मे जो दु ख का सागर हिलोरे ले रहा था वह उसे छिपाने का प्रयत्न कर रही थी। माँ के प्रश्न का शिवराम ने कुछ देर तक उत्तर नही दिया—किन्तु दादी के दुबारा पूछने पर उसने सही-सही बता दिया था। उसने कहा, "वैसे तो मैं कल रात को ही आ जाता, किन्तु रात के बारह बज चुके थे, इसलिए पडौस के एक

गाँव मे अपने रिश्तेदार के घर रुक गया था। सुबह होते ही मुझे आना था, किन्तु उनके घर कथा होने से उन्होने मुझे रोक लिया और दोपहर को भोजन करके मैं सीधा वही से चला आ रहा हूँ।"

उसका स्पष्टीकरण सुनकर सभी के दिल का बोझ कुछ हल्का हुआ। भैया रास्ता भूल गया होगा, ऐसा तर्क करने का अब कोई कारण नही रहा। अब उसके शीघ्र लौटने की आशा की जा सकती थी।

भैया के बारे मे इस प्रकार निर्णय हो जाने पर, इस बहाने से एकत्रित हुए पडौस के लोग अपने-अपने घर चले गए थे। दादीजी ने नौकर को भीतर बुलाकर उसे पिताजी का समाचार सुनाने के लिए कहा। नौकर ने बताया कि "पिताजी कुशल से है और चिन्ता करने का कोई कारण नही।" किन्तु उसकी बोल-चाल का ढग देखकर मालूम होता था कि वह अवश्य कुछ छिपाना चाहता है। यह बात दादी के ध्यान मे नही आई थी, किन्तु माँ ताड गई थी। फिर भी उसने उस समय कुछ नही कहा। दादी ने कहा, "अब ठीक है। अब गरगु के बारे मे विशेष चिन्ता का कारण नही है। वे उसे जरूर ही ढूँढकर ले आयँगे। यह एक बडी फिक्र लग रही थी सो अब दूर हो गई। अब सब ठीक है। इतना कहकर वह भीतर चली गई। मेरी उपस्थिति शायद माँ के ध्यान मे नही आई थी अथवा आने पर भी उसने दुर्लक्ष किया हो। उसने शिवराम से फिर पूछा— "क्यो रे, जब तू वहाँ गया तब उनकी तबीयत कैसी थी? कही नाराज-वाराज तो नही हूए?" माँ का प्रश्न सुनकर शिवराम ने कहा, "नही—" किन्तु उसका उत्तर सुनकर माँ ने ताड लिया था कि उसका उत्तर सही नही है। माँ ने फिर उससे कहा, "अरे, मुझसे कोई बात छिपाने की आवश्यकता नही। जो सच हो बता दे।"

माँ की बात सुनकर शिवराम को कुछ धीरज बँध गया। उसने कहा, "तो सच बता दूँ माँ? मैं उनके पास गया और जैसे ही मैंने उनके सामने आपका पत्र रखा, वैसे ही उन्होने एकदम गरजकर कहा—'जाकर कह दे कि मैं मरा नही हूँ, भला चगा जीवित हूँ।' इतना कहकर पढा हुआ। पत्र उन्होने मेरी ओर फेक दिया। फिर कुछ देर तक वे मौन बैठे रहे। मै भी दरवाजे से सटा चुप-चाप खडा रहा। थोडी देर बाद उन्होने रसोइये को बुलाकर मुझे भोजन कराने और वापस भेजने के लिए कहा। भोजन आदि से निपटकर लौटते

समय मै फिर उनके पास गया और कुछ पत्र आदि देने के लिए मैने उनसे कहा। उन्होने कहा, 'जा, जाकर कह दे कि सब कुशल है, पत्र-वत्र कुछ नही, जा!' उनकी तबीयत ठीक थी। मैं वहाँ से निकल रहा था तभी कृष्णाजी पत आ गए। उन्होने मुझसे कुशल-समाचार पूछा। कुछ सोचकर उन्होने मुझसे कहा, 'तू जरा यही रुक जा! मैं ऊपर जाकर राव साहब से मिलकर आता हूँ—और फिर क्या कहना है सो तुझे कह दूँगा।' दस मिनट बाद जब वे ऊपर से नीचे आ गए और फिर अपने साथ मुझे उनके घर लिवा ले गए। वहाँ उन्होने कुछ देर बाद दो पत्र मुझे दिए थे। उनमे से यह एक आपको देने के लिए कहा, और किसी के हाथ न लगने पाए ऐसा मुझे तीन-तीन बार जतलाकर कहा है। और माँ जी, दूसरा पत्र भी आपको देने के लिए कहा था—किन्तु—"इतना कहकर वह वहाँ से उठ गया। उसकी बात माँ की समझ मे नही आ रही थी इसलिए उसने कहा, "अरे ठहर, क्या कहना चाहता है, साफ-साफ कह दे—" माँ की बात सुनकर शिवराम दरवाजे मे ठिठक गया और वही से उसने कहा, "वह लिफाफा मेरे हाथ से कही खो गया—' बस इतना कहकर वह नौ दो ग्यारह हो गया। माँ दरवाजे की ओर ताकती रह गई। उस पागल के बर्ताव का मतलब उसकी समझ मे नही आ रहा था। एक लिफाफा उसके सामने पडा था। उसकी ओर उसका ध्यान भी नही था। इसी समय पिछवाडे की ओर से दादी ने माँ को पुकारा। किन्तु माँ उस पुकार को नही सुन पाई। इसी समय माँ की गोद मे सोई हुई सुन्दरी जाग उठी। उसके रोने की आवाज सुनकर माँ का चित्त ठिकाने आ गया। सामने पडा हुआ लिफाफा उठाकर उसने साडी के आँचल मे छिपा लिया। तब उसका ध्यान मेरी ओर गया, मुझे उसने कहा, "यमे, सासूजी अथवा और किसी से इस पत्र का जिक्र न करना!" इतना कहकर सुन्दरी को उठाकर वह भीतर चली गई। मै यह सब देखकर भौचक्की-सी रह गई थी। मुझे बडी जोर से भूख लग रही थी। अन्य चारा न देखकर मैंने दादी के पास जाकर खाने को माँगा। दादी ने रसोईघर में जाकर, एक तश्तरी मे कुछ मीठा डालकर बासी भात मुझे मिलाकर दे दिया। भात बिलकुल ठडा था, किन्तु भूख मे वह मुझे अमृत-जैसा लग रहा था। कहावत है न कि 'भूखे को चापड और उनीदे को पत्थर भी सुहावना लगता है।' भूख के सपाटे मे मुझे भैया का

अथवा शिवराम द्वारा माँ को दिये पत्र का भी ध्यान नही था। "तू चल, मै आया" इस प्रकार एक के बाद एक पेट मे उतरने वाले भात के निवाले और उनकी यात्रा मे सहायक पानी के घूँट ही मुझे दिखाई दे रहे थे। जब भात पेट मे जाकर समा गया तब कही जाकर मुझे भैया का स्मरण आया। मन मे विचार आ रहा था कि दोपहर का समय है, भैया ने क्या खाया होगा ? इस समय वह कहाँ होगा ? किन्तु बचपन मे इस प्रकार के विचार कब तक ठहर सकते है ? पेट की व्यवस्था हो गई, अब क्या करना चाहिए, इसी सोच-विचार मे व्यग्र हो उठी थी तभी पडोस की कुशी मुझे खेलने के लिए बुलाने आ गई। कुछ देर तक उसके साथ भैया के बारे मे मैं बात-चीत करती रही और फिर खेलने के लिए उसके घर चली गई। चार बजे जब मै घर लौटकर आई तब न भैया का पता था और न दादाजी का। माँ और दादी पास बैठ-कर कुछ बात-चीत कर रही थी। माँ की मुद्रा इस समय बिलकुल निस्तेज हो रही थी। मेरे खयाल मे कृष्णाजी पत के पत्र मे अवश्य कोई ऐसी अटपटी बात लिखी होगी जिसे पढकर माँ चिन्तामग्न हो रही थी। क्या बात हो सकती है यह सोचने की मुझमे पात्रता नही थी। और मेरा खयाल है कि उस जमाने मे मेरी अवस्था के बच्चो मे इस प्रकार के विचार करने की समझ ही न थी। किन्तु एक के बाद एक करके जो आश्चर्यजनक घटनाएँ होती गई उन्हीके कारण मुझमे जितनी समझ आ सकी उतनी उसके पूर्व तो थी नही और सम्भवत आगे चलकर भी नही आ सकती थी। उपरोक्त घटनाएँ ऐसी थी जो मेरी अवस्था की किसी भी लडकी को समझदार बनाने मे सहायक सिद्ध हो सकती थी। और फिर मैं तो स्वाभावत कुछ अधिक चौकस थी।

दिया-बत्ती का समय हो चुका था। कुछ देर बाद घुप्प अँधेरा हो गया था, किन्तु भैया अथवा दादाजी, कोई भी लौटकर घर नही आये। बीच-बीच मे पडौस का कोई आकर पूछ-ताछ करके लौट जाता था। जब रात के नौ बज गए और कोई न लौटा तब तो माँ का धैर्य टूट गया। सुन्दरी ने रो-रोकर आफत मचा दी थी। माँ ने दिन-भर मे पानी का एक घूँट तक नही पिया था, इसलिए दादी ने भी कुछ न खाया। दादाजी कभी-कभी दो-चार दिन के लिए पास-पडौस के गाँव मे चले जाते थे, इस कारण दादी को घर मे अकेली रहने की आदत थी। किन्तु आज तो घर मे भीषण, भयानक वातावरण छाया हुआ था। कुछ देर

इधर-उधर करके मै जहाँ सुन्दरी को सुलाया था वहाँ जाकर चुपके से सो गई ।

विचारो की उधेड-बुन मे मैं सो गई थी । एक बार सो जाने पर सुबह तक मै नही जगी । सुबह उठने पर मैंने देखा तो आस-पास मे कोई नही था, केवल माँ पडी-पडी कराह रही थी । माँ को कराहती देखकर मेरे मन मे धक् हो गया । मै रात को जब सोई थी तब माँ भली-चगी थी और सुबह उठकर देखती हूँ तो वह जोर-जोर से कराह रही है । माँ के समीप जाकर मैंने पूछा, “माँ, क्या भैया लौटकर आ गया ? तुम क्यो कराह रही हो ?” मैंने जैसे ही उसके शरीर को छूआ कि मेरा हाथ जल उठा । तीव्र ज्वर से माँ का शरीर धक्-धक् करके जल रहा था । मै पागलो-जैसी प्रश्न पूछती जा रही थी, “माँ तुम्हे तो बहुत तेज बुखार है । कब चढा था ? क्या भैया आ गया ? दादाजी कहाँ है ?” माँ अपने मारे परेशान थी, कराह रही थी और तीव्र ज्वर के कारण छटपटा रही थी । और मै उससे प्रश्न पूछ रही थी । क्या भैया आ गया, यह प्रश्न पूछना ही व्यर्थ था । यदि आ गया होता तो कही माँ के सिरहाने अथवा पैरो के पास बैठा दिखाई न देता ? ज्वर की ग्लानि मे उसे भैया का विस्मरण होना सम्भव था, किन्तु उसे स्मरण दिलाकर उसके दु ख को बढाने का ही कार्य मैंने उक्त प्रश्न पूछकर किया था । माँ ने मेरे प्रश्नो का कोई उत्तर नही दिया । कुछ देर तक उसके पास रुककर मै फिर भीतर चली गई । वहाँ बैठी दादी मूक रुदन कर रही थी और सुन्दरी को कुछ खिला रही थी । माँ से पूछे हुए प्रश्नो को मैने फिर दादी के पास दुहराया । उसने कहा, “न कोई आया और न कोई गया । अब मै क्या करूँ ? आखिर खोज करने के लिए भी किसको भेजूँ ? और बहू बुखार मे पडी कराह रही है । यह छोकरी तो उसके बिना जरा भी किसी के पास नही ठहरती । और तुझे तो दिन-भर हुडदग के सिवा दूसरा काम ही नही । यह नही जरा तमीज से बैठे, छोकरी को खिला लाये या घर का कुछ काम-काज कर ले । कभी नही । राम का नाम लो । अब सोकर उठ रही है—अब इसके आगे चल उठ—बैठ गई यहाँ पैर पसार कर ।” उसकी घुडकी सुनकर मैं वहाँ से उठकर चली गई । मैं जानती थी कि यह लाड-दुलार का समय नही है । भैया और दादाजी का क्या हाल होगा इस बात को सोचती हुई मैं पिछवाड़े की ओर जा रही थी

कि इतने मे मेरे पैरो तले पडा हुग्रा एक सफेद कागज मुझे दिखाई दिया। कागज मेरे पैरो तले न ग्राता तो शायद मेरा ध्यान उसकी ग्रोर न जाता, क्योकि ऐसे सफेद कागज घर मे बहुतेरे पडे रहते है। किन्तु यह कागज पैरो को कुछ भारी-सा मालूम हुग्रा था। इसलिए मैने उसे उठा लिया। उठाकर देखते ही मैं समझ गई थी कि यह वही कृष्णाजी पत का भेजा हुग्रा लिफाफा है जो शिवराम ने माँ को लाकर दिया था। लिफाफा खोलकर पत्र पढा जा चुका था। किन्तु यह वही लिफाफा है यह मालूम होने पर, मै जरा-सी लडकी थी फिर भी मेरे मन मे ग्रनेकानेक विचारो का तूफान उठ रहा था। यह कहने की ग्रावश्यकता नही कि मुझ-जैसी चौकस लडकी के मन मे यह जानने की तीव्र उत्सुकता जागृत हो उठी थी कि इस पत्र मे क्या लिखा है, किन्तु पढने के नाम से तो यहाँ बिंदी लगी हुई थी। माँ ने ग्रपनी ग्रोर से क्रम पूर्वक मुझे कुछ पढना-लिखना सिखाया था, किन्तु मेरी लिखने की गति बारह खडियो के ग्रास-पास ही रुक गई थी ग्रौर पढाई जोडाग्रक्षर एव ग्रनुनासिक ग्रक्षरो तक ही सीमित रह .गई थी। माँ बखूबी पढ लेती थीं, ठीक से लिख नही सकती थी, क्योकि लिखने का उसे ग्रभ्यास ही नही था। कभी एकाध बार वह ग्रपने मायके वालो को पत्र लिखा करती थी, किन्तु इन दिनो भैया से ही लिखा लेती थी। पढने का उसे ग्रच्छा ग्रभ्यास था। 'पाडव प्रताप', 'भक्ति विजय' ग्रादि ग्रथो का पठन वह दोपहर मे बैठकर किया करती थी। माँ पढना जानती है, इस रहस्य को हम लोग, पिताजी तथा उनके मित्र कृष्णाजीपत के ग्रतिरिक्त ग्रौर कोई नही जानता था। कृष्णाजी पत को इसलिए मालूम हुग्रा था कि माँ उनसे बातचीत करती थी। कुछ बाजार से लाना हो तो उनसे मँगवा लिया करती थी। इस कारण माँ का उनसे भाई-जैसा नाता हो गया था। उनके ग्रतिरिक्त ग्रौर किसी पुरुष के साथ माँ भाषण नही करती थी। पास-पडौसियो के घर ग्रावश्यक होने पर ही जाया करती थी। इसलिए दोपहर मे काम-काज से निवृत्त हो जाने पर वह कुछ पढने बैठ जाती ग्रथवा सीने-पिरोने का काम किया करती थी। किन्तु ग्रागे चलकर इसके बारे मे बहुत-कुछ लिखना है। इसलिए ग्रब उस लिफाफे की ग्रोर मुडना ही उचित होगा। मैं पढना नही जानती थी इसलिए उस लिफाफे को माँ को सौप देना ही उचित था, क्योकि उस लिफाफे के बारे मे दादी के पास उल्लेख न करने का

माँ का आदेश मै भूली नही थी। किन्तु एक क्षण के लिए मेरे मन मे विचार आया था कि लिफाफा अपने पास रखकर यदि हो सका तो पत्र पढने का प्रयत्न किया जाय अथवा और किसी से पढवा लिया जाय। पहले विचार को ही मैने अपनाया था। पिछवाडे के आँगन मे जाकर मैने लिफाफे से पत्र निकालकर देखा, किन्तु लिखावट कुछ विचित्र होने के कारण मैं उसे पढ न सकी। मै उसे बहुत देर तक उलट-पलटकर देखती रही, किन्तु सब बेकार रहा। मेरा खयाल था कि भैया उसे अवश्य पढ सकता है। वह भी मोडी लिपि पढने का अभी अभ्यास नही था, किन्तु पत्र देवनागरी लिपि मे ही लिखा गया था इसलिए भैया सहज ही मे उसे पढ लेता। किन्तु इस समय भैया की अनुपस्थिति मे क्या किया जा सकता था। मैने पत्र पढने का बहुत प्रयत्न किया, किन्तु चार-छै अक्षरो के अतिरिक्त मेरे पल्ले कुछ नही पड रहा था। मैने जो पाँच-सात शब्द पढ पाए थे उनमे से केवल तीन शब्दो का मुझे अब तक स्मरण है। किन्तु जिस समय मैने उन शब्दो को पढा था उस समय उन शब्दो का अर्थ मेरी समझ मे नही आया था। वैसे तो उन शब्दो का स्मरण रहने के लिए कोई खास कारण नही था, किन्तु आगे-आगे चलकर कई बार मैने उन शब्दो को सुना था और तब उनका महत्त्व मेरी समझ मे आया। वे शब्द थे—"अमान्य"—"जमानत" तथा "५०००"। उस समय इन शब्दो का महत्त्व मेरी समझ मे नही आया था। इस पत्र मे कोई गोपनीय बात लिखी गई है और उसका किसी के सामने उल्लेख नहीं करना है, माँ ने जो मुझे आदेश दिया था, उससे मै इतना ही समझ पाई थी। इसलिए मेरे मन मे विचार आ रहा था कि अब इस पत्र का क्या करना चाहिए? अन्त मे मैने निर्णय कर लिया था कि भैया के लौटकर आने तक इसे अपने पास छिपाकर रखा जाय।

१२

उस पत्र के बारे मे इस प्रकार निश्चय हो जाने पर, उसे कहाँ रखा जाय इस सोच-विचार मे कुछ समय चला गया। मेरे मन मे एक नवीन विचार उत्पन्न हुआ, जो वास्तव मे सबसे पहले आना चाहिए था। जब मुझे यह मालूम हो चुका था कि यह वही पत्र है जिसे लाकर नौकर ने माँ को दिया था, तो उसे माँ को सौपना ही उचित था। यह तो मैने किया नही, और इसके विपरीत मैने उसे खोलकर पढा—यह बात और है कि उसमे क्या लिखा था इसे मै न जान सकी—फिर भी मैने ऐसा कार्य किया जिसे जानकर माँ के मन को विषाद होगा। इस विचार से मै अब विचलित हो उठी थी।

मनुष्य का मन बुरी बातो की ओर जितना शीघ्र आकृष्ट होता है उतना अच्छी बातो की ओर नही होता, मन मे जब सुविचारो और कुविचारो मे सघर्ष छिड जाता है तब अस्सो प्रतिशत कुविचारो की ही जीत हुआ करती है, ऐसा अनुभवी लोगो का कहना है। मैने कोई दर्शन-शास्त्र तो नही पढे है, इसलिए इस सम्बन्ध मे विवेचन नहीं कर सकती और न करने की मेरी इच्छा है। मैं जो यह अपनी जीवनी लिख रही हूँ उसमे मेरा अपना विशेष उद्देश्य है। मेरे पश्चात् यह प्रकाशित होने पर यदि हम स्त्रियो की दीन-हीन दशा पर कोई तरस खायगा तो मेरी मनोकामना पूर्ण हो जायगी।

कम-से-कम उस समय तो मेरा मन सुविचारो की ओर नही झुका था। मन मे यह विचार भी आया था कि यदि अब यह पत्र माँ को दिया गया तो वह मुझ पर नाराज होगी और इसे देखकर उसे दु ख होगा। कुछ भी हो—मैने उस पत्र को आखिर छिपाकर ही रख दिया। इसके बाद नित्य-कर्म आदि से निवृत्त होकर, दादी ने सुन्दरी के साथ ही मेरे लिए जो भात पकाया था उसे खाकर मैं झट मे माँ के समीप जाकर बैठ गई। दादी पहले ही वहाँ आकर बैठ गई थी और थपकियाँ देकर सुन्दरी को सुलाने का प्रयत्न कर रही थी। मुझे देखकर दादी ने कहा, "चल ले इसे, और कही बाहर ले जाकर जरा खिलाती रहना।" यह समय आनाकानी करने का नही था, यह सोचकर मैने सुन्दरी को उठा लिया और बाहर चली गई। अब भैया का, दादाजी का अथवा उस पत्र का विचार भूलकर, क्या खेला जाय

और कहाँ जाकर खेला जाय, यही एक विचार मेरे मन मे था। किसी पडौसी अथवा रास्ता चलते किसी व्यक्ति ने यदि पूछ लिया कि, तेरे भाई का कुछ पता चला ? तो उतनी देर के लिए मुझे उसका स्मरण आ जाता था।

हमारे पडौस मे एक घर था। उस घर मे मेरी ही उम्र की एक लडकी थी, जिसका नाम 'कुशी' था। हम दोनो मे खूब बनती थी। क्योकि हम दोनो का स्वभाव एक-सा था। खेलने के लिए मेरी ही तरह वह हमेशा तत्पर रहती थी। मेरी ही तरह उसे भी अपनी छोटी बहनो से नफरत थी। और हमारी मित्रता का विशेष कारण यह था कि वह सदैव मेरी हाँ मे हाँ मिलाया करती थी। इसलिए आते-जाते मैं उसके घर का माग अपनाया करती थी। इस समय भी मैं उसके घर चली गई थी।

उसके घर जाकर मैंने देखा कि वहाँ और दो नई लडकियाँ और एक आठ-दस साल का लडका आया हुआ है। कुशी और वे तीनो किसी खेल मे मग्न है। मेरे वहाँ जाते ही वे लोग मेरी ओर घूरकर देखने लगे। अपनी बडी-बडी उथली आँखो से उस लडके को अपनी ओर ताकते देखकर मुझे अच्छा नही लग रहा था, मुझे उस लडके से घृणा हो गई थी। किन्तु इस उम्र की पसन्द और नापसन्द कोई माने नही रखती। कुछ ही समय मे हम सब मिलकर खेलने मे जुट गए थे। वे लोग नाते मे कुशी के फुफेरे बहन-भाई होते थे। उनमे से एक लडकी का नाम 'बनी' था और वह तेरह वर्ष की होगी। दूसरी सात-आठ वर्ष की थी। मुझे बताया गया कि बनी का विवाह कुछ दिन पूर्व ही हुआ है। वे लोग पूना के रहने वाले थे। केवल इतनी ही जानकारी उस समय उन लोगो के बारे मे मुझे मिल पाई थी।

हम लोगो का आपस मे परिचय हो जाने पर जब खेल का आरम्भ हुआ था तब उस छोटी लडकी ने बीच ही मे कहा, "कुशे चलो, अब दूल्हा-दुल्हन का खेल खेले।" यह सुनकर वह उथली आँखो वाला लडका, जिसका नाम घोडू था, खुशी मे आकर कहने लगा, "हाँ हाँ, वह बडा अच्छा खेल होता है। तुम लोगो मे केवल मैं ही लडका हूँ, इसलिए दूल्हे का प्रश्न ही उपस्थित नही होता, प्रश्न केवल इतना ही है कि मेरी दुल्हन कौन बनेगी 'सालू !" (यह उस लडकी का नाम था) "तू •" वह आगे क्या चाहता है यह जानकर उसकी बडी

बहन ने आँखे तरेरकर उससे बीच ही मे कहा, "घोडया, क्या बकता है ? वह तेरी बहन है और तू उसे अपनी दुल्हन बनाना चाहता है ? गधा कही का ।"

यह सुनकर पानी मे डाले हुए घुलने वाले मिट्टी के ढेले-जैसी उसकी अवस्था हो गई । किन्तु झट से अपने-आपको सभालकर उसने कहा, "नही दीदी, मै तो सालू को यह कह रहा था कि इस खेल को खेलने के लिए तुमने कहा है तो दूल्हा बन सकता हूँ, किन्तु मेरे लिए दुल्हन की व्यवस्था तो करो ।" ऐसा कहकर वह मेरी ओर ऐसी विचित्र दृष्टि से देखने लगा कि, मन मे आया उसे एक थप्पड जमा दूँ । मैं ताड गई कि दुल्हन बनने के लिए अब अवश्य ही मुझसे कहा जायगा । क्योकि कुशी उसकी ममेरी बहन थी और सालू एव बनी सगी बहने थी । उसकी बात सुनकर त्यौरियाँ चढाकर मैंने कहा, "कुशी, मैं ऐसा गन्दा खेल नही खेलूँगी । अच्छे खेल खेलना चाहती हो तो मैं यहाँ ठहरूँगी । नही तो अपने घर चली जाऊँगी । छी. यह क्या कोई खेल है । और यह दूल्हा ? वाह-वाह रे दूल्हा ।" मेरा भाषण समाप्त होने के पहले ही बनी मेरे समीप इस प्रकार टुनटुनाती हुई आई जैसे उसकी नाक को बिच्छू ने डक मारा हो । कहने लगी, "जी हाँ । बडी आई अच्छे खेल खेलने वाली । जैसे तू कभी दुल्हन बनेगी ही नही । तो क्या आजीवन तू कुँवारी ही बनी रहेगी ? बडा नखरा दिखा रही है । और कहती है यह दूल्हा ? क्या खोट है इस दूल्हे मे ? खेल मे भी मेरे भैया-जैसा पति पाने के लिए सात जन्म तप करना होगा । समझी ।"

यह कहते हुए उसका चेहरा इतना भयानक हो रहा था कि मुझे लगा, अब यह मुझे डसती है । वह एक चपटी नाक वाला कुत्ता होता है न, जिसे बुलडाग कहते है—बिलकुल उस-जैसी सूरत थी बनी की । और उस पर इस तरह का तमतमाना । फिर कहना ही क्या । भाई की उथली आँखे अधिक फटने से लग रहा था कि बन्दूक की गोली-जैसी वे आँखे मुझे आकर लगेगी । उसके भाई को "यह दूल्हा" कहने से उसे झटका आया था । अपना गुस्सा-भरा वक्तव्य समाप्त करके बनी अपने भाई के पास गई और दुलार से उसके मुख पर हाथ फेरकर उसने कहा, "घोडू, तुझे ऐसी दुल्हन नही मिल रही है इसे तू अपना भाग्य समझ । ऐसी हजारो शूर्पणखाएँ तेरे चरणो पर आकर गिरेगी । चुडैल कही की। अपने-आपको जैसे सुभद्रा समझती है । बडे दिमाग से कहती है,

यह दूल्हा ? अब देखना है कि किस मदन के पुतले से इसका विवाह होता है ?”

इस प्रकार कतरनी-जैसी उसकी जिह्वा चल रही थी। बीच ही मे उसके भाई ने कहा, “दीदी, ऐसी कुरूप दुल्हन मुझे नही चाहिए।” मैने सोचा था कि कुछ देर तक खेल ही तो खेलना है, इसलिए हाँ कह दूँ। मामला इस हद तक पहुँचने पर कुशीदेवी को भी अपने भाई का प्रेम उमड आया था। तर्राकर उसने कहा, “बनू दीदी, इसकी दृष्टि मे, इसका भैया ही ससार मे सबसे अच्छा है।” इसी समय घरौदे की ओर से कुछ गिरने की आवाज सुनाई दी। हम लोगो ने वहाँ जाकर देखा तो सुन्दरी ने घरौदे मे रखे हुए मिट्टी के बरतनो को नीचे गिरा दिया था। एक के ऊपर एक रखे हुए वे मिट्टी के बरतन चूर-चूर हो गए थे। मैं झट से आगे बढकर सुन्दरी को उठा रही थी तभी दूसरी ओर से बनूदेवीजी ताव मे वहाँ आ गई। मै और वे दोनो एक साथ ही नीचे की ओर झुकी थी। मै सुन्दरी को उठाने के लिए झुकी थी और वह झुकी थी सुन्दरी को मारने के लिए। हम दोनो के एक साथ झुकने से दोनो के सिर आपस मे टकरा गए। फिर क्या था। बनी ने जोर से सुन्दरी की पीठ मे एक धप्पा जमा दिया, जिससे वह बच्ची तिलमिलाकर चीख पडी, किन्तु उसकी ओर ध्यान न देकर बनू अपना सिर फूटने का ही ढोग करती रही। मुँह से चुडैल, वेश्या-जैसी गन्दी गालियाँ बक रही थी। सच कहती हूँ, तब तक ऐसी गन्दी गालियाँ मैने किसी के मुँह से नही सुनी थी। उसके सामने मेरी जबान भी नही खुल रही थी। सुन्दरी ने रो-रोकर आतक मचा दिया था। मेरी आँखो मे भी आँसू उमड आए थे। मन मे विचार आ रहा था कि जाकर कुशी की माँ से कह दूँ, किन्तु मै वैसी ही भागकर घर चली आई थी। हरे राम ! ऐसी चडिका भवानी मैंने कही नहीं देखी।

घर आते ही मैं सीधी माँ के पास चली गई। माँ का कराहना कुछ कम हुआ था। सुन्दरी को उसके पास ले जाते ही उसने कहा, “क्यो ? यह रो क्यों रही है ?” मै उत्तर न दे सकी। टाल-टूल का उत्तर दे दिया। माँ ने सुन्दरी को दूध पिलाकर चुप कर दिया। माँ का बुखार कुछ कम हो गया था। दादी वहाँ नही थी, नहाने-धोने मे लगी थी। नहाकर गीले वस्त्र पहने दादी उस घर मे आ गई और बाँस पर सूखने के लिए डाली हुई साडी को खीचते हुए कहा, “यमे, क्या गणू ने ऐसा ही कहा था जैसा तू बता रही है ?

या तूने बात बढा-चढाकर कही है ? रह-रहकर मेरे मन मे विचार आ रहा है कि उस दिन मैंने उसे तमाचा मारा था, इसलिए नाराज होकर तो वह नही चला गया ?"

दादी के शब्द सुनकर अथवा अन्य किसी कारण से हो, माँ की आँखो से आँसूओ की झडी लग गई। दरवाजे की ओर उसकी पीठ होने से दादी को उसने आते नही देखा था, किन्तु दादी का शब्द सुनकर वह उठकर बैठ गई थी। वास्तव मे उसमे उठकर बैठने की शक्ति नही थी, किन्तु सास के सामने आ जाने पर कौन-सी मर्यादाशील बहू सास के प्रति यथोचित मान-मर्यादा दिखाए बिना रह सकती है ? और फिर हमारी माँ-जैसी बहू और दादी-जैसी सास। माँ का विवाह हो जाने के बाद कुछ दिनो तक दादी ने उसे बहुत तग किया था। किन्तु उन सब कष्टो को सहकर हमारी माँ प्रशसा-पात्र बनी थी। कई बार मैंने दादी को कहते सुना था कि इतनी अच्छी बहू मिलने पर भी लडका न जाने इतनी रुखाई का बर्ताव कैसे करता है ? व्यर्थ ही मैंने आरम्भ मे इसे तग किया था। अस्तु। हमारा जन्म होने से पहले दादी का माँ के साथ चाहे-जैसा बर्ताव रहा हो, किन्तु जब से मुझे समझ आई है तब से मैंने देखा है कि दादी हमारी माँ को अपनी बेटी-जैसी मानती थी। किसी बात मे कमी नही करती थी। कभी माँ से ऊँच-नीच बात कहते हमने नही सुना था। वैसे तो माँ का बर्ताव ही ऐसा रहता था कि कभी किसी का एक कटु शब्द भी सुनने का प्रसग उस पर नही आता था। किसी-किसी मे ऐसा ही गुण होता है कि उसके लिए बुरा शब्द मुँह से निकल ही नही पाता। हमारे दादाजी का स्वभाव इतना तीखा था फिर भी हमारी माँ से उन्हे नितान्त स्नेह था।

दादी का प्रश्न सुनकर मैं कहना चाहती थी कि, "हाँ बडी माँ, भैया ने बिलकुल ऐसा ही कहा था," किन्तु इसके पहले ही वह साडी लेकर पूजा-गृह मे चली गई। मैं वही बैठी रही और कुछ देर बाद माँ सो गई।

लगभग दस बजे का समय होगा। मेरा मन अस्वस्थ हो रहा था। अब क्या किया जाय, इस सोच-विचार मे डूबी हुई थी। तभी मुझे दादाजी की आवाज सुनाई दी। सुनते ही मैंने ऊँचे स्वर से कहा, "दादाजी आ गए, किन्तु भैया की आवाज सुनाई नही देती।" मेरा इतना कहना था कि माँ, ने जोर से "आँ ?" किया और उसकी आँखें फैल गई। यह देखकर में डर गई। मैं जोर से चिल्लाई,

"बडी माँ—बडी माँ, देखो माँ क्या कर रही है ?" सुन्दरी पास में सोई थी। मेरी आवाज सुनकर वह जग गई और चीख-चाखकर रोने लगी। "क्या बात है," कहते हुए बाहर से दादाजी और भीतर से दादी वहाँ आ पहुँची। दादाजी के पीछे भैया भी था। ऐसे कुसमय आने की अपेक्षा कुछ देर पहले वह आता तो हर्ष से मैं उसे लिपट जाती। किन्तु यह तो बडी भयानक घडी थी।

"अब और क्या अनर्थ हो रहा है ?" ऐसा कहती हुई दादी माँ के समीप आ गई। माँ बेहोश हो गई थी। जरा भी हिल-डुल नही रही थी। बत्तीसी बँध गई थी। आँखे बन्द थी। हाथ-पैर काठ-जैसे हो गए थे। साडी का आँचल अस्त-व्यस्त हो रहा था। दादाजी ने माँ की आँखो को पानी लगाया। दादाजी दवाकी मात्रा लाने के लिए चिल्ला रहे थे। भैया माँ की ओर टकटकी बाँधे खडा था। उसे कुछ सूझ नही रहा था। उसकी आँखो से आँसू बह रहे थे। मैं तो भौचक्की-सी हो गई थी। मेरी आँखो से आँसुओ की झडी लगी हुई थी। किन्तु आश्चर्य की बात तो यह है कि सुन्दरी, जो अब तक रोकर हल्ला मचा रही थी, अब एकदम चुप हो गई थी। शायद ऐसे समय परमात्मा ही बच्चो को सद्बुद्धि देता है। जल्दी से जाकर दादी अपना झोला उठा लाई। मेरे पास आकर उसने कहा, "जा, घिसने के लिए दौडकर सिल ले आ!" मेरे जाने से पहले ही भैया भागा हुआ सिल ले आया। मेरी समझ मे नही आ रहा था कि दादी क्या कर रही है। सोठ का एक टुकडा निकालकर दादी ने झट से उसे चार-छ बार सिल पर घिसा और माँ की आँख खोलकर उसमे वह घिसा हुआ अंजन लगा दिया। उसके लगाते ही जिस प्रकार कोई सोया हुआ मनुष्य नीद से चिल्लाता है उसी प्रकार माँ विचित्र ढग से चीख उठी और कहने लगी, "वह आया कि नही ? क्या मुझे अकेली छोडकर कही चला गया ?" यह सुनकर मुझ से नही रहा गया। मैंने एकदम उसके गले मे बाँह डालकर रोते हुए कहा—"भैया जल्दी आओ!"

रोता हुआ भैया भी उसके शरीर पर गिर पडा। फिर भी माँ कहती रही "नही आया ? क्या वह आपको नही मिला ? कान की बालियो के लिए किसी ने उसे मार तो नही डाला ? हरे राम!" इतना कहकर वह जोर से रोने लगी। मैंने झट से कहा, "देखो माँ, यह भैया ही तो है, तुम्हारे पास जो बैठा है। माँ, यह क्या कर रही हो ?" मैंने इतना कहा, फिर भी उसका वही

हाल था। दादा ने झट से मात्रा घिसकर उसे चटा दी, उसकी आँखो को पानी लगाया, फिर भी उसकी मूर्च्छा दूर नही हो रही थी। ज्वर भी अधिक तीव्र हो गया था। दादाजी ने सुन्दरी को लेकर हम दोनो को बाहर जाने के लिए कहा। फिर भी कुछ देर बाद लौटकर मैं भीतर झाँक गई थी। ज्वर की ग्लानि से अथवा अन्य किसी कारण से उस समय माँ चुपचाप पडी थी, सभवतः उसे नीद आ गई थी।

घर मे उदासी छाई थी। कोई किसी से उच्च स्वर मे बात भी नही कर रहा था। घर मे वैसे ही साढे तीन मनुष्य थे। और फिर दादी और दादाजी मे तो विशेष सख्य था, फिर कौन किससे बोलता ? मुझे तथा भैया को बाहर भगा दिया गया था। सुन्दरी मेरे पास थी। हम लोगो के बाहर जाने के बाद भैया धीरे से फुसफुसाया, "यमे, माँ को बुखार कब से है ?" उसके प्रश्न का मैंने क्या उत्तर दिया होगा ? मैंने उपहास से कहा, "हे दयानिधे ! यह आप ही का प्रताप है। जिस दिन आपने यहाँ से प्रस्थान किया उसी दिन से माँ बुखार मे पडी है। (वास्तव मे बात ऐसी नही थी, मैंने बढा-चढाकर कही थी) बडा अच्छा काम किया आपने। और उस दिन आप मुझसे कह रहे थे कि यमे, तू माँ को बहुत परेशान किया करती है। भैयाजी, मेरा परेशान करना फिर भी अच्छा कहा जा सकता है, किन्तु आपने जो—" इसी समय मेरी दृष्टि उसके चेहरे पर पडी, मैंने देखा कि उसकी आँखो से आँसू बरसना ही चाहते है। मेरे कधे पर हाथ रखकर उसने कहा, "क्या बताऊँ—मैं करना क्या चाहता था और हुआ क्या।" इसी समय मैंने उसके कानो को देखा—' "भैया, तुम्हारी बालियाँ कहाँ है ?"

जैसे भैया को रुलाने के लिए इसी प्रश्न की आवश्यकता थी। प्रश्न सुनते ही उसकी आँखो से आँसुओ की झडी लग गई। उसके मुँह से शब्द नही निकल रहा था। सुन्दरी मेरे कधे पर सिर रखे सो गई थी, इसलिए मैंने कहा, "जरा ठहरो, मैं अभी इसे सुलाकर आती हूँ।" उस समय मेरा यहाँ से जाना ही ठीक था, जिससे भैया के अस्वस्थ मन को शान्त होने के लिए अवसर मिल गया।

सुन्दरी की नीद तो कौए-जैसी थी, नीचे सुलाते ही वह 'कॉय्-कॉय्' करने लगी। दादाजी नहाकर भीतर आ रहे थे—सुन्दरी का स्वर सुनते ही चीखकर

उन्होने कहा, "हरामजादी। बाहर ले जाकर इस छोकरी को खिलाने के लिए कहा था तो यहाँ बैठकर उसे रुला रही है। अपनी माँ बीमार है, इसका भी तुम्हे सोच-विचार नही। जरा उस लडके को देख—अपनी माँ को दुखी देखकर रात-बेरात अकेला चला गया, और एक तू है। चल निकल यहाँ से।"

इतना सुनते ही मै बाहर भाग गई। किन्तु दादाजी ने भैया को बुलाया था, इसलिए वह भीतर चला गया। मै अकेली बाहर आँगन मे बैठी रही।

एक बात कहनी है मुझसे रहा नही जाता इसलिए मन मे जो विचार आया है उसे इसी समय कहे देती हूँ। बचपन से लेकर आज तक कभी ऐसा नही हुआ कि मेरे मन मे कोई विचार आया और वह उसी समय पूर्ण हो गया। बडी बातो को तो छोडिये, किन्तु मेरी क्षुद्र इच्छाएँ भी कभी उसी समय पूर्ण होने का मुझे स्मरण नही है। कोई-न-कोई विघ्न अवश्य आ जाता था। किसी का भाग्य ही ऐसा होता है कि आरम्भ किये गए कार्य मे उसे पहले यश-प्राप्ति नही होती और यदि प्राप्त भी हो तो देर से होती है। फिर वह कार्य मामूली अथवा सहज सभाव्य ही क्यो न हो। दादी तो हमेशा कहा करती थी कि इस लडकी के हाथ पर गेहूँ नही है इसलिए इसे किसी बात मे यश-प्राप्ति नही होगी। भविष्य मे उसकी यह बात मेरे मन मे घर किये बैठी थी। किसी का जन्मकालीन नक्षत्र ही ऐसा होता है कि कोई भी कार्य वह सदिच्छा से क्यो न करे, उसे कोई अच्छा नही कहता। मेरे बारे मे भी यही चरितार्थ होता था।

इसी समय इन विचारो के आ जाने का भी कारण है। सुन्दरी को लेकर जब मै भीतर जा रही थी तभी मुझे उस छिपाए हुए पत्र का स्मरण हो गया था। मुझे तीव्र उत्सुकता हो रही थी कि सुन्दरी को सुलाकर भैया को वह पत्र दिखा दूँ और उससे पढवाकर उसमे क्या लिखा है इस रहस्य को समझ लूँ। किन्तु मेरा मनोरथ मिट्टी मे मिल गया था। भैया भीतर चला गया था और फिर बाहर लौटकर नही आया। मुझे भीतर जाने मे दादाजी का डर लग रहा था। फिर भी कुछ देर बाद दुबकती हुई मै भीतर गई। उस समय भैया और दादाजी भोजन करने के लिए बैठ रहे थे। मुझे देखकर दादी ने कहा, "यमे, जरा जाकर तो देख, क्या तेरी माँ जग गई है ? यदि वह उठी हो तो कहना, कुछ खा पी ले। नही-नही तू केवल जाकर देख ले, फिर जो कुछ

कहना है वह स्वय मै जाकर कह लूँगी।" मैने जाकर देखा—माँ अब भी सोई थी। लौटकर मै स्वय भोजन करने बैठ गई। भोजन करते समय दादाजी ने कहा, "यदि किसी ने इस लडके को 'कहाँ गया था, क्यो गया था, तेरा क्या खो गया' आदि बातो के बारे मे कुछ कहा, तो खबरदार। फिर मुझसे बुरा कोई नही होगा।" कहने की आवश्यकता नही कि ये आदेश दादी के लिए थे। वह भी फुसफुसा रही थी—'यहाँ किसकी अडी है उसे पूछे बिना। यही बहुत है कि वह सकुशल लौट आया।"

सायकाल के समय माँ जागी। दिन-भर उसे प्रगाढ निद्रा आई थी। भैया को उसने होश मे नही देखा था, इसलिए उसका पहला प्रश्न था, "यमे, गणू लौटकर आया या नही ?" भैया उसके सिरहाने बैठा था और सुन्दरी बगल मे सोई थी। पास ही मे बैठी दादी बातियो को घी मे भिगो रही थी। माँ का प्रश्न सुनते ही मैने कहा, 'हाँ माँ, देखो न, तुम्हारे सिरहाने जो बैठा है—" मेरे शब्द सुनकर माँ झटके के साथ उठकर बैठ गई। उसे विलक्षण आवेश आ गया था। घबराकर मै दूर हट गई। माँ टकटकी बाँधकर कुछ देर तक भैया को ताकती रही। फिर न जाने उसके मन मे क्या आया, अपने दोनो हाथ फैलाकर उसने भैया को अपने पास समेट लिया और सोने लगी। यह देखकर दादी को कुछ शका हो जाने से उठकर वह समीप आ गई। भैया भी रो रहा था। रोते-रोते माँ कुछ कह रही थी—"कहाँ गया था रे ? अ ? मुझे अकेली छोडकर ?" दादी पास मे खडी है, इस बात का उसे भान नही था। शायद उसे फिर वात का झटका आ गया था। किन्तु यह झटका दीर्घ-कालीन नही था। कुछ देर रो लेने के बाद वह हँसने लगी। मुझे भी पास बुलाकर उसने अपनी बाँहो मे जकड लिया। तब दादी ने उसे पुकारा तो वह उसकी ओर आँखो को खूब फैलाकर देखती रही। दादी ने कहा, "आज यह क्या मामला है ?" यह सुनते ही माँ रोने लगी और रोते-रोते उसने कहा, "मेरे बच्चो को कभी अपने से जुदा तो नही करोगी ?" यह सुनकर दादी ने कहा, "अरे, तू आज कैसा विचित्र बर्ताव कर रही है ? पागल तो नही—" दादी इतना ही कह पाई थी कि माँ धडाम से नीचे गिर गई और सुबह-जैसी ही उसकी अवस्था फिर हो गई। दादी ने जोर से दादाजी को पुकारा। फिर सुबह-जैसे ही अजन आदि उपचार किये गए। उसे कुछ देर बाद होश आ

गया था किन्तु ज्वर तीव्र हो गया था। उस रात कोई नही सोया। दादाजी भी वही बैठे रहे। दिये से रात बिताई गई। हम भाई-बहन कुछ देर तक जागते रहे, फिर मुझे नीद आ गई। माँ का कराहना चलता रहा।

१३

इस प्रकार दो दिन बीत गए थे। माँ का बुखार कम नही हो रहा था। पिताजी को पत्र लिखा गया। वैद्य की दवा दी जा रही थी, किन्तु उसका कोई फायदा नही हो रहा था।

भैया ने मुझे बताया कि ज्वर आने के तीसरे दिन उसने दादाजी को दादी से कहते सुना था कि न जाने यह बीमारी अब कौन-सा रूप धारण कर लेगी। हम सब लोगो के मुँह सूखकर काँटा हो रहे थे। सुन्दरी को प्रायः मैं ही खिलाया करती थी। भैया और मैं मिलकर उसे किसी तरह माँ से दूर रखा करते थे। उसे दूध पीने की आदत थी, इसलिए बुखार होते हुए भी माँ को उसे पिलाना पडता था। आगे चलकर इसका दुष्परिणाम हुआ था। दो दिन मे मुझे भैया से एकान्त मे बात करने का अवसर नही मिला था। छिपाए हुए पत्र भैया को दिखाने का मौका नही मिल रहा था। माँ के पास हममे से कोई-न-कोई बैठा रहता था। उस रात भैया के जाने के बाद क्या हुआ था, उसकी बालियाँ कहाँ खो गई थी आदि बाते साराश रूप मे ही मैं जान पाई थी। रात मे बिस्तर पर पडे-पडे बाते नही की जा सकती थी, क्योकि दादी हमारे पास सोया करती थी और कुछ हटकर दादाजी भी सोया करते थे। चौथे दिन दादी ने हम दोनो को बाहर जाकर खेलने के लिए कहा था, क्योकि उस दिन माँ की तबियत मे कुछ सुधार मालूम हो रहा था।

बाहर आने पर मैंने कहा, "भैया, मैने सोचा था कि तुमसे नही पूछूँगी, किन्तु पूछे बिना मन नही मानता। सच बताओ, तुम्हारे कान की बालियाँ

कहाँ है ? मेरा प्रश्न सुनकर भैया का मन कुछ विचलित हुआ-सा मालूम दिया, किन्तु स्थिर भाव मे उसने कहा, "यमे, मेरी बालियाँ चोरो ने उतार ली।" इतना कहकर वह चुप हो गया और टकटकी बाँधे मेरी ओर देखता रहा। उसका वह देखना कुछ विचित्र-सा मालूम हो रहा था। उसकी आँखे मुझे देख रही थी, किन्तु मन कही और भटक रहा था। सभवत चोरो का बालियो को उतारते समय का चित्र उसकी आँखो के सामने खिच गया हो। उसकी दृष्टि असह्य होने से मैंने उससे कहा, "यह क्या ? पागलो-जैसे क्या देख रहे हो ?" मेरा प्रश्न सुनकर उसका चित्त ठिकाने आ गया। मेरे कधे पर हाथ रखकर उसने कहा, "यमे, बालियो का उल्लेख फिर कभी मेरे सामने मत करना। उनका नाम सुनते ही मुझे बहुत दु ख होता है। मुझे नही मालूम था कि ससार मे इतने बदमाश लोग होते है।" इतना कहकर वह कुछ देर के लिए रुक गया था—फिर उसने कहना आरम्भ किया, "जब मैं आधा रास्ता तय कर चुका था तब मुझे शका हो गई कि मैं कही रास्ता तो नही भल रहा हूँ, इसलिए पास ही मे जा रहे एक राहगीर से मैंने पूछ-ताछ की तो उसने कहा कि तुम बिलकुल उल्टे रास्ते से जा रहे हो। मेरे साथ चलो, मैं तुम्हे स्टेशन तक पहुँचा दूंगा, इनना कहकर वह मुझे अपने साथ दूसरे रास्ते से ले गया। उसे भला आदमी मानकर मैंने उसे अपना पूरा हाल सुना दिया। सुनकर उसने कहा, पैदल जाने की अपेक्षा रेलगाडी से जाना ही ठीक होगा। जब मैंने कहा कि मेरे पास किराये के लिए रुपये नही हैं तो उसने कहा, तुम्हारे पास बाली-छल्ला कुछ हो तो निकाल दो, मैं पडौस के गाँव मे उसे बेचकर रुपये ला दूगा। न जाने उस समय मुझ पर कौन-सा जादू हो गया था, सोचा, अब इस पार या उस पार। माँ की चिता दूर करने का अवसर प्राप्त हो रहा है तो उसके आगे बालियो का क्या महत्त्व है ? मैंने उसे हाँ कह दिया। अरुणोदय का समय हो रहा था। एक पेड के नीचे ले जाकर उसने मेरी बालियो को देखा। फाँसे ठीक नही लगे है, ऐसा कहकर उसने मेरी बालियाँ उतार ली। बालियो को गद्दी पर रखकर उनकी ओर लोभ भरी दृष्टि से देखते हुए उसने कहा, वाह ! बालियो के मोती तो बहुत अच्छे, पानीदार मालूम होते है। इस गाँव के गोपाल सेठ सुनार नाते मैं मेरे काका होते है। बालियो के बदले मे उनसे सौ-पचास रुपये लिये जा सकते है।"

"इतना कहकर वह रास्ता चलने लगा। बालियो को उसके हाथ मे देखकर मेरा मन धक-धक कर उठा था। माँ क्या कहेगी, पिताजी और दादाजी क्या कहेगे, इस विचार से मै अस्वस्थ हो उठा। बार-बार होठो तक आकर शब्द लौट जाते थे कि उससे कह दूँ, लाओ मेरी बालियाँ मुझे लौटा दो। तभी एक तरफ देखते हुए उस मनुष्य ने कहा, 'ओ हो, वह देखो खरगोश।' और जैसे खरगोश को पकडने के लिए वह दौडा हो, देखते-देखते मेरी दृष्टि से बाहर हो गया। खरगोश कहाँ है, यह देखने मे व्यस्त मै कुछ देर तक उसी स्थान पर खडा ताकता रहा। कुछ देर बाद मै उसके पीछे निकला। मुझे लग रहा था कि कुछ दूर जाने पर वह मुझे अवश्य मिल जाएगा। किन्तु उसका कही पता नही चला। रास्ते मे सन्नाटा छाया था। कोई आता-जाता दिखाई नही दे रहा था। बहुत देर तक पीछा करने पर भी जब उस बदमाश का कही पता न चला तब निराश होकर मै एक पेड के नीचे जाकर बैठ गया। अब मुझे मालूम हुआ कि उस बदमाश ने मुझे पूरी तरह से ठग लिया। समझ मे नही आ रहा था कि अब क्या किया जाय। किस रास्ते से आया हूँ और अब कहाँ जाना है, इसका भी बोध नही हो रहा था। आखिर बच्चो के लिए जो अन्तिम उपाय होता है उसे मैने अपनाया था। बहुत देर तक मै उसी स्थान पर बैठकर रोता रहा। किन्तु रोने से क्या होना था। रो-रोकर थक गया। अब अपने घर कैसे पहुँचूँगा, माँ को कैसे देख सकूँगा, यमी से कब मिलूँगा, दादाजी क्या कहेगे, आदि बाते मन मे आकर दम घोट रही थी। उसी समय एक ब्राह्मणी पगडी पहने मैने दूर से किसी को आते देखा। वह व्यक्ति मेरी ओर घूर-घूरकर देख रहा था। उस समय कोई आठ-नौ बजे होगे। मेरे समीप आकर, मुझे रोता देख उसने कहा, 'तुम किसके लडके हो, और यहाँ बैठकर क्यो रो रहे हो ?' उसका प्रश्न सुनकर मेरी हिचकी बँध गई। वह बडा दयालु व्यक्ति था। उसने हाथ पकडकर मुझे उठाया, मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए उसने मुझे बहुतेरा समझाया-बुझाया, और धीरे-धीरे प्रश्न पूछकर मेरा सब हाल मालूम कर लिया।

वे किसी गाँव के पटवारी थे। वे मुझे अपने साथ गाँव ले गए। मैं बहुत थका हुआ था इसलिए भोजन आदि कराकर उन्होने मुझे आराम करने के लिए कहा। उस समय दोपहर के दो बज चुके थे। स्नेह-भरे शब्दो मे उन्होने

मुझे कहा कि धूप उतर जाने पर घोडा और आदमी साथ देकर तुम्हे घर पहुँचा दूँगा। मै लेट गया। बहुत थक जाने के कारण लेटते ही मुझे नीद आ गई। जब मै सोकर उठा तब पाँच बज चुके थे। पटवारी जी ने मेरे प्रस्थान का प्रबन्ध कर दिया था। मै निकल ही रहा था कि सामने से मैने दादाजी को आते देखा। उन्हे देखकर मेरा क्या हाल हुआ होगा इसकी कल्पना ही की जा सकती है। मेरा सब वृतान्त सुन लेने पर मुझे छाती से लगाते हुए उन्होने कहा, 'आज परमात्मा ने ही इसे हमे लौटाया है। उन बालियो के लिए चोर ने यदि इसकी जान ले ली होती तो · ' ऐसे उदाहरण कम थोडे ही है। बहुत देर तक बातचीत होती रही। पटवारीजी ने दादाजी से भोजन करके जाने के लिए आग्रह किया। 'हाँ, नही' होते-होते दादाजी ने उनकी बात मान ली। फिर रात को चद्रोदय हो जाने पर हम वहाँ से निकले और यथा समय यहाँ आकर पहुँचे।" इस प्रकार भैया ने आपबीती सुनाई।

कुछ देर तक हम दोनो इसी विषय पर बातचीत करते रहे। मै उस पत्र की बात भूल गई थी। भैया ने कहा, "यमे, मेरे घर से चले जाने के बाद क्या हुआ था, यह तो तुमने बताया ही नही।" उसका प्रश्न सुनकर मुझे उस पत्र की याद आ गई। भैया को वह पत्र दिखाने का निश्चय करके मैने उसे उसके चले जाने के बाद घर मे जो काड हुआ था उसका ब्यौरा सुना दिया, और साथ ही उस पत्र के बारे मे भी बता दिया। मेरी बात सुनकर भैया कुछ देर तक मौन बैठा रहा, फिर उसने कहा, "ले आओ उस पत्र को, जरा देखूँ तो!" मैने पत्र लाकर उसे दे दिया। पत्र लेकर हम दोनो एक तरफ जा बैठे। पत्र पढते-पढते उसका मुख विवर्ण हो रहा था। उसके चेहरे के बदलते हुए भावो को देखकर, पत्र मे क्या लिखा है यह जानने की मेरी इच्छा तीव्र होती जा रही थी। पत्र तो छोटा है, फिर इतना देर तक भैया क्यो पढ रहा है यह मेरी समझ मे नही आ रहा था। वास्तव मे पत्र पढने मे विशेष समय नही लगा था, किन्तु मेरे उत्कठित मन के लिए एक क्षण प्रहर-जैसा प्रतीत हो रहा था। आखिर मुझसे नही रहा गया। उसकी बाँह हिलाते हुए मैने कहा, "इतनी देर तक—क्या पढ रहे हो? कुछ मुझसे भी तो कहो।" मैने इतना ही कहा था कि उसकी आँखो से आँसू टपकने लगे। यह देखते ही मैने सोचा कि पत्र मे अवश्य किसी दुखदायक घटना का उल्लेख किया गया

है। तभी तो पत्र पढकर माँ का वह हाल हुआ था और भैया बालक होकर भी इस प्रकार रो रहा था। तब तो पत्र मे क्या लिखा है यह जानने की मुझे तीव्र इच्छा होने लगी। एकदम भैया ने मेरी बाँह पकडकर विचित्र दृष्टि से मेरी ओर देखते हुए कहा, "यमे, मेरी कही बात मानोगी ?" उत्सुकता से मैंने कहा, "हाँ, हाँ, तुम कहो न !"

सयत स्वर मे भैया ने कहा, "मैं केवल इतना ही कहना चाहता हूँ कि इस पत्र मे क्या लिखा है इसकी पूछ-ताछ तुम न करो ! तुम अभी बच्ची हो, इस पत्र का मतलब तुम्हारी समझ मे नही आयगा।" यह कहते समय उसके चेहरे का भाव स्पष्ट बता रहा था कि उस पत्र मे क्या लिखा है यह न बताने का भैया ने निश्चय कर लिया है। भैया की बात सुनकर मेरा मन निराश हो उठा। आज तक जिस आशा को लेकर बैठी थी वह निरर्थक सिद्ध हुई। पत्र मे क्या लिखा है यह जानने की कोई आशा शेष नही रही। इतने दिन मैंने उस पत्र को छिपाकर रखा, बडे विश्वास से उसे दिया, उसने स्वय उसे पढ लिया, किन्तु मेरी इच्छा को उठाकर उसने ताक मे रख दिया। मुझे उस पर गुस्सा आ रहा था—मैं गुस्से मे बेहोश हो रही थी—लग रहा था कि उसे जोर से काट खाऊँ। कम-से-कम वह पत्र उससे छीनकर अपने पास रख लूँ और उसे खूब नोच लूँ—ऐसा विचार मन मे आ रहे थे। लेकिन भैया मौन बैठा बार-बार उस पत्र को पढ रहा था। जैसा कोई बडा राजनीतिज्ञ राज्य के बनने-बिगाडने का विचार कर रहा हो। आखिर मैंने उससे कहा, "भैया, उस पत्र मे क्या लिखा है, मुझे बताओगे या नही ?" वह चुप बैठा रहा। शायद प्रश्न उसने सुना ही नही था। कुछ देर तक मैं उसके उत्तर की प्रतीक्षा करती रही। फिर जोर से उसका हाथ झटककर मैंने कहा, "ऐसा क्यो करते हो ? बताओ न। नही तो मेरा पत्र मुझे लौटा दो। देखो, कहे देती हूँ, नही तो—"

"यमे, तुम-जैसी मूर्ख लडकी मैंने कही नही देखी। मैं एक बार कह चुका हूँ कि इस पत्र के बारे मे मुझसे कुछ न पूछो और मैं भी तुम्हे कुछ न बताऊँगा। यह पत्र भी अब तुम्हे वापस नही मिलेगा।" उसका यह शात भाषण सुनकर मेरा शरीर एक बार फिर क्रोध से धधक उठा। आग छू जाने से जिस प्रकार मनुष्य छटपटा जाता है वैसे ही मैं भी छटपटा रही थी। आँखो से गगा-जमुना का प्रवाह बह रहा था। उसके हाथ से थमे हुए पत्र पर झपटकर मैंने कहा,

"मेरा पत्र है, और मुझे उसमे लिखी बाते नही बताते और न पत्र लौटाते हो। बदमाश—ठहर जा—" किन्तु झट से वह दूर भाग गया और पत्र की तह करके उसने अपनी जेब मे रख लिया। पूर्ववत् शान्त स्वर मे उसने कहा, "यमे, तुम अबोध हो। इस पत्र मे क्या लिखा है इसे न जानना ही तुम्हारे लिए हितकर है। बताने पर भी तुम्हारी समझ मे कुछ नही आयगा। फिर क्यो व्यर्थ बकवास कर रही हो ?" इतना कहकर वह चला गया।

बहुतेरे लोगो को इस बात का अनुभव होगा कि किसी के साथ गुस्से मे बात करने पर यदि वह उसका उत्तर शान्ति से देता है तो अपना गुस्सा दुगुना हो जाता है। वही हाल उस समय मेरा हो रहा था। मुझे शान्तिपूर्वक उत्तर देकर तथा बेवकूफ बनाकर, पत्र को अपनी जेब मे रखकर भैया वहाँ से चला गया। उसके बर्ताव से मै जल उठी। भैया को किस प्रकार मजा चखाया जाय, इसी सोच-विचार मे मैं बहुत देर तक डूबी रही। किन्तु इस प्रकार मैं कब तक बैठी रह सकती थी। उसे दरवाजे से भीतर जाते देखकर मैं जोर से उसके पीछे भागी। लेकिन मै उसे पकड न सकी। उसके साथ मेरा पत्र भी चला गया। कम-से-कम जब तक पत्र मेरे पास था तब तक उसमे क्या लिखा है यह जानने की मुझे आशा थी, किन्तु अब वह भी नष्ट हो चुकी थी। जब कोई आशा नही रही तब अपना अन्तिम शस्त्र लेकर मैं एक कोने मे जाकर बैठ गई। सोचा कि शायद इस प्रकार रोते देखकर भैया अपने पास आयगा और उस पत्र का कुछ अश अवश्य बता देगा। इसी समय मेरे मन मे एक बहुत सुन्दर विचार आया—आते ही मन प्रफुल्लित हो उठा। मेरा विचार कार्यान्वित होते ही भैया पराजित होकर मुझे मनाने के लिए मेरे पास आयगा, इसका मुझे विश्वास हो रहा था। मैं भैया के पास चली गई। नाक फुलाकर और आँसू-भरी आँखो को तरेरकर तेज स्वर मे मैने कहा, "भाई साहब, पत्र मे क्या लिखा है यह आप मुझे सीधी तरह बता दे नही तो मै जाकर माँ से कह दूँगी।" अपनी इस धौस का क्या परिणाम होता है इसे अजमाने के लिए मैं दूर जाकर उसका चेहरा ताकती रही। उसकी मुद्रा बदल गई, त्यौरियाँ चढ गई, और अब क्या किया जाय ऐसा भाव उसके चेहरे पर दिखाई देने लगा। उसका बदला हुआ चेहरा देखकर मैंने सोचा कि बस, अब बाजी मार दी। अब स्वय वह मुझे सब कुछ बता देगा। मन-ही-मन मै खुश हो रही थी।

तभी त्यौरियाँ चढाकर, ओठ चबाते हुए उसने कहा, "माँ की इस बीमार अवस्था मे क्या तुम उसके पास जाकर चुगली खाओगी ? जाओ, जाकर कह दो, किन्तु इस बात को न भूलना कि जैसे ही तुमने जाकर माँ से कहा, मै सीधा दादाजी के पास जाकर कह दूँगा कि यह पत्र तुम्हे कैसे मिला था और तुमने किस प्रकार इसे छिपाकर रखा था। परिणाम क्या होगा, सो समझ लो !"

यह सुनकर मै सहम गई। मेरा अन्तिम उपाय निरर्थक रहा। इस उपाय से अपने ही दाँतो से उँगलियाँ कटती देखकर सिवाय रोते रहने के अब दूसरा चारा नही था। रोने मे भी धोखा था। किसी ने देख लिया, क्यो रोती है पूछा तो सच बताना होगा। यदि कुछ बहाना बनाया तो भैया सब पोल खोल देगा। इस विचार से मै अस्वस्थ हो गई। क्रोध से पागल होकर मै जोर से चिलाई—"भैया टैया लाल बटैया—दुष्ट। तू तो एक बार दादाजी के हाथो मेरी जान ले ले—" इतना कहकर मैने उसकी बाँह मे जोर से काट लिया और वहाँ से भाग गई। मैने कितनी जोर से काटा था इसे तो मेरे दाँत और उसकी बाँह ही जान सकती है। वहाँ से भागकर मै सीधी कुशी के घर जा पहुँची। उस दिन के लडाई के बाद मै आज तक उसके घर नही गई थी। किन्तु इस समय और कोई मार्ग दिखाई नही दिया। घर मे बैठना सुरक्षित नही था। प्रतिशोध लेने के लिए भैया पीछे भागकर आयगा अथवा दादाजी को सब हाल सुनाकर हड्डी-पसली एक करवा देगा, इसका मुझे अन्दाज नही लग रहा था। मै भागकर कुशी के घर जा रही थी। सामने ही दरवाजे मे बनी का भाई घोडया खडा था। मुझे दूर से आती देखकर, मुँह बनाकर, हाथ नचाकर उसने कहा, "आ गई बेशर्म की बला ? शायद मेरी दुल्हन बनने आई हो ?" मैं पहले ही गुस्से से आग-बबूला हो रही थी और फिर भैया को काटकर आई थी, उसका भी मुझे तैश आ रहा था। फिर कहना ही क्या था। "मेरा अँगूठा होगा तेरी दुल्हन—" ऐसा कहकर मै उस पर झपट पडी। किन्तु वह झट से भीतर चला गया और जोर से दरवाजे के दोनो पल्ले बन्द कर दिए। उसका दरवाजा बन्द करना और मेरा दरवाजे की चौखट पर हाथ रखना एक साथ होने से मेरे हाथ की चमडी दरवाजे की सध मे फँस गई। वेदना के मारे मै जोर से चिल्ला रही थी, किन्तु बदमाश ने दरवाजा नही खोला। खिडकी मे झाँककर वह

तमाशा देख रहा था। वेदना से मेरे प्राण व्याकुल हो रहे थे। जब मै और जोर से चिल्लाई तब आकर कुशी ने दरवाजा खोला। वह दुष्ट भाग गया। मेरा हाथ नीला पड गया। हाथ की वेदना असह्य हो रही थी, किन्तु मुझे अधिक दु ख इस बात का था कि वह बेशर्म घोडया तमाशा देख रहा था। मैने कुशी को सब हाल सुनाकर कहा कि यदि वह दुष्ट मुझे मिल जाय तो उसे इतने जोर से काटूँगी कि उसे छटी का दूध याद आ जायगा। तभी वह दुष्ट बनू वहाँ आ गई। मुझे जोर से धक्का मारकर उसने कहा, "काट तो, देखूँ कैसे काटती है ? यह ले तेरे सामने खडा है।" बनका वह चडिका अवतार देखकर मै सहम गई। मुझे जो तैश आ रहा था वह काफूर हो गया। मै मान गई कि इन लोगो के सामने अपना कोई वश नही चल सकता। वह वाहियात लडका अपनी बहन की आड मे खडा कह रहा था, "इस प्रकार दूल्हे को काटने वाली दुल्हन तो मैने कही नही देखी।"

उसकी वाहियात बकवास सुनकर शरीर मे आग-सी लग रही थी। किन्तु मै अकेली उन लोगो के सामने क्या कर सकती थी। मै घर लौट आई। वह चिढा रहा था—इस प्रकार उस दिन हर जगह मेरी फजीहत हो रही थी। वह दिन बडे कष्ट से बीता था। दु ख मे सुख केवल इतना ही था कि भैया ने दादाजी से कुछ नही कहा था, जिसका मुझे अत्यधिक भय था। केवल उसने मेरे साथ बात-चीत करना बन्द कर दिया था और स्वय वह बहुत उदास हो रहा था।

१४

गत परिच्छेद मे वर्णित घटनाओ को हुए एक महीना बीत चुका था। उस पत्र में क्या लिखा था इसे आखिर तक मैं नही जान सकी। उस दिन से भैया पर

जो उदासी छाई थी वह अब तक वैसी ही थी। दो-चार दिन तक उसने मेरे साथ बातचीत नही की थी, किन्तु फिर कुछ बोलने लगा था। न जाने क्यो, उस दिन से उसके स्वभाव की चचलता जाती रही थी और उसमे गभीरता आ गई थी। मेरे साथ वह पूर्ववत् हँसता-खेलता नही था, हर समय पढने लिखने मे व्यस्त रहा करता था। शेष समय वह माँ के आस-पास रहने, उसकी सेवा-सुश्रूषा करने और उसका मन बहलाने मे बिताया करता था। उसका मन अपनी ओर मोडकर उसे पूर्ववत् हास्य-विनोद के लिए प्रवृत्त करने का मैंने बहुतेरा प्रयत्न किया। यहाँ तक कि एक दिन आँखो मे आँसू लाकर मैंने उसके पैर पकडते हुए कहा, "भैया उस दिन मैने तुम्हे काटा था इसलिए इतने नाराज हो गए ? मुझे क्षमा कर दो भैया—मै शपथपूर्वक वचन देती हूँ कि फिर कभी ऐसा नही करूँगी।"

मै हमेशा भैया से लडती-झगडती थी, फिर भी उसकी जरा-सी अनुपस्थिति मुझे अस्वस्थ कर देती थी। अबकी बार एक महीना हो चुका था मेरे प्रति उसका मन उदासीन होने से खेल आदि मे मेरा मन नही लग रहा था। बनी के उस घर मे होने से मै कुशी के घर भी नही जा सकती थी।

उपरोक्त कथनानुसार एक दिन जब उसके पैर पकडकर मै रोने लगी तब किसी वृद्ध-जैसा हाथ मेरी पीठ पर फेरते हुए उसने कहा, "मेरी उदासी का कारण तुम्हारा उस दिन का काटना नही है। इसका क्या कारण है इसे तुम-जैसी अबोध बालिका नही समझ सकती, फिर मुझे पढाई भी करनी पडती है, इस कारण अपने ही कार्य मे व्यस्त रहता हूँ।"

"वाह भैया, क्या तुम्हारा यह खयाल है कि मै बिलकुल नासमझ हूँ ? मैं सब समझ रही हूँ। उस पत्र मे अवश्य ही पिताजी के बारे मे कुछ लिखा था और इसी कारण शायद तुम.."

मैं इतना ही कह पाई थी कि भैया का चेहरा फक हो गया और वह वहाँ से चला गया। मैं अपनी मूर्खता और उसमे जो थोडी-बहुत सूझ शामिल थी उसके अनुसार अपने मन मे आश्चर्य करती बैठी रही।

इस प्रकार और भी कुछ समय बीत गया। पिताजी की ओर से जो पत्र आया करते थे उन्हे केवल दादाजी पढ लिया करते थे। पत्र मे क्या लिखा है इसका कभी वे उल्लेख नही करते थे। किसी के पूछने पर केवल इतना ही कह

देते थे कि सब कुशल है। कुछ दिनो बाद एक ऐसा पत्र आया था जिसे पढकर वे पिताजी के पास जाने की व्यवस्था मे लग गए थे। वे अकेले ही जा रहे थे। भैया ने साथ जाने के लिए बहुतेरा कहा, किन्तु उन्होने मना कर दिया। वे अकेले ही चले गए। भैया जरा-सा मुँह लेकर बैठा रहा। मैंने देखा कि वह एकान्त मे बैठकर रो रहा है। मैं उसके पास गई और उसे रोता देखकर उसके गले मे बाँहे डालते हुए मैने कहा, "भैया, अकेले यहाँ बैठकर तुम क्यो रो रहे हो ? क्या बात है, जरा मुझे भी तो बताओ !"

मेरे शब्द सुनकर वह सम्हल गया—अपनी आँखो को पोछकर गम्भीर स्वर मे उसने कहा, "बहन, तुम्हे किस तरह बताया जा सकता है ? यही अच्छा है कि अभी तुम नासमझ रहो !" इतना कहकर वह वहाँ से चला गया। शायद उसने सोचा होगा कि इस लडकी की खुशामद से पिघलकर कोई बात मुँह से न निकल जाय।

माँ की प्रकृति मे दिन-प्रतिदिन सुधार हो रहा था या बिगाड, इसे मैं नही समझ पा रही थी। उसका बुखार कम होता जा रहा था, किन्तु क्षीणता बढती जा रही थी। उससे अन्न नही खाया जाता था। फिर भी क्रमश वह ठीक होती जा रही थी। कुछ ही दिनो मे बिस्तरे से उठकर यहाँ-वहाँ हिलने-डुलने की शक्ति उसमे आ गई थी। उसके हाथ-पैर सरकडे-जैसे हो रहे थे। दादी को मैने कहते हुए सुना था कि माँ के जीवन का एक महान् सकट टल गया। मुझे विश्वास हो गया कि अब धोखा नही रहा। माँ की उस बीमारी मे भैया की तरह माँ के पास मैं अधिक समय तक नही बैठ पाती थी, क्योकि सुन्दरी को खिलाने की जिम्मेवारी मुझ पर थी। माँ की बीमारी मे भी सुन्दरी उसका दूध पीती थी। आखिर एक दिन वैद्यजी ने कहा कि इस लडकी का दूध पीना बद नही किया गया तो मेरी दवा का कोई परिणाम नही होगा। लडकी को दूध पिलाना बद करो या फिर मेरी दवा लेना बद कर दो ! वैद्यजी के कहने पर सुन्दरी का दूध पीना छुडाने का निश्चय किया गया। जहाँ तक बन सके उसे माँ से दूर रखा जाता था। उसे खिलाने, सम्हालने और आवश्यकतानुसार गाय का दूध पिलाने आदि का कार्य मेरे जिम्मे रहा। इतनी बडी हो जाने पर भी वह छोकरी दूध पीने के लिए छटपटाती रहती थी। उसे भुलावा देने के

लिए कई साधन जुटाने पडते थे। आखिर उसका दूध छुडा दिया गया—दूध छुडाने पर माँ की प्रकृति मे सुधार हुआ है, ऐसा वैद्यजी का कहना था।

दादाजी को गए बहुत दिन हो गए थे। कुशल-समाचार के उनकी ओर से दो-चार पत्र आ गए थे। वातावरण शान्त मालूम हो रहा था। भैया की उदासी भी कुछ कम होती दिखाई दे रही थी। क्योकि वह कुछ-कुछ हँसता-बोलता था और मेरे साथ खेलने लग गया था। कुशी के घर से वह दुष्ट बनू, धोडया और उसकी छोटी बहन चले गए थे। उन लोगो के जाने से कुशी के साथ मेरी पूर्ववत् मित्रता हो गई थी। यहाँ तक कि कुशी स्वय उन लोगो को बुरा कहती और मेरी तरीफ किया करती थी। मुझे इससे अब सन्तोष था। सुन्दरी को लेकर मैं चाहे जब कुशी के घर चली जाती और मनमाना खेल खेलकर अपना दिल बहलाया करती थी। कुशी का घर बहुत बडा था और वह अपनी माँ की लाडली थी, इसलिए हमारे खेल मे किसी प्रकार की बाधा नही आती थी।

इस प्रकार समय कुछ खुशी से बीत रहा था। एक दिन सध्या के समय सुन्दरी को लेकर मै आँगन मे 'चाँई माँई, चक्कर माँई' खेल रही थी, तभी बहुत देर से कही बाहर गए हुए भैया को मैने घर लौटते देखा। सुन्दरी को उसकी ओर बढाते हुए मैने कहा, "भैया, अब जरा तुम इसे खिलाओ ना, मै कब से ·" मैंने उसकी ओर देखा, उसकी सूरत रुआसी हो रही थी, देखकर मुझे डर लगा। वह मेरे पास से कब चला गया इसका भी मुझे भान नही रहा। मैं छोटी थी किन्तु भैया की सूरत देखकर जान गई थी कि अवश्य कोई बुरा समाचार है। भैया बाहर जाते समय प्रसन्न चित्त था, फिर लौटते समय उसकी सूरत ऐसी क्यो है—कारण जानने के लिए मै उत्सुक हो उठी थी। मैं जानती थी कि भैया से पूछने पर वह नही बतायगा। किन्तु कुछ विशेष बात होने पर वह घर मे अवश्य किसी से कहेगा, यह सोचकर मैं उसके पीछे घर मे चली गई। वह सीधा जाकर माँ के पास बैठ गया। शायद उसका म्लान मुख माँ ने नही देखा, यदि देख लेती तो अवश्य पूछ-ताछ करती। दोनो मौन बैठे थे।

दूसरे दिन एक तरफ ले जाकर मैंने पूछ-ताछ की, किन्तु इधर-उधर की बातें बनाकर वह चला गया।

इस घटना के आठ दिन पश्चात् दादाजी लौटकर घर आ गए। वे जिस दिन घर आए थे घर मे उदासी छाई थी। दादाजी के साथ माँ का कुछ सम्भाषण हुआ था, जिसके बाद वह कुछ प्रसन्न-सी मालूम हुई। भैया भी उस दिन अन्य दिनो की अपेक्षा कुछ अधिक खुश मालूम होता था।

डेढ-दो महीने और बीत गए। इस बीच पिताजी की ओर से एक-दो कुशल-समाचार-सूचक पत्र भी आए थे। माँ के स्वास्थ्य मे विशेष सुधार नही था। ज्वर नही आता था, फिर भी क्षीणता बढ गई थी और शरीर का रग फीका पड गया था। इसी समय पिताजी की ओर से एक पत्र आया, जिसमे सूचित किया गया था, कि "सब लोगो को लेकर पूना मे रहने का विचार निश्चित किया है। वहाँ भैया की पढाई की व्यवस्था अच्छी होगी और सभी बातो का सुभीता होगा। माँ की दवा-दारू के लिए भी पूना अधिक उपयुक्त होगा।"

आठ दिन पश्चात् पिताजी हम लोगो को ले जाने के लिए गाँव आए और उनके साथ हम लोग पूना जाकर रहने लगे।

१५

पूना शहर के सदाशिव पेठ नामक मुहल्ले मे जो कर्वे का बाडा (मकान) है, उसमे हम लोग किराये पर रहने लगे थे। इसी बाडे के एक भाग मे दूसरा परिवार रहता था। वे महाशय किसी दफ्तर मे कर्मचारी थे। उनके परिवार में उनकी माता, पत्नी और दो बच्चे थे। लडका पाँच वर्ष का था और लडकी मेरी ही उम्र की थी। उसके हाथो मे नये कगन पाटले थे और हल्दी की झाँई थी, जो अभी उसके शरीर से पूर्ण लुप्त नही हो पाई थी। इससे अन्दाज किया जा सकता था कि उसका विवाह हुए अधिक दिन नही बीते है। मेरी

जीवनी से इस लडकी का कुछ सम्बन्ध होने से उसके बारे मे आगे चलकर बहुत-कुछ लिखना होगा। उस लडकी का विवाह हुआ था इसका उल्लेख इसलिए किया गया कि उसे देखकर दादी का मन (हम लोगो के साथ दादी भी पूना आई थी) मेरे विवाह के लिए फिर अधीर हो उठा था। पूना आने के बाद दो महीने तक दादी चुप थी, किन्तु फिर उससे नही रहा गया। उसने पिताजी के सम्मुख मेरे विवाह का प्रस्ताव रखा। पहले तो पिताजी ने हाँ, नही, अभी क्या आवश्यकता है आदि कहकर टाल-टूल कर दी थी, किन्तु अन्त मे उन्होने कहा, "अच्छा तो अब मैं किसी अच्छे से वर की खोज करूँगा।" पिताजी की बात सुनकर दादी को बडी खुशी हुई थी। और अब छिपाने की क्या आवश्यकता है—किन्तु यह सुनकर मेरा भी समाधान हुआ था। दुर्गी जो मेरी ही उम्र की थी, उसका विवाह हो गया जानकर, अब अपना कब होगा ऐसा विचार मेरे मन मे आना स्वाभाविक था। मैं पिताजी की बात सुनकर खुश हो गई थी। अब लडके वाले मुझे देखने आयँगे, फिर 'बेटी, तुम्हारा क्या नाम है,' ऐसा पूछेगे, गर्दन नीचे झुका कर बिलकुल धीमे स्वर मे जैसे किसी के कान मे फुसफुसाहट कर रही हूँ, मैं उत्तर दूँगी 'यमुना', फिर अपने भाई का नाम बताऊँगी। साराश मे, वे जो कुछ पूछेगे उसका उत्तर दूँगी और जब वहाँ से जाने के लिए कहेगे तो दरवाजे की आड मे खडी रहकर उनकी बातचीत सुना करूँगी। इस प्रकार के अनेकानेक विचार—सन्तोषप्रद विचार मेरे मन मे आ रहे थे। इसके पहले एक बार मुझे देखने के लिए आए थे। किन्तु उस समय जिस मात्रा मे लज्जाशीलता का अभिनय किया जाना आवश्यक था उतना मैं नही कर पाई थी और उसके लिए मुझे दादी ने बहुत डाँटा था।

पिताजी की सहमति प्राप्त हो जाने से दादी ने प्रयत्न करना आरम्भ कर दिया था। तदनुसार आज दोपहर मे एक महाशय मुझे देखने के लिए आ रहे थे इसलिए स्वय दादी और दुर्गी द्वारा मुझे पाठ पढाए जा रहे थे कि उनके सामने मुझे कैसे बैठना होगा, कहाँ देखना होगा और उनके प्रश्नो का उत्तर किस प्रकार देना होगा। दो बार तो मुझसे प्रत्यक्ष करवा लिया गया था। दुर्गी मुझे देखने के लिए आने वाले महाशय के रूप मे सामने बैठ गई थी और कई प्रकार के प्रश्न मुझसे पूछे थे। उसे इस बात का पर्याप्त अनुभव था और वह

भी ताजा था, इसलिए उसकी सीख मेरे लिए उपयुक्त हो सकती थी। मैं माँ की सोने की हँसली, ठुस्सी आदि आभूषणो को धारण करके तथा कघी, चोटी, काजल, बिन्दी आदि से अपने को सजा कर आने वाले महाशय की राह देखती बैठी थी। पिताजी अपनी दोपहर की नीद से उठ बैठे थे। सीढियो पर किसी के पैरो की आहट पाते ही दादी मेरे नाम से पुकारती और मैं झट दुर्गी के घर भागने की तैयारी करती। इस प्रकार हम लोगो की पूर्ण तैयारी होने पर उन महाशय का देखने के लिए न आना नि सन्देह लज्जास्पद ही था। वे नही आए। दादी निराश हो गई। अधूरी नीद से उठने के लिए पिताजी ने दादी को ताने दिए। दादी ने भी गुस्से मे आकर निश्चय कर लिया था कि भविष्य मे फिर कभी उन महाशय को लडकी नही दिखाई जायगी। मैं भी निराश हो गई थी। स्वय अपने-आपको सजाने मे मुझे बहुत श्रम करना पडा था। चोटी-बाल कसकर बाँधे जाने से सिर मे हल्का-सा दर्द हो रहा था। किन्तु जब तक देखने वाले महाशय के आने की आशा थी तब तक उस दर्द को आसानी से सहा गया था, किन्तु जब उनके आने की कोई आशा न रही तो मेरा सिर-दर्द और दादी का गुस्सा बढता गया। दादी बडबडा रही थी, जब आना ही नही था तो सन्देशा क्यो भेजा ? कोई पैर पडने तो गया नही था—आदि। दादी की बातो की प्रतिध्वनि मेरे मन मे भी उठ रही थी। शाम को पिताजी के साथ दादी का जो सभाषण हुआ था उसका साराश निम्नानुसार था—

दादी तुलसी बाग मे राम का दर्शन करने गई थी। वहाँ किसी नव परिचित स्त्री ने दादी से कहा था, 'मेरे भानजे का एक भतीजा विवाह के लिए योग्य वर है। उसे यदि अपनी नातिन ब्याहना चाहो तो सोच लो ! लडका होशियार है, उसका काका सवा सौ रुपए वेतन पाता है। कल इतवार है, तुम्हारी इच्छा हो तो कल मैं उन्हे लडकी को देखने के लिए तुम्हारे घर भेज दूँगी। उस स्त्री ने सहज भाव से कहा था। किन्तु दादी ने इसे निश्चयात्मक मानकर चारो तरफ ढिढोरा पिटवा दिया था कि मामी के हाथ सन्देशा आया है कि वे आज लडकी को देखने के लिए आयँगे, और उनका वेतन साढे-तीन सौ रुपए है। कुछ दिनो बाद पिताजी को मालूम हुआ था कि वे महाशय केवल ७५ रुपए वेतन पाते है और लडका उनके चचेरे भाई का था, जिसे पढाई के

लिए उन्होने आश्रय दिया था। परमात्मा की दया से आगे चलकर मुझे कई लोग देखने के लिए आए थे और मेरी साज-शृङ्गार करने और लजाने-शरमाने की इच्छा पूर्ण हो गई थी।

१६

न जाने क्यो, मेरा मन कह रहा था कि जिस दिन से हम लोग पूना आए, उस दिन से हमारे सुखपूर्ण जीवन की इतिश्री-सी होती दिखाई दे रही है। इस परिच्छेद को आरम्भ करते ही मेरे मन मे ऐसे विचार आने का मुख्य कारण माँ की तबियत थी। पूना आने के बाद दो-तीन महीने तक हम लोगो ने समझा था कि माँ की हालत सुधर रही है, किन्तु ऐसा नही था। उसके शरीर मे जीर्ण ज्वर रहता था। उसकी ओर उपेक्षा हो जाने से अथवा अन्य किसी कारण वश उसमे पूर्ववत् शान्ति नही रही थी। इतना ही नही दिन-प्रतिदिन उसके मन मे विचार आता रहता था कि कुछ ही दिनो मे उसकी जीवन-यात्रा समाप्त होने को है।

माँ दिन-प्रतिदिन क्षीण होती जा रही थी और साथ ही वह पेट से भी थी। पेट से होने के कारण उसे कै हुआ करती थी। वह बहुत त्रस्त थी और उससे कुछ खाया भी नही जाता था। उसकी नीद बहुत कम हो गई थी। सुन्दरी भी उसे बहुत तग किया करती थी। इतने दिनो से उसे दादी का सह-वास था, किन्तु दादी के पास वह बहुत देर तक नही ठहरती थी। पिताजी को शायद अब कोई काम नही था, क्योकि उन्हे दफ्तर जाते नही देखा गया। क्यो नही जाते थे इसका कारण मुझे उस समय अज्ञात था—इसलिए इस समय उसके बारे मे कुछ न लिखना ही ठीक होगा। यथा समय आगे चलकर लिखा जायगा।

सुन्दरी केवल मेरे पास रहती थी, किन्तु मै तो पूरी खिलाडी थी। मैं उसे कुछ देर तक यहॉ-वहॉ लेकर घूमती और जब स्वय मुझे खेलने की इच्छा होती तो उसे मॉ के पास पटककर मैं पडौस मे भाग जाती थी। आगे चलकर मुझे अपने इस बर्ताव के लिए बहुत पश्चात्ताप हुआ था। कितना अच्छा होता यदि मै यह सोच सकती कि वह लडकी माँ को कितना परेशान करती है। रुग्ण और चिन्ताग्रस्त मॉ की अवस्था सुन्दरी के कारण और भी शोचनीय हो गई थी। किन्तु यह मेरा सौभाग्य था कि उस गुणवती मॉ के कारण थोडे ही दिनो मे मैं सम्हल गई और मॉ मेरा कुछ उपयोग कर सकी।

एक दिन दोपहर को, कोई तीन बजे का समय होगा, घर मे सन्नाटा था। पिताजी अभी-अभी बाहर गए थे। दादी भी सुन्दरी को लेकर किसी रिश्तेदार के घर गई थी। भैया स्कूल गया था। केवल मॉ घर मे अकेली बैठी थी। ऐसे समय मैं घर क्यो रहती, किन्तु पडोस की दुर्गी अपने ससुराल गई थी, इस कारण अन्य कोई चारा न होने से मैं घर मे ही अपने खेल की वस्तुओ की उठा-धरी करने मे व्यस्त थी। तभी मुझे आभास हुआ कि माँ जिस कमरे मे बैठी थी वहाँ कोई रो रहा है। झट से मै उस कमरे मे चली गई। वहाँ जाकर मैंने देखा कि बिस्तरे पर पडी मॉ मेरे और दादी के लिए चोलियॉ सी रही थी, कपडे के टुकडे बिखरे पडे थे, सुई-डोरे की गुडी खुली पडी थी, सुई गुडी मे चुभोकर रख दी गई थी। क्या बात है, मेरी समझ मे नही आ रही थी। कुछ देर तक मैं दरवाजे मे खडी रही। अब रोने का स्वर सुनाई नही देता था फिर भी लम्बी सॉसो से रोने का पता चल सकता था। उसके समीप जाकर मैने पुकारा, "मॉ"। इसी समय मेरी दृष्टि उसके बालो के जूडे की ओर गई। बीमारी मे वह बालो को बहुत कम सॅवारती थी। जूडे मे एक सुई खुसी थी, मेरी पुकार सुनकर उसने मुडकर ज्यो ही मेरी ओर देखा त्यो ही उस सुई को देख लिया। अच्छा हुआ, नही तो वह सुई उसकी गर्दन मे चुभ जाती। मेरा खयाल है कि दुख का उबाल आते ही बिस्तरे पर लोटने के लिए जल्दी मे उठते समय उसने हाथ की सुई जूडे मे खोस ली थी। भाग्य से मेरी दृष्टि सुई पर पड जाने से सकट टल गया। सुई निकालकर मैंने डोरे के गिट्टे मे उसे खोस दिया। यह करते हुए मैने कहा, "मा, तुम्हे क्या हो गया है ? तुम क्यो रो रही हो ?"

मॉ ने मेरा हाथ पकड कर अपने पास खीचते हुए कहा, "बेटी, अब तेरा

क्या हाल होगा ?" यह कहते हुए उसकी आँखो से आँसू लुढककर मेरे गाल पर गिर पडे। मै भी रोने लगी और उसकी बगल मे छिप गई। मुझे जोर से जकडकर वह कुछ देर तक मौन बैठी रही। यह सब देखकर मुझे और भी रोना आ गया। तब प्यार से मेरे चेहरे पर हाथ फेरते हुए माँ ने कहा, "बेटी यमुना, मेरे पश्चात् तेरा क्या हाल होगा? गणू लडका है और उसमे अब समझ भी आ गई है। देखती हो वह आजकल कैसे……" इतना कहकर वह रुक गई। कुछ देर बाद मेरी आँखे पोछकर उसने कहा, "यमे, अब तू छोटी नही है। तुझे सब-कुछ समझना चाहिए, लेकिन तू तो कुछ समझती ही नही, अब इसे क्या किया जाय। घर का काम-काज तुझे सुहाता नही, फिर ससुराल मे तेरा क्या हाल होगा? कुछ लिखने-पढने का विचार भी तेरे मन मे नहीं आता। यदि कल को मेरी अन्तिम साँस घुट जाय तो मुझे और किसी की चिन्ता नही है। गणू अपने हित की बात समझ सकता है, और यदि वह पूरी तरह से न भी समझता हो तो उसे किसी दूसरे घर-गृहस्थी बसाने नही जाना है। किन्तु तुझे तो दूसरे के घर जाना है ना? अब तेरे लिए क्या किया जाय? सोचती हूँ कि तुम्हारे हित की दो बाते तुम्हे सिखा दूँ, किन्तु तुम तो मुझे हवा भी नहीं लगने देती। जरा सुन्दरी को खिलाना होता है, तो वह भी तुमसे नही बनता। बेटी, यह अच्छा नही है। अपनी स्त्री जाति के लिए यह अच्छा नही है। इससे निभाव नही होगा। तुम खेला करो, खेलने के लिए कौन मना करता है। लेकिन दिन-भर खेल-कूद मे ही बिता दिया तो फिर पढना-लिखना कब सीखोगी? तुमसे कई बार कहा कि स्कूल जाया करो, तो तुम दादी के पास जाकर रोती हो। खैर, स्कूल न सही, मेरे पास बैठकर ही चार अक्षर सीख लो, कुछ सीना-पिरोना सीख लो। अरे, ये दिन इसी तरह बीत गए और कल को ससुराल चली गई तो क्या कुछ सीख पाओगी? 'क्या माँ-बाप ने यही सिखाया?' ऐसा कहकर जब ससुराल के लोग हमारा उद्धार करेंगे ··" वह और भी कुछ कहना चाहती थी कि मैंने एकदम उसके गले मे बाँहे डाल दी और हिचकियाँ बाँधकर रोने लगी। आज तक माँ ने मुझे इस प्रकार कभी नही कहा था और आज भी जो कह रही थी वह नाराज होकर नही, केवल मन उमड आने से ही कह रही थी। उसके मन मे क्या विचार चल रहे थे इसे केवल भगवान् ही जान सकता है। किन्तु उस समय के उसके भाषण का मेरे मन पर विलक्षण प्रभाव

हुआ था। आज तक मैंने माँ का कहा नही माना था, हमेशा उसकी मर्जी के विरुद्ध बर्ताव किया करती थी, इस बात का मुझे बहुत दु ख हो रहा था। भविष्य मे खेल-कूद बन्द करके हमेशा माँ के पास बैठी रहना और उसकी सीख के अनुसार अक्षरश बर्ताव करने का मैने दृढ निश्चय कर लिया।

मनुष्य द्वारा किए गए निश्चयो मे से बहुत-थोडे उसके हाथो अन्तिम अवस्था तक पहुँच पाते है। यदि यह कहा जाय कि बचपन मे निश्चय को कार्यान्वित करना असम्भव-सा होता है तो अतिशयोक्ति नही होगी। जब कोई नाराज हो जाता है तो उस समय तक के लिए दु खी होकर फिर ऐसी गलती न करने का बचपन मे निश्चय किया जाता है किन्तु वास्तव मे ये निश्चय कहाँ तक कार्यान्वित होते है इसका हिसाब लगाया जाय तो व्यर्थ मे किये गए निश्चयो की सख्या देखकर हमे हँसी आये बिना नही रहेगी।

उपरोक्तानुसार केवल मन-ही-मन निश्चय करके मुझसे नही रहा गया। मैंने तत्काल उसे माँ को सुना दिया और जैसा कहा था तदनुसार बर्ताव करने का मन-ही-मन निश्चय कर लिया। विशेषत पढाई विषयक मेरा दृढ निश्चय था।

कहना न होगा कि मन मे किये गए सब निश्चयो का वृत्त माँ को सुना देने से मेरे मन को समाधान हुआ था। उस दिन किये गए निश्चय बहुत अच्छे थे। एक निश्चय तो इतना अच्छा था कि केवल उसे कर लेने से ही मुझे आनन्द हो रहा था। उसे पूर्ण होता देखकर अथवा उसकी प्रगति देखकर तो मेरा मन फूला नही समाता था। वह निश्चय था की माँ कि हर बात को मानना, उसकी किसी आज्ञा का उल्लघन न करना। पहले भी एक बार मैंने और भैया ने ऐसा ही निश्चय किया था। भैया ने उसका पूर्ण पालन किया था, किन्तु मैं उसे भूल गई थी। उसी समय से भैया का बर्ताव किसी प्रौढ व्यक्ति-जैसा हो रहा था। इन दिनो वह हमारे साथ खेला नही करता था, सदैव अपनी पढाई मे व्यस्त रहता था। मैं जब स्वय उसके पास जाकर 'मुझे गुडिया बना दो,' अथवा 'कागज का डिब्बा अथवा नाव बना दो' कहकर उसे परेशान किया करती थी तब उतना ही समय वह देता और फिर अपने काम मे जुट जाता था। माँ के पास भी वह बहुत देर तक बैठा रहता था। भैया का

अनुकरण करने का मैने निश्चय कर लिया और तदनुसार बर्ताव करना भी आरम्भ कर दिया।

दूसरे ही दिन भैया के पीछे पडकर मैने एक पहली पुस्तक मॅगवा ली और दोपहर मे मॉ के पास बैठकर पढना शुरू कर दिया। मॉ अथवा दादी के किसी काम को करने के लिए कहने पर आनाकानी किये बिना मै यथा सम्भव उसे करने मे लग जाती थी। उस दिन से मेरे स्वभाव मे बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था। इसका यह आशय नही कि मैने खेलना-कूदना बिलकुल बन्द कर दिया था। लडकियो के लिए जितना आवश्यक था उतना मै अवश्य खेला करती थी, किन्तु पहले मै खेलने के अतिरिक्त और कुछ नही करती थी, वह अवस्था अब नही रही। इस नवीन क्रम से दिन-प्रतिदिन मेरे मन को शान्ति मिल रही थी। जिस व्यक्ति से हमे प्रेम होता है उसे सुखी देखकर हमे भी सुख होता है। उस सुख का अनुभव मुझे उस समय प्रथम बार हुआ था।

मेरे बर्ताव मे हुआ परिवर्तन देखकर माँ तथा घर के सब लोगो को बहुत सतोष हुआ। इसे मैने उन लोगो के आपसी सम्भाषण से जान लिया था। मुझे घर का काम-काज करते देखकर—विशेषत किसी कार्य को विशेष सफाई से, उसकी इच्छा के अनुसार करते देखकर दादी फूली नही समाती थी। उस दिन वह मेरी दीठ निकाले बिना नही रहती थी। और फिर मुझे भी बहुत सतोष होता था। इस सतोष मे क्या सुख होता है इसे अनुभव से ही जाना जा सकता है। दिन-भर खेल-कूद करने, ऊधम मचाने अथवा गुडियो के ब्याह-जैसे खेल खेलने से जो सतोष नही होता वह सतोष बडे लोगो की इच्छा के अनुसार कोई काम करने पर सतुष्ट होकर उनके द्वारा की गई सराहना से प्राप्त होता है।

निश्चय किये गए दिन से निश्चय ही मुझमे परिवर्तन हो गया था। इसका यह आशय नही कि आज तक मै एक अल्हड खिलाडी लडकी थी, जो कल से किसी प्रौढ स्त्री जैसी समझ की बाते बताकर गृहस्थी चलाने लगी थी। मैने केवल इतना ही किया था कि अपना अधिकाश समय मॉ के सान्निध्य मे बिताया करती थी। इसके पहले मै भोजन होते ही सीधे पॉव दुर्गी अथवा किसी और पडौसी के घर खेलने के लिए भाग जाया करती थी। मैने अपनी इस आदत को अब त्याग दिया था। जिसे मेरी मॉ-जैसी अपनी माँ के पास

हमेशा बैठने का मौका मिलता हो, की गई गलती को यथा समय सुधारने की सधि प्राप्त होती हो, कब क्या करना चाहिए, किस प्रकार करना चाहिए इसके बारे मे प्रेम पूर्वक किये गए उपदेश को सुनने एव उसका मनन करने का अवसर प्राप्त होता हो, उसका कितना बडा सौभाग्य हो सकता है, इस बात को मैने उस समय जान पाया था। मेरी लघु एव गुरुतर गलती के लिए भी बिलकुल नाराज न होकर, शाति-पूर्वक माँ मेरी उस गलती को सुधार देती थी और उसके बारे मे चार हित की बाते बता दिया करती थी।

मेरी माँ द्वारा समय-समय पर मुझे जो उपदेशामृत प्राप्त हुआ है उसे यदि मै स्मृति पूर्वक लिख दूँ तो एक महान् ग्रथ का निर्माण हो सकता है। मेरी अपनी धारणा है कि ऐसा ग्रथ निरथक नही कहा जा सकता। मेरी छोटी बहनो के लिए वह उपयुक्त सिद्ध होगा, किन्तु मेरी इस जीवनी मे उसे समाविष्ट करने से रस-भग होने की सभावना है इसलिए उसे यहाँ न लिखकर समय-समय पर दृष्टात के रूप मे उसका उल्लेख करना अधिक उपयुक्त होगा।

एक साधारण-सी बात, किन्तु जिसे लेकर माँ ने मुझे जो उपदेश दिया था, उसका एक उदाहरण मै यहाँ दे रही हूँ। इस समय मुझे उसका स्मरण हो रहा है, सम्भव है बाद मे मै उसे भूल जाऊँ।

एक दिन सुबह माँ ने मेरी चोटी गूँथी, मुँह धोकर मैने बिन्दी लगाई और सुखाने के लिए डाला गया लहगा और चोली उठाकर नीचे नहाने के लिए चली गई। उसके बाद कई बार मै माँ के कमरे मे आती-जाती रही। किन्तु माँ के सिरहाने के पास एक समई का दिया कुछ आने-जाने के रास्ते मे ही रहा था और वहाँ पास मे चोटी गूँथने का सामान, जैसे कघी, डिबिया, तेल की बोतल, सीसा आदि, बिखरा पडा था। मै कई बार उस कमरे मे आई और दिये के पास से निकल गई—पास मे पडा हुआ सामान भी एक-दो बार ठुकराया गया, किन्तु दिया उठाकर यथा स्थान रखना अथवा कघी, बोतल आदि उठाकर पिटारी मे रख देना, यह सामान्य बात मेरे ध्यान मे नही आई। दस-पाँच बार वहाँ से निकलने पर भी जब यह बात मेरे ध्यान मे नही आई तब माँ के ध्यान मे यह बात आ गई और उसने मुझे पुकार कर कहा, "यमे, तुम्हारी कघी-चोटी हुए कितना समय हो गया, बता सकती हो ?" मैने कुछ उत्तर नहीं दिया। उसके प्रश्न का आशय मेरी समझ मे नही आ रहा था।

मुझे निरुत्तर होते देखकर उसने कहा, "बेटी सोकर उठते ही दिये को उठाकर उसके स्थान पर रखना चाहिए, यह जरा-सी बात तुम्हारे ध्यान मे नही आई ? अच्छा अब यह बताओ कि सब के बाद बाल गूँथ कर और बिन्दी लगाकर यहाँ से कौन गया था ? तुम ही गई थी ना ? तो यह सामान उठाकर पिटारी मे रखना और पिटारी को जहाँ के तहाँ, उस आले मे रखना, यह काम कौन करेगा ? अरे, ऐसे काम तो हाथो-हाथ किये जाने चाहिएँ। जिसका यह काम होता है उसके ध्यान मे यह बात आनी ही चाहिए। तब से मै देख रही थी कि तुम्हारे ध्यान मे यह बात आती है अथवा नही ? इसीको तो काम की सूझ कहते है। आते-जाते कही कुछ पडा बिखरा हो तो उसे उठाकर यथा स्थान रखना अथवा जिस किसी का हो उसके सुपुर्द करना जरूरी है। नही तो लोग कहते है कि यह लडकी गँवार है। वह देखो, वहाँ सुन्दरी का कुर्ता जमीन पर पडा है। ससुराल मे देवर ननद की कोई ऐसी ही चीज पडी हो तो उसे उठाना-धरना चाहिए, धोने की हो तो उसे धो देना चाहिए। काम के समय जी नही चुराते। जो कोई कुछ करने को कहे अथवा अपने ध्यान मे आ जाय तो उसे चट से कर डालना चाहिए। 'इसे तो काम नही सूझता, यह तो काम से जी चुराती है, निठल्ली है।' ऐसे शब्द सुनने का मौका न आने पाय। अरे, लडकियो के लिए ऐसे काम कोई पर्वत-जैसे थोडे ही होते है। किन्तु इन्हे करने मे यदि गलती की गई तो समझ लो कि फिर कोई ठिकाना नही—"

एक-दो की बात ही क्या, किन्तु ऐसे पचासो प्रसगो को लेकर उस साध्वी ने मुझे मेरे हित की बाते सिखाई थी। दोपहर मे जब माँ मुझे पढाया करती तब किसी प्रसग को लेकर वह उसका उपयोग कर लेती थी। इसका परिणाम यह हुआ कि आगे चलकर मुझे खेलने के लिए जाने की इच्छा भी नही होती थी। एक-दो बार तो ऐसा हुआ था कि दुर्गी मुझे बुलाने आई और मैंने जाने से साफ इन्कार कर दिया।

दादी मे यह विशेषता नही थी। महाभारत की कथाएँ सुनाकर वह मेरा मन बहलाया करती थी। मैं उस समय उन कथाओ को मन बहलाने योग्य ही मानती थी, किन्तु आगे चलकर उन कथाओ पर मेरे जीवन मे बहुत-कुछ उपयोग हुआ था। अस्तु।

पूना आने पर इस प्रकार हमारा कार्यक्रम चल रहा था। माँ का स्वास्थ्य

दिन-पर-दिन गिरता जा रहा था। पिताजी ने वैद्य द्वारा परीक्षा करवाई थी, किन्तु माँ के पेट से होने से प्रसूति के पश्चात् ही कुछ दवा दी जा सकती है, ऐसा वैद्यजी ने कहा। कुछ चाटने-चूटने की दवा दे दी थी। माँ का इस प्रसूति से किस प्रकार छुटकारा होगा, इसकी चिन्ता सब लोगो को हो रही थी। जैसे-जैसे दिन बीत रहे थे उसे गर्भावस्था असह्य होती जा रही थी। इस सम्बन्ध मे माँ ने कभी कुछ नही कहा, किन्तु उसे जो कष्ट हो रहे थे वे स्पष्ट दिखाई दे रहे थे। उसके हाथ-पैर और गालो पर कुछ सूजन मालूम होती थी। उसे देखकर दादी को पिताजी से कहते हुए मैंने सुना था, "समझ मे नही आता कि क्या होगा, किन्तु लक्षण कुछ ठीक नही है।" इस पर लम्बी साँस छोडकर पिताजी ने कहा, "हाँ, जो भाग्य मे लिखा होगा, वही होगा।" पिताजी के मुँह से ऐसे शब्दो का निकलना कुछ आश्चर्यजनक ही था। क्योकि उनका मन बहुत कठोर था। कुछ भी हो किन्तु उनके मुँह से इस प्रकार के दु ख के उद्गार मैंने सुने थे।

दादी और पिताजी का उपरोक्त सम्भाषण सुनकर मैंने भैया को एक तरफ ले जाकर सब सुना दिया। इन दिनो भैया अधिकाधिक उदास होता जा रहा था, किन्तु मेरे साथ दिल खोलकर बाते किया करता था। माँ की तबियत के बारे मे हम दोनो बहुत देकर तक बातचीत करते रहे। मेरी बात सुनकर उसका मुख म्लान हो गया था। सम्भवतः उसका अपना जो विचार था कि माँ अब अधिक समय साथ न देगी, मेरी बात से उसे पुष्टि मिल गई हो।

तात्पर्य यह है कि इस प्रकार माँ की तबियत और घर का हाल था। अब मैं दूसरी बातो की ओर ध्यान देना चाहती हूँ।

१७

इस प्रकार घर की अनेक चिंताओ ने घेर लिया। फिर भी दादी मेरे विवाह के लिए उत्सुक हो रही थी और न जाने क्यो, पिताजी भी उसकी

हॉ-मे-हॉ मिलाया करते थे। पहले उनका मत था कि इतनी छोटी अवस्था मे लडकी का विवाह करना ठीक नही, किन्तु शायद अब उनके मत मे परिवर्तन हो गया था। फिर भी वे कहा करते थे कि बचपन मे विवाह नही होना चाहिए, कम-से-कम विवाह के लिए लडकी की अवस्था १२ वर्ष की तो होनी ही चाहिये। घर पर आये हुए मित्रो के साथ उनका जो सम्भाषण होता रहता था उसे मै सुना करती थी। उनका मत सुनकर उनके किसी मित्र ने कहा था, "जब आपका यह मत है तो आप अपनी लडकी का विवाह करने की क्यो जल्दी मचा रहे है ?" उत्तर मे पिताजी ने कहा, "हमारी माताजी का आग्रह है, वे ही प्रयत्न कर रही है—होना-हवाना तो अभी दूर की बात है।" अस्तु। पिताजी का मत चाहे जो हो, किन्तु फिर भी मेरा विवाह शीघ्र करने के लिए उनके प्रयत्न चल रहे थे। दादी के साथ मैं कभी मन्दिर मे जाती तो वहॉ एकत्रित स्त्री-समाज मे मेरे विवाह के सम्बन्ध मे चर्चा छिडे बिना नही रहती थी।

इसी क्रम मे किसी इतवार के दिन दोपहर के समय हमारे घर दो-तीन पुरुष, एक पद्रह वर्ष की लडकी और एक वृद्ध विधवा स्त्री मुझे देखने के लिए आई थी। ये लोग अचानक आ जाने से दादी कुछ सकपका-सी गई थी। तभी पिताजी ने भैया को पुकारकर कहा, "जरा यमुना को यहॉ लिवा लाओ !" उस समय मेरे मन की जो अवस्था हो रही थी उसे मै ही जानती हूँ। इस सम्बन्ध मे दुर्गी जब मेरी खिल्ली उडाया करती थी तब मै इसे कहा करती थी कि "ऐसे समय मैं कभी नही घबराऊँगी। स्पष्ट-स्पष्ट उत्तर दूँगी।" किन्तु इस समय मै सुध-बुध-सी भूल गई थी। फिर भी वाछित अवसर-प्राप्ति से जो सुख होता है उसका अनुभव भी मै ले रही थी।

भैया को अपनी ओर आते देखकर मै जान-बूझकर पिछवाडे की ओर भाग गई थी। मुझे खोजता हुआ भैया वहॉ आया और उसने कहा, "चलो, तुम्हे देखने के लिए लोग आये है।" तभी दादी की पुकार भी सुनाई दी थी। कुछ देर के लिए 'ऊँ आँ' करके मैने नकली उत्साह का प्रदर्शन किया था। मुझे देखने के लिए आये है इस समाचार को पाकर दुर्गी भी मेरे पास आ गई और मुझे घसीटकर भीतर ले गई। मेरे बाल बिखर रहे थे—दादी ने कघी से उन्हे सँवार दिया। मेरी 'ऊँ आँ' चल ही रही थी, दुर्गी चुटकियॉ ले रही थी—

"ओ री भैंसिया, मुझे कहाँ ले चली !" ('मन मन भावे, मूड हिलावे का मराठी मुहावरा) कोरा लहगा चोली पहनाकर मुझे सजाया गया। दादी ने मेरी ओर दृष्टि फेरकर कहा, "आहा ! कितनी प्यारी है मेरी बिटिया। इसे कौन पसद नही करेगा ? दुर्गा, जरा इसके माथे पर काजल तो लगा दे, नही तो किसी की नजर लग जायगी।" दादी का कहना समाप्त भी नही हो पाया था कि दुर्गा ने मुझे दिठोना लगा दिया। भैया फिर मुझे बुलाने के लिए आया और उसी समय उस विधवा स्त्री ने, जो माँ के पास बैठी थी, दादी को पुकारा। और फिर पिताजी के बैठक के दरवाजे के समीप जाते ही लज्जा से मैं गडी-सी जा रही थी। जब दुर्गी ने आगे बढकर मेरा हाथ पकडकर मुझे घसीटना चाहा तब मैं कमरे मे चली गई। भीतर जाने पर पिताजी ने मुझे अपने पास बुलाया। देखने के लिए जो पुरुष आये थे उनमे से जो सबसे अधिक वृद्ध थे उन्होने मुझे बैठने के लिए कहा। दुर्गी बडी ढीठ थी। वह मेरे समीप खडी हो गई और मुझे ठीक से बैठने के लिए और ऊपर दृष्टि उठाकर देखने के लिए मेरे शरीर को छूकर इशारा करती रही। नीचे बैठने के लिए कहा जाने पर शर्म के मारे मैं कुछ देर तक वैसी ही खडी रही फिर फर्श पर नजर गडाकर मै उकड़ूँ बैठ गई। मानो मुझे देखने के लिए जो लोग आये थे उन्हे केवल मेरा सिर ही देखना था। इतने ही मे एक महाशय ने कहा, "देखूँ, जरा मुँह को ऊपर तो उठाओ !" उनके शब्द सुनकर तो ऊपर देखने की मेरी शक्ति बिलकुल लुप्त हो गई। नीचे गर्दन झुकाकर मैं बैठी रही। मानो फर्श पर कढे हुए फूलो को गिन रही थी। इसी समय दादी के साथ, देखने के लिए आई हुई विधवा स्त्री और लडकी उस कमरे मे आ गई। उस लडकी की ओर देखकर बैठे हुए लोगो मे जो युवक था, उसने कहा, "क्यो चारुबाई, भाभी को देख लिया ? पसन्द है ?" उसके इन शब्दो को सुनकर अपनी भावी ननद को देखने की इच्छा से मैंने तिरछी नजर से उस लडकी की ओर देखा। उस लडकी ने कहा, 'क्या अभी से ये हमारी भावज हो गई ?" यह सुनकर वृद्ध ने कहा, "अच्छा जी—ये बात है ?" इतना कहकर वे स्वय हँसने लगे और फिर उनकी देखा-देखी सभी लोगो का हँसना अपरिहार्य था। वृद्ध ने मुझे फिर ऊपर देखने के लिए कहा और मेरा नाम पूछा। मैंने दबी जबान मे उत्तर दिया, "यमुना" ' किन्तु मुँह ऊपर नही उठाया। तब दुर्गी

ने "यह क्या, जोर से बोलो ना !" कहकर मेरे कधे मे उँगली गडाई। मुझे दुर्गी पर गुस्सा आ रहा था। किन्तु पिताजी और उस वृद्ध ने भी मुझे जोर से बोलने के लिए कहा। बहुत सारी शक्ति सँजोकर मैंने स्पष्ट शब्दो मे अपना नाम बताया। फिर दूसरा प्रश्न पूछा गया कि मेरे भाई-बहन कितने है ? इसका भी मैंने उत्तर दे दिया। एक-दो बार उत्तर देने से अब मेरी हिम्मत बढ रही थी और यदि अब कोई दुबारा ऊपर देखने के लिए कहेगा तो मै अवश्य देख सकूँगी, यह विचार मेरे मन मे आ रहा था तभी युवक ने प्रश्न किया, "तुम कुछ पढना जानती हो ?"

इस प्रश्न को सुनकर मैं सिटपिटा गई। क्या उत्तर दिया जाये इस सोच मे पड गई। 'हाँ' कह दूँ तो मै अभी ठीक से पढ नही पाती थी। 'नही' कह दूँ तो अपने मुँह अपनी बदनामी करनी होगी। किन्तु उस बातूनी दुर्गी ने मुझे उत्तर देने का अवसर ही नही दिया। उसने कहा, "हाँ, इसे तो इतनी अच्छी तरह किताब पढनी आती है कि आप देखते रह जायँगे। लाऊँ कोई किताब उठाकर ? इतना कहकर वह भैया के कमरे मे किताब लाने के लिए भागकर चली गई। मैने आँखे तरेरकर उसकी ओर देखा किन्तु उसने मेरी जरा भी परवाह नही की। मुझे उस पर इतना गुस्सा आ रहा था कि कुछ कहा नही जाता, किन्तु वहाँ बैठी मैं कर ही क्या सकती थी। पिंजरे मे जकडे हुए शेर की तरह मेरी उस समय अवस्था हो रही थी। मेरा गुस्सा किस लिए था ? इसलिए नही कि मैं यह बताना चाहती थी कि मै पढ नही सकती। सच कहा जाय तो दुर्गी का बर्ताव मुझे कुछ अच्छा मालूम हुआ था, किन्तु इस भाव को मै अपने आप से भी छिपाकर रखना चाहती थी, यही इस गुस्से का मर्म था। पिताजी ने तो दुर्गी पर भी मात कर दी। अपनी लडकी की होशियारी का प्रदर्शन करने को उत्सुक्तावश समीप पडा हुआ एक समाचारपत्र मेरे सामने रखकर उन्होने कहा, "हाँ, यह लो, झट से पढकर बताओ।" उस युवक ने समाचारपत्र उठाकर उसमे एक पत्र छपा था, उसे पढने के लिए मुझसे कहा। मैं घबरा गई थी— शरीर पसीने से तर हो रहा था। मेरा तो पहले ही खयाल था कि मैं पढ नही सकूँगी और उस पर यह घबराहट ! इसी समय दुर्गा देवी जी ठुमकती हुई वहाँ आ पहुँची। उसने मेरे सामने एक किनाब पटक दी। उस युवक ने किताब उठा ली और उसके पन्ने पलटकर वह देखता रहा। दुर्गी ने ऊंगली चुभोकर और

पिताजी एव दादी ने "हाँ, झट से पढ दे, इसमे शरमाने की कौन-सी बात है," ऐसा कहकर मुझे परेशान कर दिया। आखिर मैने पढना आरम्भ कर दिया। पिताजी उत्तेजना दे रहे थे, "घबराओ नही, ठीक से पढो।" मेरे दस-बीस पक्तियाँ पढते ही युवक ने मुझे रुकने के लिए कहा। समाचारपत्र को उठाते हुए उसने कहा, "अब बताओ, तुमने क्या पढा ?" उसका प्रश्न सुनते ही साथ मे आई उस वृद्धा ने कहा, "अरे बस रहने दे। क्या उसकी परीक्षा ले रहा है ? पढा लिया यही बहुत है। बेटी, अब तुम जा सकती हो।' यह सुनकर मैने सोचा, 'चलो छुट्टी हुई।' किन्तु तभी उस वृद्धा ने कहा, "बेटी, जरा उठकर खडी हो जाओ !" मै उठकर खडी हो गई। खडी होने के बाद उन्होने सामने के आले से एक कागज उठाकर लाने के लिए मुझसे कहा। मै शरमाती हुई झट से वहाँ चली गई और कागज लाकर उनके सामने रख दिया। कुछ देर तक और पूछ-ताछ करने के बाद वे लोग जाने के लिए तैयार हो गए। माँ ने भीतर से मुझे पुकारकर रोली की डिबिया लाने को कहा। मै डिबिया ले आई। दादी ने मुझे उस लड़की के माथे पर रोली लगाने के लिए कहा। अब तक मै उस लडकी को अच्छी तरह नही देख पाई थी। किन्तु जब मै रोली लगाने के लिए उसके पास गई तो उसका चेहरा देखकर आश्चर्य से दो कदम पीछे हट गई। यदि उस लडकी का कद कुछ छोटा होता तो मै उसे बनी मान लेती, किन्तु बनी से वह कुछ ऊँची-लम्बी थी। दोनो के चेहरे मे बहुत साम्य था। वही चपटी नाक, वही फूले हुए गाल, बडी-बडी उथली आँखें और वही कर्कश आवाज। मेरे उस लडकी के माथे पर रोली लगाने के बाद वे लोग चले गए।

उन लोगो के चले जाने पर फिर हमारे घर मे चर्चा आरम्भ हो गई। "यदि जम जाय तो घर अच्छा है। लडका होशियार है, परीक्षा मे सम्मिलित हो रहा है। एक बात जरूर है कि लडके का बाप नही है। लेकिन यह कोई महत्त्वपूर्ण बात नही है।" इस प्रकार पिताजी और दादी मे बातचीत हो रही थी। माँ ने कुछ नही कहा, वह अपने कमरे मे चली गई। न जाने क्यो, माँ इन दिनो किसी बात मे दखल नही देती थी। माँ के अपने कमरे मे चले जाने के बाद मैं कुछ देर तक वही खडी रही, दादी और पिताजी की बातचीत सुनने के लिए। मेरा मन इस बात को जानना चाहता था कि जो लडकी आई

थी वह बनी की बहन तो नही थी ? क्योकि मेरा मन कह रहा था कि यदि उस घर मे मेरा विवाह हुआ और यह लडकी तथा बनी मेरी ननदे हुई तो निभाव होना बडा कठिन होगा। बनी के साथ मेरा जो झगडा हुआ था उसका स्मरण होते ही मैं अस्वस्थ हो जाती थी। उसी झगडे की नीव पर यदि भविष्य आधारित हो गया तो फिर सुख के लिए विशेष आशा नही की जा सकती। मेरा मन कह रहा था कि बनी से इस लडकी का अवश्य कोई नाता होगा। पिता जी के साथ दादी की जो बातचीत हो रही थी उसमे इस बात का स्पष्टीकरण नही हो पाया। वे कुछ इधर-उधर की बाते कर रहे थे। दादी ने पिताजी से कहा, "जानते हो वह बुढिया कौन थी ?' उत्तर मे पिताजी ने कुछ नही कहा, क्योकि उसी समय उन्हे झपकी आ गई थी। उन्हे नीद लगी देखकर दादी भी वहाँ से उठकर लौटने के लिए चली गई। अब जानकारी मिलने की कोई आशा न रहने पर मै भी दुर्गी के घर चली गई।

मै उस समय बिलकुल अबोध थी, ऐसा नही कहा जा सकता। कुछ-कुछ बातो को मै भली भाँति समझने लग गई थी। विवाह होने की इच्छा तो थी, किन्तु विवाह का वास्तव अर्थ क्या है, गृहस्थी कैसी होती है, किन विपदाओ का सामना करना पडता है आदि बातो का स्पर्श भी मेरे मन को नही हो रहा था। उस समय विवाह का अर्थ मैं केवल इतना ही जानती थी कि बाल्यावस्था मे विवाह होते थे। उस समय महाराष्ट्र मे ये प्रथा प्रचलित थी। अब यह दिखाई नही देता। केवल कौतूहलवश इन्हे किया जाता था। फूलो और मोतियो की मुडावली (सेहरा) बाँधना, माथे पर रोली का लेप लगाकर उस पर चावल चिपकाना (जिसे मलवट भरना कहते है) विवाह-वेदी पर बैठकर होम हवन करना, गौरी-हर की पूजा करना, पान की बीडियाँ काटना, (पान का बीडा बनाकर दूल्हा अपने होठो मे दबाता है और दुल्हन अपने दाँतो से उस बीडे को काट लेती है, इसी प्रकार दुल्हन के मुह का बीडा दूल्हा काट लेता है) सुपारी खोजना, (दूल्हा और दुल्हन अपने शरीर के कपडो मे सुपारी छिपा लेते है और बारी-बारी से उसकी खोज की जाती है) पगत मे एक ही थाली मे दूल्हा-दुल्हन का भोजन के लिए बैठना और फिर एक-दूसरे के मुह मे नामोच्चारण के साथ निवाला दिया जाना, आदि। बाल्यावस्था मे विवाह होते थे, उस समय महाराष्ट्र मे यह प्रथाएँ प्रचलित थी। अब यह दिखाई नही

देता। केवल कौतुहलवश इन्हे किया जाता था। इसके अतिरिक्त और दूसरा विचार मेरे मन मे नही आता था। और मेरी दृढ धारणा है कि जितने विवाह होते है उनमे सौ फीसदी लडकियो के विवाह-विषयक विचार मेरे विचारो से भिन्न नही हो सकते। और हो भी कैसे ? जिस उम्र मे हम बिलकुल ना-समझ होती है उस उम्र मे विवाह और गृहस्थी-जैसे निकट उत्तरदायित्व की हमे क्या कल्पना हो सकती है ? हमे जो विवाह की इच्छा रहती थी उसका कारण केवल इतना ही होता था कि अपनी विवाहित सहेलियो-जैसा मटकने-थिरकने का अवसर हमे कब प्राप्त होगा। इससे अधिक हम क्या सोच सकती है ? अर्थात् इस बात की पुनरुक्ति करने का कारण नहीं कि मुझे मेरा विवाह शीघ्र होने की जो इच्छा थी वह उपरोक्त कारणो से ही थी। किन्तु मुझे देखने के लिए आए हुए लोगो मे मैंने जो "बनी" की प्रतिमा देखी थी तब से मेरा मन कह रहा था कि मुझे उस घर मे न दिया जाय तो अच्छा होगा। शायद दुर्गी इन लोगो को जानती हो तो इसीसे इनके बारे मे पूछ-ताछ करने के लिए मैं दुर्गी के घर चली गई। अपने मन के विचारो को मैं दुर्गी के अतिरिक्त और किसी के सामने व्यक्त भी नही कर सकती थी। भैया से इन लोगो के बारे मे पूछ-ताछ की जा सकती थी, किन्तु उसने जो प्रौढत्व अपनाया था उस कारण उससे ऐसी बाते करने के लिए मन कुछ हिचकता था।

दुर्गी माँ के साथ बैठकर दाल बीन रही थी। मुझे देखते ही दाँत निपोर-कर उसने कहा, "ओ हो, अब तो यमुना बाई का स्वयवर होगा।" उसकी बात मेरी समझ मे नही आई। विवाह के बदले स्वयवर शब्द सुनकर मैं चकरा गई। उसकी बात सुनकर उसकी माँ ने उसे घुडक दिया, किन्तु दुर्गी कब मानने वाली थी। स्वयवर, स्वयवर कहकर वह मेरी खिल्ली उडा रही थी। आखिर उसकी माँ ने कहा, 'अरे बस करो ना! क्या हर समय हँसी करती रहती हो! जाओ, अब दाल थोडी रह गई है, मैं बीन लूँगी। तुम दोनो जाकर खेलो!" काम-काज करने के बारे मे दुर्गी मेरी ही बडी बहन थी। बडी काम चोर थी। किन्तु फिर भी वह अपनी माँ की बहुत लाडली थी। उसकी दादी उसे नही चाहती थी। दादी उसके बडे भाई, अर्थात् अपने नाती को प्यार करती थी। लेकिन छोडिए दुर्गी की बातो को। मेरी जीवनी मे दुर्गी का

बहुत सम्बन्ध होने से उसका तथा उसके कुटुम्बियो का वृत्तात देना आवश्यक होने से मैंने यह लिखा है।

दुर्गी के साथ एकात मे जाकर बैठने पर मैने उससे पूछा कि मुझे देखने के लिए जो लोग आये थे वे कौन थे, कहाँ के रहने वाले ये और वह लडकी कौन थी आदि। किन्तु दुर्गी को इसकी जानकारी नही थी। उसने मुझे बताया कि देखने वालो मे जो युवक था और जिसने मुझे पढने के लिए कहा था वही मेरा पति था। वह स्वय मुझे देखने के लिए आया था। इसलिए तो स्वयवर कहकर वह मुझे चिढा रही थी। किन्तु आगे चलकर मुझे मालूम हुआ कि दुर्गी का अदाज गलत था। यह युवक उनका एक परम मित्र था और अपने मित्र की भावी पत्नी कैसी है इस उत्सुकता से वह साथ के वृद्ध के आने के लिए कहते ही, उनकी आज्ञा शिरोधार्य मानकर चला आया था।

न जाने क्यो, उस दिन से मुझे किसी अज्ञात चिन्ता ने घेर लिया था। चिन्ता यही थी कि न जाने ससुराल कैसी मिलेगी ? इस चिन्ता का कारण कितना क्षुद्र था, यह मैं पहले ही कह चुकी हूँ। उस दिन बनी की प्रतिमा देखकर मेरी धारणा हो गई थी कि उस घर मे मेरा निभना कठिन है। सारा जन्म दुख से बीतेगा। वास्तव मे ऐसी धारणा होने का कोई कारण नही था। पहली बात यह थी कि आई हुई लडकी बनी की बहन थी अथवा नही, इस बात का निर्णय नही हो पाया था। दूसरी बात यह कि यदि वह लडकी बनी की बहन भी हो, किन्तु घर के सभी लोगो का स्वभाव बनी-जैसा ही होगा। इसका क्या प्रमाण था। उस समय मेरे मन मे यह विचार नही आया। अर्थात् दो-चार दिन बाद अपनी उम्र की दृष्टि से मै इन बातो को भूल गई थी।

१८

गत परिच्छेद की घटना को हुए दो मास से अधिक समय बीत चुका

था। इस अवधि मे मुझे देखने के लिए कई लोग आ चुके थे। आरम्भ मे इसके बारे मे मेरे मन मे जो कौतूहल था वह अब जाता रहा। अब ऐसे प्रसगो की आदत-सी हो गई थी। केवल एक घटना का मुझे अच्छा स्मरण है।

एक दिन दो महाशय मुझे देखने के लिए आए थे। उनमे से एक की उम्र पचास की होगी तथा दूसरे की साठ वर्ष की। उस समय न जाने क्यो चलते-चलते मै लडखडा गई। यह देखकर उन दोनो मे से किसी को शका हो गई कि मेरी चाल मे कुछ दोष है। मैं जब बैठ गई तो वे मेरी ओर घूर-घूर कर देखते रहे। परिपाटी के अनुसार कुछ प्रश्न पूछने के बाद उन्होने मुझसे 'र' 'ड' इन अक्षरो से बने शब्दो का उच्चारण करने के लिए कहा। मैं उनका आशय समझ गई। मुझे डर लग रहा था कि कही मेरे मुँह से अशुद्ध उच्चारण तो नहीं होगा। किन्तु सौभाग्य से मैने स्पष्ट रूप से उन शब्दो का उच्चारण किया था।

वे महाशय कुछ सनकी-से मालूम होते थे और उनके साथी बुद्धू थे, जो उनकी हाँ-मे-हाँ मिलाया करते थे। मेरी जिह्वा की परीक्षा हो जाने पर मेरी आँखो की भी जाँच की गई। सहज ही मे उन्होने मेरे सिर पर हाथ रखकर झटके से मेरी गर्दन को ऊपर उठाया और चेहरे को निरखकर देखते रहे। मैं शर्म के मारे मरी जा रही थी। किन्तु क्या कर सकती थी। मन मे आ रहा था कि उनका हाथ झटककर वहाँ से चली जाऊँ। शायद पिताजी को भी कुछ बुरा लगा था। मेरा चेहरा देख लेने के बाद उन महाशय ने सामने पानदान मे रखी हुई चूने की डिबिया उठाकर मेरे हाथ मे पकडाते हुए कहा, "जरा भागकर जाओ और इस डिबिया मे चूना नही है सो भरके ले आओ।" इसमे 'भागकर' शब्द महत्त्वपूर्ण था। उन्होने भागकर जाने को कहा, किन्तु प्रसग की दृष्टि से मैं कैसे भागकर जा सकती थी? मैं स्वाभाविक गति से जाने लगी। किन्तु यह देखकर दूसरे बुद्धू महाशय ने कहा, "अरे, तुझे भागकर जाने को कहा गया है न?" फिर भी मैंने अपनी गति को नही बदला और डिबिया मे चूना भरकर ले आई। डिबिया पहले से ही भरी हुई थी, उसमे रत्ती-भर चूना भरने के लिए जगह नहीं थी, किन्तु वे महाशय तो यह देखना चाहते थे न कि मैं लँगडी तो नही हूँ। इतना हो जाने पर भी परीक्षा का नाटक पूर्ण नही हो पाया था। फिर मुझे समीप बैठाकर उन महाशय ने

पिताजी से पूछा, "इसका गण क्या है।" पिताजी ने "देवगण" बताया। यह सुनकर प्रसन्नता से उन महाशय ने मेरी पीठ ठोकी और उस बुड्ढे महाशय की जाँघ पर थपकी दी। फिर मेरे हाथ उठाकर देखे और अपने बुड्ढे साथी से कहा, "क्यो, इसकी ऊँचाई कुछ कम मालूम होती है न?" हाँ-मे-हाँ मिलाने वाले बुड्ढे महाशय ने उत्तर मे कहा, "हाँ, बहुत ही नीची बैठेगी। इसकी उम्र की दृष्टि से इसकी उँचाई बहुत कम है।" यह सुनकर पहले महाशय ने कहा, "नही, नही, उम्र की दृष्टि से इसकी ऊँचाई कम नही है। बिलकुल जैसी होनी चाहिए वैसी ही है। मेरे कहने का आशय था कि इसका कद ठिगना ही रहेगा।"

साथी ने झट से कहा, "हाँ, मै भी तो यही कह रहा था। मेरे कहने का आशय भी यह था कि इसकी उम्र की दृष्टि से इसकी ऊँचाई बिलकुल ठीक है, नही, कुछ ऊँची ही कही जा सकती है।"

पहले महाशय (जिसका नाम नाना साहब था) ने कहा, "हिष्ट। ऊँची कहाँ है? शास्त्री बाबा, ये बाते तुम्हारी समझ मे नही आ सकती।" नाना-साहब की फटकार खाकर शास्त्री बाबा ने केवल अपनी दत-पक्ति का प्रदर्शन किया और चुप हो गए।

इस घटना की याद आते ही मुझे हँसी आ जाती है। इसका अब तक स्मरण बना रहने का विशेष कारण यह है कि परीक्षा लेकर उन लोगो के चले जाने के बाद हमारे घर मे इस घटना को लेकर बहुत टीका-टिप्पणी होती रही। मवेशियो के बाजार मे कसाई लोग भेड-बकरियो को मोल लेते समय उनकी किस प्रकार की जाँच करते है इसे तो मैं नही जानती, अथवा शौकीन लोग ऊँची जात के घोडो को खरीदते समय किस प्रकार उनकी परीक्षा लेते है इसे भी मैं नही जानती, किन्तु मैने जो सुना है उससे मेरी धारणा है कि जो लोग हम लडकियो को देखने आते है वे हमारी परीक्षा इन्ही भेड-बकरियो-जैसी करते है। अन्तर केवल इतना ही है कि पशुओ मे बुद्धि का अभाव रहता है और हम अपनी विडबना को अच्छी तरह समझ पाती है। विवाह के पूर्व लडकी को देखना, यह अच्छी प्रथा है अथवा कुप्रथा है इसके बारे मे मैं अपना मत प्रदर्शित करने का अधिकार नही समझती और न ही मत-प्रदर्शनार्थ मैं अपनी जीवनी लिख रही हूँ। केवल हम लडकियो का अपने जीवन के बारे

मे क्या दृष्टिकोण होता है और विवाह के पूर्व हमारी किस प्रकार जॉच-पडताल की जाती है इसे मेरे पश्चात् मेरी बहने समझ ले और यदि वास्तव मे इस प्रथा मे सुधार करना आवश्यक हो तो वह किया जाय, यही मेरा उद्देश्य है। इस कुप्रथा के कारण जिनको अपमान सहन करना पडता है उन्हे अपनी आवाज को बुलन्द किये बिना समाज ऐसी बातो की ओर ध्यान नहीं देगा, यह स्पष्ट है। जिस उम्र मे मुझे देखने के लिए आते थे उस समय मुझमे इतनी समझ नही थी, किन्तु आज मैं कह सकती हूँ कि इस कुप्रथा का अन्त किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। किन्तु यदि समाज लडकियो को पशुओ की तरह खरीदना बेचना चाहे तो फिर कहना ही क्या है? इससे अधिक कठोर शब्दो का प्रयोग मुझसे नही किया जाता।

मुझे देखने के लिए जो दो महाशय आए थे, उनके चले जाने पर पिताजी और दादी बहुत देर तक टीका-टिप्पणी करते रहे। मुझे भी उन लोगो पर बहुत गुस्सा आया था। पद्रह-बीस दिन के बाद मुझे मालूम हुआ था कि नाना-साहब अपने साथी शास्त्री बाबा के लिए ही मुझे देखने आए थे। उस साठ वर्ष के बूढे दूल्हे की मैं दुल्हन बनने वाली थी। यह सुनकर काटो तो खून नही, ऐसी मेरी अवस्था हो गई थी। वह शैतान दुर्गी मुझे 'शास्त्रिण बाई' कहकर चिढाने लगी थी। सुन्दरी को भी उसने सिखा दिया था। वह छोकरी भी अपनी तुतलाती जबान मे मुझे 'शात्तन बाई' कहने लगी थी। दुर्गी का छोटा भाई 'बूढे की दुल्हन' कहकर मुझे चिढाने लगा।

नाना साहब शास्त्री बाबा के लिए मुझे देखने आए थे, यह बात मालूम हो जाने के आठ दिन बाद नाना साहब की ओर से पिताजी को इस आशय का स्पष्ट सदेशा प्राप्त हुआ था। सदेश का आशय था कि, "शास्त्री बाबा की उम्र कुछ अधिक नही है, यदि लडकी देना चाहो तो शीघ्र उत्तर दो!" जिस दिन यह सदेशा आया उस दिन भोजन करते समय पिताजी ने मजाक मे दादी से कहा, "वैसे दूल्हा कोई बुरा नही है। क्यो मा? दुल्हन को आभूषणो से लाद देगा। भिक्षुक ब्राह्मण होने से पूजा-पाठ मे दक्षिणा भी खूब प्राप्त करता होगा। आज तक मिले हुए शाल-दुशालो की भी घर मे कमी नही होगी। और फिर किसी बात की कमी होने पर उसे पूरा करने के लिए उनके 'जिजमान' श्री नाना साहब है ही। सोचता हूँ कि उस घर मे यमी दे दी जाय।"

पिताजी ने मजाक मे कहा था किन्तु मुझ-जैसी पगली उसे सच मानकर, सामने रखी हुई भोजन की थाली को दूर हटाकर मै रोती हुई माँ के पास चली गई। वैसे ही दुर्गी के चिढाने से मैं ऊब गई थी और उस पर पिताजी का यह भाषण। फिर क्या था। माँ के पास जाकर उसके सिरहाने बैठी रोती रही। मुझे विश्वास हो गया था कि अवश्य ही मेरा विवाह उस साठ साल के बूढे के साथ होगा। हम गरीब गौएँ कसाई के हाथ सौपने पर भी क्या कर सकती है। उस समय मेरे मन की क्या दशा हो रही थी, इसका वर्णन नही किया जा सकता। हरे राम! कहाँ का मुआ वह शास्त्री बाबा। आज भी उसकी स्मृति से मेरे रोगटे खडे हो जाते है। मुझे रोते देखकर माँ ने कई प्रश्न पूछकर मेरे रोने का कारण जानना चाहा—किन्तु कोई उत्तर न देकर मै केवल रोती रही। दादी ने और पिताजी ने मुझे बहुतेरा समझाया-बुझाया, किन्तु अपना विवाह उस बूढे के साथ होगा इस कल्पना से मेरा रोना रुक नही रहा था। भैया ने भी मुझे बहुत समझाया। आखिर दादी ने चौके मे पहनने के रेशिमी वस्त्रो को बदलकर सूती साडी पहनी और मुझे भोजन करवाने के लिए अपने साथ ले गई।

जिस वर्ष की उपरोक्त घटना है उस वर्ष मे मेरा विवाह नही हुआ। इस बीच भैया के लिए भी कई सम्बन्ध आते रहे। किन्तु मेरा विवाह हो जाने पर ही भैया का विवाह किया जायगा, ऐसा पिताजी का निश्चय होने के कारण हमारे घर से भैया के लिए लडकी देखने की तत्परता किसी ने नही दिखाई थी। दादी चाहती थी कि घर मे शीघ्र नववधू आ जाय और मैं भी चाहती थी कि घर मे मुझे दीदी कहकर पुकारने वाली भाभी जल्दी से आ जाय। किन्तु मेरा विवाह होने के पूर्व भाभी का आना असम्भव था। विवाह के मुहूर्त भी समाप्त हो चुके थे। इसलिए चार महीनो तक कार्य स्थगित रहा।

१९

माँ का स्वास्थ्य दिन-पर-दिन गिरता जा रहा था। कहने के लिए कोई बीमारी नही थी। कोई कहता उसे जीर्ण ज्वर है, कोई कहता कि प्रसूति के उपरान्त वह ठीक हो जायगी। किन्तु एक दिन पिताजी दादी से कह रहे थे कि, "प्रसूति के उपरान्त सम्भवत इस का रोग 'क्षय रोग' का रूप धारण कर लेगा। उससे बचकर निकलना बहुत कठिन है।" इस पर दादी ने कहा, "भगवान् की जो इच्छा होगी उसे कौन टाल सकता है, किन्तु हम अपनी ओर से किसी बात मे कमी नही करेगे।"

यह बात सुनकर मेरा मन अस्वस्थ हो गया। माँ का सुख क्या होता है और अपनी माँ कितनी प्रिय है इस बात को मैंने अभी-अभी जान पाया था। घर का काम-काज सम्हालने की शक्ति उसमे नही थी, फिर भी अपने स्थान पर बैठे-बैठे ही शाक-भाजी को चीरना, दाल-चावल फटकना-बीनना आदि कई छोटे-मोटे काम वह कर दिया करती थी और मुझे अपने पास बिठाकर कई बाते सिखाया करती थी। अभी-अभी तो मैं समझ पाई थी कि माँ की सीख के अनुसार चलने से ही ससार मे मेरा भला हो सकता है और इसी समय पिताजी का उपरोक्त भाषण सुनकर मेरे दिल को जो ठेस लगी थी उसकी कल्पना ही की जा सकती है।

जैसा कि पहले कहा जा चुका है उसी अवस्था मे माँ की प्रसूति हुई और मुझे छोटा भाई मिला। भाई की प्राप्ति से मैं फूली नही समा रही थी। आनन्द से विभोर होकर मैं नाच रही थी। इसी खुशी की खबर सुनाने के लिए मैं भागकर दुर्गी के घर गई। किन्तु उस दिन दुर्गी ससुराल गई थी। उसकी माँ और दादी तो जच्चा के कमरे मे ही थी। जब मेरी खुशी की बात सुनने के लिए मुझे कोई न मिला तो दुर्गी के भाई को सुनाकर मैं घर लौट आई। लौटकर देखती हूँ कि जच्चा के कमरे के पास जमघट-सा हो गया है। पिताजी घबराकर भैया से कह रहे थे, "अरे गगू, जा जल्दी से डॉक्टर को बुला ला—नही तो ठहर, मैं ही जाता हूँ—" यह सुनकर मेरी खुशी काफूर हो गई। मेरी समझ मे नही आ रहा था कि क्या बात है। मै भैया से पूछने ही जा

रही थी, किन्तु उसी समय कुर्ता-टोपी पहनकर भैया बाहर चला गया। इतना मै अवश्य समझ चुकी थी कि कोई महान् सकट उपस्थित हुआ है। किन्तु उसका रूप क्या है, इसके बारे मे मै किससे पूछूँ ? क्योकि सभी लोग माँ के कमरे मे घुसे थे। आखिर मुझसे नही रहा गया और मै भी माँ के कमरे मे झाँककर देखने लगी। मुझे देखकर दादी ने रुआँसे स्वर मे कहा, "यमे, तुम्हे भाई मिला, किन्तु वह माँ को ले जा रहा है।" इतना कहकर उसने मुझे अपने पेट से जकड लिया। बार-बार दादी उसी बात को दुहरा रही थी। दुर्गी की माँ, दादी तथा वहाँ एकत्रित अन्य लोग दादी से बार-बार कह रहे थे, "इस प्रकार धीरज न छोडो, तुम ही इस प्रकार धीरज छोड दोगी तो बेचारे बच्चो का क्या हाल होगा ? वह तो केवल बेहोश हो गई है। अभी डॉक्टर आकर उसे ठीक कर देगे।" किन्तु दादी को एक ही रट लगी थी, "अरे नही, अब वह क्या ठीक होगी ? मेरे पीछे अपने बाल-बच्चो का जजाल लगाकर खुद जा रही है।" इतने मे भैया डॉक्टर को लेकर आ गया और उसके पीछे पिताजी भी आ गए। डॉक्टर ने दादी को धीरज दिलाते हुए माँ के पास जाकर उसकी परीक्षा करना आरम्भ किया। कुछ देर तक परीक्षा कर लेने पर डॉक्टर ने पूछा, "क्या इन्हे कभी फिट या मूर्छा आई थी ?" रोते हुए दादी ने कहा, "हाँ, एक बार आई थी। तो क्या यह उस-जैसी मूर्छा है ?" डॉक्टर ने कुछ उत्तर नही दिया। उन्होने माँ को कोई ऐसी दवा पिलाई जिसके परिणामस्वरूप कुछ ही मिनटो मे वह होश मे आ गई। डॉक्टर ने सब लोगो को कमरे से बाहर जाने के लिए कहा और वे पिताजी को अग्रेजी मे कुछ कहते रहे। डॉक्टर का लिखा हुआ पर्चा भैया को देकर पिताजी ने उसे दवा लाने के लिए भेज दिया। माँ को होश मे आया देखकर हमे लग रहा था जैसे यह डॉक्टर नही देवदूत है। परमात्मा की दया से हमे कुछ दिन और सुखोपयोग मिलना था इसलिए हो अथवा माँ की जीवन-यात्रा अभी समाप्त नही होनी थी इसलिए हो, हमारी माँ का वह प्राणान्तक सकट उस समय टल गया था।

मुझे छोटा भाई प्राप्त हुआ था, किन्तु पाँच-छ दिन तक उसे देखने की भी मुझे इच्छा नही हो रही थी। दादो तो कहती थी कि "मैं उसे देखना नही चाहती, आते ही माँ को चट करने जा रहा था अभागा।" माँ के सौर के दिन सकुशल बीत गए। कुछ लोग कह रहे थे कि अब उसकी तबियत सुधर जायगी।

किन्तु उनके कहने मे तथ्य नही था। ज्वर माँ का पीछा नही छोड रहा था। नवजात शिशु को माँ का दूध पिलाने की डॉक्टर ने मनाही की थी। किन्तु किसी ने डॉक्टर का कहना नही माना। "ये डॉक्टर लोग तो ऐसी ही अट-शट बाते कहा करते है। कहते है कि बच्चे को माँ का दूध न पिलाओ—फिर किसका पिलाये ?" ऐसी टिप्पणी करके दूध पिलाने का क्रम जारी रखा गया किन्तु शिशु बस शिशु ही था। पीने-पिलाने के बारे मे उसके लिए कुछ अव्यवस्था ही थी, क्योकि माँ का दूध उसे पर्याप्त मात्रा मे नही मिल रहा था, फिर भी शरीर उसका गोल-मटोल था। देखने वाले कहा करते थे कि यह बिलकुल यमुना-जैसा ही है। लोगो को ऐसा कहते सुनकर मन-ही-मन मैं प्रसन्न हो जाती थी। अब मुझे उसके प्रति घृणा नही रही। अब तो आते-जाते उसे लेकर बैठने के अतिरिक्त मेरे लिए दूसरा काम ही नही रहा था। मेरा दुर्गी के घर जाकर खेलना भी बन्द हो गया था। घर का काम-काज करने मे भी मेरा चित्त नहीं लगता था। बस माँ के कमरे मे जाकर बैठना और 'लल्ला' को खिलाते रहना एक-मात्र यही काम मैं किया करती थी। ऐसा करने मे दो-एक बातो का और भी फायदा हो जाता था। एक तो यह कि माँ को जो दूध, दलिया, सीरा, पूरी आदि खाने को दिया जाता था, उसमे मेरा भी हिस्सा निकल आता था। भैया तो मुझे चिढाया करता था कि, "लल्ला को खिलाने का केवल बहाना है, माँ के खाने मे हाथ बँटाना ही इसका मुख्य उद्देश्य है।" इससे अधिक फायदा यह हुआ था कि, माँ को पढने की शक्ति नही थी, इसलिए वह मुझसे भक्ति-विषय की पोथी पढवा लिया करती थी। भक्ति की उन प्रेमपूर्ण कथाओ को पढकर मेरी आँखो मे आँसू आ जाते थे। जो बात मेरी समझ मे नही आती थी उसे माँ समझा देती थी। डेढ-दो महीने मे मैंने बहुत-कुछ पढ लिया था। इसके अतिरिक्त, समयानुसार माँ मुझे और भी दूसरी बाते सिखाया करती, कुछ पढाया करती थी। 'लल्ला' को किस प्रकार स्नान कराया जाता है, इसे भी मैने सीख लिया था। दाई ने मुझे सिखा दिया था। दादी भी कभी-कभी मुझे अपने साथ चौके मे लेकर बैठ जाती थी। एक-दो बार तो वह स्वय दूर बैठ गई थी और मेरे हाथो दाल, भात, भाजी आदि बनवाकर सबको परोसवाया था। उस दिन मेरे मुँह पर प्यार से हाथ फेरते हुए माँ ने कहा, "यमे, मैं नही जानती थी कि इतनी जल्दी तुम सब

बातें इतनी अच्छी तरह सीख लोगी। इसी प्रकार ससुराल मे बर्ताव करके हम लोगो को यश देना बेटी!" इतना कहकर वह कुछ देर के लिए रुक गई थी। माँ के उन उद्गारो को सुनकर खुशी से मेरा मन बासो उछल रहा था। माँ के द्वारा की गई प्रशसा से अधिक बच्चो को और क्या चाहिए ? किन्तु मेरा यह आनन्द दूसरे ही क्षण समाप्त हो गया। मन के लड्डू मन मे खाकर मैंने ऊपर दृष्टि उठाते ही देखा कि माँ की आँखो से आँसुओ की झडी लग रही है। मेरे सिर पर हाथ रखते हुए माँ ने कहा, "यमे, मेरे सामने तेरा विवाह हो जायगा क्या, मै जँवाई को देख सकूँगी ?" मेरे विवाह के लिए मैंने माँ को इस प्रकार कहते कभी नही सुना था। उसके उद्गार सुनकर मै दग रह गई और शरमाकर नीचे गर्दन झुका ली। इसी समय अत्यन्त सदिग्ध कठ से कहे गए पिताजी के शब्दो को मैंने सुना—"हाँ, हाँ, अवश्य देख सकोगी। तुम जरा धैर्य धारण करो, कुछ अपनी तबियत ठीक कर लो—विवाह के दिन आरम्भ होते ही पहले मुहूर्त्त पर यमी का विवाह कर दूँगा।" खटिया के पास पडी हुई चौकी पर मा नीचे गर्दन झुकाए बैठी थी। पिताजी की आवाज सुनकर आँखे पोछती हुई वह झट से उठकर खडी हो गई। मुख पर हास्य बिखेरने का प्रयत्न करते हुए माँ ने कहा, "आड मे खडे होकर शायद आपने हमारा सम्भाषण सुन लिया ?"

उस समय मुझे बहुत सकोच हो रहा था। मैं सोच रही थी कि वहाँ से किस प्रकार भाग जाऊँ ? दरवाजे मे खडे पिताजी माँ की हास्य-विकसित मुद्रा की ओर एकटक देख रहे थे। दरवाजे पर हाथ रखकर खडी हुई पिताजी की भव्य मूर्ति प्रेम, दु ख, अभिमान, गाभीर्य आदि से समिश्रित उनकी दृष्टि माँ के स्निग्ध और लज्जा से झुके हुए हँसमुख चेहरे को देख रही थी। आज भी वह चित्र मेरी आँखो के सामने मूर्तिमान खडा है। यदि मैं चित्रकार होती तो सब काम छोडकर पहले इस चित्र को मैंने पूर्ण किया होता। पिताजी ने फिर एक शब्द भी नही कहा। कुछ समय तक वे वहाँ खडे रहे और फिर एक दीर्घ निश्वास छोडकर वहाँ से चले गए। पिताजी का हृदय इतना प्रेमपूर्ण होगा इसकी मुझे कल्पना तक न थी। हम बच्चो के साथ उनका बर्ताव, दादी के साथ उनका बर्ताव तथा माँ के साथ इसके पूर्व उनका जो बर्ताव होता था, उसे देखकर उनके स्वभाव का वर्णन मै पहले कर चुकी हूँ। जब से हम लोग

पूना आकर रहे थे तब से उनके स्वभाव मे कुछ नरमी आ गई थी। दादी के साथ आजकल उनका जो नम्रतापूर्वक बर्ताव हो रहा था उसका मुख्य कारण यह था कि हवा देखकर उनके साथ बातचीत करने का ढग दादी ने इन दिनो अपनाया था। फिर भी कभी-कभी उन दोनो मे झपट हो ही जाती थी। किन्तु दादी नर्माई से काम लेती थी इस कारण बात बढने नही पाती थी। इन दिनो माँ के साथ उनका बर्ताव बहुत स्नेहपूर्ण रहता था। अब वे कभी माँ के साथ तेजी से बात नही करते, केवल इतना ही नही उसकी दवा-दारू की व्यवस्था वे स्वय देखा करते थे। शायद उनका मन उन्हे कह रहा हो कि ऐसी सुशील और गुणवती पत्नी का सहवास अधिक समय के लिए भाग्य मे नही लिखा है। इसलिए जहाँ तक सम्भव हो उसे सुख दिया जाय, उसके कहने के अनुसार चला जाय और उसकी समस्त इच्छाओ को पूर्ण किया जाय। वैसे भी उन्होंने माँ के कहने की कभी अवहेलना नही की थी, किन्तु इसका कारण माँ की चतुराई थी, पिताजी की स्नेहशीलता नही। किन्तु अब स्पष्ट हो गया था कि केवल स्नेहवशता से ही माँ के साथ उनका बर्ताव इस प्रकार हो रहा था। उस दिन की स्मृति मैं जीवन मे कभी नही भूल सकती। मेरे वीरान जीवन-कानन मे मन को प्रमुदित करने वाले जिन चार-पाँच फूलो का लाभ मुझे हुआ था उन्हीमे से उपर्युक्त दिन एक फूल था। क्या उसे मैं आजन्म भूल सकती हूँ ?

सुख के बाद दुख यह तो ससार की परम्परा है। प्रसूति-दिन का माँ का प्राणातक सकट टल गया था। ऊपर लिखे अनुसार महीने-दो महीने का समय कुछ सुख के साथ बीत पाया था कि एक सकट और आ धमका और हमारे लल्ला को लेकर चला गया। जो देखता था वही कहता था कि यह बच्चा खूब होनहार निकलेगा। आकृति-प्रकृति मे भी वह बहुत लुभावना था। मैं तो उसके लिए पागल हो गई थी। एक दिन रात के समय उसकी साँस जोर से चलने लगी और पेट फडकने लगा। दादी रात-भर दौड-धूप के साथ अनेक उपाय करती रही। उतनी रात गये दादी अपनी एक परिचित स्त्री से, जिसका घर बहुत दूर था और जिसके पास खरगोश के खून मे भिगोया हुआ कपडा था, और जो वह स्त्री उसके बिना दूसरे किसी को नही देगी इस बात को दादी जानती थी, इसलिए भैया को साथ लेकर वह उससे कपडा ले

आई। डॉक्टर, वैद्य बुलाये गए, किन्तु कोई फायदा नही हो पाया। दूसरे दिन बच्चा चल बसा। उस दिन माँ को बहुत दुःख हुआ था, किन्तु उसका स्वभाव विवेकशील होने से उसने अपने दुःख का प्रदर्शन नही किया। मन-ही-मन रो-धोकर वह चुप हो गई। बच्चे को जब उठाकर ले जाया जा रहा था तब उसने करुण स्वर मे चीखकर केवल इतना ही कहा था कि, "अरे, मेरे मुन्ने को कहाँ लिये जा रहे हो ?" इसके उपरान्त फिर उसने इस विषय का उल्लेख नही किया। लेकिन क्या यह बात उस समय किसी के ध्यान मे आई थी कि इस प्रकार आज चुपचाप सहे गए इन दुःखो का आगे चलकर क्या परिणाम होगा ?

२०

उस दिन दुर्गी का मन खुशी से बाँसो उछल रहा था। किसी कारणवश उसका पति उसके मायके मे भोजन करने के लिए आ रहा था। मै भी देखना चाहती थी कि दुर्गी का पति कैसा है ? क्योकि दुर्गी अपनी ससुराल और पति के बारे मे मुझे कई बाते सुनाती रहती थी। उसका कहना था कि उसका पति उसके मायके मे कई बार आ चुका था, किन्तु मैंने केवल एक बार ही उसे अस्पष्टतः देख पाया था। आज उसे भोजन के लिए न्योता गया था इसलिए घर मे तैयारियाँ हो रही थी। दुर्गी तो अपने घर से हमारे घर और हमारे घर से अपने घर कई बार चक्कर लगा चुकी थी। उस दिन अपने पति के बारे मे उसने मुझे कई नवीन बाते बताई थी। उसकी बताई बाते ऐसी थी जैसे उन पति-पत्नी का सहवास दस-बारह वर्ष का हो। वास्तव मे दस-बारह महीने तो क्या पाँच महीने भी उन दोनो का परिचय हुए नही हो पाया था। यद्यपि मेरा विवाह नही हुआ था फिर भी दुर्गी के मनोजगत् मे मग्न होकर मैं उस समय अपने मन को रिझाती थी।

जिसके बारे मे कई बाते सुन चुकी वह दुर्गी का पति है कैसा, यह देखने की मुझे तीव्र इच्छा हो रही थी। लगभग दस-साढे-दस बजे दुर्गी बाहर के दरवाजे के पास चक्कर लगाने लायक कारणो की खोज कर रही थी। एक-दो बार तो उसने मुझे ही वहाँ तक भेज दिया और मैं दरवाजे तक पहुँची नही कि स्वय वहाँ आ धमकी। इसी समय उसकी माँ ने किसी काम के लिए उसे भीतर बुलाया। वह चली गई, किन्तु फिर वापस लौटकर हर्षोत्फुल्ल स्वर मे उसने कहा, "आज तो मुझे रायता परोसना है, तुम और मैं साथ-साथ भोजन करने नही बैठ सकेगे।" सुबह से ही उसके मन मे यह विचार आ रहा था। एक बार तो लाज-शरम छोडकर उसने अपनी माँ से कहा भी था कि, "क्या मैं आज परोसूँ ?" किन्तु उस समय उसे उत्तर नही दिया गया। अब उसकी इच्छा पूरी हो रही थी। इस कारण उसे बहुत खुशी थी। खुशी का कारण केवल इतना ही था कि परोसने के बहाने कई बार पति के सामने जाने का अवसर मिलेगा। आखिर पतिदेव का आगमन हुआ। मैं उस समय दुर्गी के घर नही थी। इसलिए दुर्गी दौडकर मेरे पास आई और अपने साथ मुझे लिवा ले गई। वे तीन-चार व्यक्ति थे। उनमे जो एक वृद्ध था वह दुर्गी का ममियाँ ससुर था। एक दुर्गी का पति, दूसरा पति का एक मित्र और तीसरा दुर्गी का छोटा देवर था। दुर्गी का पति यही कोई चौदह-पद्रह वर्ष का होगा। वर्ण से काला और बिलकुल दुबला-पतला, हड्डियो का ढाँचा। पहले तो उसके मित्र को ही मैं दुर्गी का पति समझती थी। किन्तु फिर दुर्गी ने स्वय मुझे दिखाया था कि उसका पति कौन-सा है। उसे देखकर मुझे आश्चर्य हो रहा था। यह लिच-पिचा लडका दुर्गी का पति! छी, यह कैसा पति ? और दुर्गी तो कितनी सुन्दर है ? अस्तु! उस दिन मुझे, भैया को और सुदरी को उस घर मे भोजन के लिए न्यौता था। स्कूल जाने मे देर होगी, इसलिए भैया नही रुका। मैं और सुन्दरी भोजन के लिए गई थी।

इस प्रसग को लेकर दुर्गी के मायके और ससुराल वालो की जानकारी देना अप्रासगिक होगा। पूना आने पर जिस भवन मे हमने किराये पर मकान लिया था उसीके एक हिस्से मे दुर्गी के पिताजी रहते थे। वे किसी दफ्तर मे कर्मचारी थे। उनकी एक ही लडकी थी दुर्गी, और एक पाँच-छै वर्ष का लडका था। उनके घर मे उनकी माँ और पत्नी के अतिरिक्त और

कोई मनुष्य नही था। दुर्गी के पिताजी बहुत ही सज्जन पुरुष थे। उन्हे अधिक वेतन नही मिलता था—यही कोई तीस-पैतीस रुपये मिलते होगे। फिर भी उन्होने अपनी गृहस्थी को बडी व्यवस्था के साथ चलाया था। उनके घर की व्यवस्था उनकी माँ देखा करती थी। माँ बडी कुशल थी। कभी मौका आ जाने पर वे बाजार से नाज-पानी भी ले आया करती थी। लडका भी माँ के कहने मे था। उसने कभी माँ को दु ख नही दिया। एक दिन वहिणा काकू (सब लोग उन्हे इसी नाम से पुकारते थे) हमारी दादी के पास अपने घर की गाथा गा रही थी तब मैने सुना था। उनका लडका जब दस वर्ष का था तभी उसके पिता का देहात हो गया था, और तब से उन्होने अपने देवर के घर आश्रय पाकर, देवर के घर का काम-काज सम्हालकर, अपने लडके की पढाई कराई थी। लडके की चाची बहुत दुष्ट थी, किन्तु लडका इतने अच्छे स्वभाव का था कि उसने कभी अपनी चाची को अप्रसन्न नही होने दिया। जो काम उसे करने को कहा जाता था उसे वह चुपचाप कर देता था और कोई ऊँच-नीच कहता तो उसे सह लेता था। उसे तो केवल अपनी पढाई से मतलब था। किन्तु उसके भाग्य ने उसका साथ नही दिया। हाई स्कूल की परीक्षा मे वह असफल रहा—चार-पाँच बार परीक्षा मे सम्मिलित होने पर भी वह उत्तीर्ण न हो सका। आखिर परीक्षा के झझट मे न पडकर उसने सरकारी नौकरी का आश्रय लिया। आरम्भ मे उसे बारह रुपये मासिक वेतन मिलता था। उसके काका ने उसका विवाह कर दिया। माँ के पास कुछ आभूषण थे, वे ही वधू को चढा दिये गए। होते-होते बारह-चौदह वर्ष मे उसका वेतन तीस-पैतीस रुपये हो गया था। उनकी गृहस्थी सुखपूर्ण थी। जब उनकी लडकी विवाह के योग्य हो गई तब उन्होने अपनी आर्थिक व्यवस्था के अनुसार, विवाह मे जो किया जाता है उसे यथोचित करके दुर्गी का विवाह कर दिया था। सौ-सवा-सौ रुपये दहेज मे दिये गए थे। अपनी परिस्थिति के अनुसार उन लोगो ने कार्य अच्छा कर दिया था। उनकी गृहस्थी भी बडे सुचारु ढग से चल रही थी। दुर्गी के पिताजी की उम्र अधिक नही थी। फिर भी घर और दफ्तर यही उनका विश्व था। कभी कही बाहर आते-जाते मैने उन्हें नही देखा। हम लोग एक ही भवन मे बरसो साथ-साथ रहे थे फिर भी मैने उन्हे अपने पिताजी के पास आकर गप-शप लडाते

क्वचित् ही देखा होगा। स्वभाव से वे मितभाषी मालूम होते थे। उन्हे पढने अथवा अन्य किसी बात का भी शौक नही था। फुरसत के समय वे स्वस्थ बैठे रहते अथवा अपनी माँ के साथ बातचीत किया करते थे। उनकी श्रीमती जरा तीखे मिजाज की थी। अपनी माँ के बहुत-से गुण दुर्गी मे दिखाई देते थे। दुर्गी की माँ चुप रहने का आदेश देकर तो नही, किन्तु बातो-बातो मे ही अपनी सास को चुप बैठाने मे कुशल थी। बनाव-शृगार करने मे भी उसे कुछ अधिक रुचि थी। इस गुण को भी दुर्गी ने अपनी माँ से पाया था। यह कहने मे अत्युक्ति नही होगी कि मान-मर्यादा का भी उन्हे कुछ कम ख्याल रहता था। प्रसगोपात्त किसी के साथ कैसी बातचीत करनी चाहिए इसका ध्यान न रखकर वे स्पष्ट-भाषी थी। हमारे पिताजी के साथ बातचीत करने मे घर के लोग भी जरा हिचकिचाते थे। एक दिन जब पिताजी और दादी मेरे विवाह के सम्बन्ध मे कुछ बातचीत कर रहे थे तभी किसी कार्यवश दुर्गी की माँ हमारे घर आई थी। पिताजी के कुछ शब्दो को सुनकर दुर्गी की माँ ने झट से आगे बढकर कहा, "देखिए, यमुना के लिए सुन्दर वर की खोज कीजिए! लडकी कितनी सुन्दर है। किसी दरिद्र नारायण के गले मे मत मढ दीजियेगा। चार-पाँच सौ रुपये दहेज मे देना आपके लिए कठिन नही है। अच्छा घर नियोजित कीजिए।" उसकी बात सुनकर पिताजी चुप हो गए थे। दुर्गी की माँ के चली जाने पर वे उसकी निर्भीकता के बारे मे बहुत-कुछ टीका-टिप्पणी करते रहे। और लोगो को भी दुर्गी की माँ का इस प्रकार का बर्ताव अच्छा नही लगता था। किन्तु वास्तव मे विचारपूर्वक देखा जाय तो इसमे दूषण क्या था? जिस प्रकार बर्ताव करने की हम स्त्रियो के लिए दिशा निश्चित की गई है, और जो अपनी अच्छाई के कारण पुरुषो द्वारा सैकडो वर्षों से स्तुत्य मानी गई है, उसका आशिक उल्लघन दुर्गी की माँ को करते पाया गया था, बस, यही इस टीका-टिप्पणी का कारण था। लेकिन ऐसा क्यो? दुर्गी की माँ ने कोई अनुचित बात तो नही कही थी। अपने मन की बात स्पष्ट शब्दो मे व्यक्त करने का भी अधिकार स्त्रियो को नही होना चाहिए? मेरा अनुभव है कि स्त्रियो को अपना मन मारकर चलने की जो प्रथा है वह बडी ही घातक है। बचपन से ही स्त्रियो के मन पर ऐसा सस्कार किया जाता है कि उनका पुरुषो के सामने स्पष्ट रूप से बातचीत

करना सर्वथा अनुचित है। जैसे सभी पुरुष पाप के कर्दम मे फँसे रहते है। अब दुर्गी की माँ को ही लीजिए। उम्र उसकी यही छब्बीस-सत्ताईस वर्प की होगी। दूसरी स्त्रियो की अपेक्षा वह कुछ अधिक निर्भीक थी। किन्तु क्या मजाल, और और किसी बारे मे कोई उसकी ओर उँगली उठा सकता। सराहने योग्य प्रतिष्ठित स्त्री थी दुर्गी की माँ। आसार नजर आ रहे थे कि आगे चलकर दुर्गी भी अपनी माँ-जैसी ही बनेगी। काम-काज मे दुर्गी आलसी थी, किन्तु उसकी माँ उसके विरुद्ध थी। काम-काज के लिए वह शेरनी-जैसी थी। सास के लिए घर मे कोई काम-काज शेष नही रहता था। दुर्गी की माँ हमेशा कहा करती थी, "मै बाजार से सौदा-पत्ता भी ले आऊँगी। माताजी तो केवल चौकी पर बैठी रहे और मेरी गलतियो को बताया करे। वे भी केवल अपनी नौकरी सम्हालकर वेतन की रकम लाकर घर मे दे दे—फिर मैं अकेली ही सब व्यवस्था कर लूँगी। गृहस्थी चलाना क्या कोई पहाड उठाना है ?"

दुर्गी की ससुराल मे उसके एक अजिया ससुर, ससुर, चचेरे ससुर, पति, एक दस-ग्यारह वर्ष का देवर, चार-पाँच वर्ष की ननद और एक-सात-आठ वर्ष की चचेरी ननद थी। स्त्रियाँ तीन थी। एक सास, एक चचेरी सास और एक फुफेरी सास, इस प्रकार यह एक बडा परिवार था।

दुर्गी के अजिया ससुर वृद्ध, साठ से अधिक उम्र के थे। फिर भी वे बहुत चुस्त और मुस्तैद थे। इतनी वृद्धावस्था होने पर भी वे अपने कुटुम्ब का वकालत करके भरण-पोषण किया करते थे। और लोग तो शिवजी के सामने बैठकर शोभा देने वालो मे से थे। दुर्गी के ससुर बैठकर खाने वालो मे से थे। बुद्धि से उनका वैमनस्य था। उन्हे यह बात मान्य नही थी कि पिता की कमाई खाते रहने मे भी कोई शर्म की बात होती है। चालीस से कुछ अधिक ही उनकी उम्र होती किन्तु पैसे का साग मोल लाने के लिए उनसे कहा जाता तो वे हिसाब नही कर पाते थे। फिर भी उनके पिताजी के पास जो मुवक्किल लोग आते थे उनके कुछ पत्र, अर्जियाँ आदि लिखकर धेला-पैसा कमाने लगे थे। उनका छोटा भाई नाटको का शौकीन था। घर मे बैठकर मुफ्त मे खाना और नाटको को खेलना, इसके अतिरिक्त उन्हे दूसरा व्यवसाय नही था। नाटको से कोई लाभ नहीं होता था। दुर्गी के ससुर कम-से-कम पैसा तो कमा

लेते थे, किन्तु उनके छोटे भाई साहब घर का ही कुछ गँवा आते थे। दुर्गी के पति का डील-डौल कैसा था, इसे पहले कहा जा चुका है। वह अग्रेजी की चौथी कक्षा मे पढ रहा था। दादाजी इसी लडके पर आस लगाए बैठे थे। और कहा जाता था कि लडका बुद्धिमान है।

स्त्रियो मे दुर्गी की सास को साध्वी स्त्री कहने मे अत्युक्ति नही होगी। इतनी बुद्धिमान और फिर इतनी सीधी-सादी स्त्री मैंने कही नही देखी। घर के पर्वत-जैसे काम-काज को वह अकेली किस प्रकार कर लेती थी, इसे वही जान सकती थी। वह धनी घराने की लडकी थी, किन्तु मायके का गर्व कभी नही प्रदर्शित करती थी। मायके से उसके भाइयो ने उसके नाम कुछ वार्षिक आमदनी कायम कर दी थी जिसे लेने के लिए वह साल मे चार-आठ दिन के लिए मायके जाया करती थी। ससुर की वह बहुत लाडली थी। और इसके योग्य ही वह स्त्री थी। एक दिन दुर्गी के मुँह से जब मैंने उसकी सास का वर्णन सुना तो हँसी से कह दिया था कि, तुम्हारे ससुर को तुम्हारी सास होना था और सास को ससुर, तब जाकर तुम्हारे घर की सुव्यवस्था हो सकती थी। पुरुष की शारीरिक कठोरता छोडकर बाकी सभी गुण उस स्त्री मे विद्यमान थे। केवल उसे देख लेने से कोई इस बात का तर्क नही कर सकता था कि इस स्त्री मे इस प्रकार के गुण विद्यमान है और गृहस्थी का अधिकाश बोझ उसे ही वहन करना पडता है। अस्तु। दुर्गी की चचेरी और फुफेरी सासो का कुछ और ही हाल था, किन्तु उनका वर्णन न करके, मै अब अन्य बातो की ओर मुडना चाहती हूँ।

२१

दो मास और बीत चुके थे। इस अवधि मे पिताजी ने मेरे लिए कई घर देखे थे। रात-दिन अब उन्हें इसी बात की चिन्ता लगी रहती थी। गत दो

मास मे वे बहुत दुबले हो गए थे। माँ की अतिम घडी निकट आती जा रही थी और उसे दिया हुआ अभिवचन किसी तरह पूर्ण करना होगा, इस चिन्ता से उनके शरीर का यह परिणाम हो गया था। इसलिए वे वर की खोज मे व्यस्त थे। कई घर वे देख चुके थे, किन्तु उन्हे कोई घर पसन्द नही आ रहा था। प्रति-दिन शाम को दादी के पास बैठकर दिन-भर मे देखे गए घरो का ब्यौरा वे सुनाया करते थे, जिसे मैं भी चुपचाप सुन लेती थी। घर इसलिए पसद नही आते थे कि कही सौतेली सास होती थी, तो कही ससुर नही होते थे। कही सास-ससुर सब होते हुए भी कुटुम्ब का विस्तार अधिक और वर विद्या-हीन पाया जाता। जहाँ सब समस्याएँ हल हो जाती वहाँ जन्म-पत्री का मिलान नही हो पाता, कही दहेज की रकम बहुत अधिक माँगी जाती—इस प्रकार कई कठिनाइयाँ आ रही थी। कम-से-कम सौ-पचास घर देखे गए थे, किन्तु उनमे से एक भी पिताजी के विचारो से मेल नही खाता था। "न जाने इस लडकी के भाग्य मे क्या लिखा है। कई रुकावटे आ रही है—भाग्य मे होगा तो बेचारी माँ इसका विवाह देख लेगी—" इस प्रकार के उद्‌गार दादी के मुँह से सुने जा रहे थे। माँ अब अपनी कोठरी से बाहर नही आ पाती थी। लल्ला की मृत्यु ने माँ को खटिया पर लिटा दिया था। क्षय रोगियो का विचित्र हाल होता है। कभी लगता था कि बस, आठ दिन मे माँ बिलकुल ठीक हो जायगी किन्तु उसी दिन उसकी हालत रात को इतनी बिगड जाती थी कि कुछ कहा नही जा सकता। एक दिन की बात है, माँ स्वय दुर्गी के घर गई और बहिणा काकू के साथ दो घण्टे तक बैठी बातचीत करती रही। उस दिन रात को उसकी तबियत बहुत खराब हो गई। बिस्तरे पर उठकर बैठा नही जा सकता था। बुखार चढ आया था। माँ की इस प्रकार अस्थिर प्रकृति को देखकर घर के लोग स्पष्ट रूप से कहने लगे थे कि किस समय क्या हो जायगा, इसका भरोसा नही। माँ स्वय इस बात को अच्छी तरह जान गई थी कि अब इस ससार मे उसका जीना बहुत कठिन है।

रात मे मैं माँ के समीप सोती थी। उस दिन भी हमेशा की तरह भोजन के बाद चादर ओढकर मै बिस्तरे पर लेट गई थी। दादी भी उसी कमरे मे कुछ दूर हटकर सोती थी। किन्तु उस दिन किसी मन्दिर मे हरि-कथा श्रवण करने जा रही थी। मैं भी दादी के साथ जाना चाहती थी, किन्तु दबी जबान

मे माँ ने मुझसे न जाने के लिए कहा। मैं मान गई और आकर बिस्तरे पर लेट गई। दादी ने भी चलने के लिए आग्रह नही किया। माँ के पास किसी का रहना आवश्यक है इस बात को उसने सोचा होगा। सुन्दरी मेरे से पहले ही सो गई थी। कुछ देर बाद मुझे भी नीद आ गई। भैया अपने बिस्तरे पर कब आकर सो गया था यह मैं नही जानती। वह पिताजी के कमरे मे बैठकर पढाई करता और रात को दस-साढे-दस बजे माँ के कमरे मे आकर सो जाता। कोई बारह बजे का समय होगा, माँ की पुकार सुनकर मै जाग गई थी। माँ कह रही थी, "यमे, उठो बेटी, क्या सो रही हो। अब मै अधिक दिन थोडे ही जीऊँगी।" इन शब्दो को सुनकर मेरा दिल बैठा जा रहा था। झट से उठकर मैंने माँ के गले मे बाँहे डाल दी। मै रो रही थी। मेरे मुँह पर हाथ रखकर माँ ने कहा, "बेटी, क्या तुम्हे रोने के लिए मैंने जगाया है? चुप, चुप करो! आज मैं तुम दोनो से कुछ कहना चाहती हूँ। गणू समझदार है, वह इस प्रकार नही रोयगा। तुम्हारे रोने से कही वे न जग पडे।" इन शब्दो का उच्चारण उसने ऐसे विचित्र ढग से किया था कि उसका परिणाम तत्काल हो जाने से मै रोना भूल गई और चित्र की भाँति तटस्थ होकर उसकी ओर एकटक देखने लगी। यह सब क्या है? क्या होने जा रहा है? माँ हमे क्या कहना चाहती है? समझ मे नही आ रहा था। मुझे चुपचाप बैठी देखकर माँ ने अपनी आँखे पोछ ली और कुछ देर मेरी ओर ताकती रही। एक दीर्घ निश्वास छोडकर उसने कहा, "यमे, अब तुम से केवल इतना ही कहना है कि ससुराल मे अच्छा बरताव रखना। मेरे मरने के बाद समझ लेना कि अब तुम्हारे लिए मायका नही रहा। यदि मेरे सामने तुम्हारा विवाह हो गया तो मैं स्वय देख सकूँगी कि तुम्हारे ससुराल वाले कैसे है? और यदि नही हो सका तो मेरा इतना ही कहना है कि ससुराल मे हर किसी से मिलनसारी का बर्ताव करना। किसी ने कोई काम बताया तो उसे अवश्य पूरा करना चाहिए। फिर वह चाहे किसी का भी बताया हुआ क्यो न हो। बेटी, स्त्रियो को तो किसी-न-किसी का होकर ही रहना होता है। किसी की दया पर निर्भर रहे बिना अन्य चारा ही नही। तुम्हारे सौभाग्य से यदि तुम्हें अच्छे पति का लाभ हो—ससुराल वाले भी सज्जन हो तो फिर चिन्ता की कोई बात नही। यदि वैसा न हो तो अपना बर्ताव अच्छा होने पर फिर किसी से डरने की कोई बात

नही रहती। किसी एक की बात सुनकर उसे दूसरे से नही कहनी चाहिए। चुगली खाने से परिणामतः अपने-आपको नीचा देखना होता है। अपने सामने किसी ने कुछ कहा, अथवा अपनी इच्छा न रहने हुए कुछ सुनाई दिया तो उसका उच्चारण अन्यत्र न करने मे ही समझदारी है। हर समय काम मे चित्त लगाना चाहिए। कुछ गिरा पडा हो—बिखरा हो—कहने का तात्पर्य यह है कि हर काम दूसरे के कहने पर ही करना, ऐसी प्रवृत्ति नही होनी चाहिए। कोई काम सूझते ही, जहाँ तक बन सके, उसे ढग से करना चाहिए, किसी की राह नही देखनी चाहिए। काम के समय जी चुराने वालो की बडी दुर्दशा होती है, इस बात को कभी न भूलना। यदि मै जीवित रहती तो तुम्हे बहुत-कुछ सिखा सकती, किन्तु ''

इसी समय अपने बिस्तरे से उठकर भैया माँ के समीप आ गया था। रुँधे हुए कठ से उसने कहा, "माँ, तुप ऐसा क्यो कह रही हो ? तुम्हारे पश्चात् फिर हमे " इससे अधिक वह बोल न सका—माँ की गोद मे सिर रखकर वह सिसकने लगा। भैया के गले मे बाँहे डालकर मै भी रोने लगी। माँ ने हम दोनो को अपने सीने से जकड लिया। कुछ देर तक हम दोनो पर उसके पवित्र आँसुओ की वर्षा होती रही। आज भी उस दिन की स्मृति से मेरा मन विचलित हो जाता है। जी चाहता है कि लेखनी को दूर फेंक दूँ। माँ—क्या अब मै फिर कभी तुम्हे देख सकूँगी ? हम दोनो का फिर कभी मिलाप होगा ! लेकिन नही—यही अच्छा है कि अब तुम मुझे देख नही सकती। मेरी इस अवस्था को देखकर तुम्हे अत्यन्त दुःख होगा माँ—"

कुछ देर बाद माँ ने हमे दूर हटा दिया। अपनी आँखे पोछते हुए उसने भैया से कहा, "गणू, मैं नही जानती थी कि तुम इतने नासमझ होगे। अरे पगले, क्या तू इतना भी नही जानता कि कुछ ही दिनो मे मैं तुमसे विदा हो रही हूँ ? तुम पर ही तो मेरा सारा भरोसा है बेटा ! यमी से जो कुछ कहना था उसे कह लेने पर मैं तुम्हे जगाकर कहना चाहती थी कि, 'अब इन बच्चो की सम्हाल तुम्हे ही करनी है।' मेरे पश्चात् क्या होगा, इसे कौन बता सकता है ? किन्तु इस प्रकार धैर्य छोडकर यदि तुम यह भूल जाओ कि यमी और सुन्दरी की चिता तुम्हे ही वहन करनी है तो फिर दूसरा कौन इस कार्य को कर सकता है ?" इस प्रकार वह बोल रही थी और भैया नीची गर्दन

करके केवल सुन-भर रहा था। उसका सिर ऊपर उठाकर माँ ने आगे कहा, "मैंने अभी जो तुमसे कहा उसका पालन करोगे ना ?" भैया ने रोते हुए केवल "हाँ" कह दिया। यह सुनकर माँ कुछ विचित्र ढग से हँस दी थी। फिर भैया को अपने पास खीचकर माँ ने मुझे खूब दूर हटकर बैठने के लिए कहा। भैया के कान मे वह बहुत देर तक कुछ कहती रही। मै इस उधेड़-बुन मे पड गई थी कि मुझसे छिपाकर माँ भैया से क्या कह रही है ? किन्तु माँ मे पूछने का मुझे साहस नही हो रहा था। उसकी बात समाप्त हो जाने पर मैंने देखा कि भैया का चेहरा एकदम उतर गया है। माँ ने उससे कहा, "जाओ, अब तुम चुपचाप जाकर सो जाओ!" भैया अपने बिस्तरे पर लेट गया। फिर माँ ने मुझे अपने पास बुलाया। वह बिस्तरे पर लेट गई और मुझे अपने पास बैठाकर पूर्ववत् उपदेश की बाते कहती रही। किन्तु मेरा ध्यान अब माँ की बातो की ओर नही था—मेरे मन मे विचार आ रहा था कि माँ ने भैया के कान मे क्या कहा ?

दूसरे दिन सुबह उठते ही मैंने बार-बार भैया से पूछा था कि रात को माँ ने तुम्हारे कान मे क्या कहा था। किन्तु भैया तो पूरा उस्ताद था, मुझे वह कैसे बता सकता था। दिन-प्रतिदिन उसके स्वभाव मे जो परिवर्तन हो रहा था उसके बारे मे मैं पहले ही कह चुकी हूँ। इन दिनो माँ के अतिरिक्त दूसरो से वह बहुत ही कम भाषण करता था। पढाई के अतिरिक्त और किसी बात से अपना सरोकार नही, यह रवैया उसने अपनाया था और शनैः-शनैः उसमे वृद्धि होती जा रही थी। मन-ही-मन वह कुढता जा रहा था। मेरे साथ भी वह बहुत कम बोला करता था। यदि पढाई के बारे मे मैं उससे कुछ पूछ-ताछ करती तो उसे वह अवश्य ही सरलतापूर्वक समझा देता था। इन दिनो भैया अपने मित्रो एव परिचितो से अच्छी-अच्छी पोथियाँ और पुस्तकें लाकर मुझे देता और माँ के पास बैठकर उन्हे पढने के लिए कहता था। भैया का अब पहले-जैसा स्वभाव नही रहा था—अब वह हम लोगो मे घुल-मिलकर खेलना पसन्द नही करता था। फिर भी एक बात विशेष रूप से मेरे ध्यान में आ गई थी कि मेरे और सुन्दरी के साथ उसका बर्ताव बहुत ही स्नेहपूर्ण होता था। वैसे हम दोनो की उम्र मे विशेष अन्तर नही था। फिर भी कई बाते ऐसी होती है जिन्हें देखकर भाई-बहन के प्रेम

को नापा-जोखा जा सकता है। जिन्हे भाई-बहन के प्रेम का लाभ हुआ हो अथवा कम-से-कम ऐसे स्नेहशील भाई-बहनो का बर्ताव देखने का सौभाग्य जिन्हे प्राप्त हुआ हो वे ही मेरी बात का मर्म जान सकते है। अपने बच्चो को एक-दूसरे से प्रेम करते देखकर उनके माता-पिता को जो सुख मिलता है उसका वर्णन करना असम्भव है। एक बच्चे को पिटता देखकर जब दूसरा बच्चा रोने लगता है तो उसकी माँ को कितना सतोष होता है इसे तो सब जानते है। जब हमे मालूम हो जाता है कि बडे भाई को मारने से उसका छोटा भाई रो देता है तो झूठ-मूठ उसे मारकर छोटे को रुलाने का आनन्द हम लिया करते है। यह अब विस्तारपूर्वक लिखने का कारण केवल इतना ही था कि इन दिनो भैया को सुन्दरी और मेरे साथ अधिक स्नेह हो गया था ऐसा जो मैंने लिखा है उसका कारण मै नही बता सकती, केवल कल्पना से ही वह जाना जा सकता है। आज-कल भैया हमारे खाने-पीने की पूछ-ताछ किया करता, घडी-आध घडी मुझे न देख पाने पर मेरी खोज किया करता, आदि कई बाते है। पिताजी दादी के साथ मेरे विवाह के सम्बन्ध मे जब बातचीत किया करते तब भैया अपना काम छोडकर उस बातचीत को छिपकर ध्यानपूर्वक सुना करता था। एक बार इसके लिए पिताजी ने उसे घुडकाया भी था, किन्तु भैया ने उनकी बात पर ध्यान नही दिया। आगे चलकर जब मै इस छिपकर सुनने का रहस्य समझ पाई थी तब उसकी स्नेहशील वृत्ति और माँ के प्रति उसे जो अगाध भक्ति थी, उसका परिचय पाकर मै दग रह गई थी। एक बार उसने मेरे लिए पसन्द किये गए घर के बारे मे दादी को कुछ ऐसी ही बाते कह दी थी। पिताजी को वह घर बहुत पसन्द था और लडका भी उन्हे जँच गया था। उस घर के लोगो ने आकर मुझे देखा था और पसन्द भी किया था। किन्तु भैया ने उसके बारे मे पूरी छानबीन की थी। वह लडका भैया के साथ पढता था। उसकी उम्र यही कोई अठारह वर्ष की होगी। भैया जानता था कि वह लडका बुद्धू है और उसका स्वभाव भी अच्छा नही है और अभी से वह धूम्र-पान करने लगा है। इसलिए भैया ने दादी से स्पष्ट कह दिया कि यमुना को उस घर मे न दिया जाय। फिर पिताजी ने भी उस घर के बारे मे बारीकी से पूछ-ताछ की और वह घर उनकी तबियत से उतर गया। इस प्रकार वह प्रकरण समाप्त हो गया था।

किसी विधुर के साथ मुझे ब्याहने के लिए तो उसका तीव्र विरोध था। किन्तु दिल खोलकर बातचीत वह केवल माँ अथवा दादी के साथ ही किया करता था। पिताजी के सामने एक शब्द भी कहने का उसमे साहस नही था। वैसे आजकल पिताजी का स्वभाव बहुत-कुछ नरम हो गया था। ऐसा होने पर भी हमे पहले से उनका जो भय रहता था वह थोडे ही दूर हो सकता था। हम पर उनकी पूरी धाक थी। हम दोनो की अपेक्षा सुन्दरी उनसे कम डरती थी। एक तो वह छोटी थी और दूसरे पिताजी का उसके साथ बर्ताव भी कठोर नही था।

मेरे लिए वर ढूँढने का कार्य तीव्र गति से चल रहा था। कई घर देखे गए, किन्तु एक भी पसन्द नही आ रहा था। इसी समय दादी ने फिर एक पहले देखे गए घर की चर्चा चलाई। यह वही घर था जिसके लोग एक बार मुझे देखने आए थे और जिनके साथ 'बनू'-जैसी लडकी आई थी। उन्ही लोगो की ओर से फिर बात चलाई गई थी। विशेषत दादी के साथ उन लोगो का कोई पुराना नाता निकल आया था। दो वृद्ध स्त्रियो के एकत्र होने पर ऐसा कभी नही हुआ कि उनका कोई पूर्व परिचय अथवा घुमा-फिराकर कोई नाता न निकल आया हो। और फिर हमारी दादी तो इस प्रकार के परिचय और नाते ढूँढने मे बहुत प्रवीण थी।

मुझे देखने के लिए जो लोग आए थे उनमे एक वृद्धा थी, वही दादी के विशेष परिचय की थी। उस वृद्धा का नाती, याने लडकी का लडका नियोजित वर था। उसके लिए वह मुझे देखने आई थी और उनके साथ जो लडकी आई थी वह वास्तव मे 'बनी' की बडी बहन ही थी, जो अपने फुफेरे भाई के लिए मुझे देखने आई थी। लडके के पिता का उसके बचपन मे ही स्वर्गवास हो जाने से उसने अपने मामा के घर याने 'बनी' के पिताजी के घर आश्रय पाया था। बनी की फूफी उस लडके की माँ—पति के पश्चात् जो कुछ घर मे था उसे लेकर आपने मायके मे आकर रह रही थी। उसका एक देवर था, किन्तु उसके पास रहना उसने पसन्द नही किया। जो कुछ उसके पास था उसे लेकर आ जाने के लिए भाई तथा माँ ने उससे आग्रह किया और उनकी बात को ठीक मानकर वह मायके मे आकर रहने लगी

थी। उस समय उसका लडका केवल पॉच-छः वर्ष का था। माँ के पास आभूषण आदि पर्याप्त थे।

लडके के बारे मे जब ऊपर लिखे अनुसार जानकारी पिताजी को दी गई तो नाक-भौ सिकोडकर उन्होने कहा, "ऐसे साधारण से घर मे बेटी को ब्याहना ठीक नही होगा। लडके का बाप होता, कम-से-कम वह अपने काका के घर होता तो कुछ ठीक था।" दादी और माँ भी पिताजी के विचार से सहमत थे। किन्तु दादी चाहती थी कि किसी प्रकार शीघ्र विवाह हो जाय। इस कारण वह किसी बात पर जम नही पाती थी। माँ ने एक-दो बार कहा भी था कि ऐसी रखडन मे बेटी को ब्याहना उचित नही होगा। किन्तु आश्चर्य तो इस बात का था कि, इस घर मे मेरी जन्म-पत्री सोलह आने मेल खा रही थी। हर कोई लडके की बुद्धिमानी की प्रशसा कर रहा था। लडका भैया से तीन कक्षा ऊपर पढ रहा था और उसी वर्ष हाई स्कूल की परीक्षा मे सम्मिलित हो रहा था। उसके शिक्षक भी उसकी बुद्धिमत्ता की प्रशसा किया करते थे। इन सब बाहरी चर्चाओ को सुनकर पिताजी कहते, "कोई बात नही, उसी घर मे ब्याहा जाय। बाप न हो तो न सही। मामा के घर उसे आजीवन थोडे ही रहना है। दो-चार परीक्षाओ मे उत्तीर्ण होकर वह अपने धधे-रोजगार से लग जायगा, और अपना पृथक् घर कर लेगा।" पिताजी की बात सुनकर दादी प्रसन्नता से कहती, "हॉ, ठीक ही तो है।" अरे, यह रखडन अधिक दिन थोडे ही चलेगी। अधिक-से-अधिक और चार-पॉच वर्ष। तब तक तो यमी बडी नही हो जायगी। जब तक वह सयानी होती है, घर-गृहस्थी करने लायक बन जाती है, तब तक उस रखडन से बाहर निकल आयगी।"

इस प्रकार चर्चा रग पकड रही थी। भैया का मत भी अनुकूल हो रहा था। वह लडके की बुद्धिमानी का वर्णन करते हुए दादी एव माँ से कहा करता था कि, "अब तुम लोग बाल की खाल न निकालो। यमुना को उस घर मे ब्याह दो! ऐसा घर ढूँढने से भी नही मिलेगा।"

योगायोग की बात विचित्र होती है। पूना आने पर प्रथम बार जो लोग मुझे देखने आए थे उन्हीके घर जाकर मुझे बसना था। किन्तु मध्यातर मे पॉच-पचास घर और देखे जाने पर ही वह घर निश्चित होना था। पहले

तो उस घर के बारे मे हर किसी ने नाक-भौ सिकोडी थी। पिताजी ने उस घर के बारे मे अथवा लडके के बारे मे पूछ-ताछ करना भी अनावश्यक समझा था। यदि कुछ सोचा था तो मैंने ही और वह भी बनी के भाई के सम्बन्ध मे। किन्तु अब उस घर की केवल अच्छाई ही सब लोगो को दिखाई दे रही थी। स्वय मुझे भी अब बनी का डर नही लग रहा था और अन्य लोगो की तरह इच्छा हो रही थी कि उसी घर मे ब्याही जाऊँ।

वस्तु रहती है अपने पास, किन्तु खोज की जाती है अन्यत्र। और जब वह अचानक मिल जाती है तो हमे आश्चर्य होने लगता है कि इतनी समीप होकर व्यर्थ ही मे उसके लिए सारा गाँव छानना पडा। कुछ यही हाल हम लोगो का हुआ था। एक ही नही, पिताजी ने पचासो घर देखे थे, किन्तु जो भाग्य मे लिखा था वही निश्चित हुआ।

जन्म-पत्री का मेल खाने और पिताजी का उस घर मे मुझे ब्याहने का निश्चय जानकर सम्भवत उन लोगो ने दहेज आदि के बारे मे अधिक खीच-तान करने का विचार किया हो। क्योकि हमारी ओर से जब तक निश्चित नही किया गया था तब तक उन लोगो की बातचीत का ढग इस प्रकार था—"तुम अपनी इच्छा के अनुसार देने-लेने का विचार कर सकते हो। समधियो से प्राप्त किया गया धन कोई जीवन-भर के लिए थोडे ही काम आयगा। दो तो ठीक, और न दो तो हमारा कुछ कहना नही। यदि कुछ दिया गया तो लडकी को ही एक आभूषण अधिक चढाया जायगा। न दिया तो हमारी ओर से कोई आपत्ति नही। परम्परा के अनुसार कगन-पाटले आदि चार जेवर तो चढायँगे ही।" किन्तु अब उन लोगो ने खीच-तान करना आरम्भ कर दिया था। पहली बार जो वृद्ध मुझे देखने के लिए आए थे उन्होने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया कि, "लडका कोई ऐसा-वैसा नही है। हजार-बारह सौ की रकम लेकर कई लडकियो के बाप चक्कर काट रहे है। किन्तु उन्हे जवाब देकर तुम्हे स्वीकृति इस दृष्टि से दी गई है कि सम्बन्ध अपनी बराबरी वालो से ही किया जाना ठीक होता है। अब यदि तुम हाथ खीच लो तो फिर कैसे काम चलेगा। कुछ आप कहिए—कुछ हमारी भी सुनिए! मैं तो हर बात मे सफाई चाहता हूँ। देखिए, आपको अधिक खर्चे मे डालने, की मेरी इच्छा नही है। तीन सौ रुपए दहेज मे दिये जायँ। वर-दक्षिणा ही

तो होती है वह—उसे तो स्वीकार करना ही होगा। सौ रुपए मान-सम्मान के लिए समझ लीजिए। देखिए, लडके की बडी मामी उसके लिए बिलकुल माँ-जैसी है। उसीने तो उसकी साज-सम्हाल की है। इसलिए समधिन का जो मान-सम्मान किया जाता है वह उसकी मामी का करना होगा। दूसरी है छोटी मामी। आप तो जानते ही है कि छोटी मामी के पति के बल पर ही तो सब-कुछ चल रहा है। इसलिए कहने की आवश्यकता नही कि छोटी मामी का मान-सम्मान यथा योग्य होना ही चाहिए। और लोगो के मान-सम्मान के बारे मे आप स्वयं सोच सकते है। हाँ, **'रास नहान'** और **'मुख धोबन'** (दोनो ही विवाह-प्रथा-सम्बन्धित विधियाँ है) का सामान इसके अतिरिक्त होना अति आवश्यक है।"

इस प्रकार उलट-फेर की बातचीत करके वृद्ध महाशय ने अपना मन्तव्य स्पष्ट कर दिया था। उस घर के कर्ता-धर्ता यही महाशय माने जाते थे। मेरी सास के वे खानदानी चाचा थे, किन्तु भतीजी ने उन्हे आश्रय देकर पिता की तरह मान रखा था। जिसे काका कहते वही पूर्व दिशा कहलाती थी।

इस प्रकार लेन-देन की चर्चा चल रही थी। पिताजी की इच्छा थी कि जो कुछ करना-धरना है वह एक साथ निश्चित कर लिया जाय। लडके वाले अपनी बात पर अडे थे। दहेज के तीन सौ रुपए, मान-सम्मान और अन्य बातो के लिए उनका आग्रह था। पिताजी कुछ आना-कानी कर रहे थे। और मजे की बात तो यह थी कि पिताजी दादाजी को पत्र लिखने अथवा उनसे कुछ पूछ-ताछ करने का घर मे उल्लेख भी नही कर रहे थे। आखिर एक दिन माँ ने पिताजी से स्पष्ट शब्दो मे कहा, "दादाजी को बुलवा लिया जाय और उनके द्वारा ही सब बातो को निश्चित करवा लिया जाय। अब तक उन्हे पत्र तक नही भेजा गया—वे क्या कहेगे, और लोग-बाग भी तो कल को मजाक उडायँगे।" आज तक माँ ने इतने स्पष्ट शब्दो मे पिताजी से कभी कुछ नही कहा था। इन दिनो वह कुछ चिडचिडी-सी हो गई थी। इसलिए ऐसी ही कुछ बात कह देती थी, किन्तु पिताजी को उसकी बात बुरी नही लगती थी। किन्तु माँ की आज की बात का ढग कुछ और ही था। दिन-प्रतिदिन उसके बर्ताव मे तथा बोल-चाल मे निर्भीकता आ रही थी और तदनुसार पिताजी के स्वभाव मे भी परिवर्तन होता जा रहा था। माँ की

बात सुनकर पिताजी ने कहा, "हाँ, हाँ, ऐसा ही होगा" और उन्होने दादाजी के नाम एक लम्बा पत्र लिखकर भेज दिया। दो-चार दिन पहले दादी ने भी पत्र लिखने का अनुरोध किया था किन्तु उत्तर मे पिताजी ने कहा, "आज तीन महीने हो गए, उन्होने एक भी पत्र नही भेजा। मेरे बारे मे उनका जब इस प्रकार का रुख है तो मैं उन्हे क्यो पत्र लिखूँ ? उन्हे मेरी आवश्यकता नही तो मुझे क्या पडी है ?" बेचारी दादी अधिक क्या कह सकती थी। वह चुप हो गई। दिल मसोस-कर बैठी रही। उसका दुख माँ से नही देखा गया और माँ ने पिताजी को पत्र लिखने के लिए कहा। माँ का कहना पिताजी ने तत्काल मान लिया। मानो माँ की हर बात का पालन करने का उन्होने निश्चय कर लिया था। आश्चर्य की बात अवश्य है, किन्तु पिताजी दादाजी को पत्र लिखना नही चाहते थे। इतना ही नही वे विवाह हो जाने तक उन्हे सूचना भी नही देना चाहते थे। प्रत्यक्ष मे पिता के साथ उनका व्यवहार इस प्रकार का था। अस्तु। माँ के कहने से ही क्यो न हो उन्होने दादाजी को शीघ्र चले आने के लिए लिख दिया। इसके अतिरिक्त माँ ने भी अपनी ओर से भैया के हाथो पत्र लिखवाकर भेज दिया था। क्योकि दादाजी के स्वभाव से वह पूर्ण परिचित थी। पिताजी का पत्र पाकर वे आयेगे इस बात का उसे भरोसा नही था। इसलिए अपनी ओर से उसने एक गौरवपूर्ण पत्र लिखकर भेज दिया था। दादाजी का आगमन दो मे से किस पत्र को अधिक महत्त्व देकर हुआ था, यह निश्चित रूप से नही कहा जा सकता। किन्तु आगे चलकर पिताजी के साथ उनका जो झगडा हुआ था तब उन्होने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया था कि, "इसीलिए तो तुम्हारा पत्र आने पर भी मैं नही आ रहा था किन्तु जब बहू का पत्र मिला तो मैंने यहाँ आना आवश्यक समझा।" और विशेष आश्चर्य की बात तो यह थी कि दादाजी के इस प्रकार कहने पर झगडा अपने-आप समाप्त हो गया था।

पत्र पाकर दादाजी पूना आ गए। उनके आ जाने पर लड़के वाले काकाजी के साथ उनकी खूब घुट गई और सब बातो का निर्णय हो गया। तै किया गया कि दहेज मे ढाई-सौ रुपए दिये जायँ, पौन सौ रुपए समधिन के मान-सम्मान मे खर्च किये जायँ, और इसके अतिरिक्त कपडा, साडियाँ पगडी, दुपट्टे आदि दिये जायँ। क्या-क्या दिया जाना था इसका ब्यौरा अब

मेरे ध्यान मे नही है और न उसके वर्णन की विशेष आवश्यकता है। महत्त्व की बात यह है कि, इस निर्णय से पिताजी को सतोष नही हो रहा था। उन्होने कहा, "इतना व्यय करने की मुझमे सामर्थ्य नही है और फिर मेरी सम्मति लिये बिना इस प्रकार निर्णय क्यो किया गया?" पिताजी के इतना कह देने पर झगडा आरम्भ हो गया। दादाजी ने अपने-आपको भला-बुरा कहकर चीखना-चिल्लाना शुरू कर दिया। पिताजी भी इन बाता मे उनसे पीछे रहने वालो मे से थोडे ही थे। दोनो का मूल स्वभाव उमड पडा। दादी भीतर चौके मे थी, भय से वह काँप उठी, माँ भी रोने लगी। माँ को इस बात का दु ख था कि उसीने पत्र लिखकर दादाजी को बुलाया था। वह समझ रही थी कि इस झगडे की जड वही है। हम बच्चे भयभीत होकर चुप खडे थे। वाद-विवाद जोर पकड रहा था। दादाजी ने कडकते हुए कहा, "रहने दे अपनी प्रतिष्ठा को। मुझे उसकी आवश्यकता नही। मैंने जो निर्णय किया है उसे अब तेरा बाप भी नही बदल सकता। मैं तो बहू के लिए आया हूँ—अपनी जान गिरवी रख दूँगा, किन्तु अपनी बात से पीछे नही हटूँगा।"

पिताजी का तात्पर्य यह नही था कि दिए गए वचन को भग कर दिया जाय, अथवा विवाह मे कम खर्च किया जाय। किन्तु पिता-पुत्र का प्रेम अजीब था न! एक का लिया हुआ निर्णय दूसरे को कैसे मान्य हो सकता था? मुझे विश्वास है कि यदि दादाजी न आते तो पिताजी भी यही निर्णय करते, किन्तु बात तो यह थी न कि, "तुम कौन होते हो मना करने वाले, मैं मना करूँगा"—और इसी कारण झगडा हो गया था।

इधर विवाद रग पकड रहा था और उधर चक्कर आने से माँ धडाम से नीचे गिर पडी थी। दिन-प्रतिदिन उसकी हालत नाजुक होती जा रही थी और ऐसी कोई बात होने पर मानसिक ताप से उसे चक्कर आने लगते थे। माँ को नीचे गिरते देखकर मैं जोर से चिल्लाई। विवाद एक तरफ रहा और सब लोग भागकर माँ के पास आ गए। दादाजी ने उसे सम्हाला। पिताजी ने उसकी आँखो को पानी लगाया। दादी भी चौके के रेशमी वस्त्रो को बदलकर वहाँ आ गई। सुन्दरी चीख रही थी। दादाजी पिताजी से कह रहे थे, "देखा। यह सब तेरे ही प्रताप से है। समझा!" और इसी समय लडके वालो के यहाँ से वे वृद्ध महाशय मुहूर्त आदि निश्चय करने के लिए हमारे

घर आए थे। उनके साथ पुरोहित और जोशी भी थे। साथ मे 'बनी' भी आई थी। वे लोग बाहर खडे थे और समाचार देने के लिए केवल बनी घर मे आई थी। और घर मे यह प्रकार चल रहा था। बाहर जाकर भैया ने उन लोगो से घर मे आने के लिए कहा और आदरपूर्वक उन्हे बैठक मे बिठाकर वह दादाजी को सूचना देने के लिए आया। अब माँ भी होश मे आ गई थी। उसे सुलाकर सब लोग बाहर चले गए। उस बेचारी बनी की ओर किसी ने ध्यान भी नही दिया। वह आई थी वधू की चोली और चूडी ले जाने के लिए, जिसके नाप से वधू के लिए वस्त्र-आभूषण आदि बनाए जा सकें, किन्तु माँ की बेहोशी के कारण किसी ने उसकी ओर ध्यान नही दिया। वह क्रोध से पैर पटकती फुनफुनाकर जाना ही चाहती थी। मैं बैठी हुई माँ का सिर दबा रही थी। मुझे चाहिए था कि मैं उसे आदर के साथ बैठने को कहती। किन्तु मेरे सामने समस्या थी कि अब मैं उसे किस नाम से पुकारूँ? इसके पहले मैं उसे 'बनी, बने, बनियाती' इस प्रकार चाहे जो नाम लेकर पुकारा करती थी, किन्तु अब वह मेरी ननद बनने जा रही थी, इसलिए अब उसे 'बनू दीदी' कहकर ही पुकारना होगा। किन्तु ऐसा कहने मे आपत्ति यह थी कि अभी मेरा विवाह नही हुआ था और मैं स्वय भी कुछ कम गर्वीली थोडे ही थी। एक बार जिस लडकी को मैंने भला-बुरा कह दिया, जिसके साथ झगडा किया था उसे अब 'आप' कहकर सम्बोधन करने मे मेरे लिए बहुत बडी कठिनाई थी। 'रस्सी जल जाय किन्तु ऐंठन नही जाती' यह कहावत यथार्थ है। माँ के हर समय के उपदेश से और प्रत्यक्ष उदाहरण से यद्यपि मैंने बहुत-कुछ नम्रता सीख ली थी फिर भी स्वाभाविक ऐंठ कभी-कभी उभर ही आती थी। यदि ऐंठ ही थी तो फिर मुझे कहना चाहिए था कि, "क्यो बने, कैसे आई?" किन्तु मैंने यह भी नही कहा। इसलिए कि वह नाराज हो जायगी और आगे चलकर उसका बदला चुकायगी। इस प्रकार मन मे विचार आते रहे और इसका परिणाम यह हुआ कि मैंने उसकी कोई पूछ-ताछ नही की। कुछ देर तक वह खडी रही और फिर पैर पटकती, फुनफुनाती वह दादी के पास चली गई। दादी से उसने कहा, "मैं यमी की चोली और चूडी लेने के लिए आई हूँ। देना है या नही?" उसका यह

अटपटा भाषण सुनकर दादी ने कहा, "बने, मुझे तो मालूम भी नही कि तुम कब आई ? हम लोग तो अपनी विपदा मे पडे थे। जरा बैठो ! मैं—"

"मैं यहाँ बैठने नही आई हूँ ! मैं कब से आई हूँ, किन्तु एक मनुष्य भी मेरी ओर ध्यान नही देता, न मेरी पूछ-ताछ करता है ! क्या हम तुम्हारे घर भीख माँगने आए है ? चोली देना हो तो दो, नही तो मना कर दो। व्यर्थ की बाते न बताओ !"

इस पर बेचारी दादी क्या कह सकती थी। अपनी ओर से उसे जो कुछ कहना था उसने कहा, किन्तु उससे क्या बनता था। आखिर उसने मुझे पुकार कर कहा, "अपनी एक चोली इसे लाकर दे दे !" मैंने चोली लाकर बनी के सामने रख दी। गलती यह हुई कि मैने उसे उसके हाथ मे नही दिया। झटके से उठती हुई बनी ने कहा, "क्या किसी भिखारिन के सामने फेक रही हो ? बडी अकड रही हो ? फिर भी—" इतना कहकर वह रुक गई और दादी की ओर देखते हुए उसने कहा, "जा रही हूँ—बडी कृपा की आपने जो चोली दे दी !" दादी ने मुझे उसके लगाने के लिए रोली की डिबिया लाने को कहा, किन्तु बनी नही ठहरी। बडबडाती हुई चली गई। बैठक मे पुरुष बैठे थे, वहाँ जाकर "मैं जा रही हूँ काकाजी—" बस इतना ही उसे कहते हुए मैंने सुना। रोली की डिबिया लेकर मै उसके पीछे दौडी, किन्तु तब तक वह चली गई थी। दरवाजा जोर से पटकने की आवाज से समझा जा सकता था कि वह किस अवस्था मे गई थी।

पुरुष-मडली ने मुहूर्त निश्चित किया। मुहूर्त आठ दिन के भीतर ही था।

अपना विवाह निश्चित हो जाने पर मैं खुशी से फूली नही समा रही थी। आज तक अपनी सहेलियो का विवाह होते देखकर और उन्हे सज-धज के साथ मटकती फिरती देखकर मुझे लग रहा था कि मेरा विवाह कब होगा ? सावन के महीने मे जब दुर्गी के घर मगला गौरी के पूजन की धूम-धाम मची थी और जब मैंने उसकी उछल-कूद को देखा था तब मुझे बहुत खेद हुआ था। एक बात हो तो कही जाय। वट पूर्णिमा को दुर्गी बड की पूजा करने गई थी। सावन के सोमवार को उसने शिवजी पर 'शिवामूठ' (शिवजी पर मुट्ठी-भर चावल चढाए जाते है) चढाई थी, यह सब देखकर मेरे मन मे

विचार आया करता था कि दुर्गी की तरह मैं मन्दिर मे कब जाऊँगी, हाथ मे छोटी-सी टोकरी लेकर फूल-पत्री एकत्रित करने बगीचो मे कब घूमूँगी ? यही सब सोचकर मुझे उस समय खेद होता था। किन्तु अब यह सब-कुछ मुझे करना है, यह सोचकर मुझे आनन्द अनुभव हो रहा था।

जिस दिन की तिथि निश्चित हुई थी उस दिन दुर्भाग्य से दुर्गी अपने ससुराल गई थी। उसके अभाव मे मेरे मन मे जो आनन्द के उबाल आ रहे थे उन्हे व्यक्त करने का मेरे पास अन्य साधन नही था। आखिर जब कोई नही मिला तो शाम को चार बजे जब नौकरानी काम करने आई तो उसे मैंने सारा वृत्तात सुना दिया। उस बुढिया ने घर मे जाकर जब मेरी बात को दुहराया तब तो दादी और भैया ने मुझे चिढा-चिढाकर परेशान कर दिया था। जरा-सी छोकरी सुन्दरी भी मेरा मजाक उडाकर हँस रही थी। शाम को दादाजी और पिताजी जब भोजन करने के लिए बैठे तो दादी ने उनसे कहा, "आज घर मे एक व्यक्ति खुशी से फूला नही समा रहा है। रखमाबाई नौकरानी भी उसकी खुशी से पूर्ण परिचित हो गई है।" यह सुनकर मैं लज्जा के मारे गडी-सी जा रही थी। मैं आधा भोजन करके ही उठ गई और माँ के सिरहाने जाकर बैठ गई। माँ खुद ही परेशान थी और मैं उसके सिरहाने बैठी सिसकियाँ भर रही थी। जब दादाजी ने कडककर मुझे पुकारा, तब हाथ-मुँह धोकर मैं चुपचाप बिस्तरे पर जाकर लेट गई। सुबह होते ही दुर्गी का पता लगाने के लिए भागकर उसके घर गई। सुबह वह ससुराल से लौटकर कैसे आ सकती थी, किन्तु मैंने उसकी माँ और दादी के हाथ-पैर जोडकर उसे बुलावा भिजवा दिया था। बुलाने को जाने के लिए उनके घर मे कोई नही था इसलिए दादी से कहलवाकर मैंने अपनी रखमाबाई नौकरानी को दुर्गी को बुलाने के लिए भिजवा दिया था। किन्तु दुर्भाग्यवश दुर्गी की सास ने रखमाबाई को यह कहकर लौटा दिया कि, "दुर्गी को अभी तीन दिन तक नही भेजा जायगा—यहाँ आई न आई और बुलावा काहे का।" सदेशा सुनकर मुझे बहुत दु ख हुआ था। क्योकि इस समय "दुर्गी नही तो ससार मे मेरा कोई नही" इस प्रकार मेरी मनोदशा हो रही थी। किन्तु क्या किया जा सकता था। दुर्गी तो पराधीन थी। अपने-आप तो आ नही सकती थी। और उसे जितना मैं चाहती थी उतना सभी लोग तो चाहते भी नही थे।

ठीक है, दो दिन के बाद आ जायगी कहकर सब लोग चुप हो गए थे। किन्तु मुझे उदास देखकर दुर्गी की माँ को मुझ पर दया आ गई। यह स्वय दुर्गी की ससुराल गई और उसे दस-पन्द्रह दिन रहने के लिए अपने साथ ले आई। वैसे देखा जाय तो विवाह-कार्य हमारे घर था—उसे स्वय जाकर अपनी लडकी को लिवा लाने की क्या आवश्यकता था ? किन्तु वह स्त्री व्यर्थ के मान-सम्मान की भूखी नही थी। हम दोनो परिवारो मे विशेष घनिष्ठता होने से हमारे घर को वह अपने घर-जैसा मानती थी। दुर्गी के आ जाने से मैं खुश हो गई। घण्टो हम दोनो मे बात-चीत होती रही। क्या बातचीत होती रही, इसे हम ही जान सकती थी। उस दिन रात मे दुर्गी मेरे ही बिस्तरे मे सोई थी। मैं अवर्णनीय आनन्द मे विभोर हो उठी थी। विवाह-कार्य को सुखपूर्ण, आनन्द और चार दिन के आमोद-प्रमोद का साधन माना जाता है किन्तु इस विवाह के कारण हम लडकियो पर कैसा उत्तरदायित्व आ पडा है इसकी हमे जरा भी कल्पना नही रहती। जिस प्रकार हम अपनी गुडियो का ब्याह रचाते है, उसी प्रकार हमारे बडे-बूढे हमारा ब्याह कर देते है। हम अपनी गुडियो को यहाँ से वहाँ उठाकर ले जाती है, हममे बोलने-चालने की शक्ति होने से हमारे बडो को हमे उठाकर यहाँ से वहाँ रखने की आवश्यकता नही होती। हमे केवल आदेश मिलते ही हम किसी यात्रिक गुडिया की तरह उनके आदेशो का पालन करती है। हम क्या कर रही है और उस करने का क्या महत्त्व है, इसे जितना गुडिया जानती है उतना ही हम जानती है। गुडियो की और हमारी एक-सी अवस्था रहती है। नही, गुडियो से भी हमारी अवस्था बुरी होती है। क्योकि गुडिया सुख-दु ख की भावना से परे होती है। हमारी कृतियो के भोग भोगना गुडियो के भाग्य मे नही होता। किन्तु हमारे बडो के द्वारा जो किया जाता है उसका परिणाम हमे आगे चलकर भोगना पडता है। हम जीवित गुडियो की अवस्था बहुत ही दयनीय होती है। हम आँखे रहते हुए अधी, कान होते हुए बहरी, जीभ होकर भी गूँगी, हाथ होकर थोथी और पैर होकर लगडी बनी रहती हैं। वर की अवस्था भी हमसे भिन्न नही होती। हम केवल अबोध बालक, अपना भला-बुरा समझने की बुद्धि हममे कैसे हो सकती है। विवाह का आमोद-प्रमोद हमे दिखाई देता है किन्तु उसके बाद आने वाली सकट-पूर्ण परम्परा को हम नही देख पाती। मेरी एक सहेली, जिस विवाह-काय

मे चार-पाँच हजार रुपये खर्च किये गए थे, जिसका शरीर सोने के आभूषणो से लदा था, वह आज दूसरो के घर मेहनत-मजदूरी करके अपना पेट पाल रही है। विवाह के समय उसके पति की आयु बारह-तेरह वर्ष की होगी। देखने में सुन्दर किन्तु बडा हो जाने पर इतना भाग्यहीन निकला कि घर की एक लाख की चल-अचल सम्पत्ति को उसने पाँच वर्ष मे फूँक दिया और अन्नान्न दशा होकर खाक छानता फिरा। बेचारी पत्नी इतनी भली औरत थी कि दूसरो के घर मेहनत-मजदूरी करके अपने पति का पेट पालती थी। माँ-बाप की इच्छा के अनुसार अबोधावस्था मे जो विवाह किये जाते हैं उनके परिणामस्वरूप मेरी उक्त सहेली का स्मरण हो आने से मैंने उसकी बात लिख दी है। ऐसी कई बातो का मुझे स्मरण हो रहा है—किन्तु अब उनका उल्लेख करना व्यर्थ है।

विवाह की तिथि निश्चित हो जाने पर अपनी दो बहनो को पत्र लिखकर आमन्त्रित करने के लिए माँ ने दादाजी को सुझाया था। परम्परा के अनुसार दादाजी ने सभी लोगो को पत्र लिखकर आमन्त्रित किया—एक मौसी को लिवा लाने के लिए उन्होने आदमी भी भेज दिया था। दूसरी मौसी मिरज, सागली की ओर कुछ दूरी पर रहती थी। किन्तु उसे अत्यादर पूर्वक आमन्त्रित किया गया था, जिससे विवाह के दो दिन पहले वह भी आ गई। मेरी दोनो मौसियो के कुल मिलाकर छः बच्चे थे। मिरज, सागली की ओर से जो मौसी आई थी उसकी तीनो लडकियाँ ही थी। दूसरी मौसी के दो लडके और एक लडकी थी। दादी के नाते मे विशेष परिवार नहीं था, एक चचेरा भाई था, किन्तु वह नही आ सका। तीन लडकियो वाली मेरी बडी मौसी थी। मेरी माँ सबसे बडी, उसके बाद गोदू मौसी और उसके बाद सखू मौसी। आई हुई लड़कियो मे एक मुझसे कुछ बडी और एक मेरी ही उम्र की थी। बाहर गाँव से अधिक मेहमान नही आए थे। अब हमारे घर ने ब्याह का रूप धारण कर लिया था। खूब धूम-धाम मची थी। घर मे लडकियो की सख्या सात से आठ हो गई थी। पिताजी के दो-चार मित्र हमारे घर आकर रहे थे। घर मे खाद्य-पदार्थ बनाये जा रहे थे। दादी ने बहुत सारी स्त्रियो को एकत्रित कर बारात का सामान बनवाना आरम्भ कर दिया था। विवाह-प्रसग की स्मृति से आज मेरा मन

उदास हो गया है फिर भी अपनी उदासी की ओर ध्यान न देखर कर्त्तव्य की दृष्टि से उसका वर्णन करना आवश्यक है ।

२२

घर मे विवाह की धूम-धाम मच रही थी । हम जिस मकान मे रहते थे वह वैसे भी विशेष बडा नही था और फिर उसमे हम दो किरायेदार रहा करते थे । किन्तु दोनो किरायेदार एक-दूसरे की सुविधा का ध्यान रखते थे । जगह के बारे मे झगडा तो स्त्रियो मे ही होता रहता है, किन्तु हमारे घर की स्त्रियो मे झगडे का कारण ही नही था । क्योकि हमारी दादी बहुत सीधी-सादी स्त्री थी और वही नमूना बहिना काकू का भी कहा जा सकता है । वह बुढिया काम-काज मे बडी तत्पर थी, किन्तु लडाई-झगडो से उतनी ही दूर रहा करती थी । उनकी बहू का मिजाज कुछ तेज था, किन्तु बहू ने भी हमारे घर वालो से कभी कोई झगडा नही किया । और झगडा किसके साथ होता ? दादी का वह हाल और माँ बीमार । वैसे भी माँ का स्वभाव बिलकुल झगडालू नही था । माँ ने तो झगडो को मिटाने के लिए ही जन्म पाया था । इस कारण हमारे पडोसियो का हम लोगो के साथ घर वालो-जैसा ही बर्ताव रहा करता था । इस समय मुझे माँ की चतुरता का एक उदाहरण ध्यान मे आ रहा है जिसे मैं कहना चाहती हूँ । मौसी के आ जाने के बाद दूसरे तीसरे दिन की बात है । घर की स्त्रियाँ अपने बाल सँवारने के लिए बैठी थी । माँ का कमरा हम सब लोगो के सम्मेलन का स्थान बना हुआ था । आते-जाते हर कोई उसके पास आकर बैठ जाता । यदि किसी को कोई वस्तु रखनी होती तो वह उसे माँ के कमरे मे पटक जाता और पुकारकर कह देता कि यह मैंने यहाँ रख दी है । इस कारण माँ का कमरा चाँदी के बर्तनो, थालियो, साडियो, दुपट्टे, पगडियो आदि समान।

की कोठी बन गई थी। और हम लोगो के खेलने का अखाडा भी वही कमरा था। जो आता था, वही उस कमरे मे एक बार झाँककर चला जाता था।

सुबह का समय था। मैं, मेरी मौसेरी बहने, मौसियाँ आदि माँ के कमरे मे बैठकर अपनी वेश-भूषा कर रही थी। इसी समय दुर्गी की माँ उस कमरे मे आ गई। उसे भी कघी-चोटी करनी थी, इसलिए माँ ने उससे कहा, "आओ, यही बैठकर अपने बाल गूँथ लो ! रोज तो अपने हाथो से गूँथती हो, आज मेरे हाथो से गुँथवा लो—देखो, कैसे गूँथती हूँ।" ऐसा कभी नही होता था कि मेरी माँ ने किसी से कुछ कहा और उसने नही माना। दुर्गी की माँ झट से बाल गुँथवाने बैठ गई। बैठते-बैठते उसने कहा, "बात ऐसी है यशोदा बाई कि मुझे किसी के हाथो की गई केश-भूषा पसन्द नही आती, इसलिए मैं अपने हाथो से ही कर लेती हूँ। तुम्हारे हाथो की गई मेरी केश-भूषा मुझे अत्यधिक भाती है, किन्तु प्रतिदिन तुम्हे कैसे कष्ट दे सकती हूँ ?" माँ दुर्गी की माँ के बाल सँवार रही थी और शेष सभी स्त्रियाँ अपने साज-शृगार पूर्ण हो जाने से नहाने के लिए नीचे चली गई थी। नहाकर मैं अपने कपड़े लेने के लिए जब माँ के कमरे मे आई तब माँ कह रही थी, "घर की मैं अकेली हूँ और फिर मेरी यह बीमारी—मेरा तो होना न होना एक-सा है। इसलिए अब तुम पर ही इस काम का भार है। यह समझो कि मैं नही हूँ और तुम्हे ही सब करना है।"

"ऐसा क्यो कहती हो ? तुम्हारी बहने आई है, सासूजी हैं, मदद करने के लिए मेरी सासूजी भी है—किस बात की कमी है ?"

"तुम्हारा कहना ठीक है। किन्तु समधी के घर आना-जाना, उनके घर की स्त्रियो मे बातचीत करना आदि सासूजी के बस की बात नही है। मेरी बहनो के लिए पूना नई जगह—यहाँ के रिवाजो से वे विशेष परिचित नही हैं। इसलिए तुम्हे ही विवाह का सब काम-काज देखना होगा। यदि मैं स्वय कुछ कर सकती तो फिर· ··· "

यह कहते ही माँ की आँखे छलछला आई। माँ की करुणाजनक अवस्था को देखकर दुर्गी की माँ की आँखो मे आँसू भर आए। सात्वना देते हुए उसने कहा, "यशोदाबाई, तुम किसी बात की चिंता न करो ! चार दिन के लिए मैं तुम्हारी बहन बनकर तुम्हारे घर मे ही अपना डेरा डाले देती हूँ।"

कुछ प्रसन्न होकर माँ ने कहा, "किन्तु अगुआ का क्या कर्त्तव्य होता है जानती हो ना ? कोई कुछ कहे, उसे चुप-चाप सब सहना पडता है। इतना भर तुम कर लो, फिर तो—हमारी गोदावरी का स्वभाव कुछ ऐसा ही है, इसलिए—किन्तु तुमसे कहने की क्या आवश्यकता है ? किसी बात की कभी को अपनी कमी मानकर उसे पूर्ण करने का तुम भरसक प्रयत्न करोगी, इसमे मुझे बिलकुल सन्देह नही है।"

मैं केवल इतना ही सवाद सुन पाई थी, फिर मैं नीचे चली गई थी। इस सवाद का परिणाम यह हुआ था कि उसी क्षण से दुर्गी की माँ हमारे घर मे बिलकुल हमारी माँ-जैसा व्यवहार करने लगी थी। विवाह का काम-काज उसने बडी मेहनत से किया। कई प्रकार के झगडे-झमेले होते रहे, किन्तु उनका अस्तित्व अधिक देर तक नही रहा।

विवाह का समग्र वर्णन करने के लिए किन-किन घटनाओ का उल्लेख किया जाय इसका निर्णय मैं नही कर सकती। विवाह-समारोह मे इतने लडाई-झगडे हुए थे कि यदि उन्हे कोर्ट मे उपस्थित किया जाता तो कोर्ट के लिए एक वर्ष का काम हो सकता था। झगडो के कारण हमारे घर के सब लोग त्रस्त हो उठे थे। हमारे दादाजी झगडालुओ के उस्ताद कहे जा सकते है, किन्तु उन्होने भी हार मानकर कहा था कि दुनिया मे इतनी झगडालू औरते हो सकती है, इसका मुझे अब तक ज्ञान नही था।

राम-राम। लडाई-झगडो की भी मर्यादा होती है। मेरी ममियाँ सासे, उनकी लडकियाँ और परिवार की अन्य स्त्रियो ने लडाई-झगडो का अनर्थ मचा रखा था।

* महाराष्ट्र मे विवाह-समारोहो मे स्त्रियो का भाग बहुत रहता है। हर बात पर विवाद उपस्थित हो जाता था। किसी का सम्मान करते अथवा हल्दी-कुकुम लगाते नारियल नही दिया गया तो हो गया विवाद का आरम्भ। हमारे यहाँ की किसी बात को अच्छा न कहने की जैसे लडके वालो ने कसम ले रखी थी। सब औरतो पर इस बात का भूत सवार था कि वे वर-पक्ष की हैं और वधू-पक्ष को हर बात मे दबाना उनका कर्त्तव्य है। इन झगडो के कारण हमारे घर के किसी व्यक्ति को विवाह की खुशी नही थी। केवल मैं और मेरे साथ की चार-छै लडकियाँ अवश्य आनन्द से चहक रही थी। दादी,

मौसियाँ, दुर्गी की माँ और दादी आदि सब लोग लडके वालो की स्त्रियो के कटु शब्द सुनकर त्रस्त थी। अपनी लडकी का विवाह हो रहा है इस कल्पना से माँ के स्वास्थ्य मे कुछ सुधार हो रहा था, किन्तु इन झगडो के कारण अब दुगना बिगाड हो गया था। अपना कमरा छोडकर वह बाहर भी नही आ पाती थी। उन औरतो ने एक-दो बार माँ से भी झगडा किया था। तब उकताकर एक बार दुर्गी की माँ ने कहा, "वे बेचारी अपनी बीमारी से त्रस्त है—उनके साथ झगडते हुए तुम्हे कुछ सोचना चाहिए।" इतना कहते ही फिर क्या था। मेरी छोटी ममिया सास को जैसे आग छू गई हो। वे सम्मान मे दी गई चीजो को छोडकर तीर की तरह अपने घर चली गई।

दूसरे दिन बारात के साथ मैंने गृह-प्रवेश किया था। घर मे मेरे सामने ही स्त्रियो मे बक-झक चल रही थी। "हमारी कोई प्रतिष्ठा नही रखी गई। जो आता था वही हमे खरी-खोटी सुनाया करता था। आज तक किसी ने हमारी लाज नही ली थी। अब इनकी लडकी घर लाने से हमारा खासा उद्धार किया जा रहा है। हमे लाज-शरम नही है, हमे अक्ल नही है, हमे कोई थप्पड मारने वाला नही है—तो आकर हमे जूते जमाओ!" इस प्रकार अनर्गल उद्गार उन लोगो के मुँह से निकल रहे थे। उस दिन मेरे साथ कोई बात नही कर रहा था। वारु दीदी, बनू दीदी आदि मेरी ननदो ने मुझे और मेरी सहेली दुर्गी को ताने मार-मारकर क्षत-विक्षत कर दिया था। इन आघातो और अब अपना घर छूट गया इस कल्पना से मुझे असीम दु ख हो रहा था। मैं एक कोने मे जाकर बैठ गई और रोने लगी। शायद कुशी दीदी ने मुझे देख लिया और जाकर वारु दीदी से रपोट कर दी। वारु दीदी ने आकर मुझे देख लिया और फिर बनू दीदी को जाकर हाल सुनाया। बनू दीदी मेरे पास आई और अपनी नकटी नाक को सिकोडते हुए मुँह बिगाडकर उन्होने मुझसे कहा, "ओ मेरी मैया। भाभी जी, आप रो क्यो रही है ? किस बात की कमी पड गई ? क्या आपको हमारा घर विष के समान लगता है ? किन्तु अब आपको जिन्दगी तो इसी घर मे बितानी है।"

बीच ही मे वारु दीदी ने कहा, "देखो बनू दीदी, भाभीजी बडी नाजुक नारी हैं। उन्हे तो जरा-सी बात भी चुभ जाती है। तुम उनसे कुछ न कहो!"

कड़ककर बन्नू दीदी ने कहा, "मुझे क्या पडी है। मेरी बला से। और यदि कुछ कहूँ भी तो मैं इस घर की बेटी हूँ—बहू नही।"

उत्तर मे वारु दीदी ने कहा, "क्या तुम ही इस घर की बेटी हो और मैं नही हूँ ?"

मेरा रोना एक तरफ रहा और उन दो बहनो मे विवाद खडा हो गया। वे एक-दूसरे को जली-कटी बाते सुना रही थी। बनू दीदी ने अपनी बडी बहन को कोई भद्दी बात सुना दी और वारु दीदी ने उसे एक तमाचा जमा दिया। और दोनो ही रोने लगी।

यह था अपनी ससुराल का पहले दिन का मेरा अनुभव। अपनी ननदों और सासो का आपसी व्यवहार देखकर तथा उनकी जली-कटी बाते सुनकर मेरा मन उद्विग्न हो रहा था। इस घर मे अपना निभाव कैसे होगा, इस चिंता से मैं व्याकुल हो उठी थी। किन्तु अपना विवाह होते देखकर लडकियो को जो आनन्द अनुभव होता है वह मुझे भी हुआ था। जिस दिन मुझे हल्दी लगाई गई थी उसी दिन से, जिनके साथ मेरा विवाह हो रहा था उनके बारे मे मेरे मन मे विचार आ रहा था। मैं जब गौरीशकर का पूजन कर रही थी तब मुझे इस बात की कल्पना भी नही थी कि भविष्य के गर्भ मे क्या छिपा हुआ है ? विवाह-समारोह के आमोद-प्रमोद मे मैं अपने-आपको भूल-सी गई थी। वह विचित्र वेश—अष्ट पुत्री और चोली, माथे पर लगाया गया कुकुम का लेप और उस पर चिपकाये गए चावल, हरी चूडियाँ, बिना कघी किये, किसी तरह लपेटा हुआ बालो का जूडा, नाक मे पहनी छोटी-सी नथ, पैर की उगलियो मे पहने हुए बिछुए—उस मगल वेश को अपना ऐश्वर्य मानकर—वास्तव मे लडकी का वही सर्वश्रेष्ठ वैभव होता है। अन्य वैभव अथवा माँ बाप ने चाहे जितना धन क्यो न दिया हो, किन्तु लडकी का मुख्य वैभव उतना ही होता है। उस मगल वेश को पहनकर, इधर-उधर ठुमकती चलने मे लडकियो को जो सुख मिलता है उसकी कल्पना दूसरो को नही हो सकती। सहेलियाँ और बडे-बूढे तक मजाक करते है, कहते है, "जाओ, गौरीशकर के पास बैठकर भक्ति पूर्वक पूजन करो, कहना 'मुझे अच्छा पति प्राप्त हो।' पूजन नही हुआ तो अच्छे पति की प्राप्ति नही होगी।" फिर हम भी अपनी साडी को बार-बार सम्भालकर, नाक की नथनी को धीरे-धीरे घुमाती हुई अपनी

सहेलियो से कहती हैं, "हटो जी, तुम तो हमेशा हँसी-मजाक किया करती हो।" यह केवल ऊपरी दिखावा होता है। मन चाहता है कि इसी प्रकार हँसी-मजाक होता रहे। टीका और भावरे पडे थे तब तो मन बाँसो उछल रहा था। 'वे' घोडे से उतरकर घर मे आ गए थे। जहाँ कन्या-दान की विधि होनी थी वहाँ पीताम्बर धारण करके वे अब वेदी के समीप आकर बैठे होगे, इस कल्पना से मन उन्हें देखने के लिए आतुर हो उठा था। लग रहा था कि चुपके से दरवाजे की आड से उन्हे झाँककर देख लूं। किन्तु ऐसा करना असम्भव था, इसलिए चुपचाप मैं अपनी जगह पर बैठी रही। कुछ देर बाद कोई आकर मुझे विवाह-वेदी के समीप ले गया। किन्तु उस समय अतरपट का दुपट्टा तना था और उस दुपट्टे के पीछे मुझे ले जाकर खडा कर दिया गया था। बहुत देर तक मगलाष्टक उच्चारित होते रहे थे। किसी बात के लिए जब मन उत्सुक हो उठता है तब एक क्षण युग-जैसा प्रतीत होता है। यही अवस्था मेरी हो रही थी। सामने जो अतरपट का दुपट्टा तना था वह हटते ही मैं एक नजर उन्हें देख लूंगी ऐसा मैं निश्चय कर रही थी। मैं एकाग्र होकर उस दुपट्टे की ओर ताक रही थी। विवाह के लिए आमत्रित सैंकडो नर-नारी हम दोनो पर मगलाक्षतो की वर्षा कर रहे थे फिर भी मेरा मन एकाग्र हो रहा था। किन्तु अन्तरपट का दुपट्टा सामने से हटते ही मेरा निश्चय न जाने कहाँ बह गया और मेरी दृष्टि जमीन पर गड गई।

विवाह के सम्बन्ध मे की गई समस्त विधियो का मुझे स्मरण नही है, कुछ मनोरजक रस्मो का अवश्य स्मरण आ रहा है। जैसे, वर-वधू का एक दूसरे के हाथो को दूध लगाना और फिर उसमे धान की खीलें डालना, पुरोहित के मंत्रो को सुनकर मन-ही-मन उनका उच्चारण करने का प्रयत्न करना, कगनो के लिए कच्चा सूत वर-वधू के चारो ओर लपेटा गया था, मानो वर-वधू का जीवन उस कच्चे धागे से एकत्रित किया जा रहा था। मैं कुछ पीछे हटकर बैठी थी, हमारे पुरोहित जी ने हँसकर मुझसे कहा, "यमुना, जरा आगे सरककर बैठो, इस धागे से अब तुम्हे इनके साथ जकड-कर बाँध देना है।" यह सुनकर मुझे हँसी आ गई। इस समय मुसकुराकर 'उन्होने' भी तिरछी चितवन से मेरी ओर देख लिया था। फिर मगल-सूत्र—सुहाग-चिन्ह—पति के हाथो पत्नी के गले मे बाँधने की विधि की

गई। उस समय उस पाजी दुर्गी ने मेरा जो मजाक उडाया था उसके स्मरण से आज भी मन मे गुदगुदी मचती है। मेरे समीप आकर लाज-शरम को ताक मे रखते हुए दुर्गी ने कहा, "यमे, यह क्या हो रहा है ? तुम्हारे गले मे किसने हाथ डाला है ? और इतने लोगो के सामने ? तुम्हे कुछ लाज-शरम है या नही ?" दुर्गी की बकवास चल रही थी और उसे सुनकर अन्य लोग हँस रहे थे। सहेलियो की हँसी से सारा वातावरण गूँज रहा था। उसकी बातचीत सुनकर मैं लज्जा से गडी जा रही थी। मुझे गुस्सा आ रहा था। सोच रही थी कि उसके मुँह पर एक तमाचा जमा दूँ। किन्तु इसका आशय यह नही कि उसका चिढाना मुझे पसन्द नही था—वह मुझे बहुत पसन्द था। तब इस विरोध का प्रकार देखिए—उसका मज़ाक मुझे भाता था और गुस्सा भी आ रहा था। विशेषत उसके उद्गारो को सुनकर, यह ढीट लडकी कौन है यह देखने के लिए जब 'उन्होने' मुस्कराकर तिरछी नजर से उसकी ओर देखा तब तो मैं खुशी से फूली नही समा रही थी।

हवन के पश्चात् 'सप्तपदी' की विधि होती है—उस समय उन्होने जब मेरा हाथ पकडा तब मेरी सहेलियो ने हास्य-विनोद की हद्द कर दी थी। उनके मित्रो ने भी खूब मजाक उडाया। कोई कहता था, "हुँ, जरा धीरे, नही तो महाशय जी, दूसरे की लडकी को कही गिरा देंगे।" दूसरा मित्र कहने लगा, " भई वाह ! विवाह की विधि को अभी एक घटा भी नही हुआ और आप क्या श्रीमतीजी का हाथ पकडकर घूमने जा रहे है ?" तीसरे ने चुटकी ली, "क्यो नही, भई वे तो बडे सुधारक हैं न ?" यह सुनकर चारो ओर से हास्य-रस का फव्वारा फूट पडा। मैं इस सम्भाषण का मर्म नही समझ पाई थी, क्योकि 'सुधारक' किसे कहते है यह मैं नही जानती थी। इसके उपरान्त नक्षत्र-दर्शन आदि धार्मिक विधियो से छुटकारा पाने पर पगत मे वर-वधू एक ही थाली मे भोजन करने के लिए बैठे थे और फिर आपस मे एक-दूसरे के मुँह मे निवाला देने का मनोज्ञ कार्यक्रम सम्पन्न हुआ था। इसके बाद 'मुँह दिखाई' की रस्म और भी मजे की थी। 'मुँह दिखाई' मे वधू को सास के हाथो आभूषण चढाए जाते हैं और फिर वहाँ एकत्रित सब बडी-बूढी स्त्रियो की गोद मे वर-वधू बैठते हैं और स्त्रियाँ उन दोनो के मुँह मे मिश्री का 'डला' रखती हैं। प्रत्येक आदरणीय महिला के हाथों सम्भवत:

सेर-भर मिश्री हम दोनो ने खा ली होगी। मुझे जो अलकार चढाए गए थे वे विशेष अधिक नही थे। कगनी, पाटले आदि आवश्यक अलकार ही थे। जेवरो की कमी से मुझे कुछ खेद हुआ था। विशेषत हमारे यहाँ की स्त्रियाँ "इतना दहेज देने पर केवल इतने ही जेवर" कहकर जब काना-फूँसी कर रही थी तब उसे सुनकर मुझे अधिक दु ख हुआ था। दादी की आँखो मे निराशा से आँसू उमड आए थे। आखिर सब लोगो ने उसे सात्वना देकर कहा, "इसमे बुरा मानने की क्या बात है। हमने जेवरो को देखकर थोडे ही अपनी लडकी दी है ? लडका देखो कैसा होनहार है। अरे, पाँच-सात वर्षों मे जेवरो से लाद देगा", किन्तु दादी तो स्त्री थी। इन शब्दो से उसका समाधान नही हो रहा था। ढेर-भर जेवर होते—चाहे वे दूसरे के घर से माँगकर लाए हुए ही क्यो न हो, कौन देखने जाता है—तो उसे सतोष होता। आगे चलकर लडका कमाई करेगा, फिर यो होगा और त्यो होगा—यह सब किसने देखा है—यह थी दादी की विचार-धारा। वैसे भी हर स्त्री को यही चाह रहती है कि उसकी लडकी आभूषणो से लदी हो। जेवरो के अतिरिक्त उन्हें और कोई बात नही भाती। उनकी इस विचार-धारा को सदोष कैसे कहा जा सकता है। उनके विचार, उनकी शिक्षा और मन को हमेशा मारते रहने के उनके सस्कार आदि के अनुरूप ही उनकी विचार-धारा बन जाती है। जिस प्रकार बक्सो और अलमारियो मे सुन्दर और बहुमूल्य कपडे आदि रखे जाते है उसी प्रकार अपने वैभव का प्रदर्शन करने के लिए स्त्रियो को साधन रूप बनाया गया है। अपनी स्त्री को अलकार-आभूषणो से लादकर ब्याह-शादियो मे ले जाना और फिर वहाँ लोगो के मुँह से—"क्यो, ये फलाने की श्रीमती जी है ना ? वाह, खूब जेवर लदे है।" ऐसे उद्‌गारो को सुनकर जीवन कृतार्थ हुआ माना जाता है। फिर उन जेवरो पर उस बेचारी का कोई अधिकार क्यो न हो, उसे इसकी चिंता नही। आभूषणो से लदने मे ही उसे सतोष होता है। इसलिए दादी को दु ख होना स्वाभाविक ही कहा जा सकता है।

मुँह-दिखाई आदि समस्त विधियाँ समाप्त हो गई। दूसरे दिन फिर एक पगत दी गई। उसी दिन रात को शुभ मुहूर्त होने से बारात का प्रस्थान हुआ। बारात मे जाते समय मैं फूट-फूट कर रो रही थी। पालकी में बैठी सिसकियाँ

भर रही थी। किसी प्रकार अपने-आप पर काबू नही पा रही थी। अब फिर अपने मायके मे कब लौट सकूँगी, यह विचार मुझे अस्वस्थ कर रहा था। पालकी मे मेरे सम्मुख 'वे' थे, फिर भी मेरा रुदन चल रहा था। बचपन की दृष्टि से पालकी मे बैठने की मुझे खुशी होनी चाहिए थी, किन्तु मैं रो रही थी। झट से मेरे समीप आकर भैया ने कहा, "यमे क्या तुम पागल हो गई हो ? पालकी मे तुम्हारे सामने कौन बैठा है, इसका भी तुम्हें भान नही है ?" यह सुनकर धीमे स्वर मे उन्होने भैया से कहा, "वाह, गणपतराव जी ! इस समय यह कैसी डॉट-डपट। पालकी मे कोई गैर व्यक्ति थोडे ही बैठा है।" यह सुनकर मैंने उस समय क्या सोचा होगा ? जो सोचा होगा उसे कह नही सकती। हाँ, मेरा रुदन अवश्य रुक गया था।

बारात ससुराल पहुँचने पर प्रथा के अनुसार वहाँ की रस्मे सम्पन्न हुई। लक्ष्मी-पूजन के उपरान्त मेरा नामकरण किया गया। मेरा नाम सीता रखा गया।[1] मेरा नाम जानकर, इसके अनुसार 'उनका' नाम क्या हो सकता है इसकी कल्पना की जा सकती है। अपनी पुरानी परिपाटी के अनुसार उनके नाम का उच्चारण करना मैं ठीक नही मानती।

अब आचार और विधि सम्पन्न हो जाने पर 'वे' वहाँ से जाने के लिए खडे हुए, तब वारु दीदी ने उनके दुपट्टे का और मेरी साडी के आँचल का छोर पकडकर परम्परा के अनुसार गाँठ बाँध दी और हम दोनो को एक-दूसरे के नाम का उच्चारण करने के लिए आग्रह किया। उनके मित्रो ने भी नाम सुनाने के लिए आग्रह किया। हाँ, नही करते आखिर उन्होने मेरा नवीन नाम काव्य-पक्ति मे वद्ध करके उच्चारण किया।[2] मैंने भी काव्य-पक्ति में उनके नाम का उच्चारण किया। यह सब हो जाने पर मायके के लोग अपने घर जाने के लिए निकले। अन्य स्त्रियो के साथ मेरी माँ और मौसी भी बारात के साथ मुझे पहुँचाने आई थी। लडकियो को लेकर जब वे दोनो अपने

[1] महाराष्ट्र में विवाह के पश्चात् स्त्री को नवीन नाम धारण करना होता है।

[2] महाराष्ट्र में पति-पत्नी एक-दूसरे के नाम का उच्चारण विवाह एवं हल्दी कुंकुम-जैसे अवसरो पर काव्य-पंक्ति में करते हैं। जैसे—'वसंत में आई फूलों की बहार और 'सीता' है मेरे गले का हार।'

घर जा रही थी तब मुझसे नही रहा गया—मैं रो पडी। माँ ने मुझे बहुतेरा समझाया, आज साथ मे नही ले जाया जा सकता, कल अवश्य बुलवा लूंगी, ऐसा मुझे वचन दिया किन्तु मुझे विश्वास नही हो रहा था। मुझे लग रहा था जैसे अब अपने लिए मायके का दरवाजा हमेशा के लिए बन्द हो चुका। आखिर बडी ममिया सास ने जब मुझे ललकारा तब मैं चुप हो गई। माँ ने मेरे मुख को सहलाते हुए कहा, "देखो दुर्गी को तुम्हारे पास रख छोडा है, कहो तो और किसी को छोड जाऊँ।" इस प्रकार मुझे समझा-बुझाकर और अपने आँसुओ के आवेग को बलपूर्वक रोककर माँ घर चली गई।

निराश होकर मैं चुप हो गई और ससुराल वालो की टीका-टिप्पणी को सुनती रही। इतनी बडी हो गई फिर भी रोती है—सिर पर चढा रखा है, घर मे ही रहना था तो फिर विवाह क्यो किया' आदि। चुपचाप नियत स्थान पर जाकर, दुर्गी के गले मे बाँहे डालकर सिसकती हुई मैं सो गई। उस दिन की मेरी निद्रा ऐसी थी जैसे किसी स्वप्न के टूट जाने से मनुष्य जाग उठता है और फिर दूसरा स्वप्न देखने के लिए सो जाता है। मेरी दृष्टि से बचपन से लेकर विवाह तक का मेरा जीवन एक स्वप्न था और उस दिन से मेरे दूसरे स्वप्न का आरम्भ हुआ था। मेरी जीवनी का एक भाग समाप्त होकर उस दिन से दूसरे भाग का आरम्भ हुआ था।

आखिर मेरा विवाह हो गया। पिताजी, दादाजी, दादी और माँ भी कहने लगी कि हमारे सिर का बोझा हल्का हुआ। मेरा विवाह हो जाने से घर के सभी लोग प्रसन्न थे। खुशी का कारण हर एक की दृष्टि मे पृथक् था। दादाजी को इस कारण प्रसन्नता थी कि अपनी नातिन का विवाह अपने सामने, समयानुसार, यथा योग्य रूप से अपनी इच्छा के अनुसार हुआ, दादी को यह सोचकर विशेष खुशी थी कि मदिर मे मिलने वाली स्त्रियो से उसका पिंड छूटा था।

"नातिन का ब्याह कब कर रही हो ? अब तो वह बहुत बडी हो चुकी" ऐसे प्रश्नो का उसे जो हमेशा सामना करना पडता था उससे उसका छुटकारा हो गया। विवाह के चार-छै दिन बाद मुझे आभूषणो से लादकर वह अपने साथ तुलसी बाग के राम-मदिर मे लिवा ले गई थी। वहाँ दादी की परिचित

स्त्रियो के पैर छूते-छूते मेरी कमर टूट गई थी। और "आखिर हो गया हमारी यमी का ब्याह। हम लोग एक जजाल से छूटे। सिरका बोझ हल्का हो गया जेवर कुछ अधिक नही चढाये है, फिर भी पर्याप्त है।" ऐसी बाते सुन-सुन कर मेरे कान बहरे हो गए थे। तात्पर्य की बात यह है कि मेरा विवाह हो जाने से दादी को शान्ति और समाधान का लाभ हुआ था। माँ भी संतुष्ट थी। अपनी आँखो के सामने बेटी का विवाह होने की उसे तीव्र इच्छा थी और उस दिन रात को पिताजी ने उसे जो वचन दे रखा था उसके अनुसार सब यथा स्थित हुआ देखकर उसे अपरिमित सुख हो रहा था। यह सत्य है कि माँ की वृत्ति अतर्मुख होने से उसका मनोगत दादी-जैसा स्पष्ट रूप मे प्रकट नही हो रहा था। उसे खुशी होना स्वाभाविक ही था। उसे भली भाति मालूम था कि इस संसार मे उसका जीवन बहुत थोडा शेष है। इसलिए मेरा विवाह हो जाने से वह प्रसन्न थी। उसे प्रसन्न देखकर पिताजी को भी सतोष हुआ था। इन दिनो पिताजी के स्वभाव मे कुछ परिवर्तन हुआ-सा मालूम देता था मेरे तथा भैया के साथ भी उनका बर्ताव पहले-जैसा निष्ठुर नही था। इसलिए हमे भा अब उनका पहले-जैसा सदैव भय नही बना रहता था कभी-कभी परशुराम का अवतार प्रकट हो जाता था, तय सब लोग सिट्टी-पिट्टी भूल जाते थे, किन्तु यह अधिक समय तक नही टिकने पाता था। विशेषत माँ के कुछ कह देने पर उनका क्रोध तुरन्त काफूर हो जाता था। मेरा ख्याल है कि मूलत पिताजी का स्वभाव कोमल और स्नेह शील था—अथवा माँ की चतुरता से आगे चलकर वह इस प्रकार का बना हो—किन्तु दिन-प्रतिदिन उनके स्वभाव मे परिवर्तन होता जा रहा था। हो सकता है कि यौवन मे अपनी साध्वी स्त्री को बहुत दु ख दिया यह सोचकर अब उन्हे पश्चात्ताप हो रहा हो।

विवाह के आठ दिन पश्चात् सब बाराती अपने-अपने घर चले गए थे। मेरी मौसियो मे से एक मौसी को कुछ दिन और रुकने के लिए मेरी माँ ने विशेष आग्रह किया था। किन्तु मौसी ने उसकी बात को नही माना। उसे रुकने मे कोई असुविधा नही थी। वह अपने घर की स्वतन्त्र था। यदि अपते पति को लिख देती कि अमुक कारणवश मुझे यहाँ रुकना पडा, तो कोई आपत्ति नहीं हो सकती थी। किन्तु "मेरा यहाँ निभाव नही हो सकता" कहकर वह चली गई। आगे चलकर मालूम हुआ था कि इतने बड़े काम मे उसकी किसी ने ठीक

किन्तु "इस समय तुम जाओ, कार्य समाप्त होते ही तुम्हे वापस भेजने की शर्त पर तुम्हारे पति ने तुम्हें यहाँ भेजा था। इस समय तुम जाओ, पत्र लिखकर, यदि उनकी सम्मति हो, तो मैं तुम्हे शीघ्र ही बुलवा लूंगी' इस प्रकार समझा-बुझाकर माँ ने उसे उसके घर भेज दिया था। इस घटना का उल्लेख करने का कारण केवल मनुष्य-स्वभाव के उदाहरण दिखाना ही था। गोदू मौसी मेरी माँ की सगी बहन होकर भी कटु वचन कहकर अपने घर चली गई थी और दुर्गी की माँ तीखे स्वभाव की होकर भी मेरी माँ को अपनी बहन-जैसी मानती थी और उसका कहा मानती थी। माँ से उसे गहरा प्रेम हो गया था। पडौस के लोग माँ से कहा करते थे, "न जाने तुमने कौन-सा जादू फेर दिया है, नही तो ये किसी के काम नही आयगी।" तात्पर्य यह है कि सब बाराती अपने-अपने घर चले गए।

२३

सब लोगो के अपने-अपने घर चले जाने पर लगभग आठ दिन तक माँ का स्वास्थ्य ठीक रहा। इतना ठीक रहा कि हम लोगो को आशा हो गई थी कि वह अब बिलकुल ठीक हो गई है। किन्तु क्षय के रोगियो के बारे मे देखा गया है कि कुछ दिन के लिए उनकी तबियत ठीक मालूम होती है तो शीघ्र ही उनकी हालत इसके विपरीत हो जाती है। वर्षा-काल मे जरा-सी धूप देखकर "अब बादल फटकर धूप निकल आयगी, इस बात की अपेक्षा करना और क्षय के रोगी के स्वास्थ्य मे जरा सुधार देखकर 'अब वह भला चगा हो जायगा' ऐसी आशा करना अन्त मे निष्फल ही सिद्ध होता है। तबियत मे कुछ सुधार देखकर यह लक्षण ठीक नही ऐसा समझना चाहिए और विशेष दक्षता से रोगी की देख-भाल करनी चाहिए। माँ के बारे मे यही हुआ। अपनी पुत्री का विवाह अपनी आँखो

के सामने होता देखकर उसकी प्रकृति में जो सुधार हुआ था वह स्वाभाविक प्रतीत होता था। हम लोग इस बात को भूल गए थे कि वह बीमार है। किन्तु पन्द्रहवे दिन ही इसके विपरीत प्रहार हुआ था। उस दिन माँ को तीव्र ज्वर चढ आया। बुखार बहुत तेज था, शरीर को हाथ लगाते ही मालूम होता था, जैसे हाथ जल रहा है।

माँ बहुत दिन से बीमार थी और हमेशा उसे बुखार आया करता था, किन्तु उस दिन का बुखार कुछ विलक्षण ही था। पिताजी के एक मित्र डॉक्टर थे। वे दिन मे दो-चार बार आकर माँ को देख लिया करते थे। कई प्रकार की औषधियाँ उन्होंने माँ को दी। बदल-बदलकर भैया दवाइयाँ लाता था और माँ के लाख मना करने पर भी दादी और भैया दवा पिलाते थे। सात दिन तक यही हाल रहा। सातवे दिन रात को हम सब लोग माँ के आस-पास सो रहे थे और पिताजी कमरे के बाहर दरवाजे के समीप लेटे थे। मा भी शायद सो रही थी। रात मे किसी समय अचानक माँ उठकर बिस्तरे पर बैठ गई और उच्च स्वर मे उसने कहा, "जरा सुनिए—अब आखिरी बार जरा मेरे समीप आ जाइए—मैं परसो निश्चित रूपसे इस लोक से चली जाऊँगी।"

माँ की आवाज सुनकर पिताजी हडबडाकर उसके पास आ गए। मैं भी जग गई थी। भैया शायद पहले से ही जाग रहा था। माँ के माथे पर हाथ रखकर पिताजी ने कहा, "क्यो, क्या बात है? मुझे किसलिए बुलाया?" किन्तु माँ ने कोई उत्तर नही दिया उनका हाथ दूर हटाकर वह बिस्तरे मे लुढक गई।

वह बेहोश होकर लुढक गई थी। क्योकि उसके बाद पिताजी ने उसे बहुतेरा हिलाया-डुलाया, किन्तु उसकी ओर से कोई प्रतिक्रिया नही हुई। दादी और दुर्गी की माँ भी आवाज सुनकर वहाँ आ गई थी। उन्होने भी माँ को पुकारकर उसके साथ कुछ बोलना चाहा, किन्तु माँ ने किसी को उत्तर नही दिया। दादी और मैं रो रही थी। सुन्दरी मेरे पास सोई थी, वह जग पडी और मेरे गले मे हाथ डालकर रोने लगी। उसकी समझ मे नही आ रहा था कि यह सब क्या हो रहा है। भैया माँ के समीप बैठकर रुँधे हुए स्वर मे 'माँ—माँ—' कहकर पुकार रहा था। पिताजी की हालत तो पागलो-जैसी हो रही थी। दुर्गी की दादी सबको धीरज बँधा रही थी। दुर्गी की माँ ने सोंठ पीस-

कर माँ की आँखो मे लेप की उँगली फेर दी । आँखे खोलकर माँ ने एक दीर्घ निश्वास छोडा । आँखे घुमाकर उसने देखा कि हम सब लोग आस-पास बैठे है । पिताजी उसके बिलकुल समीप थे—वही दादी और दादाजी भी थे । होश मे आने पर उसने सबकी ओर घूरकर देखा । पिताजी पर नजर पडते ही उसने कहा, "यह क्या ? बडे लोगो के सामने आप इतने समीप कैसे बैठे है ?" माँ के इन शब्दो को सुनकर पिताजी की आँखो मे से आँसू उमड आए । रुँधे हुए स्वर मे उन्होने कहा, "अभी-अभी तुम्हीने तो मुझे बुलाया था न ?"

"किसने ? मैंने ?"

"हाँ ।"

"सच ? नही, नही, मैंने कभी किसी को नही बुलाया । व्यर्थ मे मेरे माथे बात मढी जा रही है । दादाजी क्या कहेगे ? माँ जी क्या कहेगी ? वे कहेगे कि हम लोगो ने बिलकुल लाज-शरम त्याग दी है ।"

यह सुनकर दादाजी ने झट से कहा, "नही, नही, यशोदा, मैं तुम्हे कुछ नही कहूँगा—कोई तुम्हे कुछ नही कहेगा ।"

"कुछ भी हो, किन्तु आपका इस प्रकार यहाँ बैठना अच्छा नही मालूम होता । वहिणा काकू, आप ही बताइये, मेरा कहना ठीक है ना ? आप बाहर चले जाइए ।"

यह सुनकर पिताजी वहाँ से उठकर अपनी आँखो को पोछते हुए कुछ दूरी पर जाकर मेरे बिस्तरे पर बैठ गए । किन्तु शायद इससे भी माँ को समाधान नही हो रहा था । क्योकि उसने फिर कहा, "यहाँ इतने समीप क्यो ? कमरे के बाहर जाकर बैठिये ना ।"

जब माँ ने यह कहा तब दादाजी ताड गए कि यह अपने-आपे मे नही है । वात के जोर से यह बड-बडा रही है । नही तो यह इतनी कभी नही बोल सकती । जो कभी दूसरो के सामने उच्च स्वर मे एक शब्द भी नही बोला करती थी वही आज सबके सामने पिताजी के साथ इतना बोल रही है, इसका अर्थ स्पष्ट ही था कि उसकी प्रकृति मे जरूर कोई बिगाड हुआ है । दादाजी ने अपनी शका पिताजी को सुनाई, पिताजी ने भैया की ओर देखा । भैया ने कहा, "माधवराव डॉक्टर के यहाँ जाऊँ ? उन्हे लिवा लाऊँ ?" पिताजी के मुँह से "हूँ" का उच्चार होते ही वह तीर की तरह चला गया ।

माँ का बड-बडाना और हम लोगो का रोना चल रहा था। कुछ देर बाद वह पूर्ववत् चुप हो गई और उसका श्वासोच्छवास भी रुक-सा गया। हम लोग फिर उसे पुकारने लगे। किन्तु माँ ने कोई उत्तर नही दिया। बेहोशी के साथ ही उसका शरीर काठ की तरह तन गया था। कुछ देर बाद डॉक्टर आ गए और हम लोगो को सान्त्वना देते हुए उन्होने नाडी देखनी आरम्भ की। बडी देर तक जाँच करने के बाद उन्होने कहा, "घबराने की बात नही है, अभी होश मे आ जायँगी—तुम सब लोग जरा कमरे के बाहर हो जाओ!"

हम सब लोग बाहर चले गए। कमरे मे भैया, पिताजी, दादाजी और दुर्गी की दादी थी। सब ओर निराशा छाई थी। कमरे के अन्दर होने वाली बातचीत को सुनने के लिए मैं छटपटा रही थी। दरवाजे से सटकर मैं खडी थी। डॉक्टर कह रहे थे—"देखिए, यह स्पष्ट है कि अब विशेष आशा करना व्यर्थ है, फिर भी उपचार करना तो आवश्यक है। आप लोग धैर्य धारण कीजिए!" डॉक्टर के शब्दो से रही-सही आशा भी जाती रही थी। डॉक्टर की दवा का कुछ फायदा हुआ और आध-पौन घटे के बाद माँ फिर होश मे आ गई। किन्तु उसके बोलने का ढग पहले-जैसा ही था। जीभ भी लडखडा रही थी। निस्सदेह उसे वात का प्रकोप हो गया था। डॉक्टर ने फिर दवा पिलाई, किन्तु माँ ने उसे थूक दिया। दुर्गी की दादी ने माँ से कहा, "यशोदा बाई, दवा नही पिओगी तो फिर ठीक कैसे होओगी?"

उत्तर मे माँ ने कहा, "दवा क्यो लूँ? मैं तो भली चगी हूँ।"

"वाह! अभी-अभी तो तुम बेहोश पडी थी।"

"बेहोश नही, मैं तो मर चुकी थी। वह तो मेरे मायके का जीवात्मा था जो चला गया था, किन्तु ससुराल का प्राण नही जा रहा है इसलिए मैं फिर जीवित हो गई। इन बच्चो के लिए, और ..."

इतना कहकर वह फिर कुछ ऊट-पटाँग बकने लगी। सभी लोग समझ चुके कि इसे वात का दौरा आया है। वह एकदम उठकर बैठ जाती थी, फिर लेट जाती थी, फिर उठती थी। बारह बजे तक यही हाल होता रहा। फिर शायद थक जाने से वह निश्चेष्ट पडी रही और उसे नीद आ गई। सुबह होने तक वह सोती रही। सब लोग उसे घेरकर बैठे थे। तीन बजे तक मैं भी बैठी रही। बाद मे मैं सो गई थी। सुबह छै बजे माँ की नीद खुल गई। वात

का दौरा जाता रहा था। उसे पूर्ण होश था। ज्वर भी नही था। दिन-भर उसकी हालत ठीक रही। हम लोगो को आशा हो गई थी कि अब डरने की कोई बात नही है।

किन्तु सध्या समय फिर बुखार चढ आया। रात को दस बजे के वक्त बुखार बहुत तेज हो गया। बुखार की तेजी से इतनी कमजोरी हो गई थी कि माँ हाथ-पैर भी नही हिला सकती थी। पिताजी कमरे के अन्दर-बाहर चक्कर लगा रहे थे। दादी और दादाजी माँ के सिरहाने बैठे थे। भैया पैरो के पास चुप बैठा था। मैं पीठ पीछे बैठी थी। कमरे मे कौन लोग हैं और कहाँ बैठे है इसका माँ को भान नही था। अब आँखे खोलने की भी शक्ति उसमे नही रही थी। दादी ने कोई दवा देनी चाही और भीतर से थोडा शहद और सिल लाने के लिए उसने मुझसे कहा। कमरे के बाहर आते ही मैने देखा कि दीवार की तरफ मुंह करके पिताजी सिसकियाँ भरकर रो रहे है। इतने बडे पुरुष के गालो से आँसुओ की धारा बहती देखकर कौन दुखी नही होगा ? मै तो बालिका ही थी। उन्हें इस अवस्था मे देखकर मैं वही रुकी रही। पिताजी और रुदन। कितनी परस्पर-विरोधी बात थी। मैं जिस काम के लिए जा रही थी उसे भूलकर भौचक्की-सी पिताजी की ओर देखती रही। मुझे देखकर वे नाराज होगे, इस बात का मुझे ध्यान ही नही रहा। आखिर उन्होने मुझे देख लिया और अपनी आँखो को पोछते हुए उन्होने कहा, "यमे, यहाँ क्यो आई हो ? और इस प्रकार क्यो खडी हो ?"

मैंने झट से उत्तर दिया, "शहद और सिल लाने के लिए जा रही थी—"

"शहद और सिल ? क्यो, किसलिए ?"

"बडी माँ कोई दवा घिसकर माँ को देना चाहती हैं—"

मेरा उत्तर सुनकर वे चुप हो गए। जाते-जाते मैंने पिताजी को धीमे स्वर में कहते सुना, "मैं अभागा अब उसे क्या पा सकता हूँ।"

मैंने दादी को शहद और सिल लाकर दी और फिर माँ के पीछे जाकर बैठ गई। कोई दवा घिसकर दादी ने माँ को चटा दी। मध्यरात्रि के समय नींद आ जाने से मैं वहीं लुढक गई और सो गई। मैं गाढी निद्रा मे थी। भैया ने मुझे जगाकर कहा, "यमे, उठो, तुम्हें माँ बुला रही है।"

ज्वर कुछ कम हो जाने से माँ की कमजोरी भी कुछ कम हो गई थी। उसने मुझे और भैया को अपने पास बुलाया। मैं उठकर बिलकुल उसके समीप चली गई। अपने दोनो हाथो से मुझे जकडकर माँ ने कहा, "बेटी अब तुम्हारी माँ न रहेगी। मैं अब जा रही हूँ। गणू, अब अपनी दोनो बहनो को हर बात मे सहायता देते रहना! किसी बात की इन्हे कमी न हो। यमे, तुम अच्छी तरह रहना। बस, इतना ही अतिम समय मुझे तुमसे कहना था।" इतना बोलने मे ही वह बहुत थक गई थी। उसकी आँखो से आँसू बह रहे थे। मैं और भैया रो रहे थे। दादी का हाल पागलो-जैसा हो रहा था। उठकर बैठने का प्रयत्न करते हुए माँ ने कहा, "माताजी, अब इन बच्चो को आप ही सम्हालियेगा।" यह कहते हुए उसकी सिसकियाँ बँध गई। दादी ने चिल्लाना आरम्भ कर दिया। दादाजी सब लोगो को सात्वना दे रहे थे और स्वय अपनी आँखे पोछ रहे थे। पिताजी तो उस कमरे मे ही नही आ रहे थे—वहाँ आने का उनमे धैर्य नही रहा था। उनका दु ख वे ही जान सकते है। आखिर दादी का हाथ पकडकर बहिणा काकू उसे बाहर ले गई। माँ ने भैया को पास बुलाकर कहा, "जरा उन्हे बुला लो।" पिताजी अन्दर आए। दादाजी चुप-चाप बाहर चले गए। पिताजी ने समीप जाकर माँ को पुकारा। माँ ने आँखे खोल दी। अपने क्षीण हाथ से पिताजी का हाथ पकडते हुए माँ ने कहा, "मैं जा रही हूँ। आगे जो होना है वह तो होगा ही। लेकिन दादाजी और माताजी को सम्हालिएगा। उन्हे आपके बोलने से बहुत दु.ख होता है। ये बच्चे अभी अज्ञान हैं। यमुना का विवाह तो हो गया, किन्तु मुझे—न जाने क्यो—उसका भाग्य अच्छा नही मालूम होता। उसके लिए कुछ—गणू, उसके लिए तुम्हें ही सब-कुछ—सुन रहे हो?—हरे राम। देखिये, मेरी गलतियो को—मैंने कोई अपराध किये हों तो अब उन्हें भूल जाइए और अब मेरा सिर अपनी गोदी मे रख लीजिए—जिससे मैं सुखपूर्वक चली जाऊँ—अब मेरी और कोई इच्छा ..." वह और भी कुछ कहना चाहती थी, किन्तु शक्ति न होने से वह रुक गई। पिताजी से भी अधिक नही सुना जाता था। इसलिए लोक-लाज को त्यागकर माँ को अपने बाजुओ में जकडते हुए उस गभीर पुरुष ने कहा, "नही, नही, अब और अधिक कुछ न कहो। मैंने तुम्हे बहुत तग किया। मैं तुम्हारी योग्यता को नहीं समझ पाया। अब मैं क्या कह सकता हूँ।" माँ का सिर अपनी गोदी मे

रखकर रोते हुए पिताजी ने फिर कहा, "क्या अब तुम्हारा मुझे कोई सहारा नही हो सकता ? कैसे हो सकता है ?" माँ ने मन्द-मन्द शब्दो मे कहा, "यमे बेटी, थोडा पानी लाओ !" मैंने पानी दिया—पिताजी ने माँ के मुँह मे पानी डाला—एक घूँट पीते ही उसके मुख से शब्द निकला "राम" और उसने गर्दन फेर ली—मेरी माँ हम सब लोगो को जहाँ का तहाँ छोडकर हमेशा के लिए चली गई—चारो ओर से आक्रोश हो उठा—हाहाकार से वातावरण भयानक हो उठा।

२४

हाँ—वह थी हमारी माँ, जिसके लिए हमे गर्व है, अपार प्रेम है। जब से मुझमे समझ आई है तब से जिसकी आज्ञा का प्रत्यक्ष ही नही अपितु मन मे भी मैंने कभी उल्लघन नही किया, जिसने मुझे अपने उपदेश और आचरण से सन्मार्ग पर लगाकर माँ का कर्तव्य पूरा किया, जिसे कभी किसी ने बुरा नही कहा, जिसका सहवास कभी किसी को अप्रिय नही रहा वह आज हम लोगो को रोता छोडकर चली गई। अब हम उसे किस प्रकार पा सकते है ? अब उसका वह उपदेश सुनने का अवसर कैसे प्राप्त हो सकता है ? अब उसकी स्नेहपूर्ण सीख की बाते कैसे सुनी जा सकती है ? मनुष्य गाँव जाता है तो उसके लौटने की आशा बनी रहती है, किन्तु इस अन्तिम गाँव को चले जाने पर फिर क्या कभी उसके दर्शन हो सकते हैं ? उस दिन हम सब लोग खूब रोये-धोये, किन्तु इससे क्या होना था। थोडी ही देर मे हमे अपने शोक-वेग को रोककर आगे की व्यवस्था करना आवश्यक था। मृत व्यक्ति चाहे जितना प्रिय क्यो न हो, किन्तु उसके प्राण-पखेरू उड जाने पर उसकी वह जड मिट्टी देखी नहीं जाती। फिर उसका लोभ छोडना होता है—छूट ही जाता है। हम

भी ससार से अलग नही थे इसलिए माँ की मृत्यु से जो दु ख हुआ था वह शनैः-शनै कम होकर जग-रीति के अनुसार आगे की व्यवस्था करने मे लग गए। पिताजी की अवस्था बहुत ही दयनीय थी। उनसे बोला नही जाता था। पुरुष होकर भी उनके आँसू रुक नही रहे थे। किन्तु क्या किया जा सकता था। दादाजी धीरज के साथ आये हुए लोगों की सहायता से व्यवस्था कर रहे थे। दादी का रोना अविरत चल रहा था। "अरे चाडाल काल, तू मुझे क्यों नही ले गया ? तूने उसे ही क्यो पसन्द किया ?" उसके मुँह से इस प्रकार के उद्‌गार सुनकर सभी लोगो का दिल पिघला जा रहा था। ठठरी उठाते समय दादी को उन्माद-सा हो गया था। हाथ-पैर टेढे-मेढे होकर कुछ बेहोशी आ गई थी। दुर्गी की माँ और दादी उसे शव के पास से उठाकर दूर ले गई, किन्तु वह श्मसान की ओर भागने की चेष्टा करती रही।

बचपन मे ही माँ की मृत्यु हो जाने से मेरी बहुत बडी हानि हुई थी। और किसी का कुछ नही बिगडा, किन्तु हम बच्चे निराधार हो गए थे। भैया अब कुछ समझदार हो गया था। मेरा भी विवाह हो चुका था। विशेष हानि सुन्दरी को हुई थी। उस लडकी का बहुत बुरा हाल था, क्योकि उसका माँ से बहुत लगाव था। दादी के पास वह अधिक देर तक नही ठहरती थी—हमेशा माँ के आस-पास ही बनी रहती थी। अन्तिम समय दुर्गी ने उसे फुसलाकर वहाँ से हटा दिया था। इस कारण वह नही जान सकी कि माँ कहाँ गई है। फिर भी वह बिलकुल अबोध तो थी नही। यद्यपि वह नही जानती थी कि मृत्यु क्या होती है फिर भी हम सब लोगो को छोडकर माँ गाँव चली गई है ऐसा उसे समझाने पर वह रो उठती थी। वह जानती थी कि उसे झूठ कहा जा रहा है। 'सब लोग तो यही मौजूद है, फिर माँ अकेली गाँव कैसे चली गई, यह सोच-कर जब वह हमे पूछती थी तो बहाना बनाकर उसका समाधान करना बहुत ही विकट काम था। माँ को ले जाने पर जब दुर्गी उसे घर मे ले आई तब उसने हम लोगो को रोते देखा—घबराकर वह तुरन्त माँ के कमरे मे चली गई, किन्तु वहाँ तो माँ का बिस्तरा भी नही था। उस स्थान को लीपकर वहाँ दीपक जलाकर रखा गया था। माँ का कही पता नही था। 'माँ—माँ' पुकारती हुई वह पूरे घर मे चक्कर लगा आई। दीन मुद्रा से माँ को ढूँढने के उसके प्रयासो को देखकर सब लोगो का कलेजा फटा जा रहा था। दादी काष्ठवत्

भूमि पर पडी रो रही थी । मैं भी एक कोने मे बैठी रो रही थी। पिताजी अपने कमरे मे घुटनो मे गर्दन झुकाये बैठे थे । उनमे चलने की शक्ति नही रही थी । इसलिए वे श्मसान नही गये थे । दादाजी भैया को लेकर गए थे । दुर्गी की माँ और दादी हमारी दादी को सात्वना दे रही थी । माॅ का जब कही पता नही चला तब 'माॅ-माॅ' कहकर पुकारती हुई सुन्दरी मेरे पास आई और मेरी गर्दन सें लिपटते हुए उसने कहा, "दीदी, माॅ कहाॅ है ?"—उसे समझा-बुझाकर चुप करना बडा विकट काम था। मुझे स्वय अपना रोना भूलाकर उसे बहलाना था, किन्तु वह नही मान रही थी । उसका रोना-चीखना सुनकर पिताजी का दु ख फिर उमड पडा और वे जोर से रोने लगे । उनके रोने की आवाज सुन-कर सुन्दरी उनके पास चली गई और कहने लगी—"बताओ, माॅ कहाॅ है ?" उसका प्रश्न सुनकर पिताजी की जो हालत हुई थी उसका वर्णन करना असम्भव है । माॅ की मृत्यु से पिताजी को इतना दु ख होगा इसकी किसी ने कल्पना भी नही की थी । उनकी अवस्था बहुत ही शोचनीय हो रही थी । उन्होने झट से सुन्दरी को गोद मे उठा लिया और "सुन्दरी, बेटी, अब माँ कहाँ से आयगी—" कहकर वे स्त्रियो-जैसे रो पडे । कुछ देर बाद ही उन्होने सुन्दरी को दूर ढकेल दिया और "कम-से-कम आखिरी बार तो उसे देख लूँ" ऐसा कहते हुए वे घर से बाहर हो गए । सुन्दरी रो रही थी और मैं उसे बहला रही थी ।

आखिर दुर्गी की माँ ने हम दोनो को उठाकर स्नान करवाया और पहले दिन के भोजन आदि की व्यवस्था की । दुर्गी की माँ को हमारी माँ की मृत्यु से कितना दु ख हुआ था इसे तो मैं नही बता सकती, किन्तु इतना अवश्य कह सकती हूँ कि हमारे घर मे मुझे और भैया को छोडकर शेष सभी लोगो को माँ की इतनी याद नही आती थी—किन्तु कोई दिन ऐसा नही होता जब दुर्गी की माॅ को अपनी यशोदाबाई की याद न आती हो । अब भी, जब कभी उनसे भेट हो जाती है तो माँ की स्मृति से उनकी आँखो में आँसू छलक आते है ।

माॅ की मृत्यु के बाद तीसरे दिन मध्य रात्रि मे अचानक मेरी नीद टूट गई । भैया कुछ दूरी पर सोया था—सोया क्या, जाग ही रहा था । क्योकि मेरी हलचल होते देखकर उसने कहा, "यमे, क्या बात है ? क्या नीद नही आ रही ?" उसका प्रश्न सुनकर मुझे उस अवस्था मे भी हँसी आ गई । हँसी इस

कारण आई थी कि जैसे कोई बडा-बूढा व्यक्ति अपने बच्चे से पूछता है, उसी प्रकार उसने मुझसे पूछा था। उस दिन से उसका बर्ताव मुझसे किसी बूढे-जैसा ही होता रहा।

मुझे हँसी आ गई, किन्तु मैंने भैया को अपनी हँसी का पता नही चलने दिया। "कुछ नही—मैं अभी जगी हूँ—" इतना कहकर मैं चुप हो गई। उसने भी कुछ नही कहा। बहुत देर हो गई, फिर भी मुझे नीद नही आ रही थी, करवटें बदल रही थी। कुछ देर बाद जब मुझे ऊँघ आने लगी तब मुझे लगा जैसा कोई सिसकियाँ भर रहा है। ध्यान देने पर मैं जान गई कि भैया रो रहा है। झट से मैंने कहा, "भैया—भैया—भैया यह तुम क्या कर रहे हो ?" मेरा प्रश्न सुनते ही वह उमड पडा, "यमे, अब हमारा क्या होगा ? इस घर मे अब हमारी पूछ-ताछ कौन करेगा ? इस सुन्दरी का क्या हाल होगा ?" उसके विचित्र प्रश्न सुनकर मैं रो पडी। मैं अब जोर से रो दूँगी यह ध्यान मे आते ही भैया ने अपना रोना बन्द करके मुझे चुप करते हुए धीमे स्वर मे कहा, "यमे, कल मै तुम्हे एक बात सुनाऊँगा—यदि इस समय तुम चुप हो जाओ तो सुनाऊँगा—नही तो . . ."

वह इतना ही कह पाया था कि इसी समय दादी की आवाज सुनाई दी, "क्यो, तुम लोग जाग रहे हो ? अब तुम चुप-चाप सो जाओ !" दादी बेचारी दो दिन से सोई नही थी। आज भी नीद टूट जाने पर उसने अपना प्रातकालीन गीत गाना आरम्भ कर दिया था—कुछ देर बाद मुझे नीद आ गई। जागने से पहले मैंने एक स्वप्न देखा था। वह इस प्रकार था—

जैसे, मैं माँ के सिरहाने बैठी हूँ और वह जो कुछ कह रही है उसे ध्यान-पूर्वक सुन रही हूँ। फिर माँ का भाषण बन्द हो गया और जैसे वह उठकर बैठ गई है और उसने मुझे एकदम अपनी छाती से जकड लिया है। वह कह रही है—"यमे, तुम्हारा विवाह तो हो गया, किन्तु तुम्हारा भाग्य कुछ अच्छा नही दिखाई देता। देखो, मैंने गणू से कह दिया है—मुझे विश्वास है कि वह हमेशा तुम्हारा साथ देगा।" इन शब्दो को उसने स्पष्ट किन्तु रोते हुए कहा था। मैंने माँ का भाषण सुना और आज तक वह मेरे कानो मे गूँज रहा है। प्रति-दिन मुझे उन शब्दो का स्मरण हो आता है। माँ के शब्द सुनकर मैं हडबडा-कर जाग उठी और उसी क्षण से मेरे मन मे एक अज्ञात भय ने हमेशा के

लिए घर कर लिया। तब मुझमे इतनी समझ तो थी नही, इसलिए माँ का भाषण सुनकर किसी समझदार लडकी के मन मे जो विचार आ सकते थे वे मेरे मन मे न आए, हाँ, फिर भी कुछ विचित्र विचार अवश्य आए थे।

अपने स्वप्न की बात मैं दादी से कहना चाहती थी, किन्तु मेरे उठने से पहले ही दादी सुन्दर को लेकर वहाँ से चली गई थी। फिर भी मेरी तीव्र इच्छा हो रही थी कि दोपहर के एकान्त मे भैया को अपनी बात अवश्य सुना दूँ। सौभाग्य से दोपहर मे मनचाहा अवसर प्राप्त हो गया और मैंने भैया से कहा, "भैया कल रात तुम कह रहे थे कि तुम्हे कुछ मुझसे कहना है—तो अब कहो, क्या कहना चाहते थे ?"

भैया—"कुछ नही, मैं कहना तो चाहता था, किन्तु अब नही कहूँगा। क्योकि तुम अभी नासमझ हो और····· "

मैं—"ऐसा क्यो कहते हो। कल रात तुम्हीने तो कहा था कि बताऊँगा और अब इकार करते हो ? क्या कल रात को मैं समझदार थी ? बताओ ना भैया ! फिर मैं भी तुम्हे अपना स्वप्न सुनाऊँगी—आज सुबह मैंने माँ को स्वप्न मे देखा था, और—"

भैया—"माँ को देखा था ? माँ को तुमने स्वप्न मे देखा था ? बडे आश्चर्य की बात है।"

मैं—"क्यो ? इसमे आश्चर्य किस बात का है ? लेकिन भैया, तुम कहो ना, क्या कहना चाहते थे ?"

मैं जब यह कह रही थी तब भैया का मेरी ओर ध्यान नही था। उसकी आँखो मे आँसू छलक उठे थे। कुछ समय बाद मेरी ओर मुडकर उसने कहा, "यमे, सच बताओ, क्या तुमने माँ को स्वप्न मे देखा था ? कही बात बनाकर तो नही कह रही हो ? देखो, मैं अब वह पहले-जैसा भैया नही हूँ—झूठ न बोलो, सच बताओ, क्या बात है ? मैं—"

मैंने कहा "वाह भैया ! क्या मैं तुमसे झूठ बोल सकती हूँ ? तुमने भी खूब कहा ! अपनी बात को छिपाकर मेरी बात सुन लेने की यह अच्छी तरकीब है।"

भैया फिर कुछ देर चुप रहा। फिर एकदम उसने कहा, "यमे, क्या कहा तुमने ? आज सुबह तुमने माँ को स्वप्न मे देखा था। आज ही सुबह ?"

"हॉ, आज ही सुबह! रात मे जब मैने तुम्हारे साथ बात की थी, उसके बाद जब मैं फिर सो गई तब उस नीद मे मैंने स्वप्न देखा था। मेरा भाषण सुनकर उसने केवल आह भरकर इतना ही कहा, "होगा—" फिर वह चुप हो गया। मैंने कहा, "भैया, तुम्हे मेरी बात पर आश्चर्य क्यो हो रहा है।"

"कुछ नही—मैंने भी उसी नीद मे एक स्वप्न देखा था—स्वप्न मे माँ को देखा, इसलिए—"

उसके शब्द सुनकर मैं भी उसकी तरह स्तब्ध हो गई। माँ ने स्वप्न मे उसे क्या कहा यह जानने के लिए मैं उत्सुक हो उठी। मैंने कहा, "क्या माँ तुम्हारे साथ बोली थी ?"

"हाँ।"

"क्या कहा तुमसे ?"

"तुमसे क्या कहा ?"

"तुम अपनी बात बताओ, फिर मैं अवश्य बता दूँगी"

"नही यमे, पहले तुम बताओ! मैंने एक बार हाँ कह दिया तो अवश्य बता दूँगा।"

"कल भी तुमने ऐसा ही कहा था—उसी प्रकार बताओगे ना ?"

"नही अवश्य बताऊँगा ?"

"अच्छा, तो सुनो—"

और मैने अपने स्वप्न की बात उसे विस्तार से सुना दी। मेरी बात को भैया एकाग्र चित्त होकर सुन रहा था। विशेषत माँ ने क्या कहा यह जब मैं उसे सुना रही थी तब तो वह मेरी ओर घूरकर देख रहा था, और मेरे शब्दों को एक-एक करके कठस्थ कर रहा था। मेरा कथन समाप्त हो चुका था फिर भी वह उन शब्दो को धीरे-धीरे दोहरा रहा था। फिर मेरी ओर मुडकर उसने कहा, "यमे, आज मैंने माॅ को स्वप्न मे देखा और उसने बिलकुल यही मुझसे भी कहा। "मैने गणू से कह दिया है" ऐसा जो माॅ ने कहा, वह यही था। आया तुम्हारी समझ मे ?"

मुझे केवल इतना ही सुनकर सतोष नही हो रहा था। मैंने फिर कहा, "माॅ ने जो तुमसे कहा वही तो मैं सुनना चाहती हूँ। अवश्य बताऊँगा, ऐसा तुमने अभी-अभी मुझसे कहा था न ?"

फिर कुछ देर के लिए वह मौन होकर बैठा रहा। मेरे बार-बार पूछने पर उसने कहा, "कोई विशेष बात नही है। मैंने स्वप्न मे देखा, जैसे मैं गाढ निद्रा मे सो रहा हूँ और इसी समय माँ कही से मेरे पास आ गई और कहने लगी, 'गणू, याद है न, मैंने तुमसे पहले क्या कहा था ? तुम्हे ही सब करना है। यमी का भाग्य ठीक नही है। उसका भी तुम्हे—' उसने केवल इतना ही कहा था और मैं 'हाँ, हाँ, अवश्य करूँगा माँ—' ऐसा कहकर जाग गया था। तभी से मैं सोच रहा हूँ कि यह सब क्या है ? तुमने भी स्वप्न देखा, यह सुनकर मुझे विशेष आश्चर्य हो रहा है और स्वप्न मे तुमने जो देखा और सुना उसे जानकर तो मैं अवाक् रह गया। यमे, तुमने और मैंने एक ही समान और एक ही आशय का स्वप्न देखा, तब इसमे अवश्य कोई तथ्य है—किन्तु तुम तो बालिका हो, इन बातो को समझने की पात्रता तुम मे नही है।"

भैया के अतिम शब्द मुझे कुछ चुभ-से गए। मैंने कहा, "भैया, तुम्हारा ख्याल है कि मैं बिलकुल नासमझ हूँ, किन्तु मैं सब जानती हूँ—"

मैं यह कह ही रही थी कि तभी मुझे किसी बात का स्मरण हो आया। मैंने कहा, "भैया, इस स्वप्न को देखने से मुझे एक पुरानी बात का स्मरण हो रहा है। उस दिन रात को अचानक माँ ने तुम्हे अपने पास बुलाकर तुम्हारे कान मे क्या कहा था ?"

मेरा प्रश्न सुनकर उसने बात टालने का बहुतेरा प्रयत्न किया, किन्तु जब मैं पीछे पड गई तो उसने कहना आरम्भ किया, "यमे, माँ ने कहा था—"

किन्तु दुर्भाग्यवश इसी समय पिताजी वहाँ आ गए।

इस बात का अदाज नही किया जा सकता था कि पिताजी ने हमारी बातचीत सुनी थी या नही ? उन्हे अचानक आते देखकर हम दोनो सिट्टी-पिट्टी भूल गए थे। हमे भय लग रहा था कि वे कही हमारी बातचीत के सम्बन्ध मे पूछ-ताछ तो नही करेंगे ? यदि वे मुझसे पूछते तो मैं उन्हे अपने स्वप्न की बात तत्काल कह देती, क्योंकि उसमे छिपाने-जैसी कोई बात नही थी। किन्तु जो बात भैया मुझसे छिपाना चाहता था उसे वह पिताजी से कैसे कह सकता था ? वह बात अवश्य ही छिपाने-जैसी होगी, क्योंकि मध्य रात्रि मे माँ ने भैया को जगाकर उसके कान मे चुपके से कुछ कहा था। यह स्पष्ट

था कि बात गोपनीय है और यदि पिताजी उसे जानना चाहें तो बताना भी अपरिहार्य है, इस भय से भैया धीरे-धीरे खिसकता हुआ वहाँ से कुछ ही क्षणो मे अन्तर्ध्यान हो गया। मैं निर्बुद्ध—पिताजी को देखकर भयभीत दशा मे उनकी ओर ताकती हुई वही खडी रही। पिताजी की उदास मुद्रा को देखकर लग रहा था कि वे कोई पूछ-ताछ नही करेगे। इस कल्पना से मेरा भय कुछ कम हुआ और मैं वहाँ से खिसकने की सोचने लगी। इसी समय मैंने पिताजी की आँखो से एक आँसू उनके गाल पर लुढकता देखा। झट से उत्तरीय से उसे पोछकर सहज भाव से पिताजी ने मुझसे कहा, "यमे, भाई-बहन में क्या घुट रही थी ?" आज तक मैंने पिताजी का इतना सौम्य और प्रेमपूर्ण स्वर कभी नही सुना था। मनुष्य के हृदय पर दुःख के आघात होने से उसका हृदय मृदु बन जाता है, इस कथन की यथार्थता को मैंने उस समय अनुभव किया था। मैं पहले कह चुकी हूँ कि इन दिनो पिताजी की कठोरता कम होती जा रही थी। किन्तु कठोरता कम होना और वास्तव मे वाणी मे मार्दव आ जाना इसमे महान् अन्तर होता है। किसी से क्रोध मे बोलना और किसी से बिलकुल भाषण करना तक बन्द कर देना, इन दोनो प्रकारो मे कठोरता का प्रमाण कुछ अशो मे अवश्य रहता हैं, किन्तु सौम्य और स्नेहपूर्ण शब्दो मे कठोरता नही, मार्दव रहता है। पिताजी का यही हाल हुआ था। पहले उनमे कठोरता थी। माँ की बीमारी मे उन्हें अपनी कठोरता का दुख होकर शनै-शनै वह कम होती जा रही थी और माँ के प्राणोत्सर्ग के साथ ही वह पूर्ण रूप से लुप्त हो गई थी।

उनका प्रश्न सुनकर मैंने हतबुद्धि होकर कहा, "कुछ नही—ऐसे ही साधारण बातचीत हो रही थी।" इतना कहकर मैं वहाँ से भागना चाहती थी। किन्तु झट से पिताजी ने कहा, "बेटी, भाग क्यो रही हो ? मैं नाराज थोडे ही हो रहा हूँ। यहाँ आओ!" और उन्होने मुझे पकड लिया। मेरी ठुड्डी पकडकर स्नेहपूर्ण स्वर मे उन्होने कहा, "यमे, तुम्हें माँ बहुत प्यार करती थी—इन दो-चार दिनो मे क्या तुमने कभी अपनी माँ को स्वप्न मे देखा है ?"

आज तक मैं इस घटना को नही भूल सकी—क्योकि मेरे जीवन मे यह सौभाग्य मुझे प्रथम और अतिम बार प्राप्त हो रहा था। इसके उपरान्त जीवन

मे फिर कभी पिताजी ने मुझे इतने दुलार से नही सहलाया था, इसलिए इसकी स्मृति हमेशा बनी रहनी स्वाभाविक ही है।

उत्तर मे मैंने झट से कह दिया, "हाँ, माँ को मैने आज ही स्वप्न मे देखा था।"

"अच्छा ? तो फिर उसने क्या कहा था ?"

"कुछ विशेष नही कहा, केवल इतना ही कहा कि यमे, मुझे बडी चिन्ता लग रही है कि तेरा क्या होगा ?"

"और कुछ ?"

"और तो कुछ नही। ऐसा ही कुछ कह रही थी।"

पिताजी ने दूसरा प्रश्न यो ही पूछा था। क्या प्रश्न किया जा रहा है और उनका क्या उत्तर मिल रहा है, इधर शायद उनका ध्यान नही था। मेरा उत्तर सुनकर वे केवल 'हूँ—हूँ—' करते रहे। पता नही उनके मन मे क्या उथल-पुथल मच रही थी। उन्होने मुझे दूर हटाकर कहा, "अच्छा तो जाओ अब।" फिर मैं वहाँ क्यो ठहरने लगी। भागकर मैं भैया के पास चली गई और उसे सारा वृत्तॉत सुना दिया। वह सुनता रहा, उसने कुछ नही कहा। फिर मुझे उसकी बात का स्मरण हो आया जो वह कहने जा रहा था और अचानक पिताजी के आ जाने से बीच ही मे रुक गया था। मैंने कहा, "भैया, कहो ना, तुम क्या कहना चाहते थे ?" किन्तु अब वह नही कह रहा था। उलटा मुझसे कहने लगा "भगवान् की इच्छा है कि मैं तुमसे न कहूँ—तभी तो पिताजी अचानक आ गए थे।" मैंने बहुतेरा अनुरोध किया, किन्तु उसने नही बताया। आखिर चिढकर मैंने कहा, "झूठा कही का। स्वार्थी। मेरी बात सुनली और अपनी बात छिपाता है। अब मैं भी कभी कुछ नही बताया करूँगी। तुम से कभी नही बोलूँगी। तुम मेरे साथ कपट रखने हो तो फिर मैं क्यो तुम्हारे साथ खुले दिल से बात करूँ ?··" इस प्रकार मैं बक-झक करती रही, किन्तु वह मौन बना रहा। अन्त मे उसने केवल इतना ही कहा, "यमे, तुम्हारे जरा बडी हो जाने पर मैं तुम्हे बता दूंगा। फिर तुम कहोगी कि अच्छा हुआ जो उस ससय नही बताया।" उसकी बातो से मेरा समाधान नही हो सकता था, किन्तु किया भी क्या जा सकता था मैं चुप रह गई।

२५

अब मैं जो कहने जा रही हूँ उसे सुनकर हर किसी को आश्चर्य हो सकता है, किन्तु आचर्श्य की कोई बात नही—वह तो प्रतिदिन की एक साधारण-सी घटना है।

माँ की मृत्यु हुए पद्रह दिन भी नही बीते थे—उसकी तेरही जीमने के लिए जो ब्राह्मण आए थे उनकी पत्तले भी नही उठ पाई थी और मेरे पिताजी का दूसरा विवाह करने के बारे मे लोग बात—विशेषतया दादी, और आश्चर्य तो इस बात का था कि दादाजी भी धीरे-धीरे सुझाव ला रहे थे। चौदहवाँ दिन समाप्त होते ही लोग-बाग पिताजी से विवाह करने के लिए आग्रह करने लगे थे। पहली बार जब उनके सामने यह प्रस्ताव रखा गया तो उन्होने उसे दुत-कार दिया था। प्रत्यक्ष दादी को मैंने कहते सुना था, "बेटा, जो होना था सो हो गया। यह बात तो नही कि हम उसे नही चाहते थे, किन्तु जब उसके भाग्य मे ही सुख भोगना नही था तो इसके लिए क्या किया जा सकता था। अब तुम फिर······"

इतना ही कहकर रुक गई, क्योकि पिताजी झल्ला उठे और वहाँ से उठ-कर चल दिए। पहले आठ दिन तक इस प्रकार झल्लाने का स्वाँग होता रहा। किन्तु उन्होने झल्लाना छोड़ दिया था और यदि विवाह का विषय निकलता तो उस चर्चा मे भाग लेना आरम्भ कर दिया था। इसके बाद क्या हुआ इसे मैं नही जानती, क्योकि ससुराल का बुलावा आ जाने से मैं आठ-दस दिन के लिए ससुराल चली गई। उस समय नवपरिणीता लडकी को एकदम आठ-दस दिन ससुराल नही रखा जाता था, यदि एक ही गाँव मे ससुराल और मायका हो तो लडकी सुबह ससुराल जाकर शाम को मायके मे लौट आती थी। किन्तु मेरे ससुराल वाले बहुत ही विचित्र लोग थे।

नवें दिन जब मैं ससुराल से वापस आई तो भैया ने मुझसे कहा, "यमू, अब हमें नई माँ मिलने वाली है।" यह कहते समय उसकी मुद्रा का जो भाव था उसे मैं कभी नही भूल सकती। मेरी समझ मे नही आ रहा था कि वह इस बात को सुख से कह रहा था या दु ख से, उसका स्वर कुत्सित था या सहज भाव से उसने कहा था। साथ ही, मैं स्वय नही जान पाई थी कि उसकी बात

सुनकर मुझे खुशी हुई थी अथवा खेद। यदि खुशी हुई थी कहा जाय तो माँ का स्मरण होकर आँसू उमड आए थे। प्रयत्न करने पर भी मै उन्हे रोक नही सकी। यदि कहा जाय कि दु ख हुआ था तो पुरुषो के द्वितीय विवाह के सम्बन्ध मे मेरी जो आज विचार-धारा है वह उस समय नही थी और न होने की कोई सम्भावना ही थी। अस्तु। मध्यतर के आठ दिनो मे इस सम्बन्ध मे घर मे पर्याप्त चर्चा होकर निश्चित किया गया था कि अब हमे नई माँ मिलेगी। लडकी पसन्द की जा चुकी थी और मुहूर्त भी निश्चित हो गया था।

माँ के मर जाने से पिताजी को जो दु ख हुआ था, और उनके इस दुःख को जो हम लोगो ने देखा था, उसका विचार मन मे आ जाने पर आश्चर्य होता है कि पिताजी द्वितीय विवाह करने के लिए किस प्रकार सहमत हो गए। किन्तु आज इस अशाश्वत विश्व मे नित्य-प्रति जो घटनाएँ सम्मुख आती हैं उन्हे देखते थे, इस बात मे आश्चर्य करने-जैसा क्या था, इसीका आज आश्चर्य होता है। कहावत सही है कि दृष्टि आड सृष्टि। नजरो के ओट होते ही मनुष्य उसे भूल जाता हैं। इस ससार मे शाश्वत नामक कोई वस्तु नही है। फिर प्रेम की शाश्वतता भी किस प्रकार मानी जा सकती है ? रह-रहकर मुझे माँ की दूरदर्शिता का स्मरण हो रहा था।

ससुराल से आते ही भैया ने मुझे नई माँ वाली बात सुनाई थी। फिर न जाने उसके मन में क्या आया और वह मुझे एक ओर ले जाकर धीमे स्वर मे गद्गद् होकर कहने लगा, "यमू, उस दिन रात को माँ ने मुझे बताया था कि कुछ ही दिनों में यह ऐसा होगा। उसने कहा था, 'गणू, अब बहुत थोडे दिन के लिए मैं तुम्हारे साथ हूँ—तुम अभी बच्चे हो। यमुना का विवाह मेरे सामने हो जाय तो अच्छा होगा। नही हुआ तो आगे चलकर होगा—होगा तो अवश्य ही, किन्तु देखो, मेरे मर जाने पर क्या होगा यह स्पष्ट है। 'उनके' स्वभाव से तुम लोग भली-भाँति परिचित हो। मेरे स्थान पर तुम्हारे लिए दूसरी कोई नई—' इतना कहकर कुछ देर के लिए वह रुक गई थी, उसके मुँह से शब्द नही फूट रहे थे। कुछ देर बाद अपने आँसुओ को पोछकर उसने कहा, 'गणू अब इन बच्चियो की सार-सँभाल तुम्हारे जिम्मे है। बडे हो जाने पर उन्हे दूर न करना। भगवान् की दया से यदि इन दोनो को अच्छी ससुराल मिल जायगी तो फिर सभी ठीक हो जायगा, किन्तु—किन्तु मालूम होता है कि यमुना

का भाग्य कुछ अच्छा नही है। बडी माँ की कोई बात नही चल सकती। वे कुछ ·······' इतना कहकर वह चुप हो गई थी। फिर कुछ देर बाद उसने कहा, 'नही, और कुछ नही कहना है। जाओ, जाकर सो जाओ। मैंने जो कहा उसे हमेशा ध्यान मे रखना, यमू, जानती हो माँ के भाषण का आशय क्या था ? अब वे बातें प्रत्यक्ष मे आ रही हैं।"

भैया का भाषण सुनकर मेरे मन मे एकदम प्रकाश-सा हो गया, क्योकि जिस रात माँ ने भैया से यह कहा था उसी रात मे मुझे भी उपदेश दिया था। उस समय माँ ने कहा था, 'यमे, मेरे मर जाने के बाद तेरे लिए मायका नही रहेगा।' भैया से भी कहा था, 'अरे पगले, मर जाने के बाद क्या होगा और क्या नही होगा इसे कौन जान सकता है ?' मरते समय पिताजी से भी माँ ने कहा था, 'मैं जा रही हूँ, आगे जो होना है वह तो होगा ही।' इससे पहले भी एक दो-बार वह कह चुकी थी, आगे क्या होगा, इसे हम सभी जानते है। इन उद्‌गारो का आशय अब मेरी समझ मे आया था। मेरे मरने के बाद उनका फिर विवाह होगा, तब घर मे दादी की कोई पूछ-ताछ नही होगी, बच्चो की ओर कोई ध्यान नही देगा। दादी का हाल बुरा होगा आदि बातें माँ को स्पष्ट रूप से दिखाई दे रही थी, यह उसके उद्‌गारो से ध्वनित हो गया था। माँ को सबसे अधिक चिंता मेरे बारे मे थी—न जाने किस कारण से।

भैया की बात सुनकर मेरी आँखो मे भी आँसू आ गए थे। फिर भी मेरी समझ मे नही आ रहा था कि पिताजी के विवाह मे बुराई किस बात की है। भैया उसे बुरा कहता था, इसलिए मैं भी बुरा मानती थी। चालीस-बयालीस वर्ष के पुरुष का बारह-तेरह वर्ष की लडकी के साथ विवाह होना और वह भी प्रथम सम्बन्ध के समझदार बच्चे होते हुए, इस बात को मैं आज निद्य मानती हूँ किन्तु उस समय नही—क्योकि उस समय मुझमे इतनी समझ ही कहाँ थी ?

तात्पर्य यह कि उपरोक्त घटना के आठ दिन बाद हमारी तेरह वर्ष की नई माँ हमारे घर आ गई। विवाह कैसे हुआ, कहाँ हुआ आदि बातो का वर्णन करना निरर्थक है। हमारी तेरह वर्ष की नई माँ एक दरिद्र घर की बेटी थी। उसके बाप नही था। माँ मेहनत-मजदूरी करके पेट पालती थी। लडकी उम्र मे बडी थी इसलिए देखते ही पसन्द कर ली गई थी और विवाह भी सम्पन्न

हो चुका था। हमारी नई माँ हमारे साथ खेलने के लिए आ गई थी। दूजिया के विवाह के समय लडकी के बारे मे केवल उसकी अधिक उम्र ही देखी जाती है। लडकी का कुल, शील, चाल-चलन आदि बातो की ओर विशेष ध्यान न देने से और पहले से ही उसे द्वितीया, द्वितीया कहकर पुकारने से उसके मन पर जो विशिष्ट सस्कार हुआ करते है और जो परिणाम निकलता है वही सब हमारे घर भी हुआ था। अधिक विवेचन इस समय करने की अपेक्षा यथा समय करना ही उचित होगा।

इतना कह देना पर्याप्त होगा कि पिताजी का विवाह होकर मेरे लिए नई माँ आ गई। कुछ दिनो के बाद दादाजी अपने गाँव चले गए। बहू को घर-गृहस्थी की शिक्षा देने के लिए दादी पूना मे ही रुक गई थी। इस प्रकार सब व्यवस्था हो जाने पर बहुत दिनो तक मैं अपनी ससुराल मे ही रही।

२६

मेरी ससुराल (जो वास्तव मे मेरी ममिया ससुराल थी) का ढग कुछ अजीब था। आज मैं उसका वर्णन करना चाहती हूँ।

मेरे ममिया ससुर का कुटुम्ब-परिवार बहुत बडा था और तदनुसार ठाट-बाट से रहता था। मेरे दो ममिया ससुर थे। दोनो ही अच्छे पदो पर काम करते थे। छोटे ससुर का वेतन डेढ-सौ रुपया मासिक था और बडे शायद पौने-आठ-सौ रुपए पाते थे। बहुत दिन पहले उनके पिताजी का देहात हो चुका था। इसलिए घर की देख-भाल और व्यवस्था का भार पूर्ण रूप से काकाजी पर ही था। काकाजी वही वृद्ध थे जो विवाह के पूर्व मुझे देखने के लिए आए थे। वे हमारे चचेरे अजिया ससुर थे। उनका स्वभाव बहुत ही तीखा और चिड़चिडा था। भोजन करते समय वे हमेशा नाराज हुआ करते

थे। भोजन के बारे मे उन्हे सदैव ही शिकायत बनी रहती थी। उनकी भाभी का—अर्थात् मेरी खास अजिया सास का स्वभाव इसके बिलकुल विरुद्ध था। वे कभी किसी को कष्ट देना नही चाहती थी। किन्तु एक बार किसी बात को करने का निश्चय कर लेने पर वे उसका पीछा नही छोडती थी। इसके अतिरिक्त उनमे एक और खोट था। बच्चा हो या बडा, कोई कुछ करता या बोलता हो तो वे छिपकर देखा-सुना करती थी। फिर उस बात को ध्यान मे रखकर अवसर आते ही ऐसा टोला जमाती थी कि सुनने वाला पानी-पानी हो जाता था। उनका कुत्सित और कटु भाषण सुनकर जितना दु ख होता था उतना काकाजी की शिकायतो और हमेशा की झिक-झिक से नही होता था। इसके अतिरिक्त उनमे और कोई अवगुण नही था। उनका स्वभाव स्नेहशील था। सबके साथ उनका एक-सा बर्ताव रहता था।

हमारे बडे ममिया ससुर किस प्रकार के व्यक्ति थे इसे मैं आज तक नही जान पाई। उन-जैसा अतर्मुखी वृत्ति का, कुढिया, कुत्सित और सनकी मनुष्य मैंने कभी नही देखा। वे बडे ही स्वार्थी थे उनका गूढ रहस्य कभी कोई नही जान पाता। वे अजीब सनकी तबियत के थे। अभी कुछ कहेगे, बाद मे कुछ और ही कहने लगेगे। आज की उनकी बात का कल की बात से मेल नही खाता था। द्रव्य-लोभी और कजूस तो परले सिरे के थे। अपना वेतन और अतिरिक्त कमाई जो वे पर्याप्त मात्रा मे कर लेते थे—बैक मे जमा कर देते अथवा ब्याज बट्टे मे लगा देते थे। घर-खर्च के लिए वे कानी कौडी भी नही देते थे। पत्नी और बच्चो के आभूषणो को वे अपने शयन-कक्ष के सदूक में रखते थे। उन्हें किसी पर विश्वास नही था। उनकी पत्नी का स्वभाव उनके स्वभाव के बिलकुल विरुद्ध था। पति मे जितने दुर्गुण थे उतने ही पत्नी मे गुण थे। उस-जैसी गरीब़ और साध्वी स्त्री बिरली ही होगी। उस बेचारी के मुँह से मैंने कभी किसी के लिए बुरा शब्द निकलते नही सुना। मनुष्य होने के नाते हर किसी को क्रोध आ जाना स्वाभाविक कहा जाता है किन्तु अपने क्रोध पर काबू पाने की अजीब कीमिया मामीजी को ज्ञात थी। मैंने कभी उन्हें किसी से झगड़ते नही देखा। अपने इस सीधेपन और कुछ कुरूप होने के कारण उन्हें बहुत दु ख सहना पडा था।

छोटे ममिया ससुर हमारी बडी ममिया सास के स्वभाव की हू-ब-हू

प्रतिमा थे। इतना वेतन पाते थे फिर भी कभी किसी बात की उन्हे शिकायत नही रहती थी। घर मे चाहे जो होता रहे उन्हे किसी बात से सरोकार नही रहता था। वेतन मे से सौ रुपए घर-खर्च के लिए काकाजी को देना और पाँच रुपए माँ को धर्म-पुण्य के लिए देना—फिर कभी किसी बात मे दखल नही देना, ऐसा उनका सीधा-सादा मार्ग था। अपनी भावज और बहन (मेरी सास) से उन्हें बहुत प्रेम था। उन दोनो को हाथ-खर्च के लिए वे दो-दो रुपए मासिक दिया करते थे। कम-अधिक मात्रा मे अपने से जो हो सकता है उसे करना और सब लोगो को सुख देना, इसे वे अपना कर्त्तव्य समझते थे। घर में हमेशा प्रसन्न वातावरण बनाए रखने के लिए वे प्रयत्नशील रहते और छोटे-मोटे विवादो को मिटाते रहते थे। उनकी पत्नी बहुत ही झगडालू स्त्री थीं। उन्हे इस बात पर गर्व था कि उनका पति अधिक वेतन पाता है। अमीरी की अकड उनके रोम-रोम मे समा गई थी। खूब बनाव-सिंगार करना और बात-बात मे हर किसी पर टूट पडना उनका मुख्य काम था। समय आने पर पति से कहने मे भी नही चूकती थी। सास को भी दुरुत्तर सुना देती थी। किन्तु छोटे मामाजी उनकी बातो को हँसकर टाल देते थे। अपना अलग घर बनाने का मामीजी ने बहुत प्रयत्न किया था, किन्तु मामाजी ने उनकी दाल नही गलने दी।

विधि की घटना भी कैसी विचित्र होती है। छोटे गोपाल मामाजी का स्वभाव नितान्त सुन्दर था तो उनके पल्ले राधा मामीजी-जैसी झगडालू स्त्री बँधी थी। बडे शकर मामाजी का स्वभाव बहुत ही निम्न कोटि का था तो उनके भाग्य से उमा मामीजी-जैसी सत्वशीला पत्नी का लाभ उन्हे हुआ था। सही है कि परमात्मा कभी योग्य जोडा पैदा नही करता।

मेरी खास सासूजी का स्वभाव बहुत ही सीधा-सादा था। घर का सारा काम-काज वे और उमा मामीजी मिलकर ही किया करती थी। घर के किसी को काम करने मे भेद-भाव नही किया करती थीं। कभी किसी काम से मुँह नहीं मोडती थीं। सुबह चार बजे से लेकर रात के आठ बजे तक वे हमेशा काम-काज में जुटी रहती थीं। उनकी सहायक रहती थी उनकी बडी भाभी, अर्थात् उमा मामीजी। उन दोनो मे बडी घनिष्ठता थी। कपट नाम की चीज को वे जानती ही नहीं थीं। साथ ही स्पष्टवादिनी भी थीं।

घर के छोटे लोग अर्थात् वारु दीदी, बनू दीदी, घोड्डू भैया आदि के बारे मे पहले ही कहा जा चुका है। अत अब विशेष कहने की आवश्यकता नही।

उपरोक्त वर्णन मे केवल स्वभाव का ही वर्णन है—अधिक जानकारी समयानुसार होती रहेगी। घर के केवल एक व्यक्ति के बारे मे कुछ नही कहा गया है, किन्तु 'उनके' बारे मे इस समय कुछ कहना निरर्थक है, समय आने पर कहा जा सकेगा।

२७

'जिसके सास नही होती उसे बारह सासें होती हैं' ऐसी कहावत हम स्त्रियो मे प्रचलित है। मेरे बारे मे यह कहावत यथार्थ थी। यद्यपि मेरे सगी सास थी, फिर भी वह नही के बराबर ही थी। क्योकि वे बेचारी इतनी सीधी-सादी थी कि घर मे उन्हे कोई अधिकार प्राप्त नही था। मुझे कोई बुरा-भला कहता तो उन्हे बहुत दु ख हुआ करता था, किन्तु वे कुछ कह नही सकती थी। किसे कहती और क्या कहती। छोटी ममिया सास का यह हाल था तो अजिया सास का वह हाल। सीधी-सादी थीं केवल मेरी सासूजी और बडी ममिया सासूजी। किन्तु उन दोनो की घर मे कोई पूछ नही थी। और न वे दोनो बेचारी किसी बात मे दखल ही देती थी। मेरी सासूजी का न बोलना ही उचित था, क्योकि जान-बूझकर वे दूसरे के घर मे रहती थी। इस पर यदि घर के सब लोग सुस्वभाव होते तो बात पृथक् थी। किन्तु गोपाल मामाजी और बडी मामीजी के अतिरिक्त शेष सभी लोगो का अजीब ढंग था। उमा मामीजी की हालत सासूजी से भी बुरी थी। क्योकि घर में बड़ी होकर भी उन्हें कोई अधिकार प्राप्त नही था। स्वय उनकी सन्तान वारु दीदी, बनू दीदी और घोड्डू भैया भी उनका कहा नही मानते थे। सभी अपने

पिताजी का अनुकरण किया करते थे। शकर मामाजी कभी सनक आने पर बडे दुलार से अपनी पत्नी को प्यार-भरे सम्बोधन से पुकारा करते थे—वह सम्बोधन था 'पगली' सब बच्चो के सामने वे उन्हे पगली कहकर पुकारा करते थे। धोड्डू भैया जब छोटे थे तभी से उन्हे उनके पिताजी ने माँ को पगली कहकर पुकारने के लिए पढाया था। अब बडा हो जाने पर भी वह शैतान अपनी माँ को पगली कहा करता था। मेरे सामने की बात है, बडी मामीजी ने धोड्डू भैया को किसी काम को करने के लिए कहा तो "मेरा अगूठा करेगा पगली का काम" ऐसा माँ से कहकर बेटा भाग गया था। यह सुनकर माँ को गुस्सा आ गया और उन्होने उसे पकडकर दो-चार तमाचे जमा दिए। वह शैतान चीखता हुआ माँ पर 'पगली, मरकोनी' आदि शब्दो की वर्षा करता रहा। हाथ-पैर और सिर पटकता रहा। तभी कही से उसके पिताजी आ गए। अपने लाडले लल्ला की शिकायत सुनकर पिताजी ने अपनी धर्म-पत्नी को लाख गालियाँ सुनाई। गालियो से बचने के लिए शायद वह वहाँ से चली जायगी, इसलिए उन्होने उसे अपने सामने खडा कर रखा था। समस्त प्राणियो मे अत्यन्त सहनशील स्त्री जाति होती है। स्त्री होकर भी हमारी सहनशीलता तो क्या किन्तु उमा मामीजी-जैसी सहनशीलता की मूर्ति की भी कुछ मर्यादा होती है। जब सहन-शक्ति की हद हो चुकी तो उमा मामीजी रो पडी और कहा, "क्या बेटा भी मेरे साथ इस प्रकार की बातचीत करेगा ?"

उत्तर मे शकर मामाजी ने कहा, "अर्थात् ! तू इसी योग्य है। लडका कहेगा नही तो क्या छोड देगा। एक बार नही हजार बार कहेगा।" इतना कहने से उन्हे सतोष नही हुआ था। इसलिए उन्होने अपने सुपुत्र से कहा, "धोडया, तू ऐसा ही कहा कर ! बडी आई दिमाग दिखाने वाली।"

इस पर कोई क्या कह सकता था। इस प्रकार बच्चो को शिक्षा मिलने पर उनके बर्ताव के बारे मे दु ख करना व्यर्थ है। उनके मन मे माँ के प्रति अनादर-बुद्धि का निर्माण होकर वे अपनी माँ का अपमान क्यो नही करेंगे ? चार दिन के बाद की घटना है। उक्त प्रसग के बाद उमा मामीजी उदास होकर घर मे मौन-सी रहती थीं। सम्भवत इन चार दिनो मे उन्होने अपने पति के साथ बातचीत भी नही की थी। अजिया सासूजी ने आटा छानने के

लिए मुझे भडार-कक्ष मे बैठने के लिए कहा था, मैं वहाँ बैठी आटा छान रही थी। पास के कमरे मे "वे" पढाई करने के लिए बैठा करते थे। इसलिए आते-जाते "उनकी" नज़र से बचने के लिए मैंने किवाड अडगा लिया था। कुछ देर बाद न जाने कब, भडार-गृह के सामने वाले कमरे मे उमा मामीजी आकर लेट गई थीं। सुबह से उनके सिर मे दर्द हो रहा था। कुछ देर बाद शकर मामाजी भी वहाँ आ गए। मैं आटा छानने मे व्यस्त थी। किवाड बन्द होने से वे नही जानते थे कि अन्दर मैं बैठी हूँ। मैंने सुना, शकर मामाजी कह रहे थे—

"क्यो, चार दिन से बिलकुल मौन धारण कर रखा है ? बोलिए, हमसे बोलिए—" उमा मामाजी को चुप देखकर उन्होने फिर कहा, "हमने ऐसा कौन-सा अपराध किया है ? यही न, कि परसो तुमसे कुछ कहा ? अरे, उसमें क्या धरा है ? गुस्से मे आकर मुँह से कुछ निकल ही जाता है। उस बात को लेकर इस प्रकार बातचीत बन्द कर देना तो अन्याय होगा। बोलो, कुछ तो कहो!" इतना कहकर वे मामीजी के बिलकुल समीप जाकर बैठ गए। किवाड पूर्ण रूप से बन्द नही था—खुली दराज से मुझे दिखाई दे रहा था। उपरोक्त सवाद हो जाने तक मेरा वहाँ बैठे रहना ठीक नही, ऐसा विचार भी मेरे मन मे नही आया था। किन्तु अब मैं घबरा गई थी। मेरी समझ मे नही आ रहा था कि क्या करूँ ? उठकर जाना चाहूँ भी तो उनके वहाँ से जाना होगा। दरवाजा पूर्ण बन्द करने का प्रयत्न भी किया जाय तो आहट होने से उनके ध्यान मे आ जायगा। यदि वे मुझे देख लेगे तो फिर मेरी खैर नही। न जाने कौन-सी मुसीबत को मोल लेना होगा। छोटे मामाजी होते तो मैं तत्काल वहाँ से भागकर चली जाती। किन्तु अब मैं जाती हूँ तो बड़े मामाजी, 'अब तक यहाँ पर क्यो बैठी थी,' ऐसा कहकर न जाने क्या कह डालेगे, इस भय से मैं जहाँ-की-तहाँ दुबककर बैठी रही। इच्छा न रहने पर भी मुझे उनका सभाषण सुनना पडा।

मामाजी मामीजी के सिरहाने बैठकर कह रहे थे, "तुम्हे क्या हो रहा है ? मैं दबा दूँ ? गोपाल से मैं थाल ले आऊँ ?" इतना कहकर वे सिर दबाने लगे। चार दिन पहले अपने बेटे का पक्ष लेकर पत्नी को गालियाँ सुनाने वाले मामाजी क्या यही थे ? उस दिन का व्यवहार क्या था और आज वे क्या

कर रहे थे ? उनके बर्ताव मे कोई मेल नहीं था। वे मना रहे थे ? किन्तु मामीजी के मुँह से एक शब्द भी नही निकला। उन्होने मामाजी का हाथ सिर से हटाकर दूर कर दिया। किन्तु मामाजी कब मानने वाले थे। वे पूर्ववत् सिर दबाते हुए कह रहे थे, "हम आपके पैर छूते है, क्षमा चाहते है, फिर तो ठीक है ? अब हम कभी कुछ नही कहा करेगे। अब क्या कहना चाहती हो ? उस धोडया की खूब धुनाई कर दूँ—अरे वह तो बच्चा है, उसने कुछ कह भी दिया तो क्या हो गया ? मैं भी उस दिन कुछ त्रस्त था। बच्चे की चीख-पुकार सुनकर मेरा भी सिर घूम गया था। उस पर नाराज होना था तो तुम-से बिगड बैठा। अरे उस बिगडने मे क्या धरा है ? अच्छा, अब उठो ! भविष्य में कभी ऐसा नही होगा।" इतना वे गिडगिडाते रहे, किन्तु मामीजी ने अपना मुँह नही खोला, और करवट बदलकर लेट गई। मुझे मामाजी पर तरस आ रहा था, मन कह रहा था कि मामीजी को इतना कडा नही होना चाहिए। अन्त मे उकताकर मामाजी ने कहा, "मैं कब से तुम्हारी मिन्नतें कर रहा हूँ और तुम एक शब्द भी नही बोल रही हो। अब तुमसे क्या कहा जाय। व्यर्थ मे लोग-बाग तुम्हे भलाई देते है। ए, देखो, सचमुच मैं अब तुम्हारे पैर छूता हूँ। अब तो पिघलोगी ?" इतना कहकर वे मामीजी के पैरो के समीप सरक गए। देखते ही मामाजी उठकर बैठ गईं और "यह क्या कर रहे है आप" कहकर खडी हो गई। मामाजी ने कहा, "फिर तुम बोलती क्यो नही ? लाख बार कहा कि क्षमा कर दो, फिर भी नही मानती। इसलिए सोचा कि पैर छू लूँ—"

"जी हाँ। पहले तो जूते मारना और फिर पैर छूना। अच्छा तो यही है कि दोनो बाते न करें।"

"समयानुसार दोनो ही करनी होती हैं। और फिर जूते मारने वाला मैं और पैर छूने वाला भी तो मैं ही हूँ।"

इस पर मामीजी ने कुछ नही कहा। मामाजी फिर कहने लगे, "अब तो उसका प्रायश्चित्त हो गया न ? तुम्हारे सामने लाकर उस धोडया की खूब पिटाई करता हूँ फिर तो कुछ नही कहोगी ?"

फिर भी मामीजी मौन थी। कुछ देर बाद मामाजी ने कहा, "क्योजी, परसो तुम्हारे भाई के यहाँ से पन्द्रह रुपए किस बात के आए थे ? तुमने रुपए

मुझे लाकर क्यो नही दिए ? आजकल तुम मुझसे कपट रखती हो। मुझे तो कल 'बनी' ने कहा। कहाँ है वे रुपए ?"

उनका प्रश्न सुनकर मामीजी ने केवल इतना ही कहा, "सासूजी को दे दिए हैं—उन्हीके पास है।"

"क्यो ? उन्हें क्यो दिए ? क्या मैं मर गया था ? किसने जाकर माँ को दिए ? यदि दिए भी तो उनसे लेकर तुमने मुझे क्यो नही दिए ? तुम आजकल बहुत ही—जाने दो ! अभी जाकर उनसे माँग लो और मेरे पास जमा करो !"

"इस समय उनसे कैसे माँग सकती हूँ ? उनसे क्या कहूँगी ?"

"जो चाहो कहो ! रुपए मुझे मिलने चाहिएँ।"

"लेकिन मैं उनसे कैसे माँगू ? वे क्या कहेगी ? जरा तो सोचिए !"

"सोचने का काम तुम्हारा है। किसी प्रकार मुझे रुपए मिलने चाहिएँ। इससे अधिक मैं और कुछ नही कहना चाहता।"

"मैं रुपए नही माँगूंगी। आप जो कहना चाहे मुझसे कह सकते है।"

"मैं तुमसे रुपए मँगाकर ही दम लूंगा। समय पडने पर मैं तुम्हारे पैर भी छू सकता हूँ—चाहे जो कर सकता हूँ किन्तु—"

"किन्तु क्यो ? जो जी मे आए कह डालिए ! एक जन्म···" इतना कहते-कहते उनकी आँखो से आँसुओ की झडी लग गई और वे बेचारी गर्दन झुकाकर बैठ गई।

"मैं इस नाटक को खूब जानता हूँ। कल तक मुझे रुपए मिलने चाहिएँ। नही तो देख लोगी कि मैं किस प्रकार आग लगा सकता हूँ।" इतना कहकर महाशयजी वहाँ से उठकर चल दिए। उनके चले जाने से मेरे सिर का बोझा उतर गया। फिर भी मेरे सामने समस्या थी कि बाहर किस प्रकार जाऊँ। क्योंकि मामीजी वही लेटी थी। यदि बाहर जाती हूँ तो 'अपना सभाषण इस लडकी ने सुन लिया' यह जानकर मामीजी नाराज होगी। यदि अपनी जगह रुकी रहूँ तो घर मे हो-हल्ला मच जायगा कि लडकी कहाँ गई। हल्ला हो जाने पर फिर तो वे जान ही लेंगी कि मैं यहाँ बैठी थी। इस उधेड-बुन से तंग आकर आखिर मैं उठकर उनके पास चली गई और रोते हुए मैंने कहा, "मैं भीतर बैठी थी—"

यह सुनकर मुँह बिगाडते हुए उन्होने कहा, "भीतर बैठी थी ? कहाँ ? कब !" मैंने कोई बात छिपाकर नही रखी। कैसे बैठी थी, क्यो बैठी थी आदि सब कहकर मैं रोने लगी। कुछ देर तक वे मौन बैठी रही, फिर उन्होने कहा, "तुम्हे उसी समय उठकर चली जाना चाहिए था। अस्तु। अब इसके बारे मे किसी से कुछ कहना नही। समझी ?" इतना कहकर उन्होने मुझे जाने के लिए कहा, किन्तु इसी समय छोटी मामीजी वहाँ आ गई और मुझे डाँटने लगी। "क्या नया आटा बना रही हो ? बात क्या है ?" बीच ही मे मेरी गलती को सुधारते हुए उमा मामीजी ने कहा, "नही जी। आटा तो वह तभी छान चुकी थी। मैंने उसे अपने पैर दबाने के लिए रोक रखा था।" उन्होने मेरा पक्ष समर्थन करने का प्रयत्न किया, किन्तु उन्हे कौन पूछता था, इस घर मे उन्हे क्या अधिकार था ? मेरा पक्ष लेते देख शायद छोटी मामी को बुरा लग गया था इसलिए वे मुझे और भी डाँटने लगी थी। कुछ भी हो, किन्तु उस दिन उमा मामीजी ने मेरे गिरते हुए पक्ष को सम्हाल लिया था। यदि ऐसा न होता तो बडी आफत आ जाती। मैं कोठी मे बैठी आटा छान रही हूँ और वहाँ बैठकर मैंने सब बाते सुन ली है, यह जान लेने पर मामाजी का मेरे बारे मे बहुत बुरा मत हो जाता और वे हमेशा मेरे ऊपर शस्त्र ताने रहते। मैं इससे बच गई थी अन्यथा उनके कुत्सित और कटु उद्‌गारो को सुनकर मेरा कलेजा फट जाता।

तीन दिन बीत गए। मामीजी ने अपनी सासूजी से रुपयो की माँग नही की। किसी कार्य के उपलक्ष मे वे रुपए उमा मामाजी को उनके भाई ने साडी मोल लेने के लिए भेजे थे। उस कार्य मे शकर मामाजी ने मामीजी को नही जाने दिया था। घर के सब लोगो ने कहा, किन्तु मामाजी ने उन्हे नही भेजा। न भेजने में न जाने उनका क्या हेतु था। मामीजी का भाई देहात मे रहता था। वहाँ अच्छी साडियाँ नही मिलती थी, इससिए किसी के द्वारा रुपए भेज-कर उसने मामीजी को कहलवाया था कि अपनी मनपसन्द साडी खरीद ले। वास्तव मे भाई ने जिनके हाथो रुपए भेजे थे उनसे कहा था कि वे स्वय बाजार से साडी मोल लाकर दे—अर्थात् मामीजी को पसन्द कराकर किन्तु मामीजी ने कहा कि साडी लाने की आवश्यकता नही, रुपए सासूजी के हवाले कर दिए जायें। चुगलखोर बन्नू दीदी के मुँह से भाई का मूल सदेश प्रकाशित हो गया

और व्यर्थ मे भाई की घर मे भर्त्सना की गई। "हम क्या रुपए हजम करने वाले थे ? स्वय जाकर साडी ला दो, ऐसा उसने क्यो कहलवाया ? बहन से इतना प्रेम था और हम लोगो का विश्वास नही था तो ले आता अपने-आप साडी।" इस प्रकार के कटु वचनो की झडी लग गई थी। अजिया सासूजी और छोटी मामीजी लगातार वाक्-ताडन कर रही थी। इसी समय मामाजी ने मामीजी से कहा था कि वे रुपए माँग लिये जायँ। उमा मामीजी-जैसी सत्वशीला स्त्री उन रुपयो के बारे मे इतना भारी महाभारत हो जाने पर, किस प्रकार माँग कर सकती थी।

तीन दिन बीत गए और रुपए अपने हाथ नही लगे, यह देखकर चौथे दिन सोकर उठते ही तम्बाकू का चर्वित चर्वण करते हुए शकर मामाजी अपनी माँ के पास चले गए और त्योरियाँ चढाकर कहने लगे, "माँ, यह तुमने मेरे पीछे क्या आफत लगा दी है ? कौन-से रुपए है तुम्हारे पास ? आज चार दिन से मेरा दिमाग चाटा जा रहा है कि भाई के यहाँ से रुपए आए हैं उन्हें माँग लो! माँ, तुम क्यो ऐसे अधीर व्यक्ति के रुपए लेकर बैठी हो ? फेंक दो ना उठाकर। तुम्हे यदि रुपयो की आवश्यकता है तो मुझसे माँग लो! किन्तु इन रुपयो को उठाकर फेक दो, जिससे मेरा पिंड छूट जाय। व्यर्थ मे मेरे पीछे तगादा लगा रखा है। आखिर है किस बात के ये रुपए ?"

यह विचित्र भाषण सुनकर मैं तो दग रह गई। अजिया सासूजी क्रोध से उबल पडी। स्नान करके वे पूजा करने जा रही थी। उसी क्षण उठकर वे अपनी दीवार मे बनी अलमारी के पास चली गई। रुपए निकालकर उन्होंने मामाजी के सामने फेंक दिए। मुँह से मामीजी पर शब्दो की झडी लग रही थी। मामाजी आग मे तेल डालने का कार्य कर रहे थे।

"लेकिन माँ, जिसके रुपए हैं उसने उनकी माँग की तो इसमे नाराज होने की क्या बात है ? क्या तुम्हे किसी कार्य के लिए रुपयो की आवश्यकता है ? मुझसे कहो, मैं दूँगा। रुपयो की कौन-सी बडी बात है। मैं तो इन रुपयो का जिक्र भी न करता, किन्तु क्या करूँ। तीन-चार दिन से मेरे पीछे तगादा लगा रखा है। तब सोचा कि इस झझट को मिटाना ही होगा। मैंने तो यह भी कहा था कि, भई तुम्हारे रुपए है तो तुम माँग लो! मुझे क्यो परेशान करती हो ? शायद दो-चार बार माँगने पर तुमने बात टाल दी थी। अजीब मुसीबत

है ?" इस प्रकार बाते गढकर मामाजी ने आग लगा दी । सही बात को कौन जानता । बेचारी बडी मामीजी चुप थी । मैं कुछ कह सकती थी, किन्तु मेरे कहने से तो अनर्थ हो जाता । उन रुपयो को हथियाने के लिए मामाजी ने इस प्रकार वाम मार्ग को अपनाया था । मामीजी को कितना दु ख हुआ होगा । 'स्त्री का जन्म मुँह बाँधे मार खाने के लिए ही होता है' ऐसा जो कहा जाता है वह कितना यथार्थ है ।

२८

दो-चार दिन बाद मुझे मायके से बुलावा आया था। घर मे बहुत-कुछ टाल-टूल के बाद मुझे मायके भेजा गया। मेरे मायके जाने मे कई बाधाएँ उत्पन्न हुआ करती थी। बुलावा पहले अजिया सासूजी के पास भेजा जाता था । यदि वे प्रसन्न हो तो ठीक, नही तो कह देती थी, "देखोजो पहले उसकी सास से जाकर पूछो—मुझ बुढिया को क्या कहते हो । मैं तो अब न इसमे हूँ, न उसमे । मेरे नाम तो बिन्दी है।" यह सुनकर जो बुलाने आता था वह घबरा जाता था । क्योकि इस उत्तर से हाँ या नही का बोध नही हो सकता था । अधिक-से-अधिक वह सासूजी के पास चला जाता । सासूजी कह देती, "देखो, तुम अब जाओ । मैं देख लूँगी—भेजना होगा तो भेज दूँगी, नही तो नही भेजूँगी ।" यह कहकर वे बुलाने आने वाले व्यक्ति को लौटा दिया करती थी । इसका कारण यही था कि सासूजी की इच्छा रहने पर भी यदि अजिया सासूजी उपरोक्त भाषा का प्रयोग करने लग जातीं तो वे बेचारी चुप रह जाती थी । एक बार नहीं, पचासो बार यही हाल होता रहा ।

कहने की आवश्यकता नही कि माँ के होते हुए मायके आने मे मुझे जो आनन्द हुआ करता था वह अब नही होता था । विशेष दु ख इस बात का था कि इन दिनों दादी हमेशा दुखी और त्रस्त बनी रहती थी । हमारी नई माँ का स्वभाव अहकारी था। दादी का उसके साथ बिलकुल मेल नही खाता था । और धीरे-धीरे यह बात स्पष्ट होती जा रही थी कि दादी को शीघ्र ही

अपने गाँव जाना होगा। विशेष कारण यह था कि मेरी सौतेली माँ की माँ बडे विचित्र ढग की स्त्री थी और दादी उसे बिलकुल नही चाहती थी। दादाजी और पिताजी का प्रेम तो प्रसिद्ध ही है, इसलिए दादी इस बात को अच्छी तरह जानती थी कि नई माँ को लेकर यदि कोई विवाद उपस्थित होगा तो उसे अपना बिस्तरा गोल करना पडेगा। सम्भवत इसी कारण से वह हर बात मे झुक जाती थी। इस प्रकार नई माँ का वातावरण होने से मुझे वहाँ जाने की विशेष तीव्रता प्रतीत नही होती थी, किन्तु आखिर वह मायका ही तो था। हम स्त्रियो मे कहावत है कि मायके का कुत्ता देखकर भी सन्तोष हो जाता है। फिर मायके जाने की इच्छा क्यो नही होगी ? ऐसे दूषित वातावरण मे भी मायके का घर मेरे लिए जो विशेष आकर्षण था उसका मुख्य कारण था भैया। हम दोनो को एक-दूसरे से अत्यधिक प्रेम था। हम आपस मे लडते-झगडते थे, कटु वचन बोला करते थे फिर भी हमारे प्यार मे कभी रत्ती-भर भी फर्क नही हुआ था। माँ का देहान्त हो जाने पर तो वह दस गुना अधिक बढ गया था।

मायके जाने पर मैं भैया के साथ घटो बैठी बातचीत करती रहती थी। तब वह मुझे घर की समस्त बातो का ब्यौरा सुनाया करता था। कभी-कभी तो उसकी बातें सुनकर मुझे हँसी आ जाती थी। क्योकि जो बातें हम स्त्रियो के ध्यान मे भी कदाचित् ही आ सकती हैं ऐसी बातें—विशेषत हमारी सौतेली नानी की बातें मुझे सुनाया करता था। एक दिन उसने मुझसे कहा, "यमू, क्या हमारी माँ हमे कभी किसी की दृष्टि बचाकर घी-छुवारे खाने को दिया करती थी ?"

मैने हँसकर कहा, "यह भी कोई प्रश्न है ? मुझे नही मालूम।"

उसने आगे कहा, "अच्छा, तो यह बताओ, कभी तुम्हारे अथवा सुन्दरी के भात मे पकाते समय ही घी छोडा जाता था ? कभी रोटी के भीतरी परत मे घी रखा जाता था क्या ?"

मैंने हँसकर कहा, "कहते चलो, जो कुछ कहना है—"

किन्तु वह नही हँसा, गम्भीर बनकर कहता रहा, "तुम्हे कभी पति के सामने विचरते रहने के लिए सिखाया गया था ?"

उसका यह प्रश्न सुनकर में अस्वस्थ हो उठी। बीच मे ही मैंने कहा,

"बस करो भैया, ऐसी बाते न करो, नही तो मैं यहाँ से चली जाऊँगी। कैसे विचित्र प्रश्न पूछ रहे हो तुम मुझसे ? आजकल न जाने तुम किस धुन मे लगे रहते हो ?" वह हँस दिया। कुछ देर बाद वह फिर कहने लगा, "और नही तो क्या। मैं समझ रहा था कि हमारी माँ को हमसे बहुत दुलार था, किन्तु शायद यह मेरी भूल थी। इन दिनो नई माँ की माँ का अपनी बेटी से जो दुलार देख रहा हूँ उसका ढग बिलकुल निराला है। उस बेचारी सुन्दरी को समय पर खाना भी नही मिलता। फिर मक्खन या घी और घी-छुवारो की बात तो दूर रही।"

मुझे नही मालूम था कि भैया ऐसा कुत्सित भाषण कर सकता है अथवा इन जरा-जरा-सी बातो की ओर ध्यान दे सकता है। किन्तु मनुष्य जब विविध अवस्थाओ के चक्र मे घूमा करता है तब उसके चाल-ढाल और आचार-विचारो मे बहुत बडा अन्तर हो जाता है। माँ की मृत्यु के बाद घर का वातावरण ही बदल गया था। उसके साथ ही भैया की मन स्थिति मे भी परिवर्तन होना स्वाभाविक ही था।

मेरी दृष्टि मे, यद्यपि भैया का निष्कपट स्वभाव वैसे ही बना रहा था फिर भी उसके कुत्सित भाव जाग उठे थे, इसमे सदेह नही। इसके कारण भी वैसे ही थे। जिन बातो का उल्लेख उसने लाक्षणिक रूप मे किया था उन बातो को सरासर वह अपनी आँखो से देख रहा था। मेरे भैया और सुन्दरी के लिए जहाँ खाने-पीने के लाले पड गए थे वही हमारी नई माँ के लिए घी-दूध के भडार खुल गए थे। भैया की बात का मैंने विरोध अवश्य किया था, किन्तु पिताजी की दृष्टि के सामने हमेशा बनी रहने के लिए नई माँ को उपदेश दिया जाता था, यह भी सत्य है। विशेष उल्लेखनीय बात तो यह है कि विवाह के बाद नई माँ मेरे साथ निष्कपट भाव से बर्ताव किया करती थी, किन्तु दूसरी बार जब मैं मायके आई थी तो उसका यह निष्कपट भाव लुप्त हो गया था। और होते-होते छैं महीने के बाद उसमे बहुत बडा परिवर्तन हो गया था और वह मेरे साथ सीधे मुँह बात भी नही किया करती थी। हम उसे नई माँ कहकर पुकारा करते थे किन्तु वह उसे पसन्द नहीं था—अथवा पसन्द न हो ऐसी व्यवस्था की गई थी। सुन्दरी ने उसे नई माँ कहकर पुकारा, इस बात को लेकर दादी और नई नानी मे झगड़ा हो गया। झगड़े का कारण बहुत क्षुद्र था।

सुन्दरी के 'नई माँ' कहकर पुकारने पर 'नई माँ' नाराज हो गई। उसने सुन्दरी को केवल 'माँ' कहकर पुकारने के लिए कहा। सुन्दरी तो हठीली थी। उसने उत्तर मे कहा, "नही कहूँगी।" यह सुनकर नई माँ ने गुस्से मे आकर उसे तमाचा जमा दिया। सुन्दरी का रोना-चीखना सुनकर दादी वहाँ आ गई और रोने का कारण सुनकर उबल पडी। उसे तमाचा जमाने के लिए दादी ने नई माँ को पचासो बाते सुना दी। जब बात आरम्भ हो गई तो फिर क्या था। कई दिनो से जो मन मे घुमड रहा था, वह सब बाहर आ गया। छिपाकर खाने के लिए देना, अनुचित बातें सिखाना, बच्चो के खाने-पीने मे दुर्लक्ष किया जाना आदि कई बातो का उद्‌गार हो गया। आखिर वह घर की मालकिन ही तो थी। वह कहने मे क्यो चूकेगी ? जब पिताजी ने यह सब सुना तो बीच-बचाव करके उभय पक्ष को शान्त कर दिया। वे किसी से कुछ नहीं कह सकते थे। पत्नी को भी कुछ नही कह सकते थे, क्योकि वह द्वितीय पत्नी थी। अर्थात् उसकी माँ होने के नाते अपनी सास से भी कुछ नही कह सकते थे। दादी तो प्रत्यक्ष उनकी माँ थी, उसे क्या कह सकते थे। इसलिए उन्होने केवल इतना कहकर बात को नही बढने दिया कि बच्ची को मारना नही चाहिए, उसे समझाकर कहना चाहिए।

जिस दिन यह झगडा हुआ था उस दिन को मैं अपने मायके के सुख का अतिम दिवस मानती हूँ। भैया ने अपना मत पहले ही प्रकट कर दिया था। वह समझ रहा था कि घर का सुख अब उसके भाग्य मे नही है। और यह सही साबित हुआ।

उपरोक्त झगडे के एक-दो महीने बाद नई माँ 'सयानी' होकर उसके फलशोभनादि सस्कार विधि से किये गए थे। उस दिन से ही उसका और उसकी माँ का प्रभाव घर मे उत्तरोत्तर बढता गया और दादी का कम होता गया। एक-दो बार तो उसने गाँव लौट जाने की तैयारी भी की थी, किन्तु लौकिक दृष्टि से ठीक न होने से पिताजी ने उसे आग्रहपूर्वक रोक लिया था। किन्तु घर मे जो कुछ हो रहा था वह दादी से देखा नही जाता था और कुछ कहने पर वाद-विवाद छिड जाता था। जब यह प्रतिदिन का कार्यक्रम बन गया तब एक दिन भैया ने अकेले मे उसे सुझाया कि सुन्दरी को लेकर वह गाव चली जाय। वह भी यही चाहती थी, किन्तु हम भाई-बहनो के लिए सब सहकर वह रुकी थी।

आखिर भैया ने कहा, "बडी माँ, अब तुम्हारा यहाँ रहना उचित नही है। तुम यहाँ से गाँव चली जाओ! हमारा हम देख लेगे। अब मैं नादान तो हूँ नही। यमुना भी समझदार हो गई है, और अब वह इस घर मे कम ही आया करती है।" भैया का इस प्रकार प्रभुत्वपूर्ण भाषण सुनकर दादी की आँखो मे आँसू निकल पडे। शायद यह उस सौतेली नानी रूपी नागिन ने देख लिया था, क्योंकि इसकी रिपोर्ट माँ द्वारा पिताजी तक पहुँच चुकी थी। दूसरे दिन पिताजी अप्रसन्न दिखाई दिये थे। दादी के गाँव जाने का प्रस्ताव करते ही उन्होने कहा, "हाँ, जब तुम्हे यहाँ दु ख है तो जहाँ सुख होगा वहाँ खुशी से जा सकती हो। मुझे आपत्ति नही। सुन्दरी को भी यहाँ रहना पसन्द न हो तो वह स्कूल छोडकर जा सकती है।" जब बात इस हद तक पहुँच गई तो फिर दादी कब रुकने वाली थी। सुन्दरी को लेकर वह गाँव चली गई। इस प्रकार माँ की मृत्यु के आठ-दस महीनो के बाद ही मेरे लिए मेरा मायका नही रहा, यह कहने मे अत्युक्ति नही होगी।

माँ का देहान्त हो जाने से कितना बड़ा अनर्थ हो गया था। उसके रहते घर मे एक व्यवस्था बनी रहती थी। अब कुछ शेष नही रहा था। मेरी वह सद्गुणो की प्रतिमा माँ चली गई और उसके स्थान पर यह दरिद्र—अर्थात् एकदम राज्य-प्राप्ति से जिसका सिर आसमान छूने लगा था और जो अपनी दुष्टा माँ के कटु उपदेश से स्वय दुष्ट बन गई थी—नई माँ हम पर अधिकार चलाने हमारे घर आई थी। मुझे और भैया को भी वह बडी-बडी सीख की बातें सुनाया करती थी। किसी प्रौढा की तरह उसने मुझे मेरे 'उनका' मन किस प्रकार रिझाना चाहिए, इसके बारे मे उपदेश किया था। भैया बेचारा उसकी हवा तक नही लगने देता था। यदि वह कुछ कहती तो सुनी-अनसुनी करके टाल दिया करता था। नई माँ उसे भैया आदि किसी उपनाम से पुकारने की अपेक्षा स्पष्ट कहा करती थी, "अरे गणपति, क्या तुझे स्कूल नही जाना है? बैठा क्यों है? ग्यारह तो कभी के बज चुके।" पिताजी के सामने वह उसके खाने-पीने की पूछ-ताछ किया करती थी। जब वह जान लेती कि पिताजी कही आस-पास हैं तो बड़े दुलार से कहा करती, "अरे गणपति, आज तूने भर-पेट भोजन क्यों नहीं किया? सिर में दर्द तो नही है? कुछ सोठ, जायफल घिसकर लाऊँ?" यह सुनकर पिताजी क्या सोचते होगें, इसका तो मुझे पता

नही, किन्तु यह जरा-सी लडकी इस प्रकार बडप्पन दिखाकर, कमर मे एक तरफ लटका हुआ कुजियो का गुच्छा बजती हुई और दूसरी ओर स्वच्छ सफेद रूमाल खुरसकर और बालो का उलटा जूडा बाँधकर, त्योरियाँ ताने जब घर मे यहाँ से वहाँ घूमा करती थी तो हमें हँसी आ जाती थी। हमारी माँ ने ऐसा कभी नही किया था। इसलिए हमे यह नहीं भाता था। किसी उत्सव-समारोह मे जब उसे जाना होता तब अपने बनाव-सिंगार की वह हद कर देती थी। उसका वर्णन न करना ही उचित है। आखिर वह भी हमारी माँ थी। उसके बारे में जो लिखा गया वही अधिक है। किन्तु क्या किया जाय। मेरी माँ और इस नई माँ की तुलना जब मन करने लगता है तो दोनो के बर्ताव का विरोध मन मे आ ही जाता है। और मन मे आई बात को लिखे बिना मन नही मानता।

दो वर्ष बीत चुके थे। मायके की हालत दिन-प्रतिदिन बिगडती ही जा रही थी। मायके मे मुझे अब यदा-कदा बुलाया जाता था। वहाँ जाने पर नई माँ त्योरियाँ चढाकर मेरी ओर देखा करती थी। पिताजी के सामने हमसे प्रेम का नाटक खेला जाता था। दुर्गी की माँ से नई माँ का हमेशा झगडा होता रहता था। सौतेली नानी तो पल्लू मे आग बाँधे उनसे लडा करती थी। इस लडाई-झगड़े के कारण वह परिवार बहुत त्रस्त हो गया। आखिर उकताकर दुर्गी के पिता ने उस घर को छोड दिया और वे लोग दूसरी जगह जाकर रहने लगे। इसी बीच पिताजी को कही अच्छी-सी नौकरी मिल गई थी, इसलिए दूसरा किरायेदार टिकाने की अपेक्षा पूरा घर उन्होने किराये पर ले रखा था। आज तक मायके आने पर अपने मन की सुख-दु ख की बाते करने के लिए मुझे जो दुर्गी का सहारा था वह भी नही रहा। अब उसकी भेंट होने की बहुत कम सम्भावना रह गई थी। हम लडकियो का विवाह हो जाने पर, इच्छा रहते हुए भी अपनी सखी-सहेलियों से मिलना-जुलना हमारे लिए असम्भव हो जाता है। हमारी सभी बाते दूसरो की इच्छा पर निर्भर रहती है।

छै महीने हो चुके थे, मैं दुर्गी से नही मिल पाई थी। एक बार चैत्र-गौरी के समारोह के अवसर पर रास्ते मे जरा देर के लिए उससे मिल पाई थी। उस समय वह अपनी सास के साथ थी इसलिए कुछ अधिक नही बोल सकी थी। हरे राम! कितनी बुरी अवस्था हो गई थी उसकी। आँखें धँसी

हुई, गाल पिचके हुए और सूखकर बिलकुल काटा हो गई थी वह। मैं उससे पूछना चाहती थी कि तुम्हारी हालत ऐसी क्यो हो रही है ? किन्तु उसीने बीच मे कहा, "यमे, मैं एक बार तुमसे मिलना चाहती हूँ। लेकिन किस प्रकार मिल सकूँगी ? कई बाते तुम से कहनी है।" वह इतना ही कह पाई थी और उसी समय उसकी सास ने उसे बुलाया। जाते समय उसकी आँखे छलछला रही थी और लग रहा था कि वे बरस पडेगी। मेरेसाथ मेरी छोटी ममिया सासूजी थी। मुझे दुर्गी के साथ बातचीत करते देखकर उन्होने डॉटकर कहा, "क्या काना-फूँसी कर रही हो ? चलो आगे। ये जरा-जरा-सी लडकियाँ एकान्त मे न जाने क्या बाते करना चाहती हैं।"

दुर्गी अपनी सास के साथ चली गई। मैं भी छोटी मामीजी के साथ घर जा रही थी, किन्तु मेरा सारा ध्यान दुर्गी की ओर लग रहा था। उसकी इतनी बुरी दशा क्यो हुई ? वह मुझसे कुछ कहना चाहती थी—क्या कहना चाहती थी ? क्या उसे ससुराल मे बहुत तग किया जा रहा है ? आदि कई बातो का तूफान मेरे मन मे उठ रहा था जिसके कारण मे ठीक से चल भी नही पा रही थी। दुर्गी की बात जानने के लिए मैं उत्सुक हो उठी थी। मेरी उसके साथ भेट कैसे होगी ? उसके घर जाकर दो-चार घटे उसके साथ बातचीत करना बहुत कठिन काम था। पहले मुझे मायके जाना होगा। वहाँ से नई माँ की आज्ञा लेकर दुर्गी के मायके जाना पड़ेगा। यह भी सम्भव हो सकता था, किन्तु उसी समय दुर्गी का अपने मायके मे आना भी आवश्यक था। किस प्रकार योजना को फलीभूत बनाया जाय ? दुर्गी से मिलने के लिए किसी उपाय की खोज करने मे मेरा मन व्यस्त हो रहा था। दुर्गी से मिलने के लिए मन अस्वस्थ हो उठा था। आखिर एक दिन रात को मेरे मन मे एक सूझ आई—मेरे मायके मे चैत्र-गौरी का समारोह होना था। उस दिन मुझे रहने के लिए अवश्य ही बुलाया जायगा। मायके जाते ही नई माँ से कहकर दुर्गी को भी रहने के लिए बुलवा लूँगी। बुलाने पर उसकी माँ उसे अवश्य भेज देगी। फिर खूब बातचीत होगी। उपाय सरल था और उसके द्वारा अपनी इच्छा-पूर्ति होने की सम्भावना देखकर फिर मैं स्वस्थ चित्त से सो गई थी। दूसरे दिन मुझे मायके से बुलावा आया। मैंने दुर्गी से मिलने के लिए उपाय खोज निकाला और उसके ठीक दूसरे दिन चैत्र-गौरी के समारोह

के लिए मुझे मायके से बुलावा आया, इससे आशा हो रही थी कि अवश्य ही अपनी योजना सफल होगी। मायके मे चैत्र-गौरी का समारोह होने से मेरे जाने मे रोडे नही अटकाये गए। आवश्यक वस्त्र-आभूषण साथ मे देकर बुलाने के लिए जो नौकरानी आई थी उसीके साथ मुझे मायके को भेज दिया गया।

मैंने सोचा कि पहले मायके न जाकर सीधी दुर्गी के मायके चली जाऊँ और यदि वह वहाँ हो तो उसे अपने साथ लेती जाऊँ, और न हो तो उसे ससुराल से बुलवाने के लिए उसकी माँ से कह दूँ। मैंने नौकरानी से कहा किन्तु उसने मना कर दिया। उसने कहा, "यह नही हो सकता, पहले तुम घर चलो। वहाँ बाई साहब से कहकर जहाँ चाहो चली जाना!" विवश हो कर मैं उसके साथ घर चली गई। घर जाने पर मन मे विचार आ रहा था कि नई माँ से कह दूँ। इन दिनो किसी बात के लिए मैं नई माँ से कभी कुछ कहा नही करती थी। क्योकि हर बात मे नकारात्मक उत्तर प्राप्त होता था। यदि कोई बात कहनी होती तो पहले देख लिया करती थी कि पिताजी आस-पास है या नही, वे समीप होने पर मैं जोर से बात करती, जिससे नकारात्मक उत्तर मिलने की सम्भावना कुछ कम रहती थी। इसलिए दुर्गी को बुलवाने का प्रस्ताव किस प्रकार किया जाय, यह सोचती हुई मैं नई माँ के पास चली गई। हर्ष की बात थी कि मेरे कुछ कहने के पहले ही नई माँ ने आग्रहपूर्वक कहा, "यमू, क्या तुम दुर्गी को बुलाना चाहती हो ? जानकी कह रही थी कि तुम उसे सीधे दुर्गी के घर जाने के लिए कह रही थी। जाओ, यदि उसे बुलाना चाहो तो बुला लाओ!"

बीच ही मे नानीजी ने कहा, "हर बात मे खिलवाड। आज दुर्गी की क्या आवश्यकता है ? यहाँ क्या कोई 'समाराधना' होनी है ? तुम तो व्यर्थ की बाते ही अधिक किया करती हो।"

गर्दन को झटका देते हुए तमककर नई माँ ने कहा, "अच्छा रहने दो। तुम्हे क्या करना। लडकपन है, इच्छा रहती ही है कि सहेलियो से मिलें। और उसके आने से कौन-सा विशेष खर्चा बढ जायगा ? तुम जाओ यमुना! जानकी, इसके साथ चली जाओ!" नई माँ का यह बर्ताव बहुत आश्चर्यजनक था। दुर्गी को बुलाने का अवसर अनायास प्राप्त होते देखकर हर्ष की अपेक्षा

मैं आश्चर्य मे ही अधिक डूबी रही । समझ मे नही आ रहा था कि आखिर मामला क्या है ? नई माँ मे इतनी उदारता कहाँ से आ गई ? कारण का पता नही चल रहा था—पिताजी भी कही आस-पास दिखाई नही दे रहे थे । किन्तु आश्चर्य करके बैठे रहने के लिए समय नही था । जानकी को लेकर मैं सीधी दुर्गी की माँ के घर जा पहुँची । दुर्गी वही थी । उसे देखकर हर्ष की लहर दौड गई । मैंने उसे अपने साथ ले जाने की आज्ञा चाही । पहले तो उसकी माँ और दादी बात को टालती रही, किन्तु बाद मे उन्होने सम्मति दे दी । दुर्गी आनन्द से फूली नही समा रही थी । उसका नहाना-धोना बाकी था । मैंने उसे शीघ्र जाने के लिए तैयार होने को कहा । वह नहाने के लिए नीचे चली गई और मैं वहिणा काकू के साथ बैठी बातचीत करती रही । उन्होने मेरे बारे मे पूछ-ताछ की । फिर मैंने उनसे पूछा कि दुर्गी इतनी दुबली क्यो हो रही है ? उत्तर मे उन्होने कहा कि वह बीमार थी । दुर्गी नहाकर आ गई थी । वहिणा काकू ने आग्रहपूर्वक हम दोनो को कुछ नाश्ता करवाया । जब हम दोनो घर से बाहर जा रही थी तभी हमारे दुर्भाग्य ने हमे आकर घेरा । दुर्गी की ससुराल से बुलावा आ गया । दुर्गी को किसी के घर न्योते मे जीमने जाना था इसलिए उसका देवर उसे ले जाने के लिए आया था । उसे समझा-बुझाकर कहा गया कि दुर्गी आज नही जा सकेगी, किन्तु वह अपनी बात पर अडा रहा । वह कह रहा था, "माँ ने मुझे लिवा लाने के लिए भेजा है और मैं साथ ही लेकर जाऊँगा ।" उसकी बात सुनकर मुझे बहुत दुःख हो रहा था । दुर्गी की आँखो मे आँसू आ गए थे । वहिणा काकू को भी दुःख हो रहा था । उन्होंने देवर से कहा, "तुम जाओ, न आने का कोई कारण माँ से कह देना !" किन्तु वह दुष्ट कब मानने वाला था । दुर्गी की माँ तीखे स्वभाव की थी । सामने आकर उसने कहा, "नही तो चले जाइए । आज दुर्गी नहीं जायगी । जाओ !" यह सुनकर देवर क्रोध से आग-बबूला हो गया अपशब्द बकता हुआ वह चला गया । किन्तु अपने आँसुओ को पोछते हुए दुर्गी ने उसे वापस बुलाया और चिढकर माँ से कहा, "नही, नही, मुझे जाने दो ! यमुना से फिर कभी मिल लूंगी ।" अब उसका धैर्य टूट पडा, वह फूट-फूट कर रो रही थी । उसका देवर निर्दयी था, कहने लगा, "भाभी, चलना हो तो चलो, नहीं तो मैं जाता हूँ—फिर खूब रो लेना !" बेचारी दुर्गी क्या

कर सकती थी। मुझे इशारे से एक ओर बुलाकर उसने कहा, "आज मुझे आशा थी कि तेरे साथ एकान्त मे बैठकर मैं अपना हृदय-निवेदन कर सकूँगी, किन्तु मेरा भाग्य इतना अच्छा नही है। खैर, जाने दो। फिर कभी मिलने पर पूरी कहानी सुनाऊँगी। नही तो—किन्तु यमू—तू—" इससे अधिक वह बोल न सकी। उसका गला रुँध गया था। मेरे कधे पर सिर रखकर वह सिसक-सिसक कर रो रही थी। इसी समय उसके निर्दयी देवर ने उसे पुकारा—वह बाहर खडा बक-खक कर रहा था। निराश होकर दुर्गी ने अपनी साडी-चोली बगल मे दबाई और हम दोनो घर से बाहर निकल गए। गली के मोड पर मैंने देखा कि वहाँ दुर्गी का पति खडा है। मुझे कुछ आश्चर्य हुआ। मैंने दुर्गी से कहा, "क्यो, यह क्या मामला है ?" किन्तु उँगली उठाकर दुर्गी ने इशारे से मुझे चुप रहने के लिए कहा। धीमी आवाज मे उसने कहा, "ऐसा ही है—क्या करूँ ?" वहाँ से हम दोनो के रास्ते अलग हो गए थे। क्षण-भर के लिए मैं जाती हुई दुर्गी को देखती रही। वह आगे-आगे जा रही थी और उसके पीछे उसका पति और देवर जा रहे थे। मेरी समझ मे नही आ रहा था कि यह सब क्या है ? दुर्गी इतनी दुबली क्यो हो रही है ? उसका पति उसे मायके से बुलाकर ले जाता है, इसका क्या अर्थ है ? घर के लोग इस बात को जानते है या नही ? नही जानते तो किस प्रकार छिपाया जाता है ? जानते है तो किस तरह पसन्द करते हैं ? आदि बातो का विचार-चक्र मेरे मस्तिष्क मे घूम रहा था। अवश्य ही दुर्गी किसी दुखदायक घटना का शिकार बन रही है, यह सोचकर मुझे दुःख हो रहा था। इसी मनःस्थिति मे मैं जैसे गई थी वैसे ही लौटकर आ गई थी।

२९

मनुष्य पग-पग पर अनुभव करता है कि ससार आशा और निराशा से किस प्रकार परिपूर्ण है। आज तक मैंने अपने जीवन मे ऐसी कई बातो का

अनुभव किया है। अमुक एक बात अवश्य होगी और उसके हो जाने से अमित सतोष होगा, ऐसी आशा उत्पन्न होती है। कभी-कभी तो वाछित कामना पूर्ण होने के लिए जिन साधनो की आवश्यकता रहती है वे सब जुट जाते है—अब अपनी इच्छा अवश्य पूर्ण होगी इसमे सदेह नही रहता, किसी विघ्न की आशका नही रहती। मनुष्य गाफिल रहता है और कोई ऐसा विघ्न आ जाता है कि पूरी योजना नष्ट-भ्रष्ट हो जाती है। मुझे जीवन मे ऐसे कई अवसर प्राप्त हुए है। दुर्गी से मिलने की मुझे तीव्र इच्छा हो रही थी। उससे मिलने मे जितनी रुकावटे आने की सभावना थी, उतनी नहीं आई थी। किन्तु मेरी आशा पर आखिर पानी फिर गया। एक बार किताब पढते-पढते मेरे पति ने मुझे एक वाक्य सुनाया था, उसकी मुझे याद आ रही है। उस वाक्य का आशय था, "आशा और निराशा के सघर्ष को ही मनुष्य का जीवन कहा जा सकता है।" इस वाक्य का सदैव स्मरण बना रहने का कारण यह था कि जब कभी मेरे मुँह से निराशा-भरे उद्‌गार निकला करते थे तो अत्यन्त प्रेम से मुझे कहा जाता था, "अरे, तुम तो जानती हो न कि मनुष्य का जीवन आशा और निराशा का सघर्ष ही तो होता है।" अनगिनत बार इस वाक्य को मैंने सुना है। मेरे अभागे जीवन मे चार दिन सुख से बिताने के लिए यह वाक्य सहायक सिद्ध हुआ है, यह मेरी धारणा है। आज परिस्थितियो मे समाधान मानने का यही वाक्य एक आधार है।

निराश होकर मैं दुर्गी के घर से लौट आई थी। उसके न आने का कारण मैंने घर मे बता दिया और फिर हम लोग गौरी की झाँकी सजाने मे व्यस्त हो गए। मुझे दुर्गी का विस्मरण हो गया था, किन्तु सध्या के समय जब स्त्रियो का आवागमन आरम्भ हो गया तब मेरे मन मे विचार उठ रहे थे, 'क्या दुर्गी की ससुराल मे निमन्त्रण गया है? क्या वह अपनी सास के साथ झाँकी देखने के लिए हमारे घर आयगी? यदि आयगी तो क्या रात मे उसे यहाँ रहने के लिए प्रयत्न किया जायगा? किस प्रकार प्रयत्न करना होगा? स्वय मैं ही उसकी सास से प्रार्थना करूँ अथवा नही, माँ से कहलवाऊँ?' साथ ही यह विचार भी आ रहा था कि प्रयत्न करना व्यर्थ है। उसकी सास उसे हमारे घर नही रहने देगी और सुबह-जैसी ही निराशा फिर होगी।

दुर्गी की ससुराल मे आमन्त्रण भेजा गया था और दुर्गी अपनी ससुराल

की स्त्रियो के साथ हल्दी-कुकुम के लिए हमारे घर आई थी। मैंने सब स्त्रियो के माथे पर हल्दी-कुकुम लगाया और प्रथा के अनुसार दुर्गी को कलीदा देने के बहाने भीतर ले जाकर कहा, "दुर्गे, आज की रात तुझे हमारे घर छोड जाने के लिए क्या मैं तेरी सास से कहूँ ?" यह सुनकर वह भयभीत हो गई। उसने एकदम कहा, "नही, नही। यदि तुम चाहती हो कि मैं जीवित रहूँ तो मुझे यहाँ रखने के लिए उनसे एक शब्द भी मत कहना! यमू, मैं तुम्हे किस तरह बताऊँ कि—" इतना कहकर वह वहाँ से चली गई। किन्तु जाते-जाते उसकी धँसी हुई आँखो से दो आँसू उसके रक्त-हीन कपोलो पर लुढकते हुए मैंने देख लिए थे। यह देखकर मैं दग रह गई। आखिर वह सब क्या है ? सास को यदि दुष्टा कहा जाय तो अपनी भलाई के लिए वह विख्यात थी। यदि उसकी सास उसे छोड जाने की सम्मति दे तो प्रयत्न करके देखना ही होगा, फिर जो होना है सो होता रहेगा, यह सोचकर मैं द्रुतगति से बाहर आ गई। दुर्गी की सास अपने साथ की स्त्रियो सहित सीढियाँ उतरने जा रही थी। मैंने आगा-पीछा न सोचकर एकदम उससे कहा, "आज की रात दुर्गी को यहाँ छोड जाइएगा। रात मे हमारे साथ भोजन-ओजन करेगी और फिर सुबह लौटकर चली जायगी।"

उत्तर मे सास ने कहा, "उसीसे कहो! वह स्वय स्वतन्त्र है। रहना चाहती हो तो रह सकती है।" यह सुनकर मैं चुप हो गई। सास सीढियो तक चली गई थी, किन्तु न जाने क्या सोचकर वह पीछे मुडी और उसे पहुँचाने के लिए आई हुई नई माँ से कहने लगी, 'तुमसे छिपाने की बात नही है यशोदाबाई, किन्तु ये आजकल की लडकियाँ बडी विचित्र होती है। मनमाने ढग से चलना चाहती है। कल रास्ते मे इसकी माँ के कहने पर मैंने इसे उनके साथ कर दिया था और आज यह सुबह होते ही स्वय लौट आई। मैंने पूछा कि क्यो आ गई, तो उत्तर है कि वैसे ही चली आई। अब तुम ही बताओ कि हमारा क्या बस है ? अपने समय मे हमने कभी ऐसा बर्ताव नही किया था।" इस प्रकार वह कह रही थी और दुर्गी गर्दन झुकाए चुप खडी थी। बेचारी कर भी क्या सकती थी ? उस पर तो मुँह दबाकर जूनो की मार पड रही थी। पति ने चोरी-चोरी बुलाया था। इस बात को वह सास के सामने कैसे प्रकट कर सकती थी। और यदि सत्य बात नही कही जा सकती थी तो

आने का कारण पूछा जाने पर "वैसे ही चली आई" इसके अतिरिक्त और क्या उत्तर दिया जा सकता था।

सास का भाषण सुनकर मुझे लग रहा था कि व्यर्थ मे मैंने उसे छोड जाने के लिए कहा, और वह भी दुर्गी के मना करने पर। दुर्गी का वृत्तात उसके मुँह से जान लेने की मेरी इच्छा तीव्रतर हो उठी थी और इस बलवती इच्छा ने मेरी सूझ-बूझ को दबा दिया था। दुर्गी की सास का भाषण सुनकर हमारी नई माँ प्रौढा स्त्री-जैसी हम लडकियो पर टीका-टिप्पणी करती हुई त्यौरियाँ चढाकर मेरी ओर देखती रही। फिर भी मुझसे नही रहा गया और मैंने कहा, "तो आज इसे यही रहने दीजिए। सुबह होते ही नई माँ उसे भिजवा देगी।" यह सुनकर नई माँ ने मेरी ओर एक क्रुद्ध कटाक्ष फेककर कहा, "तो रहने दीजिए इसे। रात को भोजन होते ही मैं उसे भिजवा दूँगी, फिर तो कोई आपत्ति नहीं है ?" अनमनी-सी होकर दुर्गी रुक गई, किन्तु उसके रुकने से मुझे सतोष नही हो रहा था। भोजन के पश्चात् उसे लौट जाना था। किन्तु नही की अपेक्षा उसका थोड़े समय के लिए रहना भी कम आनन्ददायक नही था। रात होते-होते स्त्रियो का आवागमन कम होता गया। नई माँ किसी काम से भीतर चली गई थी। एकान्त देखकर मैं दुर्गी से कुछ कहने जा ही रही थी तभी उसने कहा, "यमू, मेरे मना करने पर भी तुम नही मानी। मैं तुम्हारे पैरो पडती हूँ, अब मुझे रात को ठहरने का आग्रह न करना। मेरी खूब पिटाई होगी—बस, इसीमे सब-कुछ समझ लो। इससे अधिक स्पष्ट और क्या कह सकती हूँ।"

आश्चर्य से मैंने कहा, "क्या कहा ? तुम्हारी पिटाई होगी।"

"हाँ"—उसके रुँधे हुए कठ से स्वर निकला।

"किसके हाथो ?"

दुर्गी मौन थी। दुबारा पूछने पर भी उसने कोई उत्तर नही दिया। बहुत पीछा करने पर उसने कहा, "और किसके हाथो ?"

सुनकर मैं दंग रह गई। मैं कुछ कहना चाहती थी, किन्तु इसी समय वहाँ नई माँ के आ जाने से हमारी बातचीत बन्द हो गई।

३०

दुर्गी का अधूरा उत्तर सुनकर उसकी पूरी कहानी सुनके लिए मैं बेचैन हो उठी थी। अल्पवय के पति-पत्नी और घर मे इतने बडे परिवार के लोग होते हुए कहती है कि पति उसकी पिटाई करता है। यह कैसे हो सकता है ? मन मे विचार आया कि क्या ऐसे ही मेरे साथ भी किया जा सकता है ? सोचकर मेरे प्राण व्याकुल हो उठे और इसलिए दुर्गी की पूरी कहानी जानने के लिए मैं विशेष उत्सुक हो उठी। किन्तु मेरी इच्छा पूरी कैसी होगी ? दुर्गी को रात-भर ठहराने की योजना सफल नही हो पाई। आखिर कोई उपाय खोजे बिना काम नही चल सकता, यह सोचकर मैं दुर्गी को साथ लेकर भैया के कमरे मे चली गई। भैया घर मे नही था। स्त्रियो का समारोह घर मे होने से भोजन के लिए देर होगी, यह सोचकर वह अब तक घर नही लौटा था। नई माँ से छिपाकर ऐसे कुसमय मे दुर्गी के साथ मेरा एकान्त मे जाकर बैठना मूर्खतापूर्ण था, किन्तु दुर्गी का वृत्तान्त जानने के अतिरिक्त अन्य विचार ही मेरे मन को छू नही रहा था। ऊपर अँधेरे मे जाते ही मैंने दुर्गी से कहा, "अब जो बात हो साफ-साफ कह दो। छिपाने की कोई आवश्यकता नही। आज सुबह से तुमसे मिलने के लिए मैंने प्रयत्नो की पराकाष्ठा की है, किन्तु कोई परिणाम नही निकला। अब इस समय नीचे भोजन की व्यवस्था की जा रही है, ऐसे समय हमारा यहाँ आकर बैठना उचित नही है, किन्तु मुझसे रहा नहीं जाता, इसलिए जो बात हो साफ-साफ कह दो। आज जिस मुसीबत की तुम शिकार बनी हो, सम्भव है कि कल मैं भी बन जाऊँ।"

दुर्गी ने कहा, "साफ-साफ क्या बताऊँ ? दो-तीन महीने हो गए, हाथ धोकर वे मेरे पीछे पडे हैं। जरा मुझे अकेली देखते ही ··· " इससे अधिक उसके मुँह से शब्द नही निकल रहा था। उसका गला रुँध गया और सिसक-सिसककर वह रोने लगी। "चुप—चुप—नीचे कोई सुन लेगा—तुम यह क्या कर रही हो ?" आदि कई बाते कहकर मैंने उसे समझाने का प्रयत्न किया, किन्तु उसका रुदन रुक नही रहा था। मेरी समझ मे नही आ रहा था कि उसे चुप करने के लिए क्या किया जाय—लग रहा था कि व्यर्थ मे मैंने यह विषय छेडा। किसी तरह अपने-आप पर काबू पाकर दुर्गी ने कहा, "आज-

कल उन्होने पढना-लिखना भी बन्द कर दिया है। परसो मेरे पिताजी कुछ पूछ-ताछ करने के लिए स्कूल गए थे तो उन्हे मालूम हुआ कि इन दो-चार महीनो मे वे मुश्किल से दो-चार बार ही स्कूल गए होगे। किन्तु घर से ठीक ग्यारह बजे निकल जाते हैं। पिताजी को यह जानकर बहुत दु.ख हुआ। किन्तु उनका क्या वश चल सकता है? ससुरजी से उन्होने कहा। ससुरजी ने घर आकर पूछ-ताछ की तो बहाने बना दिए। पिटाई होने तक मौका आ गया था। जब उन्हे इस बात का पता चला कि मेरे पिताजी ने ही उनके पिताजी से स्कूल न जाने की बात कही है तो मुझसे नाराज हो गए, और जब कभी मुझे अकेली देख लेते है तो एक तमाचा जमाकर ही रहते हैं।" इतना कहकर फिर उसका गला रुँध गया। वह फिर रो रही थी, किन्तु मेरे दबाने से रुक गई। कुछ देर बाद उसने कहा, "यमू, मैं क्या करूँ? रोये बिना मन नही मानता। कहाँ तक अत्याचार सहे जायँ। और फिर अपनी अजिया सास की करनी का क्या वर्णन करूँ? एक दिन रात को मुझे मेरी ननद के हाथो जबरदस्ती ढिकेलवाकर उनके कमरे मे बन्द करवा दिया और उस दिन से . "

वह इतना ही कह पाई थी और तभी भैया की आवाज सुनाई दी। वह कह रहा था, "यमुना, यहाँ अँधेरे मैं बैठी क्या कर रही हो? नीचे तुम्हारे नाम से शख बज रहा है। जाओ—जल्दी भागकर जाओ!" भैया की बात सुनकर मैं घबरा गई। बातचीत करने मे मैं बिलकुल भूल चुकी थी कि मैं कहाँ हूँ और यह कौन-सा समय है? मैं तो दुर्गी की कहानी सुनने मे मग्न हो गई थी। बीच ही मे भैया के आ जाने से मुझे दु ख हो रहा था। क्षण-मात्र के लिए मन मे विचार आया कि नीचे कुछ भी क्यो न हो, दुर्गी की बात को सुने बिना यहाँ से नही जाऊँगी, किन्तु यह विचार व्यर्थ था। भैया के आ जाने से सम्भाषण की कडी टूट चुकी थी। निराश होकर दुर्गी के साथ मै नीचे चली गई। नीचे जाने पर फिर क्या था। नई माँ ने मेरी खूब पूजा की। "कहाँ थीं इतनी देर तक आप यमुना देवीजी? पुकारते-पुकारते मेरी जीभ घिस गई। कहाँ जाकर बैठी थी? इतनी रात हो गई ऊपर अँधेरे मे जाकर बैठने का क्या प्रयोजन था? यहाँ पचासो काम करने है और आप ऊपर जाकर बैठी हैं। क्या गुप्त मन्त्रणा चल रही थी दोनो मे? इसीलिए सुबह से दुर्गी

को बुलाने के लिए छट-पटा रही थी ? ग्र ? ग्रच्छा, तो यह बात है। ठीक है। भोजन होते ही उसे भेज दूंगी उसके घर। फिर उसे कभी नही बुलवाऊँगी। भोजन की व्यवस्था करनी है, उसे कौन करेगा ? हम क्या घर की नौकरानी है ? ठहर जा, जरा उन्हें बाहर से ग्राने दे—सब बताये देती हूँ। ऐसा कुछ करने जाऊँ तो सौतेली माँ कहाऊँ। वह तो चुगली खायगी ना ? वह तो ग्रपने सौतेले बच्चो को फूटी ग्राँख से भी देखना नही चाहती है ना ? कहने को क्या लगता है · · ·" उनका मुँह चल रहा था ग्रौर बीच-बीच मे उनकी माँ उन्हे सहारा दे रही थी। इसी समय पिताजी के ग्राने की ग्राहट पाते ही एकदम चमत्कार-स। हो गया। एक मुंह बिलकुल बन्द हो गया। दूसरा यद्यपि पूर्ण रूप से बन्द नही हुग्रा था फिर भी स्वर मे कोमलता ग्रा गई थी।

"देखो यमू, तुम ग्रँधेरे मे बैठी रही इसलिए मैंने कहा, ग्रौर कुछ नही किन्तु साँप-बिच्छू का डर रहता है। दिया जलाकर बैठने के लिए किसी ने मना तो नही किया था ? ग्रौर फिर समय कुसमय का भी तो ध्यान रखना चाहिए।" ग्रब इस तरीके से भाषण हो रहा था। कोट उतारते हुए पिताजी ने कहा, "क्या है ? किस बात की चर्चा चल रही है ?" उत्तर मे कहा गया, "कुछ नही, ग्रपनी घरेलू बाते है। ग्रापके लायक कोई बात नही। लडकियाँ हैं—गलती हो ही जाती है।" ऐसा कहकर नई माँ ने मुझसे कहा, "चलो, ग्रब तुम लोगो को भूख लगी होगी। पत्तल-पानी की व्यवस्था करो। सध्या-ग्राचमन करने के लिए ग्रासन लगा दो। ग्रब देरी न करो ! दुर्गी को उसके घर पहुँचाना है ना ? माँ, रसोई तैयार है न ?" इतना कहकर वे रसोईघर मे चली गई। भैया वहाँ खडा था। मैंने उसकी ग्रोर देखा—विचित्र ढग से वह मुस्करा रहा था।

भोजन होते ही नौकर को साथ मे भेजकर दुर्गी को उसके घर भिजवाया गया। उससे रहने के लिए मैं ग्राग्रह करना चाहती थी, किन्तु उसने जो कुछ बताया था उसे सुनकर ग्रब मैंने ग्राग्रह नही किया। जाते समय मेरी ग्रोर देखकर उसने केवल "जा रही हूँ" इतना ही कहा था, किन्तु स्वर रुँध जाने से ये शब्द बडी मुश्किल से निकल पाए थे। उस पर नानीजी ने कहा, "ग्राज की रात यही रुक जाने से क्या बिगड जाता ? सुबह उठकर चली जाती। किन्तु मानोगी तब न !"

नई माँ ने उनकी बात की पुष्टि करते हुए कहा, "वाहियात लडकियाँ है—अभी से उन्हे पति के बिना·· ··" आगे कहे शब्दो का उच्चार न करना ही उचित होगा।

दुर्गी तो चली गई, उसकी अधूरी कहानी सुनकर मेरे मन पर विलक्षण परिणाम हुआ। उसका वह भरा-पूरा शरीर, वह उल्लास, वह रौब और हँसोड स्वभाव —सब लुप्त हो गया था। जरा-सी लडकी मेरे उम्र की, और उसके गालो की हड्डियाँ ऊपर आ गई थी। वह अस्थि-पजर रह गई थी। क्या करे बेचारी। पति की पढाई का यह ढग और ऊपर से यह अत्याचार। मुँह दबाकर जूतो की मार। मनुष्य जब दूसरे के बारे मे विचार करने लगता है तो वह स्वय अपने बारे मे भी विचार करने लग जाता है। और दोनो की यदि समान अवस्था हो तो फिर कहना ही क्या है। उस दिन रात को मैं जब दुर्गी के बारे मे सोच रही थी तब स्वाभाविक रूप से मेरे विचारो ने स्वय अपनी ओर रुख बदला था। मैं सोच रही थी कि क्या मेरी भी यही हालत होगी ? किन्तु इस समय तक ऐसा कोई चिन्ह दिखाई न देने से मन का समाधान हो रहा था। आज तक मेरी ओर कभी क्रोधपूर्ण कटाक्ष तक नही किया गया था। मुझे तो लगता था कि मुझ पर अधिक काम का बोझ न पडे इसकी 'उन्हे' चिन्ता-सी लगी रहती थी। मेरे इस अनुमान की सत्यता बताने के लिए मेरे पास कोई प्रमाण नही है। ऐसे समय, जबकि हमारा हमारे पति के साथ परिचय भी नही हो पाता, फिर भी वे किस समय प्रसन्न रहते है और कब नाराज़ हो जाते है, आदि बातो को हम भली भाँति जान लेती है, किन्तु किस प्रकार जान लेती हैं इसका उत्तर हमसे नही दिया जा सका। इसे जानने के लिए हम-जैसा जन्म पाकर हम-जैसी परिस्थितियो मे जीवन बिताना होगा। जिस प्रकार पालतू जानवर अपने मालिक की मर्जी को अपनी प्राकृतिक बुद्धि से जान लेता है उसी प्रकार हम भी जान लेती है, ऐसा यदि कोई कहना चाहे तो कह सकता है। हमने अपनी अवस्था को पालतू जानवरो के समान कहा है, यह विचार कुछ अखरने-जैसा है, किन्तु सोचने पर इसे अत्युक्ति नही कहा जा सकता। जैसे कोई कुत्ता पालना चाहता है तो वह उसका छोटा-सा पिल्ला लाकर उसे दूध-भात खिलाता है। वही हालत हम लडकियो की होती है। जिसे ससुराल कहते हैं वहाँ हमारे माँ-बाप से हटाकर हमे रखा जाता है। कुत्ते

की सार-सम्हाल प्रेम से की जाती है, ससुराल मे केवल इसी बात का अभाव रहता है। अमुक व्यक्ति हमारा मालिक है और उसको राजी रखने के पाठ हमे पढाए जाते हैं।

उस दिन रात को दुर्गी के बारे मे मेरे मन मे विचार चल रहे थे। सोचते-सोचते मन मे विचार आया कि भैया से दुर्गी के पति के बारे मे कुछ पूछ-ताछ करूँ, इसलिए भैया को जगाकर मैंने कहा, "भैया, दुर्गी के पति को तो तुम जानते हो न ? वह कौन-सी कक्षा मे पढता है ?"

"क्यो ? इतनी रात मे क्यो पूछ रही हो ? केवल यह जानने के लिए ही मुझे नीद से जगा दिया ? यमुना, तुम भी कभी-कभी हद कर देती हो।"

"नही भैया ! आज दुर्गी से मैं बहुत देर तक बातचीत करती रही। सोचा, उसके बारे मे तुमसे कुछ पूछ-ताछ करूँ। तुम्हारे स्कूल मे ही तो पढता है न वह ?"

"अरे वह क्या पढेगा। कही बीडी-सिगरेट पीता घूमा करता है। शायद तम्बाकू भी खाता है। दुर्गी से न कहना, उसे दु ख होगा।"

भैया की बात सुनकर मैं स्तब्ध बैठी रही। मेरे मुँह से शब्द नही निकल रहा था। जरा-सा लडका बीडी पीता है। तम्बाकू खाता है। ऐसी दशा मे उसकी पढाई का क्या होगा यह कहने की आवश्यकता नही। कुछ देर बाद मैंने भैया से कहा, "भैया, दुर्गी बहुत ही अभागिनी है—उसे उसका पति बहुत तग किया करता है।"

"मैं जानता हूँ, किन्तु यमू, तुम्हे तो ससुराल मे किसी बात का दु ख नही है न ?"

"वैसे तो कोई दु ख नही है। ममिया सास और अजिया सास केवल कटु शब्द कहा करती है, किन्तु—"

"अरे, उन्हे बकने दे। कुछ दिनो के बाद तेरा पति परीक्षा पास कर लेने पर तुझे अपने साथ बम्बई ले जायगा, वहाँ तेरी ममिया सास और अजिया सास थोडे ही जायँगी ? तुम्हारे पति परीक्षा मे अवश्य उत्तीर्ण हो जायँगे। अब तुम भी जरा अपनी पढाई की ओर ध्यान दो ! तुम जितना जानती हो उसकी और वृद्धि करती रहो ! तुम्हारे पति की इच्छा है कि तुम अच्छी तरह पढना सीख लो ! परसो इस विषय को लेकर हम दोनो मे बातचीत होती रही। किसी दिन वे स्वय तुम से कहेंगे।"

कहने की आवश्यकता नही कि भैया की बात सुनकर मैं मन-ही-मन खुश हो रही थी, फिर भी मैने भैया से कहा, "यह क्या भैया—मैं तो तुम से सीधी बात कर रही हूँ और तुम मेरा मजाक उडा रहे हो !"

किन्तु मेरे बोलने का स्वर ऐसा था, जिसे सुनकर हर कोई जान सकता था कि वह मजाक मुझे बहुत भाया है। इसलिए भैया ने कहा, "नही, मै मज़ाक नही कर रहा हूँ। उन्होने मुझे तुमसे कहने के लिए कहा था और वे स्वय भी तुमसे कहेगे। यमुना, तुम्हारे लिए यह सोचने की बात है कि वे कितने समझदार हैं और तुम ठीक से पढना भी नही जानती। क्या उन्हें यह बात पसद होगी ? वे तो तुम्हे अग्रेजी पढाना चाहते है।" इतना कहकर वह उनकी बुद्धिमानी और उसके भविष्यकालीन मानस-चित्रो के बारे मे बहुत-सी बाते बताता रहा। उसकी बाते सुनकर यद्यपि मैं बीच-बीच मे "यह क्या—बस करो—मजाक बहुत हो गया—" आदि कहकर उसका विरोध कर रही थी। फिर भी मेरा अतर्मन खुशी से उछल रहा था। इस विचार-धारा मे बहती हुई मै दुर्गी का दु ख भूल गई और अपने भावी स्वप्नो मे रँगी हुई सो गई।

३१

गत परिच्छेद मे बताई घटना के बाद वर्ष-सवा वर्ष मे ऐसी कोई विशेष घटना नही हुई थी कि जिसका विस्तार से वर्णन किया जाय। वैसे तो कई बातें हैं, किन्तु वे विशेष महत्त्वपूर्ण नही है।

सर्व प्रथम मैं एक विशेष बात बताना चाहती हूँ जो स्वय मेरे विषय मे है। इस बात के कारण, जिस प्रकार एक चावल को उठाकर हँडिया के पूरे भात की जाँच की जाती है उसी प्रकार मेरे भावी सुख की कल्पना से मुझे संतोष हुआ था। मुझे पूर्ण विश्वास हो गया था कि मेरा भविष्य बहुत ही सुखपूर्ण है। इसलिए सर्व प्रथम मैं उसी बात को कहना चाहती हूँ।

मेरी छोटी ममिया सास तथा बडी ममिया सास की लडकियाँ कितनी भली थी और मेरे साथ उनका कैसा सद्व्यवहार रहा करता था आदि बातो को मैं पहले कह चुकी हूँ।

आखिर मैं लडकी थी, मुझ से गलती होना स्वाभाविक था, किन्तु मेरी जरा-सी गलती को लेकर राई का पर्वत बन जाता था। सब लोग मुझ पर टूट पडते थे। कई बाते तो ऐसी हुआ करती थी कि जिनमे बडे लोगो को ध्यान देने की आवश्यकता ही नही होती। किन्तु मेरी ममिया ननदो का स्वभाव ऐसा था कि कोई जरा-सी बात क्यों न हो, वे झट से बडे लोगो को जाकर लगा देती थी। इस कारण मुझे अधिक दुख होता था। बडी ननद हमेशा घर मे नही रहती थी—उसे अपनी ससुराल जाना पडता था, किन्तु छोटी ननद और घोडू भैया मुझे बहुत तग किया करते थे। चारो बच्चे अपने पिता की प्रतिमा थे। स्वय अपनी माँ को भी परेशान किया करते थे। छोटी मामीजी के सामने उनकी एक नही चलती थी। वे घोडू भैया को दिनभर पीटा करती थी किन्तु वे अपनी मक्कारी से बाज नही आते थे।

एक दिन सुबह, पानी गरम करने के लिए जो पृथक् चूल्हा था उसके पास बैठी पानी गरम कर रही थी। सभी लोगो को नहाना था इसलिए मैं शीघ्र पानी गरम करने मे व्यस्त हो गई थी। इसी समय घोडू भैया चार आलू लेकर चूल्हे के पास आए। आकर उन्होने चूल्हे से सब आग बाहर खीचली और उसमे आलू भूनने के लिए डाल दिए। मेरी प्रयत्नपूर्वक जलाई आग बुझ गई। कडे कुछ गीले थे—लगातार फूंकने पर भी ठीक से नही जल रहे थे। इसलिए आग को बुझती देखकर मैं नाराज हो गई। मैंने घोडू भैया से केवल इतना ही कहा, "यह क्या लडकपन। सब आग बुझा दी। अब पानी कैसे गरम होगा। कुछ देर बाद आलू भून लिये होते। मैं आलुओ को निकाले देती हूँ।"

मेरे मुँह से इतने ही शब्द निकल पाए थे और उन्होंने जोर से चिल्लाना शुरू कर दिया। "ए बडी माँ ऽऽ"—मैं समझ रही थी कि मेरा उपरोक्त भाषण किसी ने नही सुना होगा किन्तु इसी समय बन्नू दीदी वहाँ आ गई। फिर क्या कहना था। आग लगने मे देरी ही क्या थी। उन्होने और घोडू भैया ने चीखना-चिल्लाना आरम्भ कर दिया। मेरे शब्दो को तोड-मरोडकर उनसे विपरीत अर्थ निकाला गया। मैंने लडकपन कहा था, उसका गधापन हो

गया। पानी कैसे गरम होगा कहा था तो अब पानी कौन तुम्हारा काका गरम करेगा ? ऐसा कहा जाने लगा। आलुओ के बिना क्या जान जा रही है, यह वाक्य भी मेरे माथे थोपा गया। और अन्त मे मैंने आलुओ को उठाकर कुए मे फेक दिया ऐसा आरोप मुझ पर लगाया गया। प्रत्यक्ष अपने देवर के काका का उल्लेख किया इससे अधिक बडा पाप इस ससार मे लडकी से और कौनसा हो सकता है ? वास्तव मे मैंने ऐसा कहा अथवा नही, इसकी जाँच कौन करने बैठा था। और उसकी आवश्यकता भी किसे थी ? और यदि इस पर मैं स्वय कह दूं कि, मैंने ऐसा कुछ नही कहा, यह मैं कैसे कह सकती थी ? और मेरी बात कौन मान सकता था ? उलटे "अब प्रत्युत्तर देने लगी है—खूब छाती पर मूंग दल रही है बहू"—ऐसा कहकर मुझे तंग किया जाता। इसी को तो कहते हैं, मुंह दबाकर जूतो की मार। मैंने कुछ कहा नही फिर भी मुझ पर कहने का आरोप किया गया और उसके लिए अपरिमित वाग्बाणो को सहना पडा। क्या किया जा सकता था। हे राम ! उस दिन के वे वाग्बाण बहुत ही भयकर थे। हमारी अजिया सास का मुँह था वह। एक बार आरम्भ हो जाने पर फिर मर्यादा नही रहती थी। जो मुंह मे आया कह डाला। 'हराम जादी को शरम नही आई उसका काका निकालते। हाँ, हाँ, उसका काका आयगा पानी गरम करने के लिए—और तू यहाँ आसन पर आकर बैठ जा, नही तो दफ्तर मे चली जा। राम-राम ! आजकल की ये लडकियाँ बडी ही उजड्ड होती हैं। लाज शरम तो इन्हें छू तक नही गई। रह-रहकर मुझे आश्चर्य होता है कि ये ज़रा-सी छोकरियाँ और इन्हे किसी का बाप, किसी का काका निकालने की बुद्धि कैसे आ जाती है ? इनकी दृष्टि मे बडा-बूढा, देवर-ननद कोई कुछ नही है। मुंह मे आया सो बक दिया। खबरदार जो कभी मेरे किसी काम को हाथ लगायगी तो। चली जा अपने मायके। जब तेरे पति को नौकरी मिल जायगी तब वही ले आयगा तुझे मायके से। हमारे घर मे इस प्रकार बोलने वालो को रहने के लिए जगह नही है। हमारे घर के लोग पानी गरम करने के लिए आयँगे और तेरे बाप ने क्या किया है—जेल मे रोटियाँ भूनी हैं। शरम नही आती . "

अतिम वाक्य जब वे कह रही थी तभी छोटे मामाजी वहाँ आ गए। एक दम उन्होंने कहा, "हाँ, हाँ,—माँ—जरा अपनी वाणी को—"

फिर क्या था। वे उन पर टूट पडी। कहने लगी, "तो क्या यह लडकी हमारे लडके के काका निकालेगी ? और इसका बाप जेल मे था इसे कौन बतायगा ? हमने इसे करली, नही तो जेल भुगतकर आए हुए बाप की लडकी को अपनी बहू कौन बनाता ?"

हर बात की मर्यादा हुआ करती है। अमर्यादा हो जाने पर परिणाम के बारे मे कोई कुछ नही कह सकता। अजिया सास का भाषण मैं सुनती रही, किन्तु जब मेरे बाप का उल्लेख किया गया तो मैं रोने लगी। मुझ से सहा नही गया। और फिर पिताजी के बारे मे अन-सुनी बात को सुनकर मुझ से नही रहा गया। मैं कोठी वाले कमरे मे जाकर बैठी रोती रही। हम स्त्रियो के पास और दूसरा शस्त्र भी क्या होता है ? बिना अपराध किए इतना बडा अत्याचार किया जा रहा था, उसे मन ही मन कहाँ तक दबाया जा सकता था ? किसी न किसी मार्ग से वह अवश्य ही बाहर आयगा। मैं कुछ बोल तो सकती नही—इसलिए एकात मे बैठकर रोना ही मेरे लिए एकमात्र साधन था। पहले तो मैंने सोचा था कि कोई कुछ कहे मैं अपना काम करती रहूँगी, किन्तु भाषण की कटुता जब मर्यादा का उलघन कर गई और वह भी बिना कारण, तब अन्य कोई मार्ग न देखकर मैं कोठीघर मे बैठकर रोने लगी।

वहाँ बैठे कोई दस, पद्रह मिनट हुए होगे और मुझे आभास हुआ जैसे किसी ने कोठी का दरवाज़ा खोला हो। होगा कोई, ऐसा सोचकर मैंने मुडकर नही देखा और वैसी ही कोने की ओर सरककर रोती रही। इसी समय मेरी पीठ पर किसी का स्नेहभरा हाथ फिर रहा था। मैंने मुडकर देखा, स्वय मेरे पतिदेव वहाँ खडे थे। उन्हे देखकर मैं घबडा गई। अब अपनी अवश्य पिटाई होगी, अब खैरियत नही, दुर्गी-जैसी ही अपनी भी अवस्था होगी, यह सोचकर मैं गर्दन झुकाए और अधिक रोने लगी। किन्तु अब तो रोने की भी चोरी थी। मेरा सर्वांग पसीने से भीग रहा था। तभी मैंने सुना—"क्या बात है ? इस प्रकार रोने का क्या कारण है ?—" मेरी समझ मे नही आ रहा था कि मुझे क्रोध से पूछा जा रहा है अथवा स्नेहपूर्वक ? मैं यह भी भूल गई थी कि बाहर से अपना भाषण कोई सुन लेगा। भयभीत होकर करुण स्वर मे मैंने कहा, "नही, नही, मैंने कोई ऐसी बात नही कही, मुझ पर झूठा आरोप लगाया गया है—मुझे न मारिए—" इतना कहकर

डर के मारे मैं नीचे बैठ गई—मेरी गर्दन नीचे झुकी थी। मैं जानती थी कि चाहे जितना गिडगिडाने पर भी अपना कहना सच नही माना जा सकता और अपनी पिटाई हुए बिना नही रहेगी। हर क्षण मुझे लग रहा था कि अब तमाचा लगता है, और मैं भय से थर्रा रही थी। और इसी समय अमृत-जैसे मीठे शब्दो को मैंने सुना—

"धत् पगली। क्या तुमने यह सोचा कि मैं तुम्हे पीटने आया हूँ? क्या यह मुझ से भी कहना होगा कि तुम्हारा कोई अपराध नही और तुमने कुछ नही किया है? मैं सब जानता हूँ। मैं ऊपर वाले कमरे में खडा था और सब देख रहा था। और यदि वहाँ खडा भी न होता फिर भी कभी विश्वास नही कर सकता था। तुमने सोचा कि मैं तुम्हे मारने आया हूँ। क्या यही तुमने मेरी परीक्षा की? अब चुप हो जाओ। रोओ नहीं—बिलकुल नहीं, बस, बस। अब केवल सात-आठ महीने और शेष है—फिर तो हम लोग बम्बई चले जायँगे। वहाँ तुम से कोई कुछ कहने नही जायगा। बस चुप करो। यह क्या पागलपन—"

कई दिनो से मैंने इतने स्नेहपूर्ण शब्दो को नही सुना था। जिस समय सुनने की अत्यत आवश्यकता थी उसी समय, और जिस मुँह से सुनने की मैंने कभी स्वप्न मे भी कल्पना नही की थी, उस मुँह से मैंने कहते सुना। फिर क्या था। मेरा रोना उसी क्षण समाप्त हो गया। मैं आवाक् रह गई। अजिया सास के व्यर्थ मे किये गए वाक् प्रहार से मुझे जो दु ख हो रहा था उसे मैं इस अचानक प्राप्त सुख के कारण भूल-सी गई। मैं बिलकुल मौन होकर खडी रही। समझ मे नही आ रहा था कि क्या बोलूं? इसी समय उन्होने दरवाजे से बाहर की ओर झाककर देख लिया कि कोई आस-पास तो नही है। फिर मेरे समीप आकर मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए उन्होने कहा, "अब तो पिटाई का भय नही रहा? स्त्रियाँ भी कितनी नासमझ होती हैं। क्या हमे पीटने के अतिरिक्त और कोई काम ही नही रहता?" इतना कहकर उन्होंने गर्दन झुकाकर मेरे मुख की ओर ताका—लजाकर मैंने झट से अपनी गर्दन मरोड़ली। हँसी फूट रही थी उसे दबाने का मैंने भरसक प्रयत्न किया किन्तु फिर भी वह निगोडी आ ही गई।

"क्यो? मुख क्यों फेर लिया? क्या हम से बोलना नहीं चाहतीं?

इतना कहकर उन्होने मेरी ठोडी की ओर हाथ बढाया किन्तु इसी समय दरवाजा खुलने का उन्हें आभास हुआ। कौन है यह देखने के लिए वे दरवाजे के पास गए। बनू दीदी उन्हें पुकारती हुई ऊपर जा रही थी। जाते-जाते दरवाजे तक आकर वे ऊपर चली गई। उन्होंने बनू दीदी की पुकार का उत्तर नही दिया। बनू दीदी को ऊपर जाते देखकर झट से मेरे समीप आकर उन्होने कहा, "फिर कभी इसी प्रकार मिलना होगा, आया ध्यान मे ?" और वे द्रुतगति से वहाँ से चले गए।

"क्या हम से बोलना नही चाहती ?" इन शब्दो को सुनने से पहले ही मैं बहुत कुछ बोलना चाहती थी, किन्तु मुंह से एक शब्द भी नही निकल रहा था। जो मैं बोलना चाहती थी यदि उतना बोल सकती तो सम्भवत: चार दिन भी पर्याप्त नही हो सकते थे।

यह मैं क्या लिख रही हूँ। कोई कहेगा, "यह जरा-सी लडकी, इससे पहले कभी बोलने का अवसर भी नही आया था और जिसके लिए चार दिन भी पर्याप्त नही हो सकते थे, इतना यह क्या बोलना चाहती थी ?" किन्तु क्या बोलना था और क्या नही था, इसे कहा नही जा सकता। मुझे बोलना था यह बात निर्विवाद है। इसे स्वानुभव से ही जाना जा सकता है।

सच पूछिए तो उस दिन की घटना को मैंने अपने लिए हितकर ही माना था। दुर्गी ने जिस रोज अपनी कहानी सुनाई थी उस दिन से रह-रह कर मेरे मन में विचार आता था कि कही अपनी हालत उसी-जैसी तो नही होगी ? जब कभी मैं उनकी मुद्रा देख लेती थी तो भय से काँप उठती थी। वैसे उन्होने कभी मेरी ओर क्रोधपूर्ण दृष्टि से अथवा त्योरियाँ चढ़ाकर नही देखा था, किन्तु आखिर है तो पति का नाता। पति शब्द का उच्चारण करते ही, कम-से-कम बचपन मे तो भय के अतिरिक्त दूसरा भाव उत्पन्न नही होता। पीटना अथवा नाराज होना यही दो गुण पति शब्द मे समाविष्ट हैं, यही हमारी उस अवस्था मे धारणा रहती है। आगे चलकर परिचय हो जाने के बाद जैसा अनुभव आता हो, वह बात पृथक् है। हम लोगो मे जो कहावते प्रचलित हैं उन्हें सुनकर स्त्रियो की पति के सम्बन्ध मे क्या धारणा रहती है इसे जाना जा सकता है—"न हो किसी की बीवी और न हो किसी का नौकर।" साँप को कहो नही बिचारा और पति को कहो नहीं हमारा।"

जिस समय मुझे सात्वनापूर्ण शब्दो को सुनने की नितान्त आवश्यकता थी उस समय, जिस मुँह से सुनने की कल्पना तक नही थी उस मुँह से सुनने के बाद मेरे हर्ष की सीमा नही रही। मैं अपना दु ख भूल गई थी। अब कोई चाहे जैसा विषैला भाषण करता रहे, अब उससे डरने की आवश्यकता नही, ऐसा सोचकर दुगुना उत्साह आ गया था।

किसी एक स्त्री की बात कही जाती है। उसका पति उसके साथ कभी भाषण नही करता था। एक दिन अधेरे मे वह कही खडी थी, पति ने पूछा, "कौन है ?" और उत्तर मे उसने कहा, "मैं हूँ।" इसी बात का उस स्त्री को हर्ष हुआ था। वह मन ही मन "उन्होने कहा कौन है और मैंने कहा मैं हूँ—" इस षोडशाक्षरी मत्र का जप करती रही। उस स्त्री-जैसी ही मेरी अवस्था हो रही थी। किन्तु मैं अपने आपको पूर्ण रूप से भूल नही पाई थी। अजिया सास ने अपनी अमर्याद बकवास मे मेरे पिताजी के बारे मे जो विचित्र बात कही थी वह मेरे हृदय मे त्रिशूल-जैसी चुभ रही थी। आखिर यह क्या है ? उनके कहने का आशय क्या है ? मेरे पिताजी जेल मे थे ? कब थे ? और मैं इस बात को कैसे नही जानती ? क्या मेरे जन्म के पहले थे ? क्यो थे ? किस कारण उन्हे जेल जाना पडा था ? इस प्रकार पचासो प्रश्न मेरे मन मे उठ रहे थे। किस प्रकार इस बात का निर्णय किया जाय ? किसे पूछा जाय ? आज तक यह बात मुझ से कैसे छिपी रही ? मैं तो हर बात मे बडी चौकस रहा करती थी। हर बात को जान लेने की मुझे उत्सुकता बनी रहती थी। फिर इस बात को मै आज तक क्यो नही जान सकी ? बन्नू दीदी तो मेरे घाव पर नमक छिडकने के लिए हर समय उद्यत रहा करती भी। दोपहर को मेरे पास आकर उन्होने कहा, "भाभी, क्या तुम्हारा बाप जेल मे था ? छी. ! मैं नही जानती थी इस बात को।"

यह सुनकर मेरे मन पर जो आघात हुआ था उसे कहा नही जा सकता। मैं मौन रह गई। भैया को मिले बिना इस बात का स्पष्टीकरण नही हो सकता यह सोचकर मैं चुप बैठी रही। किन्तु बन्नू दीदी ने मेरे घावो पर जो नमक छिडका था उसके कारण उस दिन एक सुखपूर्ण घटना होने पर भी मेरे मन पर उदासी छाई रही और आँखो मे बार-बार आँसू उमडते रहे।

३२

"तुझे किसने कहा ? पगली कही की । ऊट-पटाग बाते किया करती है।"

"प्रत्यक्ष बडी सासूजी ने कहा, इसीलिए तो तुम से पूछ रही हूँ—बताओ ना भैया।"

"ह —उन्होने गुस्से मे आकर जो मुँह मे आया सो बक दिया। तुम भी यमुना इतनी बडी हो गई, फिर भी तुम मे बुद्धि की कमी रही। वह बुढिया जो चाहे सो आय-बाय-साय बका करती है। वह तो सठिया गई है। और उसका कहा तुम मुझ से आकर पूछती हो ? तुम भी खूब हो।"

भैया ने इस प्रकार कहा किन्तु उसका कहने का ढग मुझे स्पष्ट रूप से बता रहा था कि उसका कहना झूठ है और वह असली बात को मुझ से छिपाना चाहता है। मनुष्य यदि बदमाश हो तो बात ही भिन्न है किन्तु भैया-जैसा सत्वशील मनुष्य जब कोई महत्त्वपूर्ण बात छिपाना चाहता है तो उसके मुख के भाव व्यक्त कर देते हैं कि उसके शब्दो के पीछे असत्य छिपा है। विशेषत स्त्रियो मे जो स्वाभाविक चतुरता होती है उसके द्वारा वे सूत के सहारे स्वर्ग तक चढ जाती हैं। सीधे-सादे मनुष्य की दाल हमारे सामने नही गल सकती। उपरोक्त वाक्यो का उच्चारण करते समय भैया की मुद्रा मे जो परिवर्तन हो रहा था, उच्चारण करते समय स्वर मे जो कृत्रिमता आ रही थी, और मेरा प्रश्न सुनते ही उसमे जो बौखलाहट आ गई थी उसे मेरी तीक्ष्ण दृष्टि ने देख लिया था। मैं ताड गई थी कि दाल मे कुछ काला है। मैं इतना तो जान गई थी कि अजिया सास के कहने मे सचाई अवश्य है, क्योकि कोई किसी के सम्बन्ध मे इस प्रकार स्पष्ट आरोप नहीं लगा सकता। राई का पहाड बनाया जा सकता है, फिर भी राई का होना तो आवश्यक है ही। तो यह राई क्या थी ? पिताजी के हाथो कौन-सा अपराध हुआ था ? आदि बातो को जानने के लिए मैं अस्वस्थ हो उठी थी। घर मे और किससे पूछा जा सकता था ? केवल भैया ही कुछ बता सकता था किन्तु उसने उपरोक्तानुसार बात को टाल दिया था। उसके हाव-भाव बता रहे थे कि इस सम्बन्ध मे वह कुछ नही बतायगा। मैंने ककड फेककर देखा था किन्तु मेरे हाथ कुछ नही लगा। नि सदेह पिताजी का यह कलक निंदनीय था, मुझे दुःख हो रहा था।

किन्तु हो सकता है कि उनका कोई दोष न हो और वे व्यर्थ मे सकट मे फस गए हो । सही बात जानने से मेरे मन को कुछ शान्ति मिल जाती इसलिए मैं भैया से बताने के लिए सानुरोध आग्रह कर रही थी ।

मनुष्य का मन कितना विचित्र होता है । अपने से सम्बन्धित व्यक्ति के बारे मे कोई बुरी बात सुन लेने पर मन उसे सच मानना नही चाहता, और यदि उसकी सत्यता प्रमाणित हो जाय तो मन उन कारणो की खोज करता रहता है जिसके लिए मजबूरन उस व्यक्ति को वह बुरी बात करना अपरिहार्य हो गया था । यदि वे कारण सही हो तो फिर मन को कुछ सात्वना मिल जाती है और उसके बल पर हम उस व्यक्ति का पक्ष समर्थन करने लगते हैं । यदि वे कारण सही न हो तो हम यह कहकर उसके दुष्कृत्यो को ढाकने का प्रयत्न किया करते है कि, "लोग-बाग असली बात को न जानकर व्यर्थ मे दूसरो की निंदा करना पसन्द करते है । यह सब किस लिए ? केवल 'मैं और मेरा' इस भावना के लिए । मनुष्य स्वभाव की इस विशेषता के अनुसार ही भैया का बर्ताव हो रहा था । इस बात को मुझ से छिपाने का वह प्रयत्न कर रहा था । आखिर आँखो मे आँसू लाकर मैंने उसे कहा, "भैया जिस बात को सारा ससार जानता है, हमारे सम्मुख न हो फिर भी हमारे पीठ पीछे जिसके बारे मे लोग चर्चा किया करते है, वास्तव मे वह बात क्या है और उसमे सत्याश कितना है, क्या इसे केवल मुझे ही नही जानना चाहिए ? भैया, तुम कहते हो कि मैं अब बडी हो चुकी हूँ, तो लोग-बाग हमारे बारे मे क्या कहते हैं इसे भी मैं नही जानना चाहूँगी ? तुम्हारे अतिरिक्त मेरा और कोई नही है—तुम्हारे लिए मैं और मेरे लिए तुम । इसीलिए ना मैं हर बात तुम से कहा करती हूँ ? जरा-सी बात हो तो भैया से कहूँगी, कुछ करना हो तो भैया से पूछूंगी । ऐसा मैं क्यो करती हूँ ? और तुम मेरे साथ इस प्रकार का बर्ताव करते हो ? भैया आज यदि हमारी माँ होती तो· · "

मैं इतना ही कह पाई थी और भैया की आँखो मे आँसू उमड आए । मेरा हाथ पकडकर उसने कहा, "बस—बस करो यमुना । तुम्हारे लिए मैं और मेरे लिए तुम यही सत्य है । क्या तुम सोचती हो कि मैं यह नही मानता ? सुन्दरी तुम से बहुत छोटी है फिर भी उसके लिए मुझे इतना ममत्व नही है—मुझे उसका विशेष स्मरण भी नही होता । वह भी तो मेरी बहन है । किन्तु

यमू, तुम्हारे लिए मेरे मन मे जो प्रेम है उसका वर्णन नही किया जा सकता। और फिर तुम जब इस प्रकार कुछ कह देती हो, माँ की याद दिलाती हो तब तो मेरे मन की अवस्था बडी विचित्र हो जाती है। मैं तुम्हें ऐसी बाते नही बताता, तुम तीन-तीन बार पूछती हो फिर भी नही बताता, इसका कारण क्या यह है कि मैं उन बातो को तुम से छिपाना चाहता हूँ ? पगली कही की। मैं यह सोचता हूँ कि उन बातो को मैं जानता हूँ, यही बहुत है। तुम्हे बता कर व्यर्थ मे तुम्हे क्यो दुखी बनाऊँ ? और फिर यह भी सोचता हूँ कि इन बातो को जानने योग्य अभी तुम्हारी अवस्था नही है। तुम जानकर क्या करोगी ? तुम्हारा न जानना ही योग्य होगा। यदि मेरी बात मानना चाहो तो वर्ष-दो-वर्ष इस बारे मे मुझ से कुछ न पूछो।" इतना कहकर कुछ देर के लिए वह मौन बैठा रहा। फिर सम्भवत उसके मन मे कोई विचार आया हो इसलिए हँसकर उसने कहा, "देखो यमू, जरा मेरी ओर देखो। गुस्सा न खाओ। तुम जब बम्बई जाओगी तब मैं स्वय तुम से कह दूंगा। यह तो बताओ, सुना है कि तुम बम्बई जा रही हो ? कब जा रही हो ?"

"हिष्ट। चलो हटो—मज़ाक करते रहने की तुम्हे बडी बुरी आदत है। तुम से किसने कहा कि हम बम्बई जा रहे है ?"

"किसने कहा ? क्या खूब। अरे, जो तुम्हे अपने साथ ले जायँगे उन्होने ही तो कहा। केवल इतना ही नही तो यह भी कहा कि तुम्हारी अजिया सास ने जिस दिन तुम्हे खूब फटकारा था उस दिन तुम कहाँ जाकर बैठी रो रही थी और फिर तुम्हारे पीछे वहाँ कौन आया था, और फिर उसने तुम्हे ..."

"बस—रहने दो भैया। क्या यह भी तुम से कह दिया ? पुरुषो को इस बात का जरा भी ध्यान नही रहता कि क्या किसे बताना चाहिए और क्या नही।"

"यमुना", चुटकियाँ लेते हुए भैया ने कहा, "जरा-सी बात होने पर भी तुम से आकर कहती हूँ, ऐसा अपने मुँह से कहती हो, और फिर यह इतनी बडी बात मुझ से क्यो नही कही गई ? तुम न बताओ तो न सही, मुझे तो मालूम हो गई। तुम्हारे पतिदेव ने जब मुझे यह बताया तो जानती हो मैंने उनसे क्या कहा ? मैंने कहा, अरे, क्या लिये फिरने हो उस जरा-सी छोकरी

की बात । उसको तुमने क्या सात्वना दी होगी ? क्या उस छोकरी के साथ बातचीत करते हो । छी तुम भी बिलकुल स्त्री पूजक ही मालूम देते हो । जरा मेरी ओर तो देखो यमुना, मैंने जब ऐसा कहा तो वे मेरी ओर आँखें तरेरकर देखने लगे । मैंने सोचा कि अब हम दोनो मे टेढ पड गई किन्तु उत्तर मे उन्होने कहा, "गणपतराव, तुम क्या जानो उसकी योग्यता को । वह तो सौभाग्य से तुम्हारी बहन हो गई है ।"

भैया की बाते सुनकर मे मन ही मन प्रसन्न हो रही थी मैं उसे जो पूछना चाहती थी उसे भूल गई । मुझे लग रहा था कि उनके बारे मे वह कुछ और कहता रहे । इसलिए मैंने कहा, "जी हाँ । ऐसा कहा । और क्या कहा ? और भी तो कुछ कहा होगा । बाते बनाकर कुछ और कह दो ।" इस पर वह कुछ कहने जा रहा था किन्तु इसी समय "क्या गपशप हो रही है बहन भैया मे ? क्या हम आ सकती है ?" कहकर हँसती हुई नई माँ वहाँ आ गई । उनके पैरो की आहट मैंने अथवा भैया ने नही सुन पाई थी, अन्यथा वह बात को घुमा देता अथवा मौन हो जाता । नई माँ के अचानक आगमन से हमारी बातचीत समाप्त हो गई और एक नए भय की आशका ने हमे घर दबाया । सीढियो पर छिपकर क्या उन्होने हमारी बातचीत सुन ली ? मुझे लग रहा था कि अवश्य सुन ली हो । क्योकि इस प्रकार छिपकर सुनने की उन्हे आदत थी इसे हम जानते थे । जो लोग मन से कुत्सित होते है, जिनका मन क्षुद्र होता है, उन्हे हर समय शका बनी रहती है कि लोग उनके बारे मे बुरा कहते हैं । इस कारण उन्हे हमेशा उत्सुकता लगी रहती है कि अपने बारे मे कौन क्या कहता है ? दूसरो का सम्भाषण छिपकर सुनना, किसी दूसरे के द्वारा उसकी जानकारी प्राप्त करना आदि उस इच्छा को तृप्त करने के मार्ग होते हैं ।

नई माँ ने कुछ सुना हो किन्तु उन्होने इस बात का हमे पता नही चलने दिया । दोपहर का शान्त समय था, शनिवार होने से भैया का स्कूल दोपहर मे बन्द था, पिताजी घर पर नही थे, नई माँ खुर्राटे भर रही थी, ऐसा समय चुनकर हम दोनो बातचीत करने बैठे थे । दस-बारह दिन के बाद आज मैं मायके आ सकी थी । आज भी सासूजी ने यह कहकर भेजा था कि शाम को लौट आना । क्योकि सासूजी ने अपने ही अधिकार से मुझे भेजा था समय

निकालकर भैया से मैं अपनी शका का निवारण करना चाहती थी तो मेरी बात टालकर भैया ने दूसरी ही मेरे लिए अत्यन्त प्रिय बातो को छेडकर मुझे खूब बनाया था। बाद मे दुबारा पूछने का मैंने मन मे निश्चय कर लिया था किन्तु अब समय नही रहा। मुझे ससुराल जाना था इसलिए मेरी बात अधूरी रह गई। आगे चलकर इतिश्री भी हो गई थी, क्योकि अब भैया के बारे मे एक महत्त्वपूर्ण घटना होने जा रही थी वह घटना भी भैया का विवाह।

३३

गत परिच्छेद मे बताई घटना के दो-तीन महीने बाद भैया का विवाह हो गया। विवाह होने के पूर्व कोई पाँच-छ महीनो की बात होगी। पिताजी भोजन करने बैठे थे, उनकी बगल मे भैया बैठा था, सामने नई माँ और उनकी बगल मे बैठी मैं भोजन कर रही थी। भोजन करते समय नई माँ ने कहा, "अब गणपतराव के विवाह का समय हो गया है। आज इसके लिए एक लडकी के घर से सदेश आया है।"

वास्तव मे नई माँ की उम्र अधिक नही थी, वे भैया से भी छोटी थी, फिर भी बडे-बूढो की तरह उन्होने कहा जिसे सुनकर मुझे हँसी आ गई। वे हमारी उपस्थिति मे पिताजी के साथ बातचीत किया करती थी। वे बोलती थी, हँसती थी, मजाक भी किया करती थी और यह देखकर हमे बहुत आश्चर्य होता था। हमारी अतीत की स्मृति जाग उठती थी। माँ के साथ पिताजी का और उनके साथ माँ का जो व्यवहार रहता था उसकी स्मृति हो आती थी। माँ और नई माँ की तुलना से मन विषाद से भर जाता था। लगता था कि पिताजी को अब यह कैसे पसन्द आता है? हमारी माँ पिताजी के सामने बैठना तो दूर रहा आँखें उठाकर खडी भी नही रहती थी। खडी रहती तो गर्दन एक तरफ

झुका कर। और नई माँ अपना कुंजियो का गुच्छा बजाती हुई, पिताजी के पास कोई अपरिचित व्यक्ति बैठे होने पर भी उनके कमरे मे चली जाती थी। पचासो बाते है—उन दोनो मे किसी बात मे समानता नही थी।

जैसाकि मैंने ऊपर लिखा है, हम लोग भोजन कर रहे थे। हमारी नानी—नई माँ की माँ—काशी यात्रा करने गई थी। रसोई बनाने के लिए जो महाराजिन नियुक्त थी वह हमे परोस रही थी। नई माँ के प्रश्न का पिताजी ने कोई उत्तर नही दिया। नई माँ ने दुबारा कहा,

"उत्तर नही दिया गया ? क्या गणपतराव का विवाह नही करना है ?"

"देखा जायगा। अभी क्या जल्दी पडी है।" पिताजी ने उत्तर में कहा। आरम्भ मे केवल इतनी ही बातचीत हो पाई थी, किन्तु भैया ने मुझे बताया था कि उस दिन से वह पिताजी के पीछे पड गई थी। आते-जाते वह भैया के विवाह की चर्चा करती रहती थी। जैसे, "लोग-बाग अब हँसी उडाते है। कई लडकियो के घर से सदेशे आ रहे है। आखिर उन्हे क्या उत्तर दिया जाय ? यह ठीक नही। अब लडका काफी बडा हो चुका है।" यदि हमारी दादी और पिताजी मे मनो-मालिन्य न होता तो जिस प्रकार वह पीछे पड जाती उसी प्रकार नई माँ ने पिताजी का पीछा किया था। कभी लडकियो के बारे मे बात चलाती थी। एक दिन उसने मुझसे कहा "क्यो यमुना, क्या अब भैया का विवाह नही करना होगा ? उसके साथियो के विवाह होकर बहुएँ स्यानी तक हो गई है। तुम भी अब छोटी नही हो। अब तक तो तुम्हे एक बच्चा हो जाना चाहिए था, किन्तु तुम तो अब तक स्यानी भी ··· "वह आगे क्या कहना चाहती है यह जानकर बीच मे ही मैंने कहा, "हाँ माँ, भैया का विवाह इस वर्ष होना ही चाहिए। पिताजी तो इस बारे मे मौन है। दादाजी ने एक बार उल्लेख किया था किन्तु भैया ने बात दबा दी।

मेरे मुँह से इन शब्दो को सुनते ही नई माँ ने आतुरता से कहा, "क्या कहा ? भैया ने दबा दी ? यह कैसे ?"

उसका प्रश्न सुनते ही मैंने अपनी जबान पर काबू किया। एक बार दादाजी ने भैया के विवाह के सम्बन्ध मे पिताजी को पत्र लिखा था जिसका पिताजी ने उत्तर दिया था, "अभी मैं उसका विवाह करना नही चाहता।" किन्तु पिताजी की बात न मानकर दादाजी ने दुबारा-एक पत्र लिखा था। जिसे पढकर

पिताजी ने कूडे की टोकरी मे फेंक दिया था। तब भैया ने छिपकर स्वय दादा जी को पत्र लिखा था। उसने लिखा था, "इस बारे मे आप फिर पत्र न लिखिएगा। यहाँ उस पर टीका-टिप्पणी होकर पिताजी नाराज हो जाते है। आदि। इसके बाद छुट्टियो मे मैं और भैया गाँव गए थे। दादाजी और दादी ने भैया से कहा था, "अरे, उसे कौन पूछता है। तू यहाँ है, हम यही तेरा विवाह करे देते हैं। उसे समय पर पत्र भेज दिया जायगा। आना चाहे तो आ जायगा नही तो हमी 'देव प्रतिष्ठा' (विवाहारभ की एक विधि) कर लेंगे और तेरा विवाह कर देंगे। बैठा रहने दो उसे नही, नही, कहते।"

वे इतना कहकर ही नही रुके थे, लडकियो को भी देखा जा रहा था। जब बात यहाँ तक बढ गई तब भैया ने एक दिन दादाजी से स्पष्ट शब्दो मे कह दिया, "परीक्षा उत्तीर्ण होने से पहले मैं विवाह नही करूँगा। आप इस झमेले मे न पडे।" सुनकर दादाजी नाराज हो गए थे। भैया वहाँ से उठकर चला गया था। दादी की जबान चल रही थी, "लो अब। बडे गणप्या, गणप्या करते रहते थे। हमारा गणप्या बडा अच्छा है—चढा लो अपने गणप्या को सिर पर। अच्छे मूँग दल रहा है। आखिर वह लडका किसका है? और नाती भी किसका है?"

अतिम वाक्य उसने कुत्सित स्वर मे कहा था। दादाजी क्रोध से काँपते हुए दादी के मुँह के सामने हाथ नचाकर कहने लगे, "तुम्हारा—तुम्हारा ही नाती है!" फिर क्या था—अच्छा-खासा भारतीय युद्ध छिड गया। भैया मन ही मन लज्जित हो उठा था। किन्तु कुछ ही दिनो के बाद छुट्टियाँ समाप्त हो जाने से हम लोग लौट आए थे। लौटते समय मुझे छाती से लगाकर दादी खूब रोई। भैया को उसने खूब भला-बुरा कहा, "वह तो निर्दयी है, उसका दिल कभी नही पिघलेगा। उसे अपनी दादी की क्या चिन्ता है? वह तो अपनी माँ को भी भूल गया होगा। तीसमारखाँ हमे बाते सिखाता है। कहता है कि परीक्षा पास किये बिना विवाह नही करूँगा। नही करेगा तो तेरी खुशी। हमे क्या पडी है। अच्छा हुआ जो एक बार मे ही निर्णय हो गया। अब हमे किसी बात का बन्धन तो नही रहा—"

यह किस्सा यहाँ पिताजी के घर कोई नही जानता था। इसी कारण मेरे मुँह से भैया ने दबा दिया शब्द निकलते ही नई माँ ने उसके सम्बन्ध मे पूछ-

ताछ की थी। एक बार शब्द तो मुँह से निकल चुके थे, फिर मैं लगी साधा-सूधी करने, किन्तु बात प्रगट हो चुकी थी। जब नई माँ ने मुझे बताने के लिए बहुत आग्रह किया तब मैने विस्तार से तो नही किन्तु बात की वास्तविकता उसे बता दी। एक दिन भैया को उसने कहा, "क्यो गणपतराव, क्या परीक्षा पास हो जाने के पूर्व विवाह नही करोगे ? तो क्या फिर स्वय अच्छी खासी लडकी पसन्द करके विवाह करना चाहते हो ? मुझे यह बात मालूम नही थी। मैं व्यर्थ मे उनके पीछे पडी रही।"

जब दो-चार बार नई माँ ने इस प्रकार कहा तब एक दिन भैया ने चिढ़ कर कह दिया, "हाँ, माँ, मेरा यही निश्चय है कि बी० ए० होने से पहले विवाह नही करूँगा।" भैया का उत्तर सुनकर नई माँ ने कहा, "ठीक है। निश्चय तो बुरा नही है, किन्तु देखना यह है कि वह पूर्ण कैसे होता है।" इस घटना के पाँच-छ दिन बाद भैया के ध्यान मे आया कि उसके विवाह के सम्बन्ध मे पिताजी गभीरता से चर्चा कर रहे थे। मित्रो मे बैठकर उनकी इसी बारे मे चर्चा चला करती थी। एक-दो मित्रो को साथ मे लेकर वे लडकियो को पसद करने के लिए भी जाने लग गए थे। कभी-कभी दिखाने के लिए लडकियो को घर बुलाया जाता था। भैया मन ही मन कुढ रहा था। विवाह अपना होगा और अपनी सम्मति के बिना लडकी पसन्द की जा रही है। अपनी सब योजनाओ को नष्ट-भ्रष्ट किया जाकर गुड्डा-गुडियो-जैसा व्यवहार किया जा रहा है, यह देखकर उसका मन अस्वस्थ हो रहा था। एक दिन मेरे पास बैठकर उसने आँसू बहाये थे। उस समय उसके दु ख मे सहभागिनी बनने योग्य मेरे विचार प्रौढ नही थे। मैंने उल्टे उससे कहा, "वाह भैया। ऐसे आनन्ददायक अवसर पर रोना नही चाहिए। अब तुम्हारा विवाह होगा—मेरे लिए भाभी आयगी"—किन्तु मेरा भाषण सुनने के लिए वह वहाँ रुका नही। फिर उसने किसी से पिताजी को कहलवाया था कि अभी मेरी विवाह करने की इच्छा नही है, परीक्षा पास हो जाने पर देखा जायगा। सदेशवाहक से पिताजी ने कहलवाया था कि, "उससे जाकर कह दो कि जब इस बारे मे हम तेरा मत चाहेगे तब उत्तर देना।" इसके बाद तो विवाह की तैयारियाँ जोरो से शुरू हो रही थी। अन्त में भैया ने एक पत्र लिखकर पिताजी की मेज पर रख दिया। पिताजी ने भैया को पास बुलाकर बुरी तरह से डाँटा और अन्त मे कहा, "अब

आपके पर निकल आए हैं। ठीक है। आप यदि अपनी मनमानी करना चाहें तो इस घर मे वह नही निभ सकेगी। आप अपनी व्यवस्था अन्यत्र कर सकते हैं। इस घर मे रहना हो तो मेरी इच्छा के अनुसार चलना होगा—"

फिर भैया का क्या बस चल सकता था। निराश होकर चुप बैठा रहा। नई माँ की पसदगी से लडकी चुनी गई। दहेज मे साढे-सात सौ रुपये मिले, उसके अतिरिक्त समधिन का मान सम्मान पृथक् किया गया। मुख धोवन, रास नहाना आदि। नई माँ ने विवाह मे अपना मान सम्मान खूब करा लिया था। सब बाते निश्चित हो जाने पर ही दादाजी और दादी को निमत्रण भेजा गया था। दादाजी नही आए, केवल दादी आई थी, किन्तु उसे लग रहा था कि व्यर्थ मे वह आई। विवाह समारोह मे दादी की कोई पूछ-ताछ नही की गई थी। सब बडप्पन दिया जा रहा था तो नई माँ और उसके द्वारा एकत्रित की गई स्त्रियो को। मेरी भी केवल औपचारिक पूछ-ताछ की गई। सुन्दरी को कौन पूछता है—मैं ही हमेशा उसे अपने साथ रखती थी। मुँह दिखाई की विधि मे वर-वधू को नाते की बडी औरतो के गोद मे बिठाकर मिश्री खिलाई जाती है। दादी की गोद मे जब वर-वधू बैठे तो माँ का स्मरण हो जाने से दादी खूब रोई थी। नई माँ ने वर-वधू के मुँह मे मिश्री का डेला रखते हुए कहा, "परीक्षा पास होने की मिश्री है यह, मुँह मीठा कर लो।" सुनकर भैया का मुँह कडवा हो गया था।

तात्पर्य यह है कि इस प्रकार भैया का विवाह हो गया और मेरे लिए नई भाभी आ गई।

३४

चैत्र-गौरी के समारोह मे दुर्गी हमारे घर आई थी। उस समय अपने बारे मे उसने जो कहा था और उसके परिणाम स्वरूप उसकी जो मानसिक

और शारीरिक अवस्था हो रही थी उसका वर्णन मैं पहले कर चुकी हूँ। उसके कुछ दिन पश्चात् उसे ऋतु प्राप्त हो गई थी और उस अवसर पर किये जाने वाले वैदिक सस्कार आदि किये जा चुके थे। उसके बाद मेरी उससे भेट नही हुई थी। इन दिनो वह बहुत ही दुर्बल हो रही थी। मुझे दुर्गी के लिए बहुत दु ख था। वृद्धावस्था के कारण अब उसके अजिया ससुर अधिक कमाई नही कर पाते थे। पहले की गई कमाई की पूँजी पर उदर निर्वाह करने की नौबत आ गई थी। उनके होते हुए किसी तरह गुजर-बसर हो रही थी, किन्तु दुर्गी को ऋतु प्राप्त होने के बाद अजिया ससुर अर्धांग वायु से ग्रस्त होकर कुछ ही दिनो मे चल बसे थे। इस कारण घर के सभी लोग दुर्गी से बहुत नाराज थे। उसकी ऋतु प्राप्ति असगुनी मानी जाकर उसी से अजिया ससुर का देहात हो गया ऐसा सब लोग उसे दूषण दे रहे थे। इस नाराजगी का मुख्य कारण यह था कि उनके मर जाने से घर की आमदनी का द्वार बन्द हो चुका था। इसलिए बूढे की मृत्यु से सभी लोग चिंतित थे और अब मध्याह्न काल की चिन्ता आ पडी थी। दुर्गी के ससुर कैसे थे इसका वर्णन पहले किया जा चुका है। बाप की मृत्यु हो जाने से उनका धन्धा भी बैठ गया था। बाप के बूते पर ही उनका धन्धा चला करता था। बाप कोर्ट मे वकालत करता था और बेटा वही बैठकर किसी की अर्जियाँ, दस्तावेज आदि लिखकर दो-चार आने कमा लेता था। बाप के मर जाने से अब उनकी कमाई नही के बराबर थी। दुर्गी के चचेरे ससुर का वर्णन भी किया जा चुका है। कुछ ही दिनो के बाद उसने झगडा फैलाकर घर मे जो कुछ जेवर, बर्तन-भाँडे आदि थे उनका बँटवारा कराया और कुछ अधिक हिस्सा प्राप्त करने की कार्यवाही मे सफल होकर वह घर से निकल गया और किसी दूसरे गाँव मे नौकरी करके रहने लगा। दुर्गी का पति तो बिलकुल ही निठल्ला था। कोई काम-धन्धा नहीं करता था। घर मे माँ को परेशान करना और दोनो समय भर पेट खाना यही उसका काम था। स्कूल जाना तो उसने बन्द ही कर दिया था। घर मे माँ आदि किसी के कुछ कहने पर उलटा वह उन लोगो को बाते सुनाया करता था। अब उसे किसी का भय नही रहा था। पत्नि को बहुत तग किया करता था। इसी अवस्था मे दुर्गी गर्भवती हो गई। उसकी उम्र ही क्या थी, शरीर उसका दुर्बल था और फिर यह गर्भावस्था। घर की हालत बहुत खराब

थी। दुर्गी पर काम-काज का बहुत बोझा था और इतना जी तोड काम-काम करने पर भी सुख का शब्द सुनना उनके भाग्य मे नही लिखा था। उसकी सास उसे विशेष तग नही करती थी, वह सरल स्वभाव की स्त्री थी, किन्तु एक के बाद एक सकटो के आते रहने से वह त्रस्त हो उठी थी। ससुर का देहान्त हो चुका था, पति का वह हाल था, देवर लड-झगडकर घर की चीज वस्तु को हडप कर गया था। बेटा निठल्ला निकला था, उससे तो किसी बात की आशा ही नही की जा सकती। छोटा लडका भी बीडी-सिगरेट धोकता घूमा करता था। कहने का तात्पर्य यह है कि उस बेचारी के लिए आशा का कोई स्थान शेष नही रहा था। क्या कर सकती थी। घर-गृहस्थी की मुसीबतें कैसी होती हैं इसे वही जानती थी। अब दोपहर मे क्या करना होगा यह भयावनी समस्या प्रतिदिन उसके सामने रहती थी। इस कारण उसमे चिड-चिडापन आ गया था। सतप्त मन को शान्त करते के लिए भी उसे कोई विश्राम स्थान प्राप्त नही था। इस कारण कभी-कभी वह बहू से कुछ कह देती। उसकी भी यही धारणा थी कि बहू को बडे कुयोग मे ऋतु प्राप्त हुई है, और इसी कारण उस परिवार पर सकट टूट पडा है। आखिर स्त्रियो की ही तो बुद्धि थी इसी कारण वह दुर्गी से नाराज रहती थी।

यह थी दुर्गी की सद्य स्थिति। उसे छठा या सातवाँ महीना चल रहा था। पहली प्रसूति होने से उसके लिए उसे मायके मे भेजा जाना निश्चित किया गया था। उसके मायके का हाल पहले-जैसा ही था। विशेष बात केवल इतनी ही थी कि उसके पिता के वेतन मे कुछ वृद्धि हो गई थी।

हमारे शकर मामाजी की दोनो लडकियो का विवाह हो चुका था इसका उल्लेख पहले किया जा चुका है। बडी लडकी—वारु दीदी—नाना साहब दिवटे नामक महाशय के लडके को ब्याही गई थी। छोटी लडकी—बनू दीदी—के पति की अवस्था सैतीस-अडतीस वर्ष की होगी। वह किसी दूर के शहर मे अच्छे वेतन पर कर्मचारी था। उसके घर मे कोई बडी-बूढी स्त्री न होने से उसने अपनी पत्नी को कुछ समय के लिए मायके मे ही रख छोडा था। शकर मामाजी के स्वभाव का वर्णन पहले किया जा चुका है, तदनुसार उन्होने अपनी दोनो लडकियो को धनवान परिवारो मे ब्याहा था। उन दोनो का विवाह हो जाने पर ही मेरा विवाह हुआ था। इस कारण उन दोनो के

ससुराल के सम्बन्ध में मुझे प्रत्यक्ष जानकारी अधिक नही थी, किन्तु दूसरो से मैंने सुना था कि इन दोनो लडकियो का विवाह सम्बन्ध शकर मामाजी की कृपण वृत्ति का पूर्ण रूपेण परिचायक रहा था।

बडी लड़की जब लगभग दस वर्ष की हो चुकी थी तभी से उसके काका अर्थात् हमारे गोपाल मामाजी तथा अजिया सामूजी ने उसके विवाह की बात चलाई थी, किन्तु शकर मामाजी ने उनकी बात पर विशेष ध्यान नही दिया था। वे चाहते थे कि कानी कौडी खर्च किये बिना उनकी लडकी का विवाह हो जाय। गोपाल मामाजी की इच्छा थी कि दोनो भाई मिलकर एक हजार तक व्यय करके लडकी का विवाह किसी अच्छे परिवार मे करें। उनकी दृष्टि मे अपनी और भाई की लड़की ऐसा भेदभाव नही था। शकर मामाजी सोच रहे थे कि विवाह का सम्पूर्ण व्यय भार भाई के मत्थे मढ दिया जाय और अपनी एक कौडी भी खर्च न हो। किन्तु स्पष्ट रूप से इस बात को कहा तो नही जा सकता था। प्रयत्न अवश्य किये जा रहे थे।

"अपनी गाठ मे तो पैसा नही, अच्छा घर कैसे मिल सकता है, किसी गरीब अथवा दूजिया-तीजिया को लडकी व्याहनी होगी," इस प्रकार की बातें वे पहले से ही कहा करते थे। गोपाल मामाजी सीधे-सादे थे, वे अपने भाई की बात का मर्म कैसे जान सकते? उन्होने शकर मामाजी को धीरज देकर कहा, "सब हो जायगा। कोई अच्छा-सा लडका और परिवार देखकर लडकी का विवाह कर देंगे। आ जाकर हजार बारह सौ खर्च होगे। कोई बात नही। कुछ रुपये तो अपने पास हैं, चार-पाँच-सौ कम होगे तो कही से उठा लायेंगे।" ऐसा कहकर उन्होने एक अच्छा-सा परिवार देखकर लडकी का विवाह कर दिया था। विवाह मे बारह-तेरह सौ का व्यय हुआ था। बेचारे गोपाल मामा जी ने अपनी पूरी पूंजी लगाकर चार-पाँच सौ का ऋण ले रखा था। विवाह हो जाने पर शंकर मामाजी ने उस कर्जे के बारे मे रोना-गाना आरम्भ कर दिया था। "अब यह कर्जा कैसे चुकाया जायगा? व्यर्थ मे इतना अधिक व्यय किया गया। अपने तो दात पर भी मास नही है। अपना इतना बडा परिवार है—कैसे निर्वाह होगा।" भाई को एक धेले की सहायता नही की, उलटे कर्जा करने के लिए भाई को दूषण देकर अपनी ही गाथा गाया करते थे। आखिर गोपाल मामाजी ने अकेले ही कर्जे की रकम चुका दी थी। इस बीच मे अपनी

पत्नी की बात मानकर हो अथवा शंकर मामाजी का दाव ध्यान में आ जाने से हो, किन्तु दूसरी लडकी के विवाह के झमेले मे न पडने का गोपाल मामाजी ने निश्चय-सा कर लिया था। मनुष्य सीधा-सादा होने पर भी घर मे जो बातें प्रगट रूप से चल रही थीं उन्हें जाने बिना कैसे रह सकता है। दूसरी लडकी के विवाह के बारे मे भाई कोई ध्यान नही दे रहा है यह जब शकर मामाजी ने देखा तो उन्होने अपना रुख ही बदल दिया। लडकी का विवाह छोटी अवस्था मे करना उचित नही, कम-से-कम उसका बारह वर्ष की होना आवश्यक है ऐसा अपना निश्चय शकर मामाजी ने स्पष्ट शब्दो मे व्यक्त कर दिया। घर के लोग चर्चा किया करते थे किन्तु शकर मामाजी किसी की बात नहीं सुनते थे। जब बन्नू दीदी बारह वर्ष की हो चुकी तो कहने लगे, "प्रथम वर की अपेक्षा दूजा अधिक योग्य होता है, उसे अपनी पत्नी की बहुत चाह रहती है।" घर के लोगो ने दूजिया को लडकी देने के लिए बहुत विरोध किया किन्तु उन्होने किसी की बात नही मानी। भाई से कुछ दिनो के लिए दो-चार सौ रुपए उधार माँग लिए और अपनी पत्नी को साथ मे लेकर वे किसी गाँव को चले गए और वहाँ लडकी का विवाह करके वापस लौट आए। उनके इस बर्ताव से घर के लोगो को और उनकी पत्नी को बहुत दु ख हुआ था। गोपाल मामाजी को इस बात का दु ख हो रहा था कि उनके ध्यान न देने से ही इस लडकी का बहुत बडा नुक्सान हुआ था। वर की उम्र क्या थी यह पहले कहा जा चुका है। विवाह के समय और उसके बाद कुछ दिनो तक बन्नू दीदी का पति पूना मे ही रहता था। फिर उसका स्थानातर किसी दूसरे गाँव मे हो गया था। बन्नू दीदी को वह अपने साथ नही ले गया। कारण यह बताया गया था कि घर मे कोई बड़ी-बूढ़ी स्त्री न होने से लडकी को बडी हो जाने तक मायके मे ही रखा जाए। अब लडकी बडी हो चुकी थी फिर भी उसके पति का उसे भेजने के लिए कोई पत्र नही आ रहा था। दस-पाँच पत्र भेजे जाने पर उनकी ओर से एकाध पत्र आता था, जिसमे लिखा रहता था, "बुला लूँगा, जल्दी किस बात की है।" कुछ दिनो के बाद पता चला था कि वे "बारहबाट" हो गए हैं और अपने राग मे मस्त हैं। इस बात को जान लेने पर बन्नू दीदी के स्वभाव में बहुत बडा परिवर्तन हो गया था। वे मन ही मन जान गई थी कि उनके पति को अब उनकी आवश्यकता नही है। इस कारण

उनकी अक्कड कुछ कम हो गई थी। उन्हे यह बात विशेष रूप से खटकती थी कि उनकी बडी बहन सुखपूर्ण जीवन यापन कर रही है और स्वय उनका भाग्य इस प्रकार अठखेलियाँ खेल रहा है।

३५

मुझे लग रहा था कि कब इस पूना से पिंड छूटता है। पूना के कालेज की अंतिम परीक्षा का समय बहुत निकट आ गया था। इन दिनो वे कालेज से घर बहुत कम आया करते थे। हमारी पहली भेंट का वर्णन मैं पहले कर चुकी हूँ। उस दिन से मेरा भय कम हो गया था और कभी-कभी चोरी छिपे हम दोनो की भेट हो जाती थी। किन्तु इन दिनो भेट होना दुश्वार हो गया था। वे घर बहुत कम आया करते थे। बड़े परिवार मे चोरी-चोरी भेट होना बडा कठिन काम होता है—फिर मेरे लिए तो बहुत-सी रुकावटे थी। बनू दीदी हमेशा घर मे बनी रहती थी और हर समय मेरी गलती पकडने की टोह मे लगी रहती थी। मुझे दु ख देने मे उन्हे सतोष होता था। एक इतवार के दिन हम दोनो को सीढियो पर खडे बातचीत करते हुए बनू दीदी ने देख लिया। सब लोग भोजन करने बैठे थे और सासूजी ने मुझे ऊपर से कोई चीज लाने के लिए भेजा था। मैं छत पर जा रही थी 'और वे नीचे उतर रहे थे। सीढियो पर हम दोनो की भेट हो गई। मैं अपने रास्ते चली जा रही थी किन्तु उन्होने मेरा रास्ता रोककर कहा, "देखा, तुम कुछ पढती नही, यह ठीक नही। तुम्हारे लिए आज मैं दो सुन्दर किताबे लाया हूँ, उन्हे अवश्य पढना— बीच ही मे मैंने कहा, "यह समय इस स्थान पर खडे रहकर बोलने का नहीं है—" मैं केवल इतना ही कह पाई थी और बनू दीदी ने सीढियो के पास आकर पुकार लगाई, "भाभी, क्या आपका सम्भाषण समाप्त हो जाने पर ही माँगी गई चीज ला सकोगी ?" उनका उच्च स्वर मे पूछा गया प्रश्न सुनकर मैं लज्जा से जमीन में गड़ी-सी जा रही थी। बनू दीदी की पुकार घर के सब

लोगो ने सुनली होगी और यदि न भी सुनी हो तो अब जाकर वे अवश्य ही शख फूँकगी। पुरुष मडली भोजन के लिए बैठी थी। ऐसी बाते पुरुषो के सामने नही कहनी चाहिए इस बात का उन्हे जरा भी सोच नही था। किन्तु अब केवल शरमाने से क्या हो सकता था ? नीचे जाना आवश्यक था और मैं चली गई किन्तु मन मे लज्जा घर किए बैठी थी। मैं नीचे चली गई फिर भी बनू दीदी की बकवास चल रही थी। छोटे मामाजी के डाँटने पर वह चुप हो गई।

इस प्रकार की घटनाएँ हो जाने से अब हम दोनो की भेंट होना कठिन काम हो गया था। सुख और समाधान का एक मात्र साधन था वह भी न रहा। चोरी छिपे भेंट हो जाने पर हम लोग घटो बातचीत तो कर नही सकते थे किन्तु पाँच-सात मिनट के लिए ही क्यो न हो, उस बातचीत मे कोई उत्साहवर्धक एव सात्वनापूर्ण शब्द प्राप्त हो जाने से उस पूँजी के बल पर मैं सात-आठ दिन उत्साहपूर्वक बिता सकती थी। मामाजी के आश्रित होने से हम लोग सर्वथा लाचार थे। और फिर घर मे हर बार मुझे जरा-सी बात को लेकर उलाहने खाने पडते थे। चार-पाँच शस्त्र ऐसे थे जिनसे मुझे हर समय तग किया जाता था। एक बनू दीदी थी जो हर समय मेरे पीछे पडी रहती थी। मेरी गलतियो पर बहुत बारीकी से ध्यान दिया जाता था और दूसरो की गलतियाँ भी मेरे सिर थोपी जाती थीं। घोडू भैया आदि मेरी चुगली खाकर मुझे सताया करते थे। इधर कुछ दिनो से एक विशिष्ट शस्त्र का उपयोग किया जा रहा था, "इतनी बडी गधैया हो गई फिर भी अभी इसे ऋतु प्राप्त नही हो रही है। इसके बराबर की अन्य लडकियाँ माता तक बन गई।" दिन मे पचास बार मुझे यह सुनना पडता था। जब कभी कोई परिचिता घर आ जाती थी तो उसके पास इस बात की शिकायत अवश्य की जाती थी कि मैं अब तक "स्यानी" नही हो पाई हूँ। इन-जैसे शस्त्रास्त्रो से मैं जर्जर हो रही थी और बम्बई चली जाने पर इनसे छुटकारा पाने की पूर्ण आशा होने से मन मे हर समय विचार बना रहता था कि कब बम्बई जाना होगा, आशा का ही तो खेल है। यदि इस प्रकार आशा न हो तो भावी सुख के मन के लड्डू मन मे न खाया करती। हे आशा देवी ! इस ससार पर तुमने बहुत बड़ी उपकार किये हैं। चाहे फिर कोई कुछ भी कहता रहे। बेचारी दुर्गी मे

और मुझमे कितना बडा अन्तर था। आज नही तो कल, अपना दु.ख समाप्त होकर अच्छे दिन आयँगे और तब मैं अपने पति के साथ सुखपूर्ण जीवन व्यतीत कर सकूँगी, ऐसी आशा क्या दुर्गी कर सकती है ? यह आशा न होने से उसका जीवन उसे दूभर हो रहा था। एक बार तो उसने मुझे स्पष्ट शब्दो में कह दिया था कि यदि इस प्रसूति मे वह मर जायगी तो बडा अच्छा होगा। वह स्वय तो मुक्ति पायगी ही, अपितु उसके पिताजी, माँ और दादी की भी हर समय की चिन्ता समाप्त हो जायगी। बेचारी को भावी सुख की तो कोई आशा नही थी किन्तु कल को अपना क्या हाल होगा इस चिन्ता मे वह सदैव डूबी रहती थी। उसका पति कौडी की कमाई नही करता था किन्तु दोनो वक्त भोजन करते समय आज दाल क्यो नही बनी, आज साग क्यो नही बना आदि बातो को लेकर आग-बबूला हो जाता था और मुँह मे जो आता सो बका करता था। शाम के समय उसकी माँ कही मन्दिर मे दर्शन करने के लिए चली जाती तब वह घर मे आकर पत्नी के पीछे पड जाता था। किसी न किसी चीज की माँग किया करता। कभी पकौडियाँ बनाने को कहता, कभी मुरब्बा माँगता और यदि दुर्गी ने टाल-टूल कर दी तो उसे गालियाँ देता और कभी उस पर हाथ भी छोड देता था। एक बार वह दुर्गी से कहने लगा कि मुझे पाँच रुपये कर्जा हो गया है, तुम रुपये अपने मायके से लाकर दो। वह अपने मायके से रुपये कैसे ला सकती थी ? और किस कारण ला सकती थी ? दो-चार दिन बाद उसने फिर पूछा कि रुपये लाई या नही ? दुर्गी ने "नहीं" कहा तो उस निर्दय ने उसे तमाचा जमा दिया और यदि दो दिन मे रुपये नही लायगी तो फिर देख लेना, इस प्रकार उसे धमकाकर वह चला गया। बेचारी दुर्गी पर बडी मुसीबत आ पडी थी। दूसरे दिन अपनी माँ के पास जाकर रोते हुए उसने अपने दुर्भाग्य की कथा सुनाई। माँ भी आखिर क्या करे। एक बार पाँच रुपये दिए जाने पर उसे हर समय के लिए लत पड जायगी। हर बार रुपये कहाँ से दिए जा सकते थे। वे लोग भी बडे धनी नहीं थे। वे रुपये कहाँ से ला सकते थे। किन्तु अपनी बेटी के लिए माँ ने इस मुसीबत को भी मोल ले लिया था। माँ ने चुपचाप पाँच रुपये उठाकर बेटी के हाथ पर रख दिए और उसे ससुराल भेज दिया। दुर्गी की माँ बहुत समझदार और चतुर स्त्री थी। यह एक बार की मुसीबत हमेशा सिर पर आयगी, यह

सोचकर उसने एक तरकीब निकाली थी। दूसरे दिन दुर्गी के घर जाकर उसने उसकी सास से कहा, "कल अच्छा शुभ दिवस है, इसलिए हम दुर्गी को प्रसूति के लिए अपने घर ले जाना चाहते हैं। उसकी यह पहली खेप है, और फिर पूस के महीने मे दिन अच्छे नहीं हैं, कुछ गुरु का अस्त-वस्त बताते हैं, और वैसे भी अब उससे छ: महीने पूर्ण हो चुके हैं।" इस प्रकार कह सुनकर, और कई बातें बनाकर वह दुर्गी को मायके लिवा लाई थी। मन ही मन उसने निश्चय कर लिया था कि कम-से-कम अब सात-आठ महीने तो दुर्गी को ससुराल नही भेजूँगी। फिर उसका पति जो चाहे कहा करे। यह थी दुर्गी की अवस्था।

उसके और मेरे बीच कितना बडा अन्तर था। उसकी अपेक्षा मैं बहुत सुखी थी। दुर्गी को उसकी सास से कोई शिकायत नहीं थी। मुझे मेरी अजिया सास और बन्नू दीदी आदि अवश्य कुछ तग किया करती थी, किन्तु मुझे इसका विशेष दु:ख नही था। इसका कारण, मुख्य सुख साधन अपने समीप है ऐसी मेरी धारणा थी और उस साधन के द्वारा कुछ ही दिनो में मुझे पूर्ण सुख की प्राप्ति होगी इसकी मुझे आशा थी। कहना व्यर्थ है कि भावी सुख के विचारो मे मैं सदैव मग्न बनी रहती थी। इस बात को मैंने कभी नही सोचा कि बम्बई जाने का क्या अर्थ है और वहाँ किस प्रकार जाना होगा ? अथवा बम्बई पहुँचते ही सुख की प्राप्ति किस प्रकार होगी ? बम्बई एक बहुत बडा शहर है, सम्भवत. पूना से दुगुना होगा, परीक्षा समाप्त होते ही उन्हें बम्बई मे नौकरी मिल जायगी और वेतन भी अच्छा खासा होगा, किसी बात की कमी नही होगी आदि बातें और बम्बई से लौटे हुए लोगो के मुँह से मैंने जो सुन रखा था उसके अनुसार बम्बई मे मिलने वाले सुख और सुविधाओ के बारे में मैं कल्पना करने मे मग्न हो रही थी। विशेष प्रसन्नता इस बात की थी कि वहाँ अजिया सासूजी अथवा बन्नू दीदी आदि का कोई सम्पर्क न होगा। केवल सासूजी अपने साथ होंगी जो बेचारी साध्वी हैं और वहाँ अपना ही राज्य होगा। स्वतन्त्रता और सुख विषयक मेरी जो कल्पनाएँ थी उनका आधार नई माँ का आज का जीवन चित्र था। उन्हें जो सुख और सुविधाएँ प्राप्त हैं वही गृहस्थी का मुख्य सुख है, ऐसा सुख जिसे प्राप्त होगा वही इस ससार में सच्चे अर्थों में सुखी कहलाने का अधिकारी है, यह मेरी धारणा थी। मैं तो सदैव कहा करती थी कि जिसे नई माँ की परिस्थिति प्राप्त है, और जो मेरी माँ-जैसी

है, ऐसी स्त्री अपने घर को स्वर्ग लोक बना सकती है। पिताजी का यदि आज जैसा घुल-मिलकर रहने का बर्ताव मेरी माँ के साथ होता तो उन पर दु ख की छाया तक नही पड सकती थी। यदि मैं ऐसी परिस्थिति पालूँ तो मेरी माँ-जैसी बनकर हमेशा सबको सुख देती रहूँगी, कभी किसी को दु ख नही दूँगी। हमेशा सब लोगो के मुँह से अपनी भलाई के गीत सुना करूँगी। सदैव मेरे मन मे यह विचार बना रहता था। उनकी मर्जी तो इस प्रकार सम्पादन करूँगी कि कोई बात मुझसे कहे बिना करने की उन्हे इच्छा ही न हो। हर बात मे मेरी सलाह लेते रहे। वे चाहते है कि पढने-लिखने की ओर मैं विशेष ध्यान दूँ। आज की स्थिति मे उनकी इच्छा को पूर्ण करना कठिन ही नही तो असम्भव-सा है किन्तु बम्बई जाने पर इस सम्बन्ध मे उनकी कोई शिकायत नही रहेगी। इस प्रकार प्रतिदिन मैं मनसूबे बाँधा करती थी। मेरे इन मन-सूबो को सुनने के लिए कोई नही था, यही मेरे लिए बहुत बडा अभाव था। ले देकर केवल एक दुर्गी ही मेरे अतरग की सहेली थी किन्तु उसका जीवन निराशामय होने से मैं सोचा करती थी कि मेरी सुखपूर्ण कल्पनाओ को सुनकर उसे हर्ष की अपेक्षा दु ख ही होगा। एक बार मैं उसे अपनी कल्पनाओ के सम्बन्ध मे कुछ सुना रही थी सुनकर उसकी आँखो मे आँसू उमड आए थे। उसने कहा, "यमू, भगवान् तुम्हे खूब सुख दे। हमारा जीवन तो अब उजड गया, अब हमारे भाग्य मे सुख कैसे होगा ? शरीर ढाँकने के लिए कपडा और पेट पालने के लिए रुखी-सूखी रोटी तक मिलने की अब हमारे सामने समस्या आ पडी है।"

दुर्गी के उद्गारो को सुनकर मेरा दिल बैठ गया। उसे छाती से लगाकर गद्-गद् स्वर मे मैंने कहा, "ऐसा न कहो। परमात्मा तुम्हारे भी अच्छे दिन लायगा।" मेरे शब्द सुनकर वह हँस दी। उसकी हँसी भयकर मालूम हुई थी। उसने कहा, "हाँ यमुना, परमात्मा ही अब मेरे अच्छे दिन ला सकता है, और किसी के बस की बात नही है—"

दुर्गी की मुद्रा और बोलने का ढग देखकर मैं जान गई थी कि उसके भाषण मे शब्दार्थ की अपेक्षा कोई गूढार्थ छिपा है। मैंने उसे बहुतेरा पूछा किन्तु उसने स्पष्ट रूप से कुछ नही कहा।

इस घटना के बाद मैं भावी सुख विषयक अपनी कल्पनाओ का उल्लेख उसके सामने नही किया करती । अस्तु ।

कार्तिक अगहन के दिन थे । परीक्षा मे सम्मिलित होने के लिए "वे" बम्बई गए थे और इसी समय वह बात हुई जिसके लिए मुझे हर समय घर के लोग उलाहने दिया करते थे। जो बात मेरे बस की नही थी और जिसके लिए विलम्ब इष्ट था। इस बात से घर वाले और मैं भी खुश थी। अजिया सासूजी ने पेडे बाँटे थे।

३६

परीक्षा समाप्त हो जाने पर वे बम्बई से लौटकर आ गए थे । परीक्षा मे उच्च श्रेणी प्राप्त करने की आशा नही की जा रही थी, निदान गोपाल मामा जी के पूछने पर कहा गया, "पास तो हो जाऊँगा किन्तु फर्स्ट क्लास की आशा नही है, अंग्रेजी का पेपर कुछ कठिन था।" दरवाजे की आड मे खडी रहकर मैंने सुना था, सुनकर मे धक्क रह गई । क्योकि मेरी धारणा थी कि परीक्षा मे अच्छे नम्बरो से पास होने पर ही बम्बई जाना होगा—तभी अच्छी नौकरी मिल सकेगी, नौकरी किसे कहते हैं और उसे प्राप्त करने मे किन-किन कठिनाइयो का सामना करना पडता है आदि बातो से मैं सर्वथा अनभिज्ञ थी । नौकरी नही मिलेगी तो बम्बई जाना नही होगा और यदि बम्बई नही जायँगे तो स्वतत्रता विषयक मनोरथ भी टूट जायगा । मैं तो हर बात मे उतावली रहती थी । लाज शरम छोडकर एक दिन मैंने उनसे पूछ ही तो लिया, "यदि परीक्षा प्रथम श्रेणी मे पास न होगी तो फिर बम्बई और नौकरी का प्रश्न ही समाप्त हो जायगा न ?

यह प्रश्न करते समय मेरी अवस्था बडी विचित्र हो रही थी । उनसे यथाविधि परिचय होने के पूर्व मैं मन ही मन सोचा करती थी कि उनसे यह

पूछूंगी, वह पूछूंगी, इस प्रकार बातचीत करूंगी आदि । किन्तु अब उन सब बातो को मैं भूल-सी गई थी । उनके सम्मुख आते ही जिह्वा लूली पड जाती थी । पूछे गए प्रश्नो का उत्तर भी ठीक से नही दे पाती थी । मैं अपने आपको बहुत ढीठ मानती थी—और कुछ अशो मे मैं थी भी—इस कारण कुछ धैर्य बँधता जा रहा था । उन्होने कई बार यह कहकर मुझे उत्साहित किया था कि "अरे तुम डरती क्यो हो ? क्या मैं तुम्हे खा जाऊँगा ? पगली कही की । साफ-साफ बोलना चाहिए ।" इस कारण, मालिक द्वारा लाड-दुलार से पाली गई बिल्ली-जैसी मैं ढीठ हो गई थी । मेरा उपरोक्त प्रश्न सुनकर उन्होने हँसकर कहा, "अरे वाह । यह तो ईसप-नीति के उस शेर से डरने वाले गीदड-जैसा हाल हो रहा है ।" यह सुनकर मुझसे अपनी हँसी रोकी नही गई । इसका कारण यह था कि, लौकिक दृष्टि से हमारा परिचय हो जाने के चौथे या पाँचवे दिन की बात है—उस दिन रात मे मेरी पढाई की परीक्षा ली गई थी । उन्हें केवल इतना ही मालूम था कि मैं कुछ पढना जानती हूँ, किन्तु प्रत्यक्ष देखा नहीं गया था । इसलिए मुझसे कहा गया, "अच्छा । अब तक का समय व्यर्थ मे नष्ट हुआ है । अब मैं यह जानना चाहता हूँ कि तुम कितना सीख पाई हो । यह जान लेने पर आगे की पढाई के लिए सुविधा होगी । अब बहाने बनाने से काम नही चलेगा । पढाई करनी होगी । बम्बई जाने के बाद सब व्यवस्था हो जाने पर मैं तुम्हारे लिए एक शिक्षिका नियुक्त करने की बात सोच रहा हूँ । चलो निकालो, तुम्हारे पास जो पुस्तक हो उसे बाहर निकालो ।" इस प्रकार वे मेरे पीछे पड गए थे । अर्थात् मैं पढना नही चाहती थी । लज्जा थी और इस बात का विशेष भय था कि अपना अज्ञान प्रगट हो जायगा । पहले तो मैंने इसी बात की रट लगा दी कि मेरे पास कोई पुस्तक नही है और न मैं कुछ पढना ही जानती हूँ । यह पूछा जाने पर की तुम्हारे भैया के हाथो भेजी गई किताबें कहाँ हैं, मेरा सरल उत्तर था कि मायके मे हैं । किन्तु इस प्रकार मेरा सहज ही में छुटकारा नहीं हो रहा था । झट से मुझे कहा गया, "देखो तो, उस अल्मारी में घोंडू के पढने की किताबें होगी, उनमे से एक उठा लाओ ।"

मैंने बहुतेरा कहा कि मैं पढना नही जानती और अपने स्थान से टस से मस नहीं हुई । तब वे स्वय जाकर एक पुस्तक उठा लाये । वह ईसप-नीति की पुस्तक थी । पुस्तक खोलकर मेरे सामने रख दी गई और हँसकर कहा गया,

"हाँ, अब दो शब्द सुनाने की हम पर कृपा की जाय।" जितना अधिक आग्रह किया जा रहा था उतनी ही अधिक मैं लज्जा से गडी जा रही थी। आखिर दीपक मेरे पास सरकाया गया और मेरी ठोडी पकडकर गर्दन को ऊपर उठाते हुए मेरे हाथों मे किताब देकर कहा गया, "यदि पत्थर के सामने मैंने इतनी मिन्नतें की होती तो वह भी बोल उठता, अब पढिए। उन अमृत तुल्य शब्दो को मुझे सुनने दीजिए।" इसका मैं क्या उत्तर दे सकती थी। मैंने केवल इतना ही कहा, "मैं ठीक से पढ नही सकती, यदि टूटे-फूटे शब्दो मे—"

बीच ही में मुझे रोककर कहा गया, "बस, बस रहने दो। जैसे पढ सकती हो पढ़ो, मैं कुछ नहीं कहूँगा।" तब मैं हिचकिचाहट के साथ पढने लगी। परीक्षा का वास्तव अर्थ मैं उस दिन समझ पाई थी। शरीर और होठ थर्रा रहे थे। पुस्तक हाथ से छुटी जा रही थी। मेरा पूर्व संचित धैर्य लुप्त होता जा रहा था। जैसे-तैसे जब मैं एक कहानी पढ चुकी तब मुझे अपने समीप खीचकर मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा गया, "अरे वाह। तुम तो पडिता हो। मैं नहीं जानता था कि तुम इतना सुन्दर पढ सकती हो।" यह सुनकर मेरा धैर्य बढ गया और मुझसे कुछ और पढने के लिए कहा जाने पर मैंने दो-तीन कहानियाँ पढ कर सुना दी। उन कहानियो मे शेर और गीदड वाली कहानी भी थी। परीक्षा और बम्बई जाने के बारे मे मैंने जब प्रश्न पूछा तब मुझे उस कथा का स्मरण दिलाया गया और इसी कारण मुझे हंसी आ गई थी। वास्तव मे मेरी अवस्था उस गीदड-जैसी ही हो रही थी। भाषण करना तो दूर रहा किन्तु आँख उठाकर उनकी ओर देखने में भी मुझे भय लगता था, वही मैं इस प्रकार प्रश्न पूछ रही थी, फिर मेरे और उस गीदड के बर्ताव मे फरक ही क्या था। उस दिन से निश्चय कर लिया गया था कि प्रति दिन रात मे मुझे दस-पंद्रह पाठ पढने होंगे। मैं अच्छे ढग से पढ सकती थी, पढी हुई कथाओ का अर्थ बता सकती थी, कुछ कथाओ का मुझसे तात्पर्य पूछा गया था उसे भी मैंने बता दिया था। यह देखकर मुझसे कहा गया कि "तुम प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हो गई हो।" ऊपरी भाव से मैंने उत्तर में कह दिया, "जी हाँ, जानती हूँ, कृपया अब मुझे एक नसेनी लाकर दीजिए ताकि मैं चने के पेड पर बखूबी चढ सकूं।" किन्तु मन ही मन मैं प्रसन्न हो रही थी। उस दिन से प्रति दिन रात को मुझसे किताबें पढाई जाती रहीं। उन दिनों उन्हें कुछ फुरसत रहती थी इसलिए मेरी

पढाई पर विशेष ध्यान दिया जा रहा था। महीने डेढ-महीने की अवधि मे मैंने चार-छः किताबे पढ ली थी। एक थी ईसप-नीति दूसरी स्त्री धर्म नीति— किन्तु किताबो के नाम गिनवाने की क्या आवश्यकता है। कहने का तात्पर्य यह कि मेरी पढाई का आरम्भ हो गया था।

मेरा उपरोक्त प्रश्न सुनकर मुझे चिढाने के लिए कहा गया, "अब तुम्हारे भाग्य मे बम्बई कहाँ है ? अब तो मुझे अकेला जाना होगा। कुछ कमाई करके एल० एल० बी० की पढाई करूँगा। दो-तीन वर्ष के बाद जब परीक्षा पास कर लूँगा तब वहाँ घर जमाने की व्यवस्था हो सकेगी। बीच-बीच मे छुट्टियो मे यहाँ आता रहूँगा तब तुमसे भेट हो सकेगी। यदि प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण हो जाता तो अभी बम्बई मे घर बसाया जा सकता था। अब तो तुम्हारे भाग्य की परीक्षा है। सम्भवत तुम्हारे भाग्य मे बम्बई जाना नही लिखा है।"

इन निराशा भरे उद्गारो को सुनकर मेरा दिल टूट गया। मेरा मनोरथ इस प्रकार ढह गया जैसे बालू पर खडा हो। तो फिर इसी प्रकार दो-तीन वर्ष और बिताने होगे। आगे किसने देखा है। यह विचार मन मे आ जाने से मेरा मुख सूख गया, शायद आँखो ने भी ऐसे ही कुछ भाव व्यक्त किये हो। इसी से मुझे सहलाकर कहा गया, "धत् तेरे की। क्या तुमने मेरा कहना सही मान लिया ? बम्बई जाकर यदि मै अधिक कमाई न कर सका फिर भी क्या मैं तुम्हे अपने से दूर रख सकता हूँ ? पागल। बिलकुल पगली हो तुम। यहाँ आओ, जरा तुम्हारी आँखे पोछ दूँ।" यह सुनकर अब तक मेरे रुके हुए आँसू गालो पर लुढक पड़े। मेरे मुँह से शब्द नही निकल रहा था। कुछ देर ठहरकर उन्होने कहा, "अब तो आजीवन तुम्हे छोडकर मैं चार दिन भी तुम से दूर नही रह सकता। अच्छी नौकरी मिले या न मिले, जो मिलना भाग्य मे लिखा होगा उसी मे अपनी गृहस्थी जमानी होगी। माँ के कष्टो को अब अधिक समय तक सहा नही जा सकता। दूसरे के आश्रय मे कितने दिन बिताये जा सकते है ? मैं सोचता हूँ कि अपने साथ बडी मामीजी को भी लेता जाऊँ। उनका दुख देखकर मन विचलित हो जाता है। बेचारी के भाग्य मे सुख लेश मात्र भी नही है। छी ! मैंने ऐसा पति कही नही देखा।"

मैंने भी कहा, "जी हाँ, हम लोग उन्हे अपने साथ कुछ दिनो के लिए अवश्य लेते जायेंगे। वे बेचारी अपने मायके मे अथवा और किसी के घर भी

तो नहीं जा सकती।" बातचीत मे मैंने उन्हे उस दिन की पूरी कथा सुना दी जिस दिन आटा छानते हुए मैंने शकर मामाजी का मामीजी के मायके से आए हुए पदह रुपये ऐंठने के लिए जो बर्ताव होते देखा था। पढते समय हमारी जिह्वा काम न करती हो—उस समय शरमाकर हमने चाहे जितने बहाने क्यो न बनाए हो, किन्तु घर की चर्चाएँ चलाते समय हमारी जिह्वा चुप रहना नही जानती। घर की चुगलियो को, गृहस्थी विषयक झगडो को, दूसरो की बुराइयो को—जैसे, सगुणाबाई अपने जूडे मे फूल खुरसती हैं, वारु बाई अपनी फटी हुई माँग को ढाँपने के लिए उसमे काजल लगाती हैं, गोपिका बाई के मायके से उनके पुँसवन सस्कार के समय पलग नही दिया गया, घसबसाबाई स्वय तो खूब सज-धज से रहती हैं और बहुओ को अच्छे वस्त्र भी नही देती, फलाने की बहू चोरी-चोरी पकौडियाँ बनाकर खाती है, फलाने की सास स्वय चुराकर खाती है और बहुओ को चोरी लगाती है, आदि बातो की चर्चा करते हम कभी नही अघाती। एक बार रामायण का आरम्भ होते ही वह अविराम रूप से चलता रहता है। कौन-सी बात किसके सामने कही जा रही है इसका भी हमे ध्यान नही रहता। हमे ऐसी बातो मे रुचि होती है इसलिए पुरुषो को भी होनी चाहिए ऐसा विधान तो नही है, किन्तु इसका औचित्य हम नहीं मानती। अन्य बातो की जानकारी तो हमे होती नही, और सभाषण के लिए कोई विषय तो आवश्यक रहता है इसलिए हम हमारा ही कीचड़ उछालती रहती हैं। वास्तव मे देखा जाय तो इसमे हमारा क्या दोष है? अन्य विषयो पर बातचीत करने के लिए विभिन्न विषयो का अवलोकन होना चाहिए, श्रवण एव पठन होना चाहिए, उसके बिना अपने आप तो उन्हें जाना नही जा सकता है। जहाँ समाचारपत्र, पुडिया बाँधने अथवा अन्य किसी काम के उपयोग मे लाने का कागज माना जाता हो वहाँ उसमें क्या लिखा है और इन दिनो किन बातो की चर्चा चल रही है आदि बातो का ज्ञान हमे कैसे हो सकता है? स्त्रियो को शिक्षित बनाने के सम्बन्ध मे लोकमत क्या है और इसे हम कैसे जान सकती हैं? ऐसी बातें जब हमारे कान पर भी नही आती तो हम उन विषयो पर किस प्रकार चर्चा कर सकती हैं?

इसके दो-चार दिन बाद मैं मायके गई थी। वहाँ भैया ने मुझसे कहा, "कहिए, यमुना देवीजी, आपकी परीक्षा का क्या परिणाम रहा? प्रथम श्रेणी

अथवा द्वितीय ?" भैया की बात सुनकर मैं शरमा गई। मेरी परीक्षा की बात भी भैया से कह दी यह जानकर मैंने कहा, "जी हाँ। छोटी बहन से भी मज़ाक करते हो। कही चार पक्तियाँ पढवा ली तो परीक्षा और प्रथम श्रेणी हो गई। क्या तुमने भी भाभी की परीक्षा ली ? वह कौन-सी श्रेणी के पास हुई ?"

ठहाका मारकर हँसते हुए भैया ने कहा, "मैंने कब कहा कि तुमसे चार पक्तियाँ पढवाली गई ? मैं तो तुम्हारे पति की परीक्षा के सम्बन्ध मे पूछ रहा था। अच्छा हुआ जो एक नई बात मालूम हो गई। स्वय बम्बई जाकर परीक्षा दे आए और यहाँ आते ही तुम्हारी परीक्षा ले ली। क्यो, यही न ?"

उसका भाषण सुनकर मैं शरम से गडी जा रही थी। "चोर की दाढी मे तिनका' वाली कहावत मेरे बारे मे चरितार्थ हुई थी। भैया का द्वयर्थी प्रश्न और प्रथम श्रेणी का उल्लेख सुनकर मे चकमा खा गई थी। भैया वैसे ही मजाकी था और अब उसे यह नवीन शस्त्र मिल गया था। फिर क्या था। वह मुझे खूब चिढाता रहा। अन्त मे बातचीत का प्रवाह फिर उनकी परीक्षा पर आकर रुका तब मैंने बताया कि फर्स्ट क्लास मे आने की आशा नही है, ऐसा कहा जाता है। भैया ने हँसकर कहा, "अरे, यह तो उनका हमेशा का रोना रहता है। समूचे कालेज मे चर्चा है कि वे फर्स्ट क्लास मे पास होगे और स्वय इस प्रकार कहते रहते है। बडी बनी रकम है वे।'

क्रोधाविर्भाव से मैंने कहा, "देखो भैया, मैं कह दूंगी कि भैया बुराई कर रहा था—"

"जरूर कह देना। मैं तो उनके मुँह पर कह दूंगा। तुम नही जानती यमुना, इस प्रकार रोते रहने की उन्हे आदत-सी हो गई है। उनके मित्रो ने ही तो मुझे बताया है। हर परीक्षा के समय वे ऐसा ही कहा करते हैं किन्तु पास होते हैं फर्स्ट क्लास मे।"

३७

रह-रह कर मेरे मन मे विचार आया करता है कि भैया मेरी पढाई के बारे मे जितना ध्यान दिया करता था उतना वह अपनी पत्नी के बारे मे क्यो नही देता ? वह मुझे किताबें लाकर देता, स्वय मुझ से मिलने पर मेरी पढाई के बारे मे पूछ-ताछ किया करता, समय रहने पर पढी हुई किसी किताब की बातें सुनाया करता था। किसी गण्यमान विदुषी का उदाहरण देकर यत्नपूर्वक मुझ से कहा करता, "यमुना, तुम्हें इन-जैसा बनना चाहिए।" किन्तु अपनी पत्नी की पढाई के बारे मे उसने कभी कुछ नही कहा। एक-दो बार मैंने प्रश्न उठाया भी किन्तु उसने बात टाल दी। मैं उसकी उदासीनता का कारण समझ नही रही थी। भाभी का उल्लेख सुनकर वह मुँह बिगाडकर चुप हो जाता था। मैंने एक दिन रात को अपने पति से कहा, "भैया भाभी के बारे मे क्यो उदासीन है, इसका कारण मेरी समझ मे नही आ रहा है। मैंने एक-दो बार इसके सम्बन्ध मे पूछ-ताछ की किन्तु वह बात को टाल देता है—"

"यह बात मुझ से कहने से क्या लाभ ? तुम्हें स्वय यदि कोई कारण हो तो उसकी खोज करनी चाहिए। वाह री बहन।"

"धत्। मैं भैया से स्पष्ट रूप से कैसे पूछ सकती हूँ। वह तो मेरा बडा भाई है। क्या मैं उसे पूछ सकती हूँ कि पत्नी का नाम लेते ही तुम मुँह क्यो बिगाड लेते हो ?"

"क्यों, पूछने मे क्या हर्ज है ? वे भी तो तुम से मेरे बारे मे पूछ-ताछ किया करते हैं। खैर छोडो इन बातो को। एक बार तुम उनसे स्पष्ट रूप से पूछ ही लो। और क्या तुम स्वय नही जान सकती कि तुम्हारी भाभी पढना-लिखना जानती है अथवा नही ?"

"मैंने तो कई बार जानना चाहा किन्तु वह कुछ उत्तर दे तब ना। मेरे पूछने पर उसका उत्तर रहता है, "अरे दीदी, हम क्या जाने पढना-लिखना।" वह ठीक से बात भी तो नहीं करती। उसका स्वभाव मिलनसार नही है। जब मैंने देखा कि उसका स्वभाव इस प्रकार का है तो—"

तुम तो पागल हो। वह जरा-सी लडकी, उसका अभी स्वभाव क्या होगा ? देखो, तुम गणपतराव से स्पष्ट शब्दो मे पूछ-ताछ करलो। अरे, चार अक्षर पढ़ लेगी तो आगे चलकर उसके काम आयगा। गणपतराव की पत्नी बुद्धिमान होनी चाहिए। इस तरह काम नही चलेगा।"

दो-चार दिन के बाद मैं मायके गई थी। अवसर मिलने पर मैंने भैया से कहा, "भैया, बहुत दिन से एक बात पूछना चाहती हूँ, यदि नाराज न हो तो पूछूं। साफ-साफ बताओगे ?"

मेरा प्रश्न सुनकर भैया हँस दिया। क्या सोचकर वह हँसा था इसे जानना कठिन है, किन्तु निराशा, तिरस्कार, विनोद आदि बातो का मन मे मिश्रण हो जाने से मनुष्य जिस ऊपरी भाव से हँसता है उसी प्रकार का वह खिन्न हास्य था। सम्भवत. वह जान गया था कि मैं क्या पूछना चाहती हूँ। कुछ देर तक सिकुड कर वह मेरी ओर देखता रहा। वह सोच रहा था कि प्रश्न पूछने की सम्मति दी जाय अथवा नही और सम्मति दी जाने पर पूछे गए प्रश्न का उत्तर दूं या नही ? हँसकर उसने कहा,

"ठीक है। जो पूछना चाहती हो पूछ लो। अब तुम से नही छिपाऊँगा।"

"भैया मैं यही जानना चाहती थी कि तुम मेरी पढाई के बारे मे बहुत ध्यान दिया करते थे किन्तु भाभी की पढाई के सम्बन्ध मे इतने उदासीन क्यो हो ? मेरे लिए ढेर की ढेर किताबे लाकर देते हो किन्तु उनमे से कोई किताब भाभी को देखकर उनसे पढवाने के लिए तुमने मुझ से कभी नहीं कहा। मैंने एक-दो बार इसके बारे मे तुम से पूछ-ताछ की, शायद "उन्होने" भी तुम से कहा होगा किन्तु तुम हर समय इस बात को टालते ही रहे। आखिर क्यो ?"

मैं बोल रही थी कितु भैया का ध्यान मेरी ओर नही था। शून्य दृष्टि से वह कही देख रहा था। मेरा भाषण समाप्त हो जाने पर उसने कहा, "हूँ, क्या कहना चाहती हो ? कहो, मैं तुम्हे सब बताए देता हूँ।"

"और अब तक मैंने जो कहा वह क्या व्यर्थ रहा ?" इतना कहकर मैंने पुन: अपने प्रश्न को दोहराया, तब भैया ने कहा, "यमुना, तुम्हारा कहना ठीक

है किन्तु पत्थर को एक नही, लाख किताबे चढाने पर भी क्या वह उन्हे पढ सकता है ? उत्तर दो।"

"चलो रहने दो। मुँह मे आया सो बक दिया। क्या भाभी पत्थर है ? पढाने पर वह सब कुछ सीख सकती है। पढाओगे-लिखाओगे नही तो उसे कैसे आ जायगा ? क्या कोई अपने आप सीख जाता है ? व्यर्थ मे उसे पत्थर बना दिया।"

"हाँ—यह तुम्हारा दृष्टिकोण है। यदि उसे पत्थर न कहना हो तो पाषाण कह सकती हो। मैं कहता हूँ कि मनुष्य मे बुद्धि न हो किन्तु परिश्रम करने पर वह कुछ सीख सकता है। किन्तु सीखने की इच्छा हो तब ना मैं तुम से स्पष्ट शब्दो मे कह देना चाहता हूँ कि मुझे अपनी पत्नी से सुख पाने की जरा भी आशा नही है। वह बडी हठीली है, मक्कार है। स्वय तो बुद्धिहीन है ही किन्तु कुछ बताने पर उसे समझने की पात्रता भी उसमे नहीं है। मैं खूब अनुभव कर चुका हूँ। एकान्त पाने पर दो-चार बार मैंने उससे पूछा है कि क्या तुम कुछ पढना जानती हो ? लिखना जानती हो ? पहली बात तो यह है कि वह कभी मेरे सम्पर्क मे आना ही नही चाहती। मुझे टालती रहती है। मजबूर हो जाने पर सामने आ जाती है किन्तु मुँह से एक शब्द का भी उच्चारण नही करती। परसो तो उसने स्पष्ट शब्दो मे मुझ से कह दिया कि मैं कुछ नही जानती और न कुछ सीखना ही चाहती हूँ। घर के काम-काज मे कितनी चतुर है सो मैं देख ही रहा हूँ, हाँ, अब और क्या जानना चाहती हो ?"

इतना कहकर वह फिर चुप हो गया। जब वह बोल रहा था तब उसकी मुद्रा और स्वर विलक्षण हो रहा था। अतीव खेद, उसी रोष और निपट निराशा आदि विकार उसमे व्यक्त हो रहे थे। उसके शब्द अतर से निकल रहे थे और मुझ पर उन शब्दो का इतना परिणाम हुआ था कि क्या उत्तर दूँ यही मेरी समझ मे नही आ रहा था। कुछ देर चुप रहने के बाद उसने फिर कहा, "यमू, मेरी समस्त योजनाओ, कल्पनाओ और इच्छाओ पर पानी फिर गया है। अब कम-से-कम तुम ही सुयोग्य बनो। भाग्य से तुमने बडा सुयोग्य पति पाया है। तुम्हारी सब इच्छाएँ पूर्ण होगी। मैं भी तुम्हारे लिए मुझ से जो बन पड़ेगा अवश्य करूँगा। मुझे तो अब तुम्हारा ही भरोसा है।"

मैं भैया के भाषण का स्पष्ट रूप से अर्थ नही समझ पाई थी। भैया की कौन-सी योजना थी, क्या कल्पना थी और क्या इच्छा थी ? उन सब पर पानी फिर गया ऐसा कहने का क्या आशय है ? भैया इस प्रकार निराश क्यो हो गया ? आखिर मैने कहा।

"भैया, तुम्हारे कहने का क्या आशय है ? तुम्हारी क्या योजना थी और उस पर पानी कैसे फिर गया ? तुम इतने निराश क्यो हो ?"

वह एक टक से मेरी ओर देखता रहा। उसकी अवस्था देखकर मैं अस्वस्थ हो गई। फिर वह कहने लगा, "मेरी योजनाएँ ? किन्तु अब उन्हे जानकर क्या करोगी ? समय आने पर तुम्हें और तुम्हारे पति को बता दूंगा। वैसे तो उनकी भी अपनी योजनाएँ अवश्य होगी। खैर, छोडो इन बातो को। इस कहानी से अब तुम्हारा क्या सरोकार है ? मुझे यह बताओ कि नियमित रूप से तुम अपनी पढाई करती हो अथवा नही ?" इतना कहकर उसने बातचीत का स्रोत बदलने का प्रयत्न किया किन्तु मैं तो आज अपनी बात पर अडी थी। इसलिए मैंने झट से कहा।

"देखो भैया, मुझे तुम्हारी बात का भरोसा नही है। इस बारे मे मैं स्वय भाभी से पूछूंगी।

मैंने ऐसा कहा अवश्य किन्तु मेरा मन कह रहा था कि भैया की बात बिलकुल असत्य नही है। किन्तु भाभी के सम्बन्ध मे उसने जो कहा था उससे मैं पूर्ण रूप से सहमत नही थी। भैया ने कहा।

"यदि तुम स्वय पूछना चाहती हो तो अवश्य पूछो। मेरे-जैसा ही उत्तर सुनना चाहती हो तो पूछने मे कोई आपत्ति नही है। अरे, यहाँ कौन नही चाहता। मैं तो अवश्य चाहूँगा कि उसके प्रति मेरी जो धारणा है वह गलत सिद्ध हो। कम-से-कम एक बार तुम भी अनुभव करलो। तब जाकर तुम्हे मेरी बात का विश्वास होगा। मैं तुम्हे विश्वास दिलाता हूँ यमुना कि अब इसमे कुछ तत नही है। मैं फिर कभी इस झमेले मे नही पडूँगा।

अतिम शब्दो का उच्चारण भैया ने कुछ जोर देकर किया था। मैंने प्रतिवाद नही किया किन्तु मन ही मन निश्चय कर लिया था कि एक बार एकांत मे भाभी से इसके सम्बन्ध मे अवश्य पूछ-ताछ करूंगी। दूसरे दिन भाभी को एक ओर ले जाकर मैंने कहा, "भाभी, तुम ऐसा क्यो करती हो ?

भैया की इच्छा है कि तुम पढना सीख लो। उन्होने परसो तुम से कहा भी था किन्तु तुमने उन्हें ऐसा उत्तर क्यो दिया ? यदि तुम पढना-लिखना नही जानती तो सीखा जा सकता है। तुम्हे भैया की इच्छा को पूर्ण करना चाहिए। मैं कल तुम्हें एक किताब लाकर दूंगी। तुम वर्णमाला तो जानती हो ना ?"

मेरा भाषण सुनकर माथा सिकोडते हुए भाभी ने कहा, "धत् तेरे की। क्या यही गाथा सुनाने के लिए मुझे एक तरफ ले आई थीं ? मैं नही चाहती किताब को। किताब पढने की योग्यता मुझ मे कहाँ है ?"

"यह क्या कह रही हो ? पुस्तक पढने मे योग्यता का प्रश्न कहाँ आता है ? यदि भैया चाहते हैं कि तुम कुछ पढना सीख लो तो फिर न पढने का हठ तुम क्यो करती हो ? पढोगी ना ? तो फिर मैं कल पुस्तक ला दूँ ?"

मेरे कहने का भाभी पर कोई परिणाम नही हो रहा था। अन्त मे उसने कहा, "तो आप कह चुकीं ? क्या मैं अब जा सकती हूँ ? सासूजी बुला रही होंगी—" इतना कहकर वह जा रही थी किन्तु मैंने कसम रखकर उसे फिर पीछे बुलाकर कहा, "भाभी, पागल न बनो। मेरी बात मान लो। तुम यदि पढना नही जानती तो मैं तुम्हे कुछ सिखा दूंगी। हर चौथे आठवें दिन मैं यहाँ आया करती हूँ। तुम तो बस इतना कह दो कि मैं पढूंगी। आखिर इसमे तुम्हारा बिगडता ही क्या है। जरा देर के लिए और रुक जाओ। दोपहर का समय है, इस समय नई माँ को तुम से कोई काम नही हो सकता। यहाँ बैठो। उस किताब को उठा लो और जरा पढकर दिखाओ। देख तो लूं कि तुम क्या-क्या जानती हो।"

"मैं कुछ नही जानती। दीदी, तुम व्यर्थ मे मेरे पीछे क्यो पडी हो ?"

"ऐसा क्यो कहती हो भाभी ? मैं बार-बार तुम से कह रही हूँ, जरा मेरी बात मान लो। उठाओ वह किताब, जरा देख तो लूं तुम कितना पढ सकती हो। कम-से-कम यह तो मालूम हो जाएगा कि तुम्हें अक्षरो का ज्ञान कहाँ तक है ?"

"मैं कुछ नही जानती, कुछ नही जानती। और न अब मैं यहाँ बैठूंगी।"

जब बात यहाँ तक बढ गई तो मुझे भी गुस्सा आ गया, किन्तु मैं उसे पी गई। सयत स्वर मे मैंने कहा, "खैर ठीक है, लेकिन जरा किताब तो

खोलो। मै तुम्हें पढकर सुनाती हूँ, फिर तुम पढो। पागल न बनो, मेरी बात मान लो। स्त्री-शिक्षा मे भैया को बहुत रुचि है, तुम्हे उसकी इच्छा पूर्ण करनी चाहिए। हाँ, उठाओ वह किताब और जरा पढकर सुनाओ।"

इसी समय हमे सुनाई दिया, "यमुना देवी, आप स्वय जो चाहे कर सकती है, किन्तु मेरे घर मे ऐसे ढग नही चल सकते। तुम स्वय मुख्त्यार हो, मन मे आए सो करो, किन्तु इसे अपने मार्ग पर घसीटने का प्रयत्न न करो। तुम पढना जानती हो ना ? बस हो चुका। सभी लोगो को जानने की क्या आवश्यकता है ? गणपतराव की क्या यह इच्छा है कि उनकी घरवाली पढी-लिखी हो ? तो क्या स्वय उनकी पढाई पूर्ण हो चुकी ? क्या वे सब परीक्षाएँ पास कर चुके ? हरे राम ! आजकल के ढग ही कुछ विचित्र हो रहे है।"

बताने की आवश्यकता नही कि यह किसने कहा होगा। हमारा सम्पूर्ण भाषण—कम-से-कम भाषण का उत्तरार्ध सुनकर नई माँ ने ऊपर आकर यह ताना मारा था। उनके चेहरे से तिरस्कार टपक रहा था। उपहासपूर्ण हास्य और क्रोध भरी उनकी दृष्टि कह रही थी कि, "क्या सोलह आने पकड लिया है तुझे। खूब नाक काटली तेरी।" बोलते समय का उनका हाव-भाव देखकर मैं मन ही मन डर गई थी। मुझे इस बात की जरा भी शका नही आई कि सीढियो पर खडी रहकर नई माँ हमारा सम्भाषण सुन सकती है। मनुष्य का मन जब किसी एक बात पर केन्द्रित हो जाता है तब शायद उसे अन्य बातो का भान नही रहता। मेरा भी यही हाल हुआ था। नई माँ के स्वभाव से पूर्ण परिचित होकर भी मुझे इस प्रकार की शका नही हो पाई, यह आश्चर्य की बात है। किन्तु होनी तो होकर ही रहती है। नई माँ का भाषणा मेरे हृदय मे तीर-जैसा चुभ रहा था। विशेष दुख इस बात का था कि जो कहा गया वह भाभी के सामने कहा गया। फिर क्या था। बन्दर के हाथ मशाल लग गई। मेरे मुँह से शब्द नही निकल रहा था। जबान खिच गई थी। नई माँ का जिह्वास्त्र अविरत रूप मे चल रहा था—"

'हाँ, तो श्रीमती जी को शिक्षिता बनानी है ? और क्या-क्या करना है ? उसे फ्राक पहिनाकर मड्डम नही बनाना है ? बडा अच्छा होगा स्वय साहब और वे मेम—हाथ पकडकर घूमने जायेंगे। आपस में अग्रेजी मे बातचीत करेंगे। फिर तो मजे में हमे गालियाँ भी सुनाई जा सकती हैं। हमारी समझ

में तो आयगी नही—वाह् । क्या खूब । और हाई स्कूल मे कब से जाना होगा ? आज शाम को घर आते ही उनसे एक बूंट और छाता लाने के लिए कह दूंगी। और किताबे, बस्ता पहुँचाने के लिए मैं साथ जाया करूँगी । पडोस के खजाँची की लडकी अपने दरवाजे के सामने से रोज जाती है ना, उसी-जैसी तू भी जाया कर । वहाँ टेबल के पास जाकर बैठो । नीचे आने की क्या आवश्यकता है ? मैं तुम दोनों की थालियाँ लगाकर यहाँ ला दूंगी ।"

कहाँ तक कहा जाय । उनकी बकवास का अन्त नही था । मन में आ रहा था कि वहाँ से उठकर चल दूं । मुझ से उनका भाषण सुना नही जाता था । नई माँ की उम्र और ठाट-बाट को यह भाषण शोभा नहीं देता था । बालो की पट्टियाँ पाडकर जूडा बाँधना और फिर उसमे गुलाब का फूल खुरसना, छीट की चौलियाँ पहनना, कमर पर लटका हुआ सफेद रुमाल और चाबियो का गुच्छा आदि सज-धज के लिए शिक्षा विषयक तिरस्कार और उपहास एक दम असगत मालूम देता था । किन्तु क्या किया जा सकता था । प्रत्युत्तर भी तो नही दिया जा सकता था । मैं कुछ कहना चाहती थी किन्तु इसी समय वह नीचे चली गई और भाभी ने भी उसका अनुसरण किया । जो हुआ था उसके सोच-विचार मे मैं अकेली वहीं बैठी रही । और कर भी क्या सकती थी ? शाम को भैया कब घर लौटकर आता है, इसकी मुझे उत्सुकता लग रही थी ।

आखिर शाम को साढे-पाँच बजे भैया घर आ गया । कमरे मे आते ही मैं उसे कुछ कहने जा रही थी किन्तु प्रथम हंसते हुए उसी ने बात छेड दी—"कहिए यमुना देवी जी, तो आपने पूछ-ताछ कर ली ?"

उसका प्रश्न सुनकर मेरी समझ में नही आ रहा था कि किस प्रकार उत्तर दिया जाय । जो हुआ था उसे किस तरह बताया जाय । आखिर जैसे-तैसे मैंने पूरी कहानी उसे सुना दी ।

उस समय की उसकी मनो-दशा को वही जान सकता है । कुछ क्षणो के लिए वह मौन होकर बैठा रहा, फिर अपने मन मे चल रहे विचारो को छिपाने के लिए हँसकर उसने कहा, "अच्छा, तो यह बात है । देवीजी, मैंने तो आपसे पहले ही कहा था कि आप इस झगडे को मोल न लें । किन्तु तुम कैसे मान सकती हो ?" इन शब्दो को उसने बहुत धीमे स्वर मे कहा था और आगे तो वह और भी दबी आवाज मे बोलने लगा, जिसे मेरे अतिरिक्त और

कोई छिपकर सुनना चाहे तो न सुन पाता। उसने कहा, यमू, मैंने तो पहले ही कहा था कि मैं उसकी परीक्षा ले चुका हूँ। अरे, आ कहते ही आम पहिचाना जा सकता है। किन्तु तुमने कुछ अधिक शीघ्रता की। खैर, जाने दो। कम-से-कम इस बात का तो पता चल गया कि अपने भाग्य मे सुख कितना लिखा है।"

वह इतना ही कह पाया था और सीढियो से नई माँ की तीखी आवाज सुनाई दी—चुपचाप उठकर मैं नीचे चली गई। चुभते हुए तीर जैसे शब्द छोडने मे नई माँ बहुत पटु थी। पिताजी के सामने वे हम लोगो की बडी फिकर किया करती थी। विशेषत भोजन करते समय ही इस नाटक के लिए अच्छा अवसर मिल जाता था। क्योकि भोजन करते समय ही पिताजी और भैया का सम्पर्क हो पाता था। और किसी समय उन दोनो का आपस मे दर्शन भी नही होता था फिर सम्भाषण तो दूर रहा। जहाँ तक बस चल पाता भैया पिताजी के सामने नही जाता था। उनके साथ बात करने मे उसे महान् सकट मालूम होता था। यही हाल मेरा भी था। किन्तु भैया के बारे मे मुझे आश्चर्य होता था। क्योकि वह मेरी अपेक्षा बहुत ढीठ था। पिता पुत्र मे सख्यता निर्माण होने के लिए ढीठता के अतिरिक्त और किसी चीज की आवश्यकता रहती है, इसे मैं नही जानती थी। कभी-कभी भोजन करते समय नई माँ कहा करती, "आजकल यह गणपतराव दुबला क्यो हो रहा है? जरा उससे पूछिएगा कि उसकी तबियत तो ठीक है? नही तो किसी डाक्टर से उसकी परीक्षा करवाइएगा।" कभी कहती, "अरे गणपतराव, शाम को घर आने पर कुछ नाशता क्यो नही करते? भोजन के लिए रात हो जाती है। कम-से-कम आप ही जरा जल्दी आ जाया करे, जिससे भोजन के लिए अधिक रात न हो।" कभी कहती, इन दिनो तो गणपतराव पर परीक्षा की धुन सवार है, दिनभर किताबो के पीछे पडे रहते हैं। अपने कमरे से नीचे भी नही आते।" नई माँ की कई बाते हैं, यदि उन सबका वर्णन किया जाय तो एक महाभारत बन जायगा। आश्चर्य तो इस बात का है कि इतनी छोटी उम्र मे वह इन तमाम बातो को कैसे जानती थी। हमारे सामने जिन बातो का उल्लेख वह पिताजी के सामने किया करती थी उसके विपरीत हमारे पीठ-पीछे कहा करती थी, यह बताने की आवश्यकता नही। हमारे पीठ-पीछे

वह हमेशा हमारी बुराई किया करती थी। चैत्र-गौरी के समारोह के दिन मैं तथा दुर्गी ऊपरी मजिल पर जाकर बैठी थी इस बात को नई माँ ने पिताजी से कह दिया था। आगे जब दुर्गी को सतमासे के निमित्त भोजन के लिए बुलाया गया था तब पिताजी के सामने नई माँ ने कहा, "भैया का कमरा खाली है, भीतर से साकल लगा लेना और खूब गप्पें लडाती रहना, चाहो तो अपनी भाभी को भी मदद के लिए लेती जाना।"

यह सुनकर पिताजी ने हँसते हुए कहा, "बस, बस, रहने दो। तुम तो हाथ धोकर पीछे पडी रहती हो। एकाध-बार ऊपर जाकर बैठ गई तो उसमे हर्ज ही क्या है ?"

वैसे तो पिताजी कभी कुछ नही कहा करते थे और आज कहा तो इस प्रकार। फिर क्या था—नई माँ गुस्से से तमतमा उठी। कहने लगी, "मैंने और क्या कहा ? मैंने क्या कोई अनोखी बात कह दी ? इतनी हिमायत करने की क्या जरूरत है ? कोई अपने प्राण क्यो न बिछा दे किन्तु आखिर घुटने तो पेट को ही मुडेंगे। मुझे भी क्या पडी है। घर मे चाहे जो होता रहे। आयन्दा कभी जबान नही खोलूंगी। हमारी जरा-सी गलती से सब किए कराए पर पानी फिर जाता है। आखिर सौतेली माँ हूँ न।" यह सुनकर पिताजी का चेहरा देखने लायक हो गया था। अपनी हमेशा की गम्भीरता छोडकर व्यर्थ मे कुछ कहा, यह सोचकर वे लज्जित हो गए। उनकी मुद्रा देख कर मुझे अपनी माँ का स्मरण हो रहा था। क्या उसके सामने पिताजी को कभी लज्जित होना पडा था ? उस समय की पिताजी की जाज्वल्य वृत्ति और आज उन्होने जो सौम्य वृत्ति धारण की थी उसमे महान् अन्तर था। साधारणत यह देखा गया है कि दूसरी पत्नी के इशारे पर पुरुष जितना चलते हैं उतनी ही कठोर वृत्ति वे ज्यादातर प्रथम पत्नी के साथ धारण करते है। इसमे अपवाद भी होते हैं किन्तु बहुधा ऐसा ही देखा जाता है। पहली पत्नी द्वारा की गई जिन बातो को वे सह नही सकते उन्ही बातो को दूसरी पत्नी द्वारा करने पर वे सहन ही नही अपितु उनके लिए पूर्ण सहमति व्यक्त करते हैं। ऐसा क्यो होता है ? यह एक गहन रहस्य है। इसे सुलझाने मे व्यर्थ समय नष्ट करने की अपेक्षा कथा भाग को आगे लिखना ही योग्य होगा।

मैं सोच रही थी, कि आज भोजन करते समय नई माँ पिताजी के सामने

दोपहर के वृत्तात का पाठ पढेंगी ही नही उस पर टीका-टिप्पणी भी करेगी। किन्तु मेरा तर्क सही नही निकला। सम्भवत पिताजी के सामने स्पष्ट रूप से कह देना नई माँ के निजाम के अनुरूप नही था। कभी एकाद-बार वह अपने निजाम को भूल जाती थी और फिर उपरोक्तानुसार बकबास करके स्वय अपने आपको गालियाँ देकर जमीन आसमान एक कर देती थी और तब पिताजी के लिए मौन रहने के अतिरिक्त अन्य मार्ग नही रहता था। किन्तु उस दिन धीरे-धीरे उसका उपरोधपूर्ण भाषण हो रहा था। कभी कहती, "गणपतराव, अब मेरे लिए भी एक किताब लाकर दो। घर का काम-काज छोडकर मैं उसे पढा करूँगी। यमुना, तुम यदा-कदा आकर मुझे पढाया करोगी ना ?" इस आशय का भाषण उस दिन उसने दो-चार बार किया था, किन्तु भैया ने गर्दन उठाकर ऊपर भी नही देखा। शायद नई माँ का ऐसा मन्तव्य होगा कि इस प्रकार की बातचीत सुनकर पिताजी पूछेंगे कि यह क्या मामला है ? और फिर उत्तर मे "कुछ नही" कहकर उनकी उत्सुकता को बढाया जायगा। किन्तु पिताजी ने कुछ नही पूछा। आगे चलकर अवश्य ही उन्हे पूरा वृत्तात सुनाया गया होगा। यह था भाभी की पढाई का हाल।

उस दिन रात को भैया ने मुझे स्पष्ट शब्दो मे कह दिया कि भविष्य मे वह कभी इस झमेले मे नही पडेगा। जब वह स्वय पढना नही चाहती तो व्यर्थ मे अपने आपको क्यो परेशान किया जाय ? उस समय भी उसकी मन स्थिति कोई नही जान सकता है। मालूम होता था कि उसे बहुत दु ख हो रहा है। कुछ देर तक चुप रहकर उसने कहा, यमू, उसके मायके में अंग्रेजी अथवा किसी नवयुगीन सुधार की गन्ध भी नहीं है। स्त्री-शिक्षा का नाम सुनकर उन लोगों का माथा ठनकता है। जब घर के लोग इस प्रकार दकियानूसी स्वभाव के हों तो उसे पढने की इच्छा क्यो होगी ? हमारे घर का वातावरण तुम से छिपा नहीं है, किन्तु तुम्हारे लिए किसी बात की रुकावट नही है। तुम कुछ ऐसा करके दिखाओ कि देखने वाले दाँतो तले उँगली दबाकर रह जायें।"

भैया का भाषण सुनकर मैं केवल हँसकर चुप रह गई। क्योंकि दाँतो तले उँगली दबाने लायक मैं क्या कर सकती थी। जान-बूझकर मैं एक सामान्य स्त्री हूँ, किसी बात का मुझे पूर्ण ज्ञान नहीं और फिर मैं ऐसा क्या

कर सकती हूँ जिससे देखने वाले आश्चर्य से दग रह जायँगे। मेरी समझ मे कुछ नही आ रहा था। मैंने सोचा कि भैया ने जो मन मे आया सो कह दिया। कुछ देर के बाद उनके बारे मे बात चल पडी। दो-चार दिन के बाद उनकी परीक्षा का परिणाम घोषित हो रहा था। मैंने चिन्ता प्रगट की तब भैया ने कहा, "तुम व्यर्थ में चिन्ता कर रही हो। वे प्रथम आयँगे। बम्बई मे उन्हें नौकरी मिलेगी, तुम उनके साथ बम्बई जाओगी। और देखो यमू, यदि अगले वर्ष मैं पास हो गया तो किसी प्रकार व्यवस्था करके बम्बई मे डेरा जमाने की सोच रहा हूँ। यदि पिताजी की इच्छा होगी तो वे मुझे भेजेंगे नई माँ ने कोई रुकावट पैदा न की तो।"

भैया से मैं अनुरोध कर रही थी कि उसे हमारे घर ही रहना होगा। उसका कहना था कि होस्टल मे रहना ठीक होगा, अभ्यास करने के लिए सुभीता रहता है। मैंने कहा, यह नही हो सकता, एक ही गाँव मे, मेरा घर रहते तुम अन्यत्र नही रह सकते। इस प्रकार बेबुनियाद का वाद-विवाद हम दोनो में चलता रहा।

३८

दूसरे दिन प्रात काल नहाने के विचार से मैं दरवाजे के पास खडी थी, तभी मैंने देखा कि दुर्गी, उसकी माँ और पिताजी कुछ घबडाये से रास्ते से चले जा रहे थे। उन लोगो ने मुझे नही देखा। मेरी समझ मे नही आ रहा था कि ये लोग इस प्रकार कहाँ जा रहे हैं। दुर्गी अपने माँ-बाप के पीछे कुछ अन्तर से जा रही थी। क्या बात है यह जानने के लिए मैंने झट से दुर्गी को पुकारा। वह बेचारी ठीक से चल भी नही पा रही थी। उसका प्रसूति समय निकट था। फिर भी धीरे-धीरे माँ-बाप के पीछे-पीछे चली जा रही थी। मेरी पुकार सुनकर वह ठिठक गई। मैंने पूछा, "माँ-बाप को साथ मे लेकर कहाँ जा रही हो ?"

"वहाँ मेरा भाग्य फूटा है ना—" केवल इतना ही कह कर वह चली गई। उसका चेहरा नितान्त करुणापूर्ण था— हृदय की व्यथा चेहरे पर फूट पडी थी। आखिर उसके शब्दो का क्या अर्थ किया जाय ? उसका पति तो ठीक है न ? इस विचार से मेरा मन अस्वस्थ हो उठा। मैं और कुछ पूछना चाहती थी किन्तु वह रुकी नही। कुछ देर तक मैं वही खडी रही, फिर उसी विचार की उधेड-बुन मे पीछे लौट आई।

"दीदी, अब तो तुमने हद कर दी। इस अवस्था मे भागकर कहाँ गई थी ? मैं जबसे पानी लेकर यहाँ खडी हूँ।" भाभी साहिबा के इन कर्कश और त्रस्त शब्दो को सुनकर मेरी विचारधारा टूट गई। फिर भी मन मे तरगे उठ रही थी। अब किसे पूछा जाय, कौन बता सकता है, आदि विचारो से मन विचलित हो उठा। घर मे तो इस बात का उल्लेख नही किया जा सकता था। दुर्गी के घर जाकर पूछ-ताछ की जा सकती थी, किन्तु मैं किस प्रकार उसके घर जा सकती थी ? नई माँ मुझे कब जाने देती ?

चुपचाप नहा धोकर मैं घर मे चली गई। मन अस्वस्थ हो रहा था। रह रहकर हम स्त्रियो का सबसे अधिक घातक विचार ही मन मे आ रहा था। दुर्गी का पति तो ठीक होगा ना ? यदि ऐसा कुछ होता तो वे लोग अपने साथ दुर्गी को कैसे ले जा सकते थे ? अथवा किसी की बात न मानकर वह स्वय उनके साथ जा रही है ? हरे राम ! यदि ऐसा ही कुछ हो तो उस पर पहाड टूट पडेगा। उस बेचारी ने ऐसा क्या अपराध किया है जिसके लिए आजीवन उसे दु ख का सामना करना पडे। अब उसका क्या हाल होगा। और फिर वह गर्भवती है। राम राम ! दुर्गी-जैसी गौ पर यह महान सकट ? इस प्रकार के अनेकानेक विचारो से मन उद्विग्न हो उठा था। सही बात जानने के लिए मन छटपटा रहा था। बालो को सुखाकर और केश-भूषा आदि करके मैं फिर दरवाजे के पास इस आशा से आकर खडी हो गई कि वे लोग लौटेंगे तब मैं असली बात को जान लूँगी। किन्तु वे लोग नही लौटे। और इसी समय भीतर से नई माँ की पुकार सुनकर मैं भीतर चली गई। भीतर जाने पर भी दुर्गी के सम्बन्ध में ही मन मे विचार आ रहे थे। जैसे-तैसे दोपहर तक का समय बीत पाया, किन्तु फिर मुझसे नही रहा गया। मैंने दुर्गी के घर जाने के लिए नई माँ से इजाजत चाही। किसलिए जाना है ऐसा पूछा जाने पर मैंने

सुबह वाली घटना उन्हें सुना दी। सुनकर माथा सिकोडते हुए नई माँ ने कहा, "ठीक है जाइए। आप तो खुद मुख्त्यार हैं।" इस समय अधिक सोच-विचार मे पडना उपयुक्त नही हो सकता था। नई माँ की सम्मति पाते ही मैं घर से निकल पडी। वैसे भी अब मैं अबोध बालिका तो थी नही, नई माँ और मैं एक ही उम्र की थी। किन्तु वे हमेशा अपना बडपन जतलाया करती थी। आखिर उनकी बातो का लिहाज भी कहाँ तक किया जाय। हर समय वही ताना-तूनी। श्रेयस्कर तो यही था कि उनकी बात एक कान से सुनना और दूसरे से निकाल देना। इसलिए मैं दुर्गी के घर चली गई।

तीव्र गति से चलकर मैं जब दुर्गी के घर पहुँची तो बाहर का दरवाजा बन्द था और चारों ओर सन्नाटा छा रहा था। यह देखकर मेरा दिल बैठ गया। 'बात क्या है ? क्या ये लोग अब तक लौटकर घर नही आए ? शायद दुर्गी की ससुराल मे गए हैं— अवश्य उसका पति चल बसा है—'

अतिम विचार मन मे आ जाने से मेरी हालत पागलो-जैसी हो गई। दरवाजे पर हाथ रखकर बहुत देर तक मैं वैसी ही खडी रही, मेरे माथे से पल्लू हट गया था, बाल कुछ बिखर रहे थे और चमकती धूप मे मैं सन्न होकर खडी थी मुझे इस हालत मे देखकर कोई मुझे पागल समझ लेता। वास्तव मे मेरी स्थिति पागलो-जैसी ही हो रही थी। प्रश्न आ पडा था कि दरवाजा खोलने के लिए आवाज कैसे लगाऊँ। इस अवस्था मे मेरी पुकार को कौन सुनेगा ? आखिर मैंने जोर से साँकल खटखटाकर आवाज दी, "वहिणा काकी—वहिणा काकी।" कुछ देर के बाद दुर्गी के छोटे भाई ने आकर साँकल खोल दी। उसे देखते ही मैंने घबडाकर कहा, "दुर्गी कहाँ है ?" उत्तर मैं उसने कहा, "भीतर है, क्यो ?" मैंने फिर से पूछा, "और तुम्हारे पिताजी कहाँ है ?" मेरे प्रश्न सुनकर वह आश्चर्य से मेरी ओर देख रहा था। उसने कहा, "क्यो ? वे इस समय तो बाहर गए हैं।"

उसके उत्तरो को सुनकर मुझे सतोष नही हो रहा था। मैं सीधी भीतर चली गई। भीतर जाते ही मैंने जो दृश्य देखा उससे तो मेरे पच-प्राण व्याकुल हो उठे। दुर्गी के बाल बिखरे हुए थे और उसी अवस्था मे वह अस्त-व्यस्त होकर जमीन पर पडी रो रही थी। उसकी दादी रुआँसी अवस्था मे दुर्गी के समीप बैठकर उसे सात्वना दे रही थी। उसकी माँ वहाँ नही थी। यह दृश्य

देखकर अब तक की मेरी धारणा सही है ऐसा मुझे लगा और उस कल्पना से मेरा मन रो उठा। मैं अपने आपको सम्हाल कर कुछ कहने जा रही थी तभी दुर्गी के भाई ने कहा, "बडी माँ, देखो, यमुना दीदी आई है—"

वृद्धा ने मेरी ओर देखकर रोते हुए कहा, "यमू, आज परमात्मा ने बडी कृपा की। तेरी दुर्गी का सुहाग—"

इससे अधिक वे बोल न सकी। किन्तु इतने ही शब्दो मे मेरे मन की अस्वस्था जाती रही। मालूम हुआ जैसे सिर से कोई बहुत बडा बोझा उतर गया हो। मैं दुर्गी के समीप जाकर बैठ गई और उसे ऊपर उठाकर अपने बाजुओ मे जकडते हुए रोकर मैंने कहा, "दुर्गे, मुझे बताओ, बात क्या है ? क्या मुझसे नही कहोगी ? देखो ना, सुबह से मेरा जी छटपटा रहा है बताओ—"

रोते हुए दुर्गी ने कहा, "यमू, सौभाग्य से तुम मुझे आज इस अवस्था मे देख रही हो—आज तो मेरा भाग्य फूटने जा रहा था, किन्तु भगवान् की दया से · " उसका स्वर इतना करुणापूर्ण था कि उसे सुनकर प्रत्यक्ष काल भी विचलित हो जाता फिर मुझ-जैसी उसकी प्रिय सहेली का क्या हाल हुआ होगा इसे बताने की आवश्यकता ही नही।

मैं उसे समझा-बुझाकर शान्त करने का प्रयत्न कर रही थी। दादी कुछ कहना चाहती थी किन्तु इसी समय हाथ मे पूजा का सामान लिए दुर्गी की माँ बाहर से वहाँ आ गई। इतना समय बीते—मध्याह्न के दो बजे का समय होगा—माँ को देवअर्चना करके लौटती देखकर मुझे आश्चर्य हो रहा था, किन्तु जब मुझे मालूम हुआ कि सुबह का सकट टल जाने के लिए की गई मानता को पूर्ण करने के हेतु वह जोगेश्वरी माता की पूजा करने गई थी तब मेरा आश्चर्य जाता रहा। इस समय तक घर मे किसी ने भोजन नही किया था। दुर्गी के पिताजी भूखे दफ्तर चले गए थे। दुर्गी की माँ के आ जाने पर हम तीनो ने दुर्गी को किसी तरह समझा-बुझाकर स्नान करवाया और जबरदस्ती उसे भोजन करवाया। वे लोग भोजन करने बैठे। अब तक उन लोगो के मुह मैं पूरी घटना समझ चुकी थी। उन लोगो-जैसी अब मैं भी कहने लगी, दुर्गी का भाग्य अच्छा था इसलिए आज का संकट टल गया।

यदि वह दुष्ट जान दे देता तो उसका क्या बिगडता। बेचारी लडकी का भाग्य फूट जाता। वैसे ही उसका जीवन नष्ट हो चुका था, रहा सहा सुहाग—

आभूषण भी नष्ट हो जाता तो उस बेचारी के पास क्या शेष रहता ? किन्तु परमात्मा की दया से यहाँ तक नौबत नहीं आई।

दुर्गी का पति-जैसा मनुष्य और अधिक क्या कर सकता है न जाने उस बेईमान ने किसी के यहाँ से चालीस-पचास रुपये चुरा लिये थे और उस चोरी का भेद खुल गया था। जिसके रुपये चुराये थे वह उसे पकडकर थाने मे ले जा रहा था। रुपयो की भरपाई करने के लिए वह अपनी माँ के पीछे पड गया था किन्तु माँ को उसकी बात का विश्वास नही हो रहा था। वह इसे रुपये हडपने की एक नई चाल समझ रही थी और इसलिए उसने रुपये देने से इकार कर दिया। माँ के इस व्यवहार से दुर्गी के पतिदेव नाराज हो गए और गुस्से में आकर कुएँ में कूद पडे। सुबह सात बजे का समय होगा। ऐसी बात छिप नहीं सकती। किसी ने जाकर दुर्गी के पिताजी से सब लोगो के सम्मुख उस बात को प्रगट कर दिया। सुनते ही दुर्गी के माँ-बाप उसकी ससुराल पहुँच गए लाख मना करने पर दुर्गी नहीं मानी और उनके साथ चली गई। सौभाग्य से दुर्गी का पति तैरना जानता था। इसलिए कुएँ मे डूबा नही। किन्तु उसके माँ-बाप और पडोसियो के प्राण व्याकुल हो उठे थे। लोग बाग उसे कुएँ से बाहर निकालने के लिए दौड-धूप कर रहे थे, सास और पत्नी भी आ गई थी, रोना-धोना मच गया था। कुएँ मे रस्सी छोडी गई किन्तु वह उसे पकड कर ऊपर नही आ रहा था। आखिर कुछ डरा-धमकाकर, कुछ समझा-बुझाकर उसे कुएँ से बाहर निकाला गया। चोरी का प्रकरण किसी तरह मिटाया जा सकेगा ऐसा अभिवचन देकर दुर्गी के पिताजी दुर्गी को साथ लिए घर लौट आए थे।

इस अवधि मे घर मे बैठी वृद्धा दादी और रास्ता चलती दुर्गी की माँ ने भगवान् से कई प्रकार की मानताएँ की थी। और अधिक वे कर भी क्या सकती थी ? अपनी सतान को एक दुष्ट के हाथ मे सौंपकर उन्होने अपने और अपनी लडकी के गले मे हमेशा के लिए यह फदा डाल दिया था। कसाई के हाथ मे पडी हुई बकरी के सिर पर हमेशा छुरा टगा रहता है। बहेलिए के हाथो लगी हिरनी-जैसी दुर्गी की हालत हो रही थी। उस चाडाल पति ने दुर्गी का जीवन नष्ट कर दिया था।

जब मैं अपने घर लौटने को हुई तब दुर्गी ने आग्रहपूर्वक मुझसे कहा, "यमू, अब मैं थोडे ही दिनो की महमान हूँ। कुछ ही दिनो मे तुम बम्बई चली

जाओगी और फिर यदि मैं चल बसी तो हम दोनो की भेट भी नही होगी इसलिए आज दिन तुम यही रुक जाओ, रात के एकान्त मे हम दोनो पेट भरके बातचीत कर लेंगी। यमुना मुझे तुमसे कई बाते कहनी हैं—" इस प्रकार वह अनुरोधपूर्वक मुझे रुकने के लिए कह रही थी, मेरा मन भी आज के दिन उसके पास ठहरने के लिए छटपटा रहा था, किन्तु मेरे बस की बात नही थी। मेरा जीवन तो पराधीन था। मैं दोपहर से यहाँ आई थी इसलिए अब नई माँ की जली-कटी बाते सुननी होगी, इसी बात का मुझे डर लग रहा था। उस दिन दुर्गी को शान्त करना बहुत बडी समस्या थी। मैंने उसे बहुत समझाया कि मेरा लौटकर जाना कितना आवश्यक है किन्तु वह नही मान रही थी। उसका कहना था, "अब तुम्हें किस बात का डर है ? अब तो तुम स्वयसिद्धा हो, अपनी मन चाही बात कर सकती हो। तुम्हे कोई कुछ नही कहेगा। यमुना, आज तुम मेरे पास रुक जाओ। न जाने क्यो, मेरे मन मे विचार आ रहा है कि भविष्य मे तुम से फिर कभी भेट न होगी।" तीन-तीन बार उसे इस प्रकार कहते सुनकर मेरा मन अस्वस्थ हो रहा था, किन्तु सब बातो को भुलाकर और हृदय को पत्थर-जैसा कडा करके मैं लौट आई।

मन का धर्म ऐसा है कि जब सुख विषयक अथवा दु ख विषयक विचारो का आधिक्य हो जाता है तब वह चाहता है कि उन विचारो को किसी दूसरे के मन मे उड़ेल कर समाधान प्राप्त करले। यदि सुखपूर्ण विचार हो तो उन्हे अपने प्रिय व्यक्ति के पास प्रगट करने से सुख द्विगुणित हो जाता है और दुःख विषयक होने पर दु ख हल्का हो जाता है किसी न किसी व्यक्ति के पास अपना मनोगत व्यक्त किये बिना मन को शान्ति नही मिलती। फिर भैया-जैसे मेरे सुहृद के पास अपना मनोगत व्यक्त किये बिना मैं कैसे रह सकती थी ? सोने से पहले मैंने उसे उस दिन की सम्पूर्ण कहानी सुना दी। सुनते समय भैया ने कई बार लम्बी साँसें छोडी थी। अत मे मैंने कहा, "भैया, क्या तुम्हें दुर्गी का उस समय का स्मरण है जब हम पहली बार पूना में रहने के लिए आए थे ? अब उस दुर्गी का कोई चिन्ह शेष नही रहा।"

कुछ देर तक मौन रहने के बाद भैया ने कहा, "यमुना, ससार मे यही देखा जाता है कि मूर्खों को रत्नमालाओ की प्राप्ति होती है। यदि दुर्गी का

विवाह किमी भले मनुप्य के साथ · · " इतना कहकर वह रुक गया। कुछ देर के बाद उमने फिर कहा,

"यमू, दुर्गी ने बार-बार कहा कि भविप्य मे अब तुम से भेट होने की आशा नही—इमका क्या अर्थ है ? कही उमके मन मे ऐमा-वैसा विचार तो नही है ?"

उमका प्रश्न सुनकर मैं सटपटा गई। मैंने एक दम कहा, "ऐसा-वैसा याने ।

'ऐमा-वैमा याने आत्मघात । मनुप्य त्रस्त हो जाने पर क्या कर सकता है इसे कोई नही बता सकना ।"

"नही भैया, मेरा ख्याल है कि वह ऐसा कभी नही करेगी ।"

"ख्याल तो मेरा भी यही है किन्तु उमने बार-बार कहा कि अब फिर तुम से भेट नही होगी इसलिए मेरे मन मे ऐमा विचार आया · "

मैं भैया के विचार से सहमत नही हो रही थी । मेरे विचार मे दुर्गी के कहने का आशय इम प्रकार कदापि नही हो सकता । केवल असह्य गर्भावस्था के कारण ही उसने ऐमा कहा होगा । स्त्रियो की प्रसूति उनका पुनर्जन्म कहलाती है । और फिर दुर्गी की अवस्था तो बहुत ही दयनीय थी । छोटी उम्र, अपार दु ख, घोर निराशा आदि कारणो से उसकी विचारधारा का इस प्रकार बन जाना स्वाभाविक ही था । मैं इस प्रकार अवश्य कह रही थी किन्तु मेरा मन भी इस बात की गवाही नही दे रहा था कि वह ऐमा कुछ कभी नही करेगी । पहले मुझे इस बात की आशका नही थी किन्तु जब से भैया ने वह प्रगट की तब से मेरे मन से किसी प्रकार वह विचार हट नही रहा था । दुर्गी के उन निराशाजनक उद्गारो का मुझे स्मरण हो आया और उनमे इस आशय की झलक दिखाई देने लगी । जैसे-जैसे मैं सोच रही थी वैसी ही मेरी धारणा दृढ होती जा रही थी । आज सुबह दुर्गी का पति कुएँ मे कूद पडा था, यदि वह मर जाता तो उसके मुँह मे कालिख लग जाती और फिर आजीवन उसे अँधेरे मे ही बैठना पडता । फिर तो कुत्ता भी उम पर तरस न खाता । क्या हाल होता उसका ? क्या वह किसी के सामने निकल सकती थी ? ससुराल वालो ने क्या उसे आश्रय दिया होता ? फिर तो दुनिया से मुँह छिपा कर ही उसे बैठना होता । पति कैसा भी क्यो न हो किन्तु आज वह गर्दन

उठाकर फिरती है, सुहागहीन तो नही कहलाती ? इससे तो आत्मघात कर लेना ही श्रेयस्कर होगा । कम-से-कम इस दु खपूर्ण जीवन से तो छुटकारा पा सकती है। क्योकि दुबारा फिर ऐसा प्रसग आ सकता है । जो एक बार हुआ वही दुबारा हो सकता है । कौन कह सकता है कि उसके पति को कभी जेल मे नही ठूसा जा सकता ? एक बार जो आदत पड जाती है वह छूटे नही छूटती । दुर्गी के लिए भविष्य मे सुख की अपेक्षा करना व्यर्थ है । यही वहुत है कि जो है उससे अधिक बुरी दशा न हो । मुझे भैया के कथन की यथार्थता प्रतीत होती जा रही थी । अब मुझे आभास हो रहा था कि जब-जव उसने कहा था कि अब फिर तुम से भेट होने की आशा नही तव-तब उसने सक्षिप्त दृष्टि से चारो ओर देख लिया था कि कोई सुन तो नही रहा है ? अवश्य दुर्गी के मन मे ऐसा ही कुछ विचार होगा ।

एक विचार से दूसरे विचार जन्म पाते है और फिर उनकी एक शृ खला-सी बन जाती है । दुर्गी विषयक विचारो का मथन होते-होते मै अब स्वय अपने विषय मे विचार करने लग गई थी । बाल्यावस्था, विवाह, घर-गृहस्थी से लेकर जीवन समाप्ति तक हम स्त्रियो की अवस्था कितनी विलक्षण पराधीन और दु खपूर्ण रहती है । ऐसे विचार उस दिन रात को मेरे मन मे आ रहे थे । अनुकूल परिस्थिति मे हमारे जीवन मे भी सुख के अवसर आते रहते है किन्तु हमारी परिस्थिति का सब पहलुओ से विचार करने पर यही प्रतीत होता है कि सुख की अपेक्षा दु ख का पल्ला स्त्री जीवन मे अधिक भारी रहता है ।

यह विचारधारा बढते-बढते स्वय अपनी, भैया की और भाभी की भविष्य-कालीन स्थिति तक आकर रुक गई थी । भैया और भाभी मे मेल कैसे होगा ? और यदि उन दोनो मे अनबन बनी रही तो आगे चलकर क्या होगा ? मुझे आशा थी कि सम्भवत भाभी मे आगे चलकर सुधार हो सकता है । विचार-धारा मे बहते-बहते मै सो गई ।

दूसरे दिन नहा-धोकर मैं ससुराल चली गई, फिर भी पहले दिन के दुखद विचारो ने मेरा पीछा नही छोडा । दुर्गी आत्मघात तो नही कर लेगी ? भैया की आशका मेरे मन मे घर किए बैठी थी । ऐसा लग रहा था कि घडी-दो-घडी में कोई आकर कहेगा कि दुर्गी की जीवन-यात्रा समाप्त हो गई । उसने

अफीम खाली अथवा कुएँ मे कूदकर जान दे दी। मैं सोच रही थी कि उसने मुझे रहने के लिए जो आग्रह किया था वह अपनी अंतिम बात सुनाने के लिए तो नही किया होगा ?

३९

आज बम्बई मे परीक्षा का परिणाम घोषित हो रहा था इसलिए मेरा मन कुछ अस्वस्थ था। ससुराल आने पर मैने इसी के बारे मे चर्चा होते सुनी थी इसलिए पहले दिन के विचार लुप्त होकर मन मे चिंता लग रही थी। भैया ने तो दृढ़-विश्वास के साथ कहा था कि उनका नाम प्रथम श्रेणी मे आयगा—किन्तु फिर भी न जाने क्या होगा। सुख विषयक कल्पना मे दृढ-विश्वास रहने पर भी मन सशंक बना रहता है। परीक्षा के परिणाम पर ही तो बम्बई जाना निर्भर था इसलिए चिंता स्वाभाविक ही थी।

सुख और दुःख हमेशा बारी-बारी से आते रहते है। दुर्गी का हाल देखकर मन विह्वल हो रहा था और इधर परीक्षा के परिणाम की कल्पना से मन की अस्वस्थता बढती जा रही थी। उस दिन शाम को रिजल्ट निश्चित ही घोषित हो रहा था, इसलिए मेरा मन बाँसो उछल रहा था कि कब शाम होगी और कब "प्रथम श्रेणी मे उत्तीर्ण" इन शब्दो को मै सुन सकूँगी। यदि कोई मुझ से पूछता कि प्रथम श्रेणी और केवल उत्तीर्ण का क्या अर्थ होता है तो उत्तर मे केवल इतना ही बता सकती थी कि प्रथम श्रेणी का तात्पर्य है बम्बई मे नौकरी मिलना और अपना स्वतन्त्र घर-बार बसाना, और केवल पास से तात्पर्य है कि यह कुछ न होना। इससे अधिक मैं और कुछ नही जानती थी। मेरी कल्पना थी कि परीक्षा याने नौकरी का सुलभ साधन। परीक्षा का सम्बन्ध ज्ञान और विद्वत्ता से रहता है, यह मैं नही समझ पाई थी। मैं ही

क्यों, आज के युग मे बहुश लोग-बाग परीक्षा का अर्थ केवल इतना ही जानते है, यह कह देने से अत्युक्ति नही होगी। परीक्षा पास करना, पढाई करना, याने नौकरी प्राप्त करना। उच्च परीक्षा पास करना याने ऊँची नौकरी प्राप्त करना, यही विचारधारा लोगो के मुँह से सुनी जाती है। यह विचार-धारा ठीक है या नही इसकी चर्चा करना मेरे अधिकार से बाहर है, इसलिए मैं इसके सम्बन्ध मे कुछ नही कह सकती।

अजिया सासूजी और छोटी मामीजी 'उनका' और मेरी सासूजी का मजाक कर रही थी। एक कहती थी, "अब तो बम्बई जाओगे ना ? हमे अपने घर बुलाओगे या नही ? आगामी ग्रहण के अवसर पर समुद्र स्नान करने की तीव्र इच्छा है।" बीच ही मे दूसरी ने कहा, "आप इनके घर कैसे जा सकती है ?" लडकी के घर माँ को नही जाना चाहिए।" इस पर गोपाल मामाजी ने कहा, "मैं इस प्रथा को नही मानूंगा। मैं तो वर्ष मे दो-चार बार बम्बई जाऊँगा और इन्ही के घर ठहरूँगा।" शकर मामाजी ने कहा, "हमे क्या इसके बाप का डर है जाने के लिए ? मै तो हमेशा इनके घर आया-जाया करूँगा।" इस प्रकार घर के सब लोग अपनी-अपनी रुचि के अनुसार हास्य-विनोद करने मे मग्न हो रहे थे। केवल उमा मामीजी ने कुछ नही कहा। वे बहुत मितभाषिनी थी। और वे बेचारी बोल भी क्या सकती थी। वे तो काम के बोझे से दबी जा रही थी। हम लोग और गोपाल मामाजी के अतिरिक्त उनकी ओर कोई सीधी निगाह से भी नही देखता था। घर के सब लोग, प्रत्यक्ष उनके बेटे और बेटियाँ भी उनसे सीधे मुह बात नही करती थी। यह था उनका हाल। हास्य-विनोद तो मन की प्रसन्नता की अवस्था मे किया जा सकता है। दुखी मन को हास्य-विनोद नही भाता। बनू दीदी और अन्य लोगो का मजाक शकर मामाजी के ढग का ही था। मुह मे आया सो बक दिया। कोई कहता था, "अरे, हमे क्या पडी है तुम्हारे घर आने की। व्यर्थ मे अपनी प्रतिष्ठा न बघारो।" कोई कहता, "मामीजी, आपके हाथ तो सब आसमान को छू रहे हैं। आपको चिता करने का कारण नही, हम आपके घर नही आयँगे।" इस प्रकार जो मन मे आया सो बक दिया। कब और किस ढग से बोलना चाहिए इस बात का उन लोगो को कोई सलीका नही था।

इस प्रकार हास्य-विनोद मे सध्या हो गई। मेरे मन की अस्वस्थता

बढती जा रही थी। मन ही मन भगवान् से प्रार्थना कर रही थी कि मेरे मन की बात पूरी हो गई तो बम्बई जाकर मैं सत्यनारायण की कथा कराऊँगी। किसी काम मे मेरा चित्त नहीं लग रहा था। मैंने छिपकर देखा, उनकी मुद्रा से भी आतुरता टपक रही थी। बम्बई से एक मित्र का तार आना था। तार कब आता है, इसकी उत्सुकता उनसे अधिक मुझे लग रही थी। मेरी अवस्था हास्यास्पद कही जा सकती है किन्तु दो-चार बार मुझे आभास हुआ था कि कोई उनका नाम लेकर दरवाजे से पुकार रहा है। नौ बज चुके थे फिर भी तार नही आया। मैं निराश हो गई। दस भी बज गए, तब तो वे भी अस्वस्थ हो उठे। सभी लोग आश्चर्य कर रहे थे। इसी समय उनका एक मित्र घर आया। वह तार के बारे मे पूछ-ताछ करने आया था। और भी एक-दो मित्र आ गए और उन लोगों ने सुझाया कि अमुक स्थान पर चलने से अवश्य ही पता चल जायगा। कोट पहिनने के लिए वे अपने कमरे मे चले गए। तब मैं भी उनके पीछे कमरे मे चली गई। पागलो-जैसा मैंने प्रश्न किया, "क्या बात है ? तार क्यों नही आया ?" मेरी बात सुनी अनसुनी कर उन्होने कहा, "तुम सो जाओ, मैं जरा बाहर जाकर पता लगाकर आता हूँ।" इतना कहकर वे चले गए।

मैं बिस्तरे पर लेटी थी किन्तु मेरे मन की अस्वस्थता बढती जा रही थी। अधीर व्यक्ति का भाग्य ही कुछ ऐसा होता है, उसे हर बात मे विकृति दिखाई देती है। मुझे आशका हो रही थी कि प्रथम और द्वितीय श्रेणी तो दूर रही वे पास भी नही हुए है। बारह के घटे मैंने सुने, फिर भी न तार वाले का पता था और न वे ही घर लौटे थे। तब तो इस बात का निश्चय हो चुका कि वे परीक्षा मे पास नही हुए। अब जल्दी घर जाकर भी क्या करना है यह सोचकर वे वही किसी के घर बैठे होगे। परीक्षा मे पास नही हुए, ये शब्द मेरे कानो मे गूँज रहे थे और उनके साथ ही मेरे मनोरथो की इमारत गडागडाहट के साथ जमीन पर आ गिरी थी। अनेकानेक कुतर्कों से मैं अपने मन को दुखी बना रही थी। अब बम्बई जाना नही होगा। फिर एक वर्ष दूसरो के आश्रय पर, उन लोगो के ताने चुपचाप सहकर, रहना होगा। परीक्षा मे अनुत्तीर्ण हो जाने से लोग-बाग खूब ताने मारेंगे। दूसरो के भरोसे और एक साल कालेज मे घसीटना होगा यह सोचकर उनका दिल टूट गया।

होगा। मेरी आँखो मे इन विचारो से आँसू उमड आए। सिसकती हुई मै विस्तरे पर औंधे मुँह पडी थी। इसी अवस्था मे आधा घटा और बीत गया। मुझे नीद आ रही थी और तभी मुझे आभास हुआ कि किसी ने मेरे शरीर को छूकर धीमे स्वर मे कहा, "क्यो सो गई ? तुम्हे तो रिजल्ट की जरा भी चिन्ता नही है।" मैं हडबडाकर बिस्तरे से उठ बैठी। वे पास मे खडे थे। मैने झट से पूछा, "क्या समाचार है ?" मुस्कराकर उन्होने कहा, "समाचार क्या होगा ? तार नही आया इसी से पता चल गया।" मै तो उस समय भान रहित हो रही थी। उनकी मुस्कराहट मेरे ध्यान मे नही आई। केवल शब्दो को ही मैने सुन पाया और हाँ कहकर मैं विस्तरे पर लेट गई। मुझे इस प्रकार निराश होते देखकर उन्होने कहा, "अरे, इतनी निराश हो गई ? चलो उठो, पगली कही की। उठकर जरा मेरे प्रश्नो का उत्तर दो। मेरे साथ तुम बम्बई चलना चाहती हो ना ? तो उठो जल्दी। कल सुबह हमे जाना होगा।" यह सुनकर मेरी विचित्र दशा हो रही थी, किन्तु इसे मजाक मानकर मै वैसे ही बिस्तरे मे पडी रही। तब उन्होने फिर कहा,

"ठीक है। यदि तुम मेरे साथ जाना नही चाहती तो मै अकेला ही चला जाऊँगा। किसी पर जबरदस्ती तो नही की जा सकती।" इतना कहकर वे कहकहा मारकर हँस दिए। उस हँसी से मुझे वास्तविकता का पता लग गया। मजाक का उत्तर मुझे मजाक से ही देना चाहिए था, किन्तु ऐसा न करके मै मुँह लटकाए बैठी रही। किन्तु इस प्रकार कब तक बैठ सकती थी। दो-चार मिनट मे ही मैं अधीर हो उठी। मैंने कहा, "मजाक रहने दीजिए। सच बताइएगा, तार आ गया क्या ? क्या रिजल्ट रहा ?"

कुछ गम्भीरता से उत्तर दिया "यदि तार आ जाता तो क्या इतनी देर तक तुम से कहे बिना रह सकता था ? तार नही आया इसी से तो रिजल्ट की कल्पना की जा सकती है। अब किसी प्रकार बम्बई जाना होगा, कही दस-पाँच रुपयो की ट्युशन करके गुजारा करना होगा। मैंने तुमसे कहा था कि हर हालत में मैं तुम्हे बम्बई ले चलूँगा, इसलिए तुम्हे चलने के लिए कह रहा हूँ। वास्तव मे तुम्हे साथ ले जाने मे कोई सुविधा नही है।"

"जी हाँ। मैं सब समझती हूँ। मुझे बनाया जा रहा है। यदि यह सही

होता तो बातचीत का ढग कुछ अलग रहता। सही बात को मैं ताड गई हूँ। तार आया • ”

“अच्छा जी। अब तो बडा अच्छा हुआ। लाओ, जरा दिखाओ तो कहाँ है तार ? तार क्या तुम्हारे ही नाम से आया है ? या मेरे नाम के तार पर अपना अधिकार समझकर तुमने बन्द लिफाफे को खोलकर पढ लिया ? जरा लाओ तो। मुझे तो दिखाओ वह तार।”

“अब रहने दीजिए। मजाक की भी सीमा रहती है। हर समय मजाक करना ठीक नही। कम-से-कम इस समय तो ”

“अच्छा जी। यह मैं नही जानता था। तो फिर मेरे लिए एक जत्री बना दो कि किस समय मजाक करना चाहिए।”

“अवश्य बना दूँगी। इस समय नही, बम्बई जाने पर जब पढ-लिखकर मैं अच्छी विदुषी बन जाऊँगी तब अवश्य बना दूँगी। अभी तो मुझे यह बताइए कि तार मे क्या लिखा है ?”

“मैं नही पूछूँगा—चाहो तो इसे पढकर मतलब समझ लो।” ऐसा कहकर उन्होंने तार का गुलाबी लिफाफा मेरे सामने फेक दिया। लिफाफा देखकर मेरा मन खुशी से खिल उठा। तार मे क्या लिखा है यह जानने की आवश्यकता ही क्या थी ? उसमे और क्या लिखा जा सकता है ? किन्तु मन बडा विचित्र होता है। तार का लिफाफा मेरे सामने फेका गया, मैंने उसे देख लिया, बात समाप्त हो गई। किन्तु मन कब मानने वाला था। लिफाफे मे से तार का गुलाबी कागज निकालकर, उस कागज को उनके सामने पकडकर उसे पढने के लिए मैं उन्हे मना रही थी। वे मेरा हाथ दूर हटाकर कह रहे थे कि जिसे आवश्यकता हो वह स्वय पढ ले। मैंने भी जरा कृत्रिम कोप से कहा, “ठीक है। मेरी खिल्ली उडाने की आवश्यकता नही। बम्बई जाने पर मैं भी पडिता बन जाऊँगी, दुनिया भर की किताबो को चाट जाऊँगी।”

“धत् तेरे की। किताबें चाटने के लिए बम्बई जाने की क्या आवश्यकता है। वह काम तो यहाँ भी किया जा सकता है। घर मे ढेर-सी किताबे पडी है। तुम अवश्य चाटती होगी। तभी तो सुनता हूँ कि तुम्हारा आहार बहुत कम है।”

“मजाक बहुत हो चुका। तार मे क्या लिखा है, इसे एक बार पढाकर जब

तक सुन न लूँगी तब तक मुझे सतोष नही होगा—ऐसा क्यो करते हो, जरा पढकर मुझे सुनाइएगा ना ।" इतना कहकर मैंने कागज को सामने रख दिया । फिर तार पढकर मुझे मतलब समझाया गया । तार को अग्रेजी मे पढते ही उनके "फस्ट-क्लास" शब्द को सुनकर मुझे रोमॉच हो आया। मुझे भ्रम हो रहा था कि मै स्वप्न तो नही देख रही हूँ ।

किन्तु इसी समय मेरी ठोढी छूकर कहा गया, "क्यो, अब तो सतोष हो गया ?" इन शब्दो को सुनकर मुझे विश्वास हो गया कि मैं स्वप्न नही देख रही हूँ । तार सत्य है, मैं जागृत अवस्था मे हूँ यह सत्य है, वे मेरे समीप बैठे हैं यह सत्य है और अब बम्बई को जाना होगा यह भी सत्य है । उस समय मे ब्रह्मानन्द मे तल्लीन हो गई थी ।

४०

आनन्द से परिपूर्ण वह रात कैसे बीत गई इसका वर्णन करना व्यर्थ है । मेरी मिसाल अन्वर्थक भले न हो किन्तु उत्तर राम-चरित्र की उन काव्य पक्तियो का मुझे स्मरण हो आता है जिनमे प्रहर कैसे समाप्त हो गए इसका भान नही रहा और रात कैसे समाप्त हो गई आदि का वर्णन किया गया है । वह रात हमारे सुखारम्भ की पहली रात थी । उस रात ने मुझे कई बाते स्मरण कराईं । कई मनसूबे बाँधे गए । बम्बई जाने पर यह करना होगा, वह करना होगा आदि कई बातो की चर्चा की गई । मन मे नियोजित कई बातो को आज उन्होने मेरे सामने व्यक्त किया था । मैंने कभी कल्पना भी नही की थी कि इनके मन मे इतनी योजनाएँ समाई हैं । विवाह से लेकर आज तक मैंने उनके मुँह से स्त्री-शिक्षा और सामाजिक सुधार के बारे मे कभी कुछ नही सुना था । भैया यदा-कदा उनकी विचारधारा के सम्बन्ध मे कुछ कहा करता

था और फिर मेरे साथ भी बहुतेरी बातों के बारे में वे बातचीत किया करते थे, किन्तु आज उन्होंने अपनी विचारधारा को स्पष्ट रूप से मेरे सामने प्रकट कर दिया था। कई बातें तो ऐसी थी कि जिन्हें पूर्ण करने में मैं अपने-आपको असमर्थ समझ रही थी। जब उन्होंने कहा कि तुम भी मुझ-जैसी बी० ए० की परीक्षा पास कर लो, तब तो मैं जोर से हँस दी। हँसी को बरबस रोकते हुए मैंने कहा, "तो फिर कल से कालेज जाऊँगी।" सचमुच मैं इसे मजाक मान रही थी। किन्तु उन्होंने मुझे अपनी योजनाओं की आवश्यकता और कार्य-प्रणाली की दिशा को खूब समझाकर बताया। उदाहरण के रूप में मुझे कई विदुषी स्त्रियों की जीवनी बताई गई। इस प्रकार बातचीत करने में पूरी रात समाप्त हो गई। अरुणोदय होने जा रहा था, तब मैंने कहा, "अब थोड़ी देर आप विश्राम कीजिए मैं जा रही हूँ।" किन्तु मेरी बात किसे मान्य थी, मुझे रोक लिया गया और बातचीत का स्रोत फिर बढ़ता रहा। जब बिलकुल दिन निकल आया तब मैं कमरे से बाहर चली गई।

मैं खुशी से फूली नहीं समा रही थी। साथ ही रात-भर के जागरण से मेरी आँखों की स्थिति भी बहुत खराब हो रही थी। इस कारण जाते-जाते मुझसे एक गलती हो गई। गलती केवल इतनी ही थी कि बनू दीदी दालान में सोई थी और मेरा पैर उनके बिस्तरे पर पड गया था। पैर पडते ही बनू दीदी आपे से बाहर हो गई। चीखकर उन्होंने कहा, "तेरे पति ने परीक्षा पास कर ली तो क्या तू कहीं की सम्राज्ञी बन गई जो दूसरों के बिस्तरों को लथेडती हुई चलती है? परीक्षा पास पति की शेखी बघारने यहाँ आई है। किन्तु यह न भूलना कि हमारे आश्रय में रहकर ही तो उसने परीक्षा पास की है।"

उनके शब्द तीर-जैसे मेरे दिल में चुभ रहे थे। गलती से मेरा पैर उनके बिस्तरे पर पड गया इसका परीक्षा पास करने से क्या सम्बन्ध था? किन्तु परीक्षा की बात को लेकर उन्होंने एक तूफान-सा खडा कर दिया। इस बात की रपट अजिया सासूजी तक पहुँचते-पहुँचते उसमें यह और जोड दिया गया कि मैंने बिस्तरे पर ही नहीं बल्कि घोट्टू भैया के हाथ पर पैर रख दिया। वे चिल्लाए तो मैंने कह दिया कि चिल्लाने की कौन-सी बात है, पड ही जाता है एकाद बार पैर।

फिर क्या था। अजिया सासूजी की जबान कतरनी-जैसी चलने लगी।

इसी समय छोटी मामीजी ने पूछा, "छोटा गिलास जो तू अपने कमरे मे ले गई थी, वह कहाँ है ?" सुबह जल्दी मे मै उसे कमरे मे ही छोड आई थी। मेरी इस गलती को कैसे माफ किया जा सकता था ? अब छोटी मामीजी की भी जबान चलने लगी, "तुम लोगो के बर्तन उठाकर लाने के लिए क्या नौकर तैनात है ? अभी तो केवल परीक्षा ही पास की है। नौकरी अभी मिली नही और अभी से तू इतनी उन्मत्त हो गई ? तेरे हाथ तो आसमान को लग गए। जरा धरती पर चलना सीखो, इस प्रकार हवा मे उडने मे काम नही चलेगा।" इस प्रकार उनकी बकवास चलती रही। मैं समझ चुकी थी कि हमारा उत्कर्ष उन लोगो को भाया नही था। सुनते-सुनते मेरी आँखो मे आँसू आ गए। जो आरोप मुझ पर लगाए जा रहे थे वे सरासर झूठ थे, यह मै जानती थी किन्तु सच बात बताने का भी मुझे अधिकार नही था। जो कहा जा रहा था उसे चुपचाप सुनने के अतिरिक्त मै और क्या कर सकती थी। मै तो घर मे सबसे छोटी थी किन्तु बडी मामीजी के बारे मे भी यही हालत थी। उनके पति ने उन पर झूठे आरोप लगाए थे फिर भी उन्हे प्रतिकार करने का अधिकार नही था। यह है हम स्त्रियो की हालत। आजीवन मर्यादा पालन के ढकोसले को लेकर गुलामी मे रहना यही हमारे लिए एकमात्र मार्ग है। गत रात मे जिनके बारे मे चर्चा की गई थी वह स्त्री-शिक्षा, स्वतन्त्रता, विदुषी स्त्रियो की जीवनियाँ आदि विषयक कल्पना-सृष्टि की बाते एक तरफ रही और यह कठोर, चुभने वाली सत्य सृष्टि एक तरफ रही। वह कल्पना प्रसूत सुख था और यह प्रत्यक्ष दुःख था। मन दो मन दूध मे जरा-सा नमक छोड देने से दूध की जो अवस्था हो जाती है वही अवस्था मेरे आनन्दपूर्ण हृदय की हो रही थी। रात की खुशी काफूर हो गई थी और इस परिस्थिति से छुटकारा पाने के लिए मन अस्वस्थ हो रहा था। उमा मामीजी को मालूम था कि मेरा कोई अपराध नही है। वे उस समय वही मौजूद थी। मेरे साथ जो अन्याय किया जा रहा था उसके लिए वे बहुत दुखी थी और मेरी सासूजी को उन्होने सही बात कह भी दी थी, किन्तु सासूजी बेचारी क्या कर सकती थी। यदि कुछ कहती तो भाजी को झूँठा कहकर बहू का पक्ष लेती है, ऐसा उन पर आरोप लगाया जाता। इसलिए वे मौन थी। मुझे एक ओर बैठी रोती देखकर उमा मामीजी ने कहा, "चुप करो। जरा-जरा-सी बात पर रोने

लगी, क्या तुम पागल हो ? यह तो हमेशा का ही राग है। इसका सोच विचार करने की आवश्यकता नहीं। चुप करो। उन्हें जी में आए सो-बकने दो।"

कहावत है ना कि "डरेगा सो मरेगा," उमा मामीजी बेचारी हमेशा घर मे डरकर रहती थी। कभी किसी से कुछ नही कहा करती। आज ही न जाने क्यो उन्होने मेरे साथ बात की और सयोग से उनकी लडकी ने वह सुनली। उसने जाकर अजिया सासूजी से कह दी। बनू दीदी को छिपकर सुनने और चुगली खाने की बडी बुरी आदत थी। उनके लिए दूसरा काम ही नही था। इसकी बात उससे और उसकी इससे कहने मे उन्हें मजा आता था। अपनी माँ से उन्हे जरा भी ममत्त्व नहीं था। हमेशा माँ की चुगली खाती रहती थी। दुनिया मे उन-जैसी लडकी ढूँढने पर भी नही मिलेगी।

उमा मामीजी के शब्द हुजूर दरबार मे पेश किए जाने पर फिर आग लगने मे क्या देरी थी। एक दम ज्वालामुखी फूट पडा। मेरा अपराध तो कहाँ रहा और उमा मामीजी पर बौछार पडने लगी।—"अरे, इसीने तो सारे घर का सत्यानाश किया है। यह सीता मैया इसी के बूते पर तो उछलती है। दिनभर इसके साथ काना-फूसी होती रहती है। कहती है कि "नित्य मरता है उसके लिए कौन रोता है।" तो मेरे मरने की राह देखी जा रही है ? फिर भी अच्छा है कि पति हमेशा दुतकारा करता है। हर समय जूतो से बात करता है। यदि वह स्त्रैण होता तो इसका सिर आसमान से छूता। भगवान् योग्यता देखकर ही अधिकार देता है। वह पागल थोडे ही है। आदि ..."

इस गडगडाहट को सुनकर मैं अपना दुःख भूल गई। उमा मामीजी के लिए मुझे दुःख हो रहा था। बेचारी को हम दोनो से बहुत लगाव था इसलिए मुझे समझाने के लिए उन्होने केवल इतना ही कहा कि, "यह तो हमेशा का ही राग है, सोच-विचार करने की क्या आवश्यकता है ?" इस जरा-सी बात का बतगड बन गया और शब्दो का विपर्यय होकर "नित्य मरता है उसके लिए कौन रोता है," यह बन गया। दिन भर वही चर्चा होती रही। शकर मामाजी ने तो हद करदी। मामीजी को दो-चार तमाचे जमाकर गरज उठे, "तूने माँ को ऐसा कहा ? उसके पैर पकडकर माफी माँग—इतना कहकर ही

उन्हे सतोष नही हुआ। उन्होने उस अधेड अवस्था की स्त्री को उसके बच्चो के सामने घसीटकर माँ के पैरो पर पटक दिया। जबान चल ही रही थी, "मैं सब कुछ सह सकता हूँ किन्तु माँ का अपमान और असत्य भाषण मुझसे नही सहा जा सकता। कहकर इकार करती हो ? एक बार नही तीन बार माँ के पैर छूने पडेगे। पकडो पैर—पकडो—राम राम।" इसका केवल स्मरण हो जाने से आज भी मेरे रोगटे खडे हो जाते है। स्त्री जन्म की यह दुर्दशा देखकर मेरी लेखनी रुक गई है। ऐसी साध्वी स्त्री को व्यर्थ मे अपमानित होते देखकर किसका दिल नही टूटेगा ?

दिनभर इसी झझट मे बीत गया। रात को जब हम लोगो की भेट हुई तो इसी बात को लेकर चर्चा चल उठी। उन्होने स्पष्ट शब्दो मे कहा, "बेचारी उमा मामी की अवस्था को देखकर मैं तो क्रोध से पागल हो उठा था, लग रहा था कि जाकर शकर मामाजी के तमाचे जमा दूँ। समझ मे नही आता कि इस मनुष्य का स्वभाव है कैसा ? कभी-कभी तो पत्नी के लिए इनके प्रेम समुद्र मे तूफान आ जाता है। लगभग पद्रह वर्षो से मै इस घर मे रहता हूँ किन्तु इनके स्वभाव को मैं अब तक नही परख सका। इतना निर्दय, कुत्सित और कमीना व्यक्ति मैंने आज तक नही देखा। और " जैसे-जैसे वे शकर मामाजी का वर्णन करते जा रहे थे उन्हे तैश आ रहा था। आखिर उनका स्वर उच्च होते देखकर मैंने उन्हे शान्त करना चाहा। मुझे डर लग रहा था कि रात मे हमारी बातचीत सुनने के लिए शायद बनू दीदी छिपकर दरवाजे से कान सटाकर खडी रहती हो। मैंने अपनी शका प्रकट की, तब शकर मामाजी की बजाय बनू दीदी के बारे मे बात चल पडी। प्रथम मैंने बनू दीदी को कहाँ देखा था, पहली भेट मे हम दोनो मे कैसा झगडा हुआ था आदि बातो को मैंने उन्हे बताया। उन्होने कहा, "वह तो पहले से ही दुष्ट और ओछे स्वभाव की है। किन्तु देख रहा हूँ कि दिन-प्रतिदिन उसके दुर्गुण बढते जा रहे हैं। हम लोगो का सुख देखकर उसे डाह होना स्वाभाविक है। क्या करे ? उसके भाग्य मे यह सुख कहाँ है ?" मेरा भी उन्ही-जैसा मत था। क्योंकि पति ने उसे त्याग दिया था, किताबे आदि पढकर मन बहलाने का साधन भी उसे उपलब्ध नही था। बचपन से ध्यान नही दिया गया इस कारण अब उसे पढने की इच्छा भी नही रही थी। बनू दीदी

से लेकर हमारी बातचीत का प्रवाह दुर्गी तक जा पहुँचा। दुर्गी का वृत्तान्त सुनकर उन्हें बहुत दुःख हुआ। उन्होने कहा, "अब वह बेचारी क्या करे। ह किन्तु इस प्रकार असख्य गौएँ कसाइयो के हाथो मे फसी है।" दुर्गी की बात को लेकर स्त्रियो की दुर्दशा, बाल-विवाह की कुप्रथा आदि विषयो पर चर्चा चलती रही। मैने कहा, "कल हम लोग किस बात पर चर्चा कर रहे थे, आज दोपहर मे कैसा बखेडा खडा हुआ और अब हम कौन-सी बाते कर रहे है।"

मेरा वाक्य सुनकर उन्होने कहा, "जरा उस किताब को उठाओ, उसमे एक बडा सुन्दर वाक्य है। उसे पढकर मैं तुम्हे उसका अर्थ समझाऊँगा। इन दिनो पढाई मे मुझे अत्यधिक रुचि थी। अर्थ समझाने की बात सुनकर मै खुशी से उछल पडी। झट से मैंने किताब लाकर दी। किताब खोलकर किसी पृष्ठ पर लिखा हुआ वाक्य पढकर उन्होने मुझे उसका अर्थ समझाया। वाक्यार्थ इस प्रकार था, "मनुष्य भवितव्यता देवी के हाथ का एक खिलौना मात्र है, वह जब चाहती है तब उसे सुख और दुःख दिया करती है। मनुष्य एक क्षण मे सुख सागर मे उतराता है और दूसरे ही क्षण दुःख के उबलते हुए तेल की कढाई मे तले जाने-जैसी वेदना अनुभव करता है।"

वह रात बीत गई और उसके बाद पद्रह दिन और बीत गए। कालेज के बडे साहब की ओर से उनके नाम एक चिट्ठी आई और वे उनसे मिलने के लिए गए। कालेज मे पढाकर स्वय अपनी पढाई करने के लिए 'फैलोशिप' मिला करती है, वह मिलने की पूर्ण आशा थी, किन्तु कहावत है कि अच्छे कामो मे सौ विघ्न आया करते है, वही हाल था। फैलोशिप मिलना निश्चित था किन्तु कहाँ मिलेगी यही एक प्रश्न था। अब तक आशा थी कि बम्बई मे मिलेगी किन्तु इस बीच मे कुछ गडबडी हो गई थी। बम्बई की फैलोशिप प्राप्त करने के लिए और दो-चार विद्यार्थी प्रयत्न कर रहे थे। किसी से सिफा-रिश करवाने का रास्ता इन्हे नही पसन्द था। इसलिए सम्भव था कि कही अन्यत्र भेजा जायगा या पूने मे ही फैलोशिप दी जायगी। प्रिंसिपल साहब का आग्रह था कि पूना मे रहे पर वे तो बम्बई जाना चाहते थे। इसलिए कहा जाता था कि प्याला भरा हुआ है किन्तु मुँह मे घूंट कब उतरेगा यही एक प्रश्न है। फिर एक दिन मालूम हुआ कि सम्भवत यही रहना पडेगा। यह

सुनकर मेरे मन मे धक् होकर रह गया। मैंने कहा, "अन्यत्र कही जाने से जो मुसीबत उठानी होगी उसे तो मैं सह लूँगी किन्तु इस पूने से छुटकारा हो।"

निराशा भरे स्वर मे उन्होने कहा, "तुम्हारा कहना ठीक है, किन्तु ऐसा हो तब ना। हमारे बस की बात तो है नही।" यह सुनकर मेरा दिल टूट-सा गया। दूध से भरा प्याला मुह के पास ले जाते ही कोई थप्पड मारकर गिरा दे, ठीक यही हाल हो रहा था। मेरा मन अस्वस्थ हो गया था।

इस प्रकार चार-छ दिन बडी विवचना मे बीते थे। विवचना इस बात की थी कि कही पूने मे ही तो न रहना होगा? पूने मे रहने का अर्थ था कि आज-जैसी अवस्था मे ही दिन काटने होगे। पृथक् घर तो किया नही जा सकता था। अर्थात् मेरे बारे मे जो अन्य योजनाएँ उनके मन मे थी उन्हे पूर्ण नही किया जा सकता था। इतना ही नही दिन मे हम दोनो कुछ देर एकान्त मे बैठकर बातचीत भी नही कर सकते थे। एक-दूसरे की ओर देखना भी दुश्वार था फिर बैठकर बातचीत करना तो बडी टेढी खीर थी। हम दोनो को एकान्त मे बैठकर बातचीत करने के लिए कमरे की भी व्यवस्था नही थी। हम लोगो की कौटुम्बिक मर्यादा और दस-बीस लोगो का एकत्र रहने से क्या लाभ होता है इसे तो मैं नही जानती किन्तु इस व्यवस्था से क्या हानि होती है इसे मैं भली-भाँति बता सकती हूँ। स्त्रियो की अति लज्जा और मर्यादा के ढकोसले से एक नही, कई प्रकार की हानि होती है। इसके कारण पति-पत्नी के प्रेम का पूर्ण विकास नही हो पाता। पत्नी दिल खोलकर पति से बात नही कर पाती। इस लज्जा और मर्यादा पालन को लेकर कई स्त्रियाँ अपनी बीमारियो को भी छिपाकर रखती है। मर्यादा पालन के इस ढकोसले से नुकसान होता है, कई स्त्रियो के प्राणो तक का अपहरण हो जाता है, इस बात की ओर ध्यान देना क्या आवश्यक नही है? किन्तु कौन ध्यान देता है?

सामयिक कौटुम्बिक व्यवस्था को बनाए रखना सुविधाजनक हो सकता है, इस व्यवस्था से देश को लाभ होगा अथवा नही, इसे जानने की मुझे तनिक भी इच्छा नही है। इतना व्यापक विचार करने की मुझ मे शक्ति भी नही है। इसलिए इसके सम्बन्ध मे अधिक लिखने की अपेक्षा मैं केवल इतना ही कहना चाहूँगी कि परिवार मे बहुत से लोग एकत्रित हो जाने पर उनमे अधिक कमाई करने वाला, कम कमाई करने वाला और बेकार, ऐसा भेद-भाव अवश्य

निर्माण हो जाता है। फिर उनकी घरवालियो मे भी भेद-भाव हो जाता है। इस भेद-भाव के साथ ही आपसी मन-मुटाव, ईर्षा और डाह का आना अपरिहार्य है। अधिक कमाई करने वाले की घरवाली मे बडप्पन और काम-काज से अरुचि के साथ ही सेवा करवाने की इच्छा उत्पन्न हो जाती है। जो बेकार है उसकी घरवाली मे हीनभाव आ जाना और दूसरो का बडप्पन असहनीय होना स्वाभाविक ही होता है। इस प्रकार के आपसी टटे-बखेडो के कारण एक परिवार मे बरसो रहने वाले लोगो के मन आपस मे साफ नही रहते, उनमे दिल खोलकर बातें नही होती। पडौसियो से घर की बातें कहकर मन का बोझा हल्का किया जाता है, क्योकि किसी प्रकार मन का बोझा तो उतारना ही होता है और फिर इस प्रकार परिवार की चर्चा एक सार्वजनिक चर्चा हो जाती है।

४१

बम्बई की फैलोशिप मिलने मे कई रुकावटें आई थी किन्तु सौभाग्य से अन्त मे वह मिल गई। यथा शीघ्र वहाँ जाने के लिए आदेश मिल गया। जाने के आदेश प्राप्त होने तक मेरा मन अस्वस्थ बना रहा, धैर्य टूटता जा रहा था। मैं तो असहाय अबला थी किन्तु वे भी चिन्ताग्रस्त बने रहते थे। किन्तु पुरुषो की आदत के अनुसार वे मेरा मजाक उडाया करते थे। आखिर मैंने भी एक दिन कह दिया—"उतावली के लिए मेरा मजाक उडाया जाता है किन्तु आप का स्वभाव भी कुछ कम उतावला नही है।"

कहने लगे—"चलो रहने दो—तुम-जैसा उतावला मैं नही हूँ।"

'मुझ-जैसे क्यो ? मुझसे दुगुने हैं आप। अब चर्चा करने से क्या लाभ, कुछ न कहना ही अच्छा होगा। भैया सच कहता है कि मनुष्य आदत का

गुलाम होता है।" अतिम वाक्य मैंने हँसकर कहा था किन्तु बाद मे स्वय मुझे वह खटकने लगा। शायद उनके ध्यान मे नही आया, उन्होने केवल इतना ही कहा, "तुम-जैसी पगली क्या जाने इन बातो को। पका-पकाया खाना-भर जानती हो तुम।"

"सारे ससार मे घूमकर तो देखिए कि पकाता कौन है और केवल खाता कौन है। क्या तमाशा है। पकाते-पकाते हमारे हाथ अधजले हो गए और कहते हैं कि हम केवल खाना ही जानती है।" मेरी बात सूनकर वे ठहाका मारकर हँस दिए। कहने लगे, "अच्छा जी। अब तो शब्द चमत्कार का भी तुम्हे अभ्यास हो गया। होशियारी बढती जा रही है।"

उपरोक्त बातचीत के दूसरे ही दिन आदेश प्राप्त हो गया था। यह सुनकर मैं खुशी से उछल पडी थी। शायद जीते-जी स्वर्ग देखकर भी हम-जैसा कोई खुश न होता। सत्य ही मैं बम्बई को स्वर्ग मान रही थी। आनन्द प्रमोद, स्वतन्त्रता आदि समस्त बातो का निधान बम्वई है ऐसी मेरी धारणा थी। इसलिए उस हुकुम को मैंने स्वर्ग मे जाने का आज्ञापत्र समझा था। उस आज्ञा-पत्र मे दो-चार दिनो मे उपस्थित होने के लिए लिखा था। उतावली मे मैंने सोचा था कि अब केवल साडी-चोली की गठरी बाँधने का ही कार्य करना है, और कोई अडचन नही है। सासूजी की पोटली तथा उनके कपडो के साथ अपनी साडी-चोली और कुछ आभूषण बाँध लेने से ही व्यवस्था पूर्ण हो जायगी। अन्य बातो का मुझे भान नही था। पहले उन्हे बम्बई जाना होगा, रहने के लिए घर की व्यवस्था करनी होगी, आदि बाते मेरे ध्यान मे नही आई। तीसरे दिन-रात को बम्बई जाने का निश्चय किया गया। वहाँ जाकर दस-पद्रह दिन मे घर आदि की व्यवस्था कर फिर हम लोगो को अपने साथ ले जाने का उनका विचार था। मैं अब एक दिन के लिए भी पूना रहना नही चाहती थी। किन्तु अन्य चारा नही था। स्वप्न-सृष्टि और सत्य-सृष्टि मे यदि कोई अन्तर न होता तो झोपडो मे राज-महल और चीथडो के राजमुकुट बन गए होते। उन दो दिनो मे हम लोग सोये नही, बातचीत—अविरत बातचीत होती रही। हम दोनो किस विषय पर इतनी बाते करते रहे यह मैं लिखना चाहूँ तो टेढी-मेढी भाषा का वह एक महान् ग्रथ बन जायगा। किन्तु उस ऊट-पटांग बातचीत मे हमारा सम्पूर्ण आनन्द समाया था। बातो ही बातो से सवेरा

कब हो गया इसका पता तक न चल सका। तीसरे दिन, अर्थात् जिस दिन उन्हें बम्बई जाना था, कमरे से बाहर जाने के लिए मेरा पैर ही नही उठता था। क्योकि जाने से पूर्व यही हमारी आखिरी भेंट थी। रात को साढे-दस बजे की गाडी से जाना था। उस समय उनसे आकर मिलना—बोलना तो दूर रहा, सामने आकर दर्शन करना भी असम्भव था। इसका कारण वही मर्यादा का पालन। बडो के सामने गाँव को जाने वाले पति की ओर देखना अक्षम्य अपराध था। यदि ऐसा किया जाता तो आठ दिन तक घर मे मुँह ऊपर नही उठाया जा सकता था। प्रति क्षण ताने सुनने होते। ऐसी अवस्था मे, जाते समय पति से रुँधे हुए स्वर मे आँसुओ को पोछते हुए, हजार बार 'सम्हल कर जाइएगा', ऐसा कहने का सौभाग्य कैसे प्राप्त हो सकता था। केवल घर में बैठकर, अधिक-से-अधिक मझघरे के दरवाजे मे खडी रहकर जानेवाली गाडी के पहियो की आवाज सुनकर अथवा दरवाजे तक पहुँचाकर लौटते हुए लोगों को देखकर उनके प्रस्थान की कल्पना करना यही हमारे भाग्य मे लिखा था। इस कारण इसी समय हमारी भेंट हो सकती थी। इसलिए कमरे से जाने के लिए मन नही चाहता था। किन्तु घर मे लोग जग गए होगे और बनू दीदी को छेडने के लिए अच्छा अवसर मिल जायगा, इस डर से मैं बार-बार जाने के लिए उठकर खडी हो जाती थी किन्तु हर-बार मेरा हाथ पकडकर मुझे कहा जाता रहा, "अभी घर मे कोई नही उठा होगा। मेरे जाने के बाद कल से चाहे तो आधी रात मे ही उठकर चली जाया करो।"

"शीघ्र, जाते ही पत्र भेजना, अपनी तबियत को सम्हालना, भैया के पत्र मे मेरे लिए पत्र भेजने पर वह मुझे दे देगा, सम्भवत: मैं अब चार-दिन मायके मे ही जाकर रहूँगी, मैं वहाँ से पत्र लिखूँगी" आदि बातें मैं कह रही थी—कितनी बार मैंने ऐसा कहा इसकी कोई गिनती नही। इसी प्रकार मुझे भी पत्र लिखने के लिए उन्होने कई बार कहा। अपने हाथो अपना नाम और पता लिखकर उन्होने मुझे चार-पाँच लिफाफे देकर कहा, "प्रति चौथे दिन मुझे पत्र मिलना चाहिए। नही तो फिर समझ लो। मैं तुम्हें बम्बई नही ले जाऊँगा। कालेज में हम लोगो के रहने-खाने की व्यवस्था रहती है।"

मैंने भी बहाने बनाए थे कि यदि मायके जाऊँगी तो अवश्य लिखूँगी, किन्तु इस घर में कैसे लिख सकूँगी ? इस पर उन्होने कहा, "क्यों ? चुपके से

इस कमरे मे आकर लिख सकती हो।" मैंने भी हाँ-मे-हाँ मिला दी। जब बिलकुल सवेरा हो गया तब फिर एक बार तबियत का ध्यान रखने और पत्र भेजने के लिए बार-बार कहकर, आँसू-भरे नयनो से उनकी ओर देखती हुई मै कमरे से बाहर चली गई। केवल आज गाँव को जाना था और दस-पद्रह दिनो मे ही हम लोगो को ले जाने के लिए लौटकर आना था फिर भी मुझसे उनका जाना सहा नही जाता था। लग रहा था कि अब दस-पद्रह दिन के लिए मै बिलकुल अकेली हूँ, अपना कहने को कोई अपने पास नही है। हो सकता है कि दस-पद्रह दिन से भी कुछ अधिक समय लग जाय। इन दिनो मे मायके जाने पर कुछ सात्वना मिल सकती थी, ससुराल मे तो केवल उमा मामी का बर्ताव ही मेरे साथ अच्छा था, किन्तु वे मुझ से बहुत बडी थी और उनका स्वभाव भी कुछ गम्भीर था। इसलिए दिल खोलकर उनके साथ बात-चीत नही की जा सकती थी। इन विचारो के आ जाने से मेरा मन उदास था किन्तु आशा बडी बलवती होती है, वह मुझमे कह रही थी कि "अरे अब थोडे ही दिनो की बात तो है, अधिक-से-अधिक पद्रह-बीस दिन या एक महीना। एक बार इस घर से छुटकारा पाने पर फिर थोडे ही तुझे इस नरकपुरी मे आना है ?" मन की इस सात्वना मे सचमुच ही मेरा समाधान हो गया था।

फिर भी वह दिन मेरे लिए बडा दुखदायी था। बम्बई जाना खुशी से खाली नही था, उसके लिए मै आस लगाए बैठी थी, जाना जितना जल्दी होगा उतना ही मेरे लिए अच्छा था, किन्तु आज वे जा रहे थे तो मेरे मन की अवस्था विचित्र हो रही थी। होते-होते सन्ध्या का समय हो गया, मेरे मन की बेकरारी बढती जा रही थी। सात बज चुके, आठ भी बज चुके। सब लोगो का भोजन हो गया। मैंने एक पान का बीडा बनाया था, उसे उन्हे देने के लिए मै बेचैन हो रही थी। झट से ऊपर जाकर दे आऊँगी ऐसा मैने सोचा था किन्तु मौका नही मिल रहा था। कई बार जाने के लिए निकली किन्तु निराश होकर लौटना पडा। अजिया सासूजी, सासूजी, बन्नू दीदी आदि मे से कोई न कोई आकर टपक पडती थी। मेरी बेचैनी बढती जा रही थी। एक बार मैं सीढियो से चढ रही थी और उसी समय छोटी मामीजी ऊपर से उतर रही थी, उन्हे देखते ही मैं उलटे पाँव लौट पडी। मुझे देखकर उन्होने कहा, "थाली परोसी गई ? चलो, मैं आ ही तो रही थी" उन्होने सोचा कि मैं उन्हे बुलाने

के लिए ऊपर जा रही थी। उनका सोचना मेरे लिए हितकारक रहा, अन्यथा न जाने कैसे वाक्य-प्रहार सहने पड़ते।

हम लोगो का भोजन समाप्त हुआ तब तक दस बज चुके थे। उनके जाने का समय हो रहा था, मैं झूठी थालियाँ समेट रही थी। उमा मामीजी चौके मे पोता फेर रही थी, उनके पैर छूने के लिए वे आए थे। उनके पीछे मामूजी थी, उन्होने कहा, "अरे, भगवान् के सामने पैसा, सुपारी रखके नमस्कार तो करले।" उन्हे देने के लिए बनाया हुआ पान का बीडा मेरे ही पास रह गया। उसे यदि भगवान् के सामने रख दिया होता तो ठीक होता। शायद यह आपके लिए है ऐसा सोचकर वे उसे उठा लेते। किंतु अब क्या उपाय था ? मैं निराश हो गई, आँखो मे आँसू आ गए, बाहो से उन्हे पोछकर मैं झूठी थालियाँ समेट रही थी, किन्तु मेरा ध्यान उनकी ओर लगा था। जाते-जाते उन्होने एक बार मेरी ओर देख लिया। सब लोग बाहरी दरवाजे तक उन्हे पहुंचाने के लिए गए थे। मैं मझघरे के दरवाजे से बाहर की ओर देखती खडी रही। आँखो से आँसू बह रहे थे कठ रुँध गया था। तागे के पहियो की घर-घराहट सुनाई दी, तागा चला गया और बडी उत्सुकता से उन्हे देने के लिए मैने पान का जो बीडा बनाया था वह मेरे पल्लू मे जैसा-का-तैसा बँधा रहा।

४२

अब ससुराल मे रहने के लिए मन नही चाहता था। मायके जाने की इच्छा हो रही थी। मायके का वातावरण भी विशेष अनुकूल नही था। वहाँ नई माँ और भाभीजी का मेरे साथ जो बर्ताव था उसे दुबारा कहने की आवश्यकता नही, फिर भी आखिर वह मायका ही था। कुछ भी हो, किन्तु वहाँ ससुराल से अधिक स्वतन्त्रता का लाभ हो सकता था और फिर वहाँ भैया

जो था। भैया के होते हुए मुझे वहाँ किसी बात का दु:ख नही हो सकता था। कुछ देर भैया के साथ बातचीत कर लेने से मैं अपना दु ख भूल जाती और मन प्रसन्न हो उठता था। मायके जाने की उत्सुकता का विशेष कारण यह भी था कि भैया के पत्र मे बम्बई से मेरे नाम का पत्र आना था। पत्र कब आता है, मैं उसे कब पढ लेती हूँ और जाते समय मुझे दिए गए लिफाफे मे उसका उत्तर कब भेजती हूँ, मुझे यही लग रही थी।

किन्तु उपाय क्या था ? मायके जाने के लिए क्या कारण हो सकता था। नई माँ की ओर से बुलावा आना चाहिए अथवा अजिया सासूजी को स्वय मुझे भेजना चाहिए, इसके अतिरिक्त दूसरा मार्ग नही था। इन दोनो मे से कोई कारण हो तभी मेरा मायके जाना हो सकता था किन्तु इसकी आशा नही थी।

लेकिन मेरी निराशा-निराशा ही नही रही, बल्कि अनायास एक ऐसा कारण उपस्थित हो गया जिससे पद्रह-बीस दिन तक मैं सुख से मायके मे बिता सकती थी। उनके बम्बई जाने के तीसरे दिन भैया सवेरे हमारे घर आया। उसे आया देखकर मैंने सोचा कि कोई बहाना बनाकर वह मुझे मिलने तथा मेरा पत्र मुझे देने के लिए आया होगा। किन्तु वह मुझे लिवाने के लिए आया था। कारण यह था कि दादी और सुन्दरी गाँव से आई थी। सुनकर मुझे बडी खुशी हुई। कई दिनो से दादी से भेट नही हुई थी। भैया के विवाह के बाद मैंने सुन्दरी को नही देखा था। उन दोनो का आना सुनकर मुझे अपार आनन्द हो रहा था। कारण अब मायके मे रहना सुखावह था—लगा कि अब वहाँ रहने का मुझे पूर्ण अधिकार है। दादी के आ जाने से घर के वातावरण मे विशेष फरक नही हो पाया, घर मे दादी को विशेष अधिकार भी प्राप्त नही था, किन्तु फिर भी मन को सतोष था। कहावत है कि माँ के मर जाने पर घर मे बाप मेहमान-जैसा होता है।"

इस प्रकार दादी के आगमन की वार्ता सुनकर अजिया सासूजी के लिए हाँ, नहीं कहने का अवसर ही नही रहा। जाने के लिए स्वीकृति दे दी गई और तदनुसार शाम को मुझे मायके भेज दिया गया। मैंने जाकर जब दादी के पैर छुए तो उसकी छाती भर आई। मुझे छाती से लगाकर, मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए उसने कहा, "यमू, तुमने बडा अच्छा घर पाया है—अब अपनी

माँ-जैसा बर्ताव करके सब को सुखी बनाओ बेटा—" इससे अधिक वह नहीं कह सकी। उसकी आँखो मे आँसू भर आए। उसे इस बात का ध्यान नहीं रहा कि पास ही नई माँ खडी है, उसने आगे कहा, "कितना अच्छा होता यदि तुम्हारा सुख देखने के लिए वह आज जीवित होती। उसके बदले मैं मर जाती तो ठीक होता, किन्तु ऐसा क्यो होने लगा ?"

दादी का भाषण सुनकर मेरी आँखों मे आँसू छलक आए किन्तु उन पर काबू पाकर मैंने कहा, "बडी माँ, ऐसा न कहो। जो होना था सो हो गया।" उत्तर मे दादी ने कहा—"पुरानी स्मृति भुलाए नही भूलती—क्या करूँ ?"

इसी समय सुन्दरी जो कही खेलने चली गई थी, वहाँ आ गई। अब तो वह काफी बडी हो गई थी। उसे देखे बहुत दिन नही हुए थे किन्तु इन थोडे ही दिनो मे वह बहुत बडी दिखाई देने लगी थी। विवाह के योग्य मालूम हो रही थी। इस वर्ष नही तो कम-से-कम अगले वर्ष तो उसका विवाह हो ही जाना चाहिए था। कम-से-कम उसके लिए वर की खोज करना आवश्यक था। दादी के साथ प्राथमिक बातचीत हो जाने पर फिर मैंने दादाजी के बारे में पूछ-ताछ की। उनका स्वास्थ्य दिन-प्रतिदिन गिरता जा रहा था। पूने में आकर दवा-दारू करने के लिए उन्हें बहुतेरा कहा गया, एक बार तो पिताजी ने भी उन्हे पत्र लिखा था किन्तु वे किसी की नही मानते थे। इन दिनो उनकी तबीयत कुछ स्वस्थ थी इसलिए हम लोगो से मिलने के लिए दादी स्वय यहाँ चली आई थी। उसे हम लोगो से अत्यधिक प्यार था। भैया ने भी परीक्षा पास होने का और उन्हे बम्बई मे अच्छी खासी नौकरी मिल रही है इसका वृत्तात पत्र द्वारा दादी तक पहुँचा दिया था। पहले से ही दादी मुझे बहुत चाहती थी, मेरे बारे मे इन सुखदायी बातो को सुनकर वह मुझसे मिलने के लिए आई थी। मुझे भी उसके आने की विशेष खुशी थी क्योकि बम्बई जाने पर कौन जाने उससे कब भेंट हो पाती।

दूसरे दिन बम्बई से पत्र आया। पत्र मे लिखा था, "बम्बई सकुशल आ पहुँचा। चिन्ता करने की कोई बात नहीं है, घर की खोज में हूँ, उतावली न करो आदि।" किन्तु उस पत्र को मैंने दस बार पढा। मेरे नाम उनका वह पहला पत्र था और इतने प्रेम-पूर्ण ढग से लिखा गया था कि कई बार पढ लेने पर भी मेरा समाधान नही हो रहा था। भैया ने तो मुझे चिढाया भी था कि

जरा-सी चिट्ठी और पचास बार पढ रही हो । मैंने भी बहाना बना दिया, "अरे नही, पहली बार ठीक से नही पढ पाई थी इसलिए अब दुबारा पढ रही हूँ ।"

किन्तु वह कब मानने वाला था । उसने कहा, "जी हाँ, पहली और दूसरी बार पढ रही है । मै तब से गिन रहा हूँ—सौ बार पढ चुकी हो तुम इस पत्र को ।" इस पर मैं केवल हँस दी ।

अब मेरे सामने प्रश्न था कि पत्र का उत्तर कैसे लिखा जाय । कई बाते मैं लिखना चाहती थी जैसे पान का बीडा, मायके जाने की चिन्ता और दादी के आ जाने से वह चिन्ता कैसे मिट गई, मायके मे आने पर दादी के साथ क्या-क्या बातचीत हुई, सुन्दरी अब विवाह के योग्य हो गई है, आपके प्रस्थान के दिनरात को मुझे नीद नही आई, कुछ देर के लिए सो जाने पर कौन-से स्वप्न देखे थे। आदि कई बातें मेरे मन मे आ रही थी और उनका समग्र वर्णन मैं पत्र मे करना चाहती थी । दोपहर मे भोजन के उपरान्त भैया के कालेज जाने से पहले मैने उससे चार-पॉच ताव कागज के मॉग लिये थे । फुरसत पाते ही, नई माँ क्या कहेगी इसकी परवाह न करके मैं भैया के कमरे मे जा बैठी और कलम, दवात लेकर पत्र लिखना आरम्भ कर दिया । पत्र के आरम्भ मे क्या लिखा जाय यह मेरी समझ मे नही आ रहा था । मन मे पचासो बाते आ रही थी किन्तु जब लिखने बैठी तो उनमे से आधी विलीन हो गई और बची-खुची भी मन मे ही लुप्त होने का उपक्रम करने लगी । कई बार पत्र लिखकर मैंने उसे फाड दिया । बडी मुश्किल से दस-बारह वाक्यो को मैं लिख सकी । कागज पर स्याही के धब्बे पडे थे और कई अशुद्धियाँ थी । एक वाक्य मे दस बाते घुसेड दी थी, एक वाक्य दूसरे से मेल नही खाता था । इसी प्रयत्न मे चार बज चुके थे। नई माँ की पुकार सुनकर मैं वह अधूरा पत्र भैया की सदूक पर रखकर नीचे चली गई । भैया के आने पर पत्र उसे दिखा दूंगी और फिर भेजूंगी ऐसा मैंने सोचा था किन्तु पत्र देखकर वह खिल्ली उडाएगा यह भी डर था । भैया के घर आने पर मैं उसके साथ उसके कमरे मे चली गई । पत्र उसके हाथ मे देने से पहले मैंने उससे वचन ले लिया था कि पत्र देखकर वह हँसी नही उडाएगा —मजाक नही करेगा । पत्र के आरम्भ मे किस प्रकार सम्बोधन करना चाहिए इसे मैं नही जानती थी और मैंने वह भाग छोड रखा था । इसलिए मैंने भैया से कहा, "पहले यह बताओ कि पत्र

के आरम्भ मे क्या लिखा जाता है ?" भैया ने कहा, "वाह। आरम्भ मे क्या लिखना यह जाने बिना तुमने पत्र कैसे लिख दिया ?" यह कहते हुए उसने मेरे हाथ से पत्र छीन लिया। एक बार पत्र को ध्यान से पढकर उसने कहा, "वाह। बहुत सुन्दर लिखा है पत्र। विशेषतः" इसमें जो त्रुटियाँ होगी उसके लिये क्षमा पराथना है, "यह वाक्य तो बहुत-ही सुन्दर लिखा गया है।" ऐसा कहकर उसने मेरी खिल्ली उडाना शुरू कर दी। चिढकर जब मैं पत्र फाडने लगी तब उसने मुझे समझाया। भैया ने जो मज़ाक उडाया था उसका मुझे इस कारण गुस्सा आया था कि आज उस पत्र की गलतियो और स्याही के धब्बो को मैं जान सकती हूँ किन्तु उस समय मैंने ऐसा नहीं सोचा था। मुझे वह पत्र खूब भाया था और उसके लिखने मे जो समय व्यतीत हुआ था उसे मैंने निरर्थक नही माना था। मैं जो लिखना चाहती थी उसका दसवाँ भाग भी नहीं लिख पाई थी और जितना अच्छा लिख सकने का मुझे विश्वास था उतना बिलकुल नही लिखा गया था, किन्तु जो लिखा गया है वह निरर्थक नहीं है ऐसी मेरी धारणा थी। आखिर जैसे-तैसे वह पत्र भेजा गया और अब उसके उत्तर मे क्या लिखकर आता है इसकी मन को उत्सुकता लग रही थी। यहाँ से डाक कब जाती है बम्बई को पत्र कब पहुँचता है, मेरा पत्र उन्हें कब मिलेगा आदि प्रश्न पूछकर मैंने भैया को परेशान कर दिया। मेरे प्रश्नो की बौछार से वह चिढा नही केवल हँसकर उसने इतना ही कहा, "क्या दुनिया में तुम ही एक पत्र लिखने वाली हो ? और कोई क्या लिखना ही नही जानता ?" मैंने भी उत्तर मे कह दिया "मैं जानती हूँ कि मैं अकेली लिखने वाली नही हूँ किन्तु भाभी तो इतना भी लिखना नही जानती।"

कहने को तो मैं कह गई किन्तु बाद में मुझे इसके लिए बहुत खेद होता रहा। मुझे दुःख हो रहा था कि व्यर्थ मे मैंने इन शब्दों का उच्चारण किया। मेरे शब्द भैया को चुभे थे या नही, इसे मैं नही जान सकी क्योंकि उसने अपने मनोभावों को छिपाते हुए मुझसे कहा, "तुम लिखना जानती हो इसी मे मुझे सतोष है। ऐसा ही खूब पढ-लिखकर विदुषी बन जाओ।" उसके इस शान्त और सुशील उत्तर को सुनकर मुझे जितना दुःख हुआ उतना यदि वह मुझे दो तमाचे भी जमा देता तो नहीं होता। अपनी मूर्खता पर मुझे दुःख हो रहा

था। आखिर मुझसे नही रहा गया और मैंने कहा, "भैया बुरा न मानो, मुझे माफ कर दो, मैंने केवल मजाक करना चाहा था।"

दूसरे दिन मैं बडी उत्सुकता से अपने पत्र के उत्तर की बाट देख रही थी, किन्तु मेरी उत्सुकता व्यर्थ सिद्ध होनी थी। तीन-चार पाँच दिन हो गए फिर भी पत्र नही आया। मैं मन-ही-मन कुढती रही। और फिर एक दिन बम्बई का पत्र मुझे मिल ही गया।

४३

मुझे पढने मे सुविधा हो, अपना पत्र दूसरे से पढवाने का मौका न आए, इस दृष्टि से वह पत्र बडी सावधानी से सुवाच्य अक्षरो मे लिखा गया था। पत्र भेजने के लिए जो देर हुई थी उसकी पूर्ति करने के लिए पत्र खूब विस्तार-पूर्वक लिखा गया था। मेरा पत्र अशुद्धियो और स्याही के धब्बो से रगा होने पर भी उसके लिए एक भी निन्दनीय शब्द पत्र मे नही लिखा गया था। उलटे पत्र लेखन के लिए मेरी सराहना की गई थी। यदि इसी प्रकार लिखती रहूँगी तो दो-चार बार लिखने पर मैं सुन्दर पत्र लिख सकूँगी, ऐसा मुझे उत्साहित किया गया था। बम्बई मे जिस दिन से पैर रखा गया था तब से जो-जो बाते हुई थी उनका ब्यौरा लिखने पर भी मन को समाधान नही हो रहा था इस-लिए इन चार-पाँच दिनो मे जो स्वप्न देखे थे उनका वर्णन भी पत्र मे किया गया था। मैंने बनाया हुआ पान का बीडा न दे सकने के बारे मे उन्होने अपने पत्र मे उल्लेख किया था—उसके सम्बन्ध मे कुछ विनोद किया गया था, कुछ खेद प्रकट किया गया था और अन्त मे लिखा था कि इस प्रकार के उस ऐति-हासिक पान को सम्हालकर रखा जाय और पुन भेट होने पर अवश्य दिया जाय। इस प्रकार उन सुन्दर हाथो से तथा शुद्ध और प्यार भरे मन से लिखा

गया वह पत्र आज भी एक बार दो बार, तीन बार पढ़ने में मेरा मन उद्विग्न हो जाना स्वाभाविक ही है।

पति द्वारा पत्नी को लिखे गए पत्र में जो प्रेमाभिव्यक्ति होती है वह उस पत्र में थी। स्वप्न में एक-दो बार मुझे देखा गया था उसके बारे में विनोद किया गया था। बम्बई को शीघ्र ही ले जाने के लिए क्या व्यवस्था की गई है और क्या होना शेष है इसकी जानकारी दी गई थी, मेरे उतावलेपन का मजाक भी उडाया गया था। हर समय मेरी याद कैसे आती रहती है, क्लाथ मार्केट से गुजरते समय एकाद साडी खरीद करने की इच्छा के साथ ही मेरा स्मरण कैसे हो आया इसका भी पत्र मे उल्लेख था। ससुराल के लोग, दादी, भैया, नई माँ आदि की कुशल-क्षेम पूछी गई थी, मेरी सहेली दुर्गी की भी पूछ-ताछ की गई थी। ये तो साधारण बातें थी। मुझे लिखे गए पत्र मे इन बातो का समावेश होना अपरिहार्य ही था। किन्तु केवल इतना ही नही लिखा गया था, पत्र मे कालेज विषयक और नवपरिचित दो-चार मित्रो के सम्बन्ध मे भी जानकारी दी गई थी। अन्त मे मेरे बारे मे जो तारीफ के पुल बाँधे गए थे उसे पढकर मैं फूली नही समाई थी। मुझ-जैसी द्वारा लिखा गया वह जरा-सा पत्र, किन्तु उसका कितना बडा गुणगान किया गया था। पत्र का उत्तर विलम्ब से दिया जाने के कारण मेरी नाराजगी की कल्पना करके लिखा गया था कि, "तुम्हारे पत्र का चार दिन तक मैंने उत्तर नही दिया इस कारण तुम्हारा नाराज होना स्वाभाविक ही है, तुमने प्रति दिन पोस्टमैन की राह देखी होगी, और तुम्हारा पत्र न देकर उसे जाता देखकर तुम्हे बडी निराशा हुई होगी। उस निराश अवस्था मे तुमने मेरे लिए आलसी, बेफिक्र आदि कई विशेषणो का उपयोग किया होगा। बडा ही गुस्सा आया होगा किन्तु मैं तो इस समय तुमसे बहुत दूर हूँ, तुम्हारा गुस्सा उतारकर तुम्हे पुन प्रसन्न करने के लिए उपाय भी क्या कर सकता हूँ ? मैं जानता हूँ कि फुरसत नही मिली, काम मे व्यस्त था आदि कहने से तुम्हारा समाधान नही हो सकता। इसलिए अबकी बार माफ कर दो, भविष्य मे फिर कभी ऐसा नही होगा।' ' '

पत्र आने के बाद से मेरे पाँच-छै दिन बडे सुख से व्यतीत हुए थे। दादी के आ जाने से नई माँ की जबान कुछ कम चलती थी। वैसे उसे दादी का विशेष लिहाज नही था किन्तु आखिर वह सास ही तो थी।

दादी और मैं एक-दो बार दुर्गी के घर गई थी। दुर्गी के दिन अब पूर्ण हो चुके थे। वह बहुत ही निस्तेज और क्षीण दिखाई देती थी। बेचारी की बडी बुरी हालत थी। मन-ही-मन वह कुढा करती थी। रात-दिन उसके मन मे अपनी परिस्थिति और बेकार पति के सम्बन्ध मे विचार आया करते थे। कई बार वह कह चुकी थी, "यमुना, मुझे तुम-जैसे सौ-दो सौ रुपयो की आवश्यकता नही, यदि दस रुपये मासिक भी वे कमा लायँगे तो मैं व्यवस्थित ढग से अपनी गृहस्थी जमा सकती हूँ, किन्तु इतना भी मेरा भाग्य कहाँ ?"

दुर्गी के इन शब्दो को सुनकर मेरा मन रो उठता था। दुर्गी बहुत बुद्धिमान लडकी थी। यदि योग्य पति उसे मिलता तो उसकी बुद्धिमानी और भी निखर जाती। उस कौए के गले मे मढी जाने के कारण उसके समस्त गुण, होशियारी उत्साह और अभिमान की राख हो गई थी। उसका पति बडा ही बेशरम व्यक्ति था। चोरी का कलक लगने पर भी वह कभी-कभी माँ से लड-झगड कर ससुराल चला जाता और वही खा-पीकर सो जाता था। उसे कोई कुछ कह भी नही सकता था। यदि उसके खाने-पीने और सोने मे कुछ अव्य-वस्था हो जाती तो घरवाली और सास-ससुर को गाली देने मे भी वह नही चूकता था। दुर्गी के माँ-बाप और दादी-बेटी की चिन्ता से झुके जा रहे थे। कर भी क्या सकते थे। एक दिन दुर्गी की दादी ने मेरी दादी से कहा, "हमारे दिल मे यह भाले की नोक अब हमेशा के लिए गड चुकी है, न ज ने क्या होना है। देख रही हो, लडकी की क्या हालत हो रही है ? मुझे तो इसकी प्रसूति की बहुत ही चिन्ता है। "अतिम वाक्य कहते हुए उस वृद्धा का चेहरा बिगड गया था जिससे पता चलता था कि दुर्गी की सुरक्षा के बारे मे उन्हे विशेष आशा नही थी। दुर्गी को भी मायके मे सुख कहाँ था ? उसका पति जब उसके मायके मे आ जाता था तो सकोच और लज्जा से वह जमीन मे गड जाती थी। स्वय दुर्गी की भी यही धारणा थी कि इस प्रसूति मे वह जीवित नही बचेगी। मनुष्य को जीवन सबसे अधिक प्यारा होता है किन्तु जब सुख की कोई आशा शेष नही रहती और भविष्य मे न जाने कौन-सी आपदा आ घेरेगी इसकी आशका बनी रहती है तब उस सकट से बचने के लिए उसे मृत्यु से अधिक स्नेह हो जाता है। दुर्गी का यही हाल था। मै जितनी बार उससे मिलने गई थी उतनी बार उसने कहा था, "यमू दीदी, अच्छा होगा यदि मैं

मर जाऊँ। मेरा छुटकारा होगा और माँ-बाप का पिंड छूटेगा।" उसे इस प्रकार कहते सुनकर मुझे बहुत दु ख होता था, किन्तु उसे सात्वना देने के लिए मैं कहा करती थी। "दुर्गी, यह तुम हमेशा क्या कहा करती हो ? इस प्रकार अमगलकारी शब्दों का उच्चारण नहीं करना चाहिए। तुम गर्भवती हो, तुम्हे ऐसे शब्द मुख से नही निकालने चाहिएँ। तुम्हारी हालत देखकर क्या हम लोगों को दु ख नही होता ? आज नही तो कल, तुम भी अच्छे दिन देखोगी। आजीवन ऐसी अवस्था नही रहेगी।"

एक दिन की बात है, उसका पति उसके घर आया और झगडा करके चला गया। पति ने दुर्गी से कहा, 'तू इसी समय अपने घर को चल। मायके मे अब रहना नही होगा। घर को चल वही प्रसूती होगी। इन लोगो का फिर कभी मुँह देखूँ तो चार-बाप का कहलाऊँगा। अपने धन का बडप्पन दिखाते हैं। चल, अभी इसी समय मेरे साथ चल।" इस प्रकार जोर-जोर से चिल्लाकर वह दुर्गी को खीचना चाहता था। यह देखकर उसकी सास ने कहा, "अरे, यह क्या कर रहे हो ?" उसे नवा महीना चल रहा है, प्रसूति का समय अति निकट है और तुम यह क्या कर रहे हो ?" उसने इतना ही कहा था कि दुर्गी के पति ने और भी चिखना, चील्लाना शुरू कर दिया, "रास्ते मे प्रसूति हो जाय फिर भी चिंता नही, किन्तु आज मैं उसे अपने साथ लेकर ही जाऊँगा। चल-चल इस घर मे से। नही तो अपना विचार देख ले। लात जमाऊँगा एक, छोडूंगा नही—इन लोगो को बडा घमण्ड हो गया है।" इतना कहकर उस नराधम ने हाथ पकडकर उस गौ को खीचना शुरू कर दिया। क्या करे बेचारी रोना भी उसके लिए मना था। चुपचाप अपनी पुरानी साडी बगल मे दबाकर जाने के लिए तैयार हो गई। उसका बाप घर मे नही था। उनके घर लौटने तक ठहरने के लिए वहिणा काकू दुर्गी के पति से मिन्नते कर रही थी। किन्तु वह नर-पशु कब मानने वाला था। बाँह पकडकर उसने दुर्गी को घसीटा। दुर्गी ने असहाय होकर माँ की ओर देखते हुए केवल "माँ" इतना ही कहा। उसकी माँ बडी तेज मिजाज की थी। अब तक वह चुपचाप खडी थी किन्तु लडकी का हाल अपनी आँखो से देखकर उसे तैश आ गया। आगे बढकर उसने लडकी का हाथ पकडकर उसे पीछे खीचा और स्वय आगे बढकर गुस्से से तमतमाते हुए उसने कहा, "नही जायगी यह। देखती हूँ कैसे ले जाते हो।

घर मे कोई पुरुष नही यह देखकर ऊधम मचा रखा है ।" इस प्रकार कडककर उसने दुर्गी को अपने पीछे छिपा लिया । यह देखकर वह नामर्द एक-एक कदम पीछे हटता हुआ गाली-गलोच करता रहा । वह दरवाजे पर पहुँचा और उसी समय दुर्गी के पिताजी को घर आते देखकर रफू-चक्कर हो गया ।

उपरोक्त घटना के कुछ समय बाद ही मै दुर्गी के घर गई थी । वे लोग सतप्त हुए बैठे थे । एक कोने मे बैठी दुर्गी रो रही थी । बेचारी और कर भी क्या सकती थी ? उस दिन मै उनके घर रह गई । मै अपनी ओर से दुर्गी को सात्वना देने का भरसक प्रयत्न करती रही । किन्तु उसके मन की अस्वस्थता को कौन मिटा सकता था । प्रसगोपात्त कुछ भाषण करना आवश्यक था इसलिए मैं उसे समझा रही थी, "दुर्गे, ऐसा न करो । तुम गर्भवती हो, विपरीत परिणाम होने की सम्भावना रहती है । आज नही तो कल उसका स्वभाव बदलकर वे ठिकाने आ जायँगे ।"

मेरा अतिम वाक्य सुनकर दुर्गी विचित्र ढग से हँस दी । उसकी वह विचित्र हँसी देखकर मैं सहम गई । पहले ही उसके चेहरे पर मुर्दनी छाई थी और फिर वह विचित्र हँसी । मेरी ओर टक-टकी लगाए उसने कहा, "यमू, तुम्हे बता दूँ कि मैं कब सुखी हो सकती हूँ ?" मैंने कुछ नही कहा, क्योकि उसकी वह विचित्र हँसी और टक-टकी लगाकर देखने से मै भयभीत हो उठी थी । मैं केवल उसकी ओर अपलक दृष्टि से देखती रही । तब उसने कहा, "देखो यमू, या तो मुझे मरना होगा या फिर उनका कुछ भला-बुरा होना होगा, इसके अतिरिक्त इस आपदा से मेरा छुटकारा नही हो सकता ।"

इस भयकर शब्दो को सुनकर मेरे रोगटे खडे हो गए । दुर्गी का हाथ पकडकर उसे झकझोरते हुए मैंने कहा, "दुर्गी—दुर्गी, तुम्हे क्या हो गया है ? तुम यह कैसी बकवास कर रही हो ।"

किन्तु उसने मुझे आगे नही बोलने दिया । आँखे तरेरकर होठ चबाते हुए उसने कहा, "यदि मैं इस प्रसूति मे मर गई तो ठीक होगा नही तो मैं स्वय आत्मघात कर लूँगी । और यदि नही, तो फिर " मै समझ गई कि अब वह कुछ भयकर बोलना चाहती है । उसका चेहरा दमक रहा था । उसके मन मे समाए विचार अब उसकी छाती फाडकर बाहर निकलना चाहते है ऐसा मुझे लगा, इसलिए उसके मुँह पर हाथ दबाकर मैं उसे चुप कराना चाहती

थी तभी उसने आँखें फेर दी और वह मेरे शरीर पर लुढक पडी। वह बेहोश हो गई थी। मैं घबडा गई, उसकी माँ भागकर पास आ गई। दुर्गी का शरीर काष्ठवत हो गया था। मुँह पर पानी के छीटे मारने पर बहुत देर बाद उसे होश आया। दुर्गी को होश आ जाने पर मैंने उसे सुला दिया और फिर अपने घर लौट आई। किसी प्रकार दुर्गी का विचार मन मे नही हट रहा था। उसके कहे हुए वे भयकर शब्द कानो मे गूँज रहे थे। किसी बात की अति हो जाने पर मनुष्य के क्रोध का आपे मे बाहर हो जाना स्वाभाविक होता है। वर्तमान आपदाओं की अपेक्षा वैधव्य की नारकी यातनाओ को उसने अधिक पसद किया था—पसद करना स्वाभाविक ही था। दोपहर की घटना को लेकर कितनी ही शान्त प्रकृति का मनुष्य क्यो न हो, उसे क्रोध हो आना स्वाभाविक कहा जा सकता है, फिर आज तक के क्लेशो से जो तग आ गई है, जिसे हर समय परेशान किया गया है, जो दुःख से झुलस गई है और गालियो से जो क्षत-विक्षत हो गई है, ऐसी वह अल्हड दुर्गी यदि क्रोधवश अपने पति के बारे मे ऐसी बाते कह दे तो इसमे आश्चर्य करने की कौन-सी बात है ?

४४

दुर्गी का हाल देखकर मेरा मन अस्वस्थ हो उठा था। भविष्य के बारे मे दुर्गी की कोई आशा शेष नही थी। प्रसूति मे अपना अत होने की उसे अभिलाषा थी। यदि अन्त नही होता तो आत्मघात करने के लिए वह तत्पर थी और यदि वह भी न हो सका तो अपने उस शैतान दुष्ट, दुर्योधन पति का अन्त हो ऐसी इच्छा उसने मेरे सामने व्यक्त की थी। अपने कहने पर पश्चाताप व्यक्त करने की अपेक्षा वह भयानक रूप से हँस दी थी। उस भयानक हँसी

ने उसकी मनोदशा का स्पष्ट चित्र खीच दिया था। जिसके लिए हम स्त्रियो के मन मे सर्दैव पूज्य भाव बना रहना है, सारा गाँव निन्दा करता हो फिर भी जिसे देवता मानकर हम सेवा किया करती है, उसके जीवित होने मे ही हम अपने आपको जीवित मानती है, जिसके हँसने पर हम भी हँस देती है, जिसकी हर बात को हम शिरोधार्य मानती है, किसी बात के लिए मना करने पर हम उस बात को कभी नही करती, बैठने के लिए कहने पर बैठती है और उठने के लिए कहने पर उठती हैं, एक गाल पर तमाचा मारते ही अपना दूसरा गाल जिसके सामने कर देती हैं, लात मारने पर कही चोट तो नही आ गई इस भय से हम उस लात को दबाती है, जिसके लिए हमारे मन मे सदैव सम्मान बना रहता है, जिसकी तबियत सम्हालने के लिए हम अपनी तबियत का जरा भी खयाल नही करती, जिसकी अच्छाई पर हमारी भलाई निर्भर रहती है, उस पति देव का अन्त होने तक की जिसने इच्छा व्यक्त की, जिसके मर जाने पर विधवा होने पर, प्राप्त होने वाली यम-यातनाओ और अति क्रूर विडबनाओ को भी जो सुसह्य मानती है उस दुर्गी के मन मे उस चाडाल के प्रति कितनी तीव्र घृणा हो सकती है। इसका अन्दाज किया जा सकता है। दुर्गी की अब दृढ धारणा हो चुकी थी कि जिस दिन उस दुष्ट से सम्बन्ध टूट जायगा वही उसके लिए सुदिन होगा। उसी दिन उसका इन यम-यातनाओ से छुटकारा होगा।

इन दिनो नई माँ का हम लोगो के साथ बडा विचित्र बर्ताव हो रहा था। हम लोगो के साथ उनका दुहरा बर्ताव कैसे होता था इसके बारे मे मैं पहले कह चुकी हूँ। पिताजी के सम्मुख हमारे साथ जो बर्ताव किया जाता था बाद मे उसके विपरीत किया जाता था। हमारे पीठ-पीछे जो कहा जाता था वह हमारे विरुद्ध रहता था और हमारे सामने हमारे दुर्गुणो पर भी पर्दा डालने का दिखावा किया जाता था। इन दिनो इस बर्ताव का आधिक्य हो जाने से मुझे इसका पुनः उल्लेख करना पडा। विशेषत जब से दादी घर मे आई थी तब से यह दिखावा विशेष रूप से किया जा रहा था। दादी को भी आश्चर्य हो रहा था। एक दिन रात को दादी ने मुझ से पूछा भी था, "यमू, आजकल बहूरानी मे बडा परिवर्तन दिखाई देता है, क्या बात है ? क्या उनकी

माताजी यहाँ नही है इस कारण यह हुआ है ? सुना है कि वे बहुत जल्दी लौटकर आ रही हैं। तब तो शायद वही पुरानी परिपाटी चल पडेगी।"

दादी की बात सुनकर मुझे हँसी आ गई किन्तु बरबस मैने रोकली। क्योकि दादी के सम्बन्ध मे नई माँ को मैंने जो कहते सुना था और उसके नाम से उनकी चढी हुई त्योरियाँ जो मैं देख पाई थी उन्हे ध्यान मे लेकर नई माँ के रग-ढग से मै पूर्ण परिचित थी। किन्तु दादी से मैंने कुछ नही कहा, उलटे उत्तर मे कह दिया, "हाँ, आजकल यह पुराना बर्ताव शायद जाता रहा है। आजकल तो हम भाई-बहनो के सम्बन्ध मे इतना प्रेम प्रदर्शन हो रहा है कि देखने वाला यह नही जान सकता कि हम उसके सौतेले लडके है। अब तुम्हे चिंता करने का कोई कारण नही है।"

मेरी बात को सुनकर दादी को सतोष हुआ, उसने कहा, "ऐसा ही होना चाहिए। नही तो तुम्हारा मुँह पूर्व की ओर और उसका पश्चिम की ओर, इसमे क्या धरा है। मुझे तुम्हारे बारे मे कोई चिता नही है, मुझे चिंता है गणू के बारे मे। तुम तो अपने घर चली जाओगी, अपनी गृहस्थी मे रम जाओगी। यदि तुम्हारे साथ इसका बर्ताव अच्छा रहा और चार दिन को इसने रहने के लिए तुम्हे बुलाया तो फुरसत पाने पर तुम इस घर मे आओगी। नही बुलाएगी तो तुम्हारे लिए तुम्हारा घर बना है। किन्तु इन गणू का क्या हाल होगा ? वह बहुत सीधा-सादा है। किसी ने उसे 'क्यो रे' कहा तो उलटकर 'क्योरे' भी नही कहेगा। भोजन करते समय किसी-चीज की माँग भी नही करेगा। उसकी घरवाली को बडी होकर अपने घर की व्यवस्था देखने मे अभी विलम्ब है। इसलिए हमेशा चिन्ता बनी रहती है कि गणू का क्या हाल होगा ? किन्तु आजकल घर मे जो वातावरण है उसे देखकर लगता है कि चिंता करना व्यर्थ है।"

दादी की बात सुनकर मैंने हाँ मे हाँ मिला दी। कम अधिक कुछ नही कहा। और कहना भी क्या था ? उसे परिस्थिति की पूर्ण जानकारी देने से क्या लाभ था ? व्यर्थ मे उस बेचारी को एक हृद्रोग लग जाता।

आजकल एक बात विशेष रूप से मेरे ध्यान मे आ रही थी और वह थी नई माँ की उदासी। पहले-जैसी फुरती और उल्हास उसमे दिखाई नही देता था। उनकी वह सज-धज और बनाव-सिगार भी विशेष रूप से दिखाई नही

देता था। छपी हुई साडियो के बजाय मलमल की सफेद धोतियाँ वे आजकल पहनती थी। उनकी चोलियो मे भी सादगी थी और आभूषण कम उपयोग मे आते थे। बनाव-सिंगार की जिसे आदत होती है वह मनुष्य जब प्रयत्नपूर्वक अपनी आदत को दबाना चाहता है तो यह बात दूसरो की दृष्टि मे आ ही जाती है। मैं तो नई माँ को हमेशा ध्यानपूर्वक देखा करती थी इसलिए मेरी दृष्टि से यह परिवर्तन छिप न सका। साथ ही मैं जान गई थी कि यह सब कुछ जान-बूझकर किया जा रहा है। किन्तु इसका कारण मेरी समझ मे नही आ रहा था। और इसी समय दो घटनाएँ ऐसी हो गई जिससे मैं हतबुद्धि-सी हो गई।

एक दिन दोपहर के समय घर मे सुनसान-सी हो रही थी। दादी रसोई-घर मे सोई थी और सुन्दरी भी उसी के पास पडी-पडी सो गई थी। नई माँ शायद कही बाहर गई थी या ऊपर वाले कमरे मे थी। मै दादी के पास लेटी थी, भाभी सुबह अपने मायके चली गई थी। मन मे न जाने क्या विचार आया और मैं रसोई-घर से उठकर भैया के कमरे मे जाने के लिए चली गई। जाते-जाते पिताजी के बैठक वाले कमरे मे पडे हुए समाचार-पत्र की ओर मेरा ध्यान गया। समाचार-पत्र उठाने के लिए मैं उस कमरे मे चली गई। इस कमरे के दूसरी ओर पिताजी का शयन-कक्ष था। उस कमरे का दरवाजा अधखुला था। पहले मेरा ध्यान उस कमरे की ओर नही गया था, मैं सीधी समाचार-पत्र उठाने चली गई। उसमे बडे अक्षरो मे लिखा था, 'स्त्री-शिक्षा की आवश्यकता'—क्या लिखा है यह जानने की उत्सुकता-वश मे वही बैठकर उस लेख को मन ही मन पढती रही और इसी समय शयन-कक्ष से मैने किसी को बोलते सुना। कोई कह रहा था—"तुम कहती हो तो मैं कह दूँगी, किन्तु इतने रुपयो के बिना यह काम नही हो सकेगा। और फिर दस रुपए तुम्हारे लिए कोई बहुत बडी रकम तो है नही।"

ये शब्द किसी अपरिचित व्यक्ति के थे। इससे पहले अवश्य ही कुछ सम्भाषण हो चुका था क्योकि ये शब्द सम्भाषण के आरम्भ के नही हो सकते थे। यह क्या प्रकरण है ? दस रुपए किस बात के ? यह कौन किसे कह रहा है ? मेरी समझ मे कुछ नही आ रहा था—मैं चकरा गई। यदि कोई कुछ गुप्त वार्ता कर रहा है तो उसे छिपकर सुनने की अपेक्षा वहाँ से उठकर चला

जाना योग्य होगा यह सीधा-सा मार्ग मेरे ध्यान मे नही आया। मैं भौचक्की-सी वही बैठी रही—"उपरोक्त प्रश्न का उत्तर मैंने सुना, "मौसीजी, तुम्हारा कहना ठीक है किन्तु जब मेरे पास नही है तो दस रुपए मै कैसे दे सकती हूँ ? अपने प्राण तो··· " आगे क्या कहा गया वह मुझे सुनाई नही दिया। अतिम शब्द किसने कहे थे वह मैं जान गई। फिर भी रहस्य मेरी समझ मे नही आ रहा था। यह मौसी कौन है ? नई माँ की मौसी का मुझे आज तक कैसे पता नही चला ? और वह दस रुपए किस बात के माँग रही है ? यह क्या मामला है ? होगा कोई रहस्य, मुझे क्या पडी है, ऐसा सोचकर मैंने वहाँ से उठकर चला जाना चाहा किन्तु इसी समय फिर कुछ शब्द सुनाई दिए, "अब तुम ही सोच लो। तुम्हारी माँ ने काशी जाते समय मुझसे कहा था, उसके बाद तुमने भी दो-चार बार कहा इसलिए मैंने यह झमेला मोल लिया और अब तुम ही इन्कार करती हो तो मैं उन महाशय से जाकर क्या कहूँगी ? व्यर्थ ही मे मुझे ··· · " फिर इसके आगे मुझे सुनाई नही दिया, किन्तु इतने शब्द सुनकर ही मेरा कलेजा धक्-धक् करने लगा था और वहाँ से उठकर चली जाने की अपेक्षा आगे क्या सभाषण होता है इसे सुनने की मुझे तीव्र इच्छा हो रही थी। झूठ बोलने से क्या लाभ किन्तु बचपन से ही कोई कुछ करना हो या कहता हो तो उसे जानने की मुझे तीव्र इच्छा रहती थी, इसलिए न चाहने पर भी मेरी नैसर्गिक प्रवृत्ति ने मुझे वहाँ से न हटने के लिए बाध्य कर दिया इसमे विशेष आश्चर्य करने का कारण नही। आगे क्या होता है यह जानने की मुझे तीव्र इच्छा हो रही थी। ऐसी इच्छा करना ठीक नही, उसे दबा देना चाहिए, ऐसा विचार मेरे मन मे आ रहा था किन्तु उससे अधिक बलवान विचार भी मन मे आ रहा था कि अब यहाँ से उठकर जाना ठीक नही होगा। उठने से आहट पाकर शायद नई माँ को मालूम हो जायगा। उनका सम्भाषण मैंने छिपकर सुन लिया है यह जानकर उनका नाराज होना स्वाभाविक ही था। इसलिए उत्तम मार्ग यही है कि यहाँ से अब हिलना नही चाहिए। प्रथम विचार पर द्वितीय विचार ने विजय पा ली और अच्छा हो या बुरा किन्तु मै उसी स्थान पर बैठी रही। समाचार-पत्र देखने का केवल बहाना मात्र था, मेरा ध्यान शयन-कक्ष की ओर लगा था। कुछ देर तक उनका सम्भाषण बहुत धीमे स्वर मे चलता रहा जिसे मैं नही सुन सकी। एक बार तो मन मे विचार आया कि

दरवाजे के पास जाकर सम्भाषण सुन लूँ किन्तु मेरे सत्प्रवृत्त मन ने इस इच्छा को तत्काल दवा दिया । "नही, नही, छिपकर सुनना । अतिनिद्य है । इतनी देर तक सुना वही अनुचित है, अब क्या इससे भी अधिक अनुचित कर्म करना चाहती हो?" कोई तीव्र शब्दो मे मेरी इस प्रकार भर्त्सना कर रहा है ऐसा मुझे लगा और मैं वही बैठी रही । कहावत है कि छिपकर सुनने वाले को स्वय उसकी की गई निन्दा सुननी पडती है । इस कहावत का मुझे उस दिन प्रत्यय आया था । नई माँ कह रही थी, "जरा ठहरो, मै देखकर आती हूँ कि वह चुगल चोट्टी कहाँ है ? सासूजी सो रही है किन्तु वह कही चक्कर लगा रही होगी । कही तुम्हे देख लेगी । मेरा क्या बिगाड सकती है किन्तु यहाँ वहाँ ·

बडी बदमाश लडकी है । मै तो उसे फूटी आँख से भी देखना नही चाहती, किन्तु क्या किया जाय । ह—वे रुपए और बिछुए पल्लू मे बाँध लो··· कोई जान लेगा तो जानले, मैं किसी के बाप से नही डरती किन्तु" · इतने शब्द मैंने सुन पाए और नई माँ को दरवाजे पर हाथ धरते देखा, किन्तु दरवाजा खोलने के लिए नही, शायद बन्द करने के लिए उन्होने पकडा था । तो क्या उन्होने मुझे देख लिया था इसलिए दरवाजा बन्द करना चाहा था ? यह विचार मन मे आते ही मैं सिटपिटा गई अब क्या होगा ? पहले ही उसे मुझ से घृणा है और अब तो · अब कमरे का दरवाजा बन्द हो चुका है तो यहाँ बैठे रहना ठीक होगा या यहाँ से उठकर चला जाना ? आखिर घबडाकर मैं वहाँ से उठकर सीधी भैया के कमरे मे जा पहुँची । किन्तु मन बडा विचित्र होता है । आगे क्या होता है, वह स्त्री कौन है ? यह सब जानने की इच्छा तीव्रतर हो उठी और अपने बर्ताव के युक्तायुक्त का विचार न करके मैं सीढियो के उस पार जाकर खडी हो गई ।

इसी समय नई माँ कमरे के बाहर आ गई । इधर-उधर झाँक कर वह दूसरी ओर चली गई । एक बार रसोई-घर वाले कमरे मे झाँक कर वह फिर लौट गई और कमरे से अपने साथ उस स्त्री को ले आई । उस स्त्री की मेरी ओर पीठ होने से मैं उसकी सूरत नही देख सकी । वह खूब मोटी, कद मे छोटी थी और कुछ लगडाकर चल रही थी । जाते-जाते वह कह रही थी, "तो मैं उन्हें यह देकर कह दूंगी कि इतने मे जो कुछ हो सकता है वह करो और··· ···" किन्तु नई माँ ने उसे बीच मे ही दाबकर कहा, "चुप-चुप—कुछ बोलो

नही, अब चुपचाप यहाँ से चली जाओ और अब पद्रह दिन तक फिर न आना, मैं तुम्हे बुलवा लूँगी ।" इसके आगे मै सुन न सकी । वे दोनो सीढियो से नीचे उतर गई थी । मैं वही आश्चर्य मे डूबी खडी रही । नई माँ जब सीढियो से ऊपर चढकर आ रही थी तब मैं नीचे उतर रही थी । नई माँ ने मुझे देखा मेरे प्रति उनके चेहरे पर तिरस्कार दिखाई दे रहा था । चोर की दाढी मे तिनका—मेरा खयाल है कि नई माँ ने मुझे वहाँ बैठी देख लिया था । यदि यह सही हो तो अब मुझे देखकर उनकी मुद्रा पर तिरस्कार का भाव दिखाई देना स्वाभाविक ही था । उन्होने कहा, 'कहिए यमुना देवी, भैया के कमरे मे बैठकर क्या पढ रही थी ?" मैने उनके प्रश्न का कोई उत्तर नही दिया ।

जरा-सी बात क्यो न हो, उसे भैया से कहे बिना मुझे चैन नही पडता था। आज मैंने जो आश्चर्यजनक घटना देखी थी, जो सम्भाषण सुना था और सुनकर मेरे मन मे जो विचार आए थे—जो शका मुझे हो रही थी, वह सब मैं भैया को बताना चाहती थी । इसके सम्बन्ध मे दादी से कुछ कहना व्यर्थ था वह बेचारी इन मामलो मे क्या कर सकती थी ? उसे बताने से व्यर्थ मे कलह ही होना सम्भव था । दादी पुराने ढग की-सी सीधी-सादी स्त्री थी । यदि कुछ सुन लिया तो तत्काल उसका स्पष्टीकरण चाहने वाली थी । कपट नामक चीज को वह जानती ही नही थी । बचपन मे जरा-सी कोई बात सुन लेने पर मै दादी से जाकर कह देती थी किन्तु अब वह आदत जाती रही । कौन-सी बात उसे कहना और कौन-सी नही, इसका तारतम्य अब मुझ मे आ गया था । इसलिए दादी से कहने की अपेक्षा मै ऐसी बाते उससे छिपाना चाहती थी । वह स्त्री कौन थी, किस काम से आई थी, रुपए किस लिए माँग रही थी, नई माँ ने पहले तो रुपए देने से इकार कर दिया था किन्तु बाद मे क्यो दे दिए, कितने रुपए दिए आदि बातो को मै जानना चाहती थी । दादी को बताने से रहस्य-भेद नही हो पाता । अपितु कुछ अनर्थ ही हो सकता था, इसलिए मैंने दादी से कुछ नही कहा । मेरा खयाल है कि मैने ठीक ही किया था ।

शाम को भैया जब घर आया तो मौका पाकर मैंने उसे सम्पूर्ण घटना सुना दी, सुनकर वह मौन बैठा रहा । मैंने कहा, "क्यो, सुनकर चुप क्यो हो गए ?"

कुछ देर के बाद धीमे स्वर मे उसने कहा, "यमू, क्या वह ग्रौरत खूब मोटी ग्रौर कद मे छोटी थी ?"

"हाँ, हाँ। क्यो ?"

"कुछ नही, नई माँ की माताजी के काशी जाने से पहले मैंने दो-चार बार ऐसी एक स्त्री को उनके पास ग्राते देखा था। क्या उसकी नाक कुछ चपटी थी ? ग्रौर ग्राँखे बडी-बडी ?"

"मैं उसकी सूरत को नही देख सकी, मेरी ग्रोर उसकी पीठ थी। बैठक से बाहर निकलकर वह सीढियो से सीधी नीचे उतर गई। उसके पैर की पिंडलियाँ खूब मोटी थी। शायद नई माँ की माताजी की कोई विशेष परिचित हो। काशी जाते समय उन्होने कहा होगा कि जरा लडकी की देख-भाल किया करो—"

बीच ही मे भैया ने कहा, "नही, ऐसा नही होगा। कितने, दस रुपए माँग रही थी ? ग्रौर क्या कहती थी कि उनसे कहूँगी—'उनसे' से क्या मतलब है ? रुपए किस बात के ? ग्रौर पैर के बिछुए· · ·"

ग्रतिम वाक्य कहते-कहते उसका स्वर कुछ ऊँचा हो गया था। मैंने झट से उसके मुँह पर हाथ दबाकर कहा, "भैया, यह तुम क्या कर रहे हो ? कहाँ बैठे हो ग्रौर क्या कह रहे हो, इसका तुम्हे कुछ ध्यान है ? ग्रभी कोई सुन लेगा तो ?—"

"हाँ यमू, मुझे भान नही रहा—" बहुत धीमे स्वर मे उसने कहा, "देखो, मेरे मन मे एक विचार ग्रा रहा है कि—"इतना कहकर वह चुप हो गया। कुछ देर के बाद बात को घुमाकर उसने कहा, "होगा उनका कोई मामला, हमें उससे क्या सरोकार ? हाँ यमू, यह तो बताग्रो कि तुम्हारी दुर्गी का क्या हाल है ? ग्रब उसके दिन पूर्ण हो चुके हैं ना ? मुझे उस बेचारी के लिए बहुत दुःख है।"

भैया की उडी-उडी बातें सुनकर मुझे ग्राश्चर्य हो रहा था किन्तु मैं इतने सस्ते में उसे कैसे छोड देती ? मैंने झट से कहा, "भैया, तुम इस प्रकरण के बारे में क्या कहना चाहते थे वह पहले कहो, दुर्गी की प्रसूति मे ग्रभी ग्रवकाश है—"

"मैं तो कुछ नही कहना चाहता था—ऐसे ही कुछ सोच रहा था किन्तु

वह निरर्थक है । कहने लायक कोई बात होती तो क्या तुम से कहे बिना रह सकता था ?"

"तुम्हारी यही आदत है । मुझे जरा कोई बात मालूम हो जाने पर मैं झट से आकर तुम्हें कह देती हूँ—तुमसे कहे बिना मेरा जी नही मानता—लेकिन तुम हो कि कभी कुछ नही कहते । मैं कई बार देख चुकी हूँ—और मेरी बात मेरे मुँह से कहलवाने मे बडे चतुर हो तुम—"

"यमू, इस प्रकार बच्चो-जैसी बातें करना तुम्हें शोभा नही देता । अब तुम बडी हो गई हो, एक विद्वान की पत्नी हो, स्वय विदुषी हो ।"

"बस करो, तुम जब किसी बात को छिपाना चाहते हो तब इसी प्रकार मखौल करके बात का विषय ही बदल देते हो । मैं खूब जानती हूँ तुम्हें—बताओ, तुम्हारे मन मे क्या विचार आया था ? जरा मैं भी तो सुनूँ ? फिर मैं भी अपने मन की बात सुनाऊँगी—"

"मेरे मन मे जो विचार आया है वह तुमसे कहने लायक नहीं है और उसे कहने के लिए तुम्हें आग्रह नही करना चाहिए । तुम्हारे मन मे क्या विचार आया है वह मुझे अवश्य बता दो ।"

भैया का भाषण सुनकर मुझे गुस्सा आ गया और अपनी अवस्था को भूलकर मैं अपनी बचपन की आदत के अनुसार मुँह बिगाडकर उसके भाषण की नकल उतारने लगी । उस समय यदि मुझे कोई देख लेता तो आश्चर्य से कहता कि यह इतनी बड़ी स्त्री होकर चिढकर अपने भाई की नकल उतार रही है ।

मेरा भाषण सुनकर भैया ठहाका मारकर हँस दिया । उसने कहा, "वाह-वाह । क्या विदुषी है । बम्बई जाकर इसी प्रकार पढोगी ?"

मुझे नाराज होते देखकर भैया ने धीमे स्वर मे कहा, "अच्छा तो बता दूँ मेरे मन मे क्या विचार आया था ?"

मेरे कान से अपना मुह सटाकर उसने कहा, "नई माँ की माताजी ने किसी से कर्जा ले रखा होगा—उस स्त्री के द्वारा लिया होगा—अब वह माँगने आई होगी तो नई माँ ने हामी भर दी होगी । माँ तो काशीजी चली गई इसलिए नई माँ ने इस प्रकार चोरी छिपे यह काम किया होगा ।"

पहले तो भैया की बात मुझे सभाव्य प्रतीत हुई किन्तु उसकी मुद्रा के भाव निरखकर देखने पर मुझे शका हो रही थी कि जो विचार उसके मन मे

आया था उसे उसने अवश्य छिपाया है। फिर भी मुझे उसकी बात का विश्वास हो गया। रात को जब बिस्तरे पर मैं लेटी तो उस घटना का पुन. स्मरण हो आया। बहुत सोच-विचार के बाद मेरी धारणा हो गई कि भैया ने मुझे बात बनाकर कही है। सही बात क्या थी यह मेरे लिए गूढ बनी रही।

४५

दैनदिन की परिधि से बाहर जरा कोई बात हो जाने पर उसे लेकर सोचते रहने की मुझे बचपन से ही आदत थी, किन्तु विशेषता यह थी कि उस बात पर मैं उस समय तक ही सोच-विचार किया करती थी जब तक कोई दूसरी नई बात मेरे सम्मुख न आ जाय। दूसरी बात की ओर चित्त लग जाने पर मैं पहली बात को सहसा भूल जाया करती थी। गत परिच्छेद मे बताई घटना पर मैं दिन-भर सोच-विचार करती रही किन्तु दूसरे दिन शाम को बम्बई से पत्र आ जाने पर मैं उस घटना को भूल गई। पत्र मे लिखा था, "घर की व्यवस्था बहुत सुन्दर हो गई है, आठ-दस दिन मे मैं तुम लोगो को ले जाने के लिए आ रहा हूँ, फिर क्या था। मैं बम्बई के सपने देखने मे मग्न हो गई। न देखे हुए उस घर का चित्र मेरी दृष्टि देख रही थी। अब बम्बई जाने मे कोई रुकावट न देखकर मेरा ध्यान उसी ओर लग रहा था। उस दिन रात को दादी ने अपने गाँव लौट जाने का प्रस्ताव रखा था, मैं उसे आग्रहपूर्वक कह रही थी मेरे जाने के बाद तुम गाँव चली जाना। मेरे नाम बम्बई से पत्र आया है और उसमे लिखा है कि आठ-दस दिन मे जाना होगा, ऐसा तो स्पष्ट रूप से मैं दादी को नही कह सकती थी। किन्तु फिर भी उसे मालूम था कि आज बम्बई से मेरे नाम पत्र आया है। इसलिए उसने कहा, "तेरी बात रहने दे। तेरा

पति आकर तुझे ले जायगा। किन्तु मुझे यहाँ आकर इतने दिन हो गए फिर भी तेरे दादाजी ने कभी चिट्ठी भेजी है क्या ? मैं उन्हे अकेला छोडकर यहाँ चली आई, यही मेरी बडी गलती है। मैंने सोचा, बहुत दिनो से तुम बच्चो को नही देखा था सो देख लूंगी और इस लडकी के विवाह के बारे मे भी कुछ बात चलाऊँगी, किन्तु यहाँ आकर देखती हूँ कि सब ठडा मामला है। हरे राम ! मैंने नही सोचा था कि दूसरी घरवाली आ जाने से मेरा लडका इतना बुद्धू बन गया होगा। आजकल देख रही हूँ कि यह तो ··· ”

बडप्पन के भाव से मैंने कहा, “ठीक कहती हो तुम। हमारी माँ के सामने पिताजी दूसरे परशुराम का अवतार थे किन्तु अब तो बिलकुल मेमने-जैसे बन गए हैं। खैर, छोडो इन बातो को। तो बडी माँ, मेरे बम्बई जाने तक तुम रुकोगी ना ? अब मेरे जाने मे अधिक दिन नही हैं, आठ-दस दिन मे ही हमे ले जाने के लिए आते होगे —”

“अच्छा ? तो आज के पत्र मे यह बात लिखी है ? धत् तेरे की। इन आजकल के लडको ने तो लाज-शरम को ताक पर उठाकर रख दिया है। बीवियो को पत्र लिखते हैं—बस, तमाशा मचा रखा है इन छोकरो ने। हमने ऐसा जमाना· · ” किन्तु यह सब वह कुतुहल-पूर्वक कह रही थी—वास्तव मे उसे मेरे लिए पत्र आया देखकर बहुत सतोष हो रहा था। इसलिए उसकी बात सुनकर मुझे हँसी आ गई। मैंने कहा, “तो बडी माँ यह कौन-सी बुरी बात है ? एक-दूसरे का समाचार भी तो मालूम होना चाहिए।”

यह सुनकर कुतूहल-पूर्वक हँसकर उसने कहा, “आहा ! क्या हमे कभी समाचार नही मालूम होता था ? घर के लोगो के पास पत्र आने से क्या समाचार का पता नही चलता ? देखती हूँ कि हर बात मे एक खिलवाड हो गया है।” यह सुनकर मुझसे हँसी रोकी नही गई। कुछ देर बाद मेरी पीठ पर हाथ फेरते हुए दादी ने कहा, “यमू, तेरा यह सुख देखने के लिए यदि आज वह जीवित होती तो कितना अच्छा होता। किन्तु उसके भाग्य मे यह देखना कहाँ बदा था। वह मर गई, उसकी जगह यदि मैं मर जाती तो ·· ·· ” मैंने उसे आगे नही बोलने दिया। जब कभी हम दोनो मे इस प्रकार प्रेम चर्चा चला करती थी तो दादी को अदबदाकर माँ की स्मृति हो आती और उसकी जगह मैं मर जाती तो कितना अच्छा होता यह दादी अवश्य कहा

करती थी। कई बार वह इस प्रकार कह चुकी थी किन्तु हर बार मैं उसे चुप करा देती थी।

उस दिन रात को बहुत देर तक दादी मुझे उपदेश करती रही—दूसरे गाँव जाने पर किस प्रकार रहना चाहिए, सास के साथ कैसा बर्ताव करना चाहिए आदि कई बाते उसने मुझसे कही। सम्पूर्ण उपदेश का सार गद्-गद् कण्ठ से उसने मुझे एक-ही वाक्य मे कहा—"यमुना, बेटा तुम्हारा बर्ताव तुम्हारी माँ-जैसा ··· " इससे अधिक वह बोल न सकी—उसकी हिचकियाँ बँध गई थी। कुछ वर्ष पूर्व हमे नही मालूम था कि दादी के मन मे माँ के प्रति इतना गाढा प्रेम है किन्तु अब तो माँ की याद किये बिना उसका एक दिन भी नही जाता था। अब मैं जान पाई थी कि माँ की मूर्ति और उसकी कृतियो ने दादी के मन मे कितना गहरा घर बना कर रखा है।

कुछ देर बाद दादी ने कहा, "यमू, तेरी माँ की होशियारी और कर्तृत्व-शक्ति का स्मरण होते ही आश्चर्य होने लगता है। बचपन से कभी किसी बात की हवस अथवा कभी किसी चीज की माँग उसने की हो, इसका मुझे स्मरण नही। उसका ब्याह हुए आठ-ही दिन हो पाए थे और तेरे दादाजी ने उसे अपने गाँव ले जाने का निश्चय किया। उनका निश्चय था, क्या मजाल जो कोई उसे टाल सके। गाँव ले जाकर उसे छ महीने वही रखा था। उसके साथ उसकी कोई सहेली भी नही थी। उसके मायके की शिक्षा भी बडी योग्य थी। तेरे नानाजी हर पन्द्रहवे दिन पत्र भेजा करते थे, कुशल वृत्त लिखकर पत्र भेजने को लिखा करते थे किन्तु कभी "लडकी को भेज दो" ऐसा उन्होने नहीं लिखा। आखिर मैंने बहुतेरा आग्रह किया तब कही उसे मायके भेजने की बात सोची। दूसरे दिन नौकर के साथ मायके भेजने का निश्चय किया गया। किन्तु उसी दिन रात को तेरे दादाजी को बुखार आ गया। जाने की तैयारी हो चुकी थी, किन्तु मेरे समीप आकर धीमे स्वर मे तेरी माँ ने कहा, "पिताजी को बुखार आ रहा है, मैं नही जाऊँगी। यदि मैं चली गई तो मेरी माँ मुझसे कहेगी कि उन्हे बुखार मे छोडकर तू कैसे चली आई ?" तेरी माँ की बात सुनकर मैं अवाक् रह गई। ब्याह होने के बाद ही छ महीने अपने माँ-बाप को छोड़कर वह गाँव मे आकर रही थी और वही लडकी कह रही थी कि पिताजी को बुखार आया है, इसलिए मैं जाना नही चाहती। मैंने उन से

जाकर कहा तब उन्होने उसे अपने समक्ष बुलाकर कहा, "तू जा ! तुझे यहाँ आए छँ महीने हो गए, मेरा बुखार तो दो-चार दिन मे उतर जायगा। कल अच्छा मुहूर्त है, तू चली जा।" फिर भी तेरी माँ ने कहा, "आपके अच्छा हो जाने पर ही मैं जाऊँगी।" लडकी की पूर्ण परीक्षा होनी थी। दूसरे दिन तेरे नानाजी का पत्र आया, पत्र मे लिखा था, "घर मे प्रसूति का समय अति निकट है, बेटी को गए छँ महीने हो गए, यदि उसे मायके भेजने की आज्ञा हो तो लिवाने के लिए नौकर भेज दूं।" इस पर तेरी माँ को जाने के लिए बहुत आग्रह किया गया किन्तु उस छोटी-सी बालिका ने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया कि आपके अच्छा हो जाने पर ही मैं यहाँ से जाऊँगी। आखिर तेरे नानाजी को वस्तुस्थिति से अवगत कराया गया। दो महीने तक बीमारी ने उनका पीछा नही छोड़ा, बिस्तरे से उठने की भी उन्हे शक्ति नही रही थी। उस बीमारी मे तेरी माँ ने बडी तत्परता से अपने ससुर की सेवा-सुश्रुषा की थी। उसके सेवा-भाव से प्रसन्न होकर एक दिन उन्होने कहा, "यह बहू नही, एक अमूल्य रत्न की हमे प्राप्ति हुई है।" जब तेरे दादाजी बिलकुल स्वस्थ हो गए तब तेरी माँ अपने मायके गई। उस दिन से तेरे दादाजी ने अपनी बहू की कोई बात नही टाली। उसकी हर बात को वे मानते रहे। उनका स्वभाव इतना शीघ्रकोपी था कि वे दूसरे परशुराम के अवतार थे फिर भी वे तेरी माँ से कभी नाराज नही हुए। हर बात मे वे उसकी सलाह लिया करते थे। यहाँ से जाने के बाद वे कई बार कह चुके हैं कि बहू चली जाने से हमारे घर की शोभा जाती रही। इस मूर्ख ने लापरवाही से उसकी जान ले ली· ··· " इस प्रकार मेरी माँ के सम्बन्ध मे दादी ने मुझे कई बातें बताई थी। माँ के सद्-गुणो का वर्णन करते वह अघाती नही थी। बार-बार उसकी आँखो मे आँसू उमड आते। विशेष आश्चर्य की बात तो यह है कि आरम्भ मे कुछ दिनो तक दादी ने माँ को बहुत तग किया था। आज इस बात का उल्लेख वह स्पष्ट रूप से नही कर सकती थी किन्तु उसका स्मरण उसे दुखदायी हो रहा था।

दूसरे दिन मुझे ससुराल से बुलावा आया था। इसलिए मैं चली गई। बम्बई से मेरे साथ ही घर को भी पत्र भेजा गया था। घर के पत्र मे लिखा था—"यदि यहाँ घर बसाना हो तो एक अच्छा घर मिल गया है, पडोस भी भले लोगो का है। घर हो जाने से मेरे खाने-पीने की सुविधा हो सकेगी।

कालेज की मैस मे भोजन करके मैं अब उकता गया हूँ।" इस प्रकार पत्र लिखकर बम्बई मे अपना घर बसाने की इच्छा व्यक्त की गई थी। घर मे इसी बात को लेकर भवति न भवति चल रही थी। छोटे मामाजी का कहना था कि कालेज की मैस का भोजन करके जी उकताना स्वाभाविक है। बम्बई मे गृहस्थी जमाना बहुत अच्छा होगा। घर मे जो व्यवस्था हो सकती है वह कालेज होस्टल मे कैसे होगी ?" किन्तु शकर मामाजी इसके विरुद्ध थे। उनका आग्रहपूर्वक कहना था कि "ये व्यर्थ की बाते है, अभी उसे अपनी पढाई करनी है गृहस्थी के झमेले मे पडकर बेकार समय नष्ट होगा, झझटे मोल लेनी होगी। इससे कोई लाभ नही होगा। और फिर बम्बई मे घर करने से खर्चा भी तो अधिक होगा। इसमे कुछ नही धरा है। अपने खर्चे के लिए दस-बारह रुपये रखकर शेष रकम उसे यहाँ भेजनी चाहिए। इतनी छोटी उम्र मे उसके पास अधिक रुपया रहना अच्छा नही। वहाँ क्या है ? वह तो बम्बई है। शोहदो का राज्य और यह अभी ··· " उनका पूरा वक्तव्य मुझसे नही लिखा जा सकता—इस प्रकार उनकी बकवास चल रही थी। मुझे तो उनकी बातें सुनकर गुस्सा आ रहा था किन्तु मैं क्या कर सकती थी। विशेषत. अजिया सासूजी भी उनकी हाँ मे हाँ मिला रही थी। छोटी मामीजी और बनू दीदी भी उनके कथन की पुष्टि कर रही थी। सासूजी बिलकुल मौन थी। मैं इस चर्चा को सुनकर भयभीत हो गई। रात को भोजन करते समय छोटे मामाजी ने सासूजी से कहा, "दीदी, तुम यदि बम्बई जाना चाहती हो तो अवश्य चली जाओ। माँ की बात पर अधिक सोच-विचार करने की आवश्यकता नही। तुम्हारे बम्बई मे होते हुए फिर किसी बात की चिन्ता करने का कारण नही। उसे कालेज की मैस से घृणा होना स्वाभाविक है। और अब वह समझदार हो गया है, उसे उसकी गृहस्थी जमाने का अवसर देना आवश्यक है। अब और कितने दिन वह अकेला ····"

सासूजी ने बीच ही मे कहा, "इस बात का विशेष महत्त्व नही है भैया—गृहस्थी की बात छोडो किन्तु खाने-पीने के सम्बन्ध मे उसने यहाँ से जाते समय ही मुझ से कहा था। और अब हम लोग कब तक तुम्हारे घर · " इससे अधिक वे बोल न सकी। सासूजी की इतनी बात सुनकर ही छोटे मामाजी उनकी इच्छा को ताड गए और उन्होने हम लोगो को बम्बई भेजने

का आग्रह आरम्भ कर दिया। छोटे मामाजी का आग्रह होने पर फिर किसी को विरोध करने की हिम्मत नही हो सकती थी। शकर मामाजी हम लोगो की खिल्ली उडा रहे थे—"अब दीदी को यहाँ रहना कैसे भायगा? अब तो उनका लडका कमाई कर रहा है न? दीदी को लग रहा है कि कब बम्बई जाऊँगी। अच्छा, तो फिर क्या हम लोग चार दिन रहने के लिए बम्बई मे आ सकते हैं? जरा आकर देखेंगे कि कैसे गृहस्थी जमाई है? वह लडका, वह बहू और स्वय आप·...."

सासूजी भोली-भाली थी। वे उनके व्यग्य को नही समझ पाईं। भोले भाव से उन्होने कहा, "भैया, तुम जरूर आ चुके। यदि उमा भाभी को मेरे साथ भेज सकते हो तो भेजदो।" सासूजी का इतना कहना ही बहुत था—बन्दर के हाथ मशाल लग गई। मामाजी ने कहा, "अच्छा? तो बम्बई मे घर करने का निश्चय हो चुका? तो फिर उसे तार भेजदूँ कि आकर अपनी माँ और बहू को शीघ्र ले जाय। तुम्हारी छोटी-सी, सुहावनी गृहस्थी मे ऐरे-गैरे लोगो की क्या आवश्यकता है? जरा स्वतन्त्र जीवन का मजा चख लो·· ...." एक बात हो तो लिखी जाय। जैसे कोई मूर्ख, कुटनू, लडाकू औरत बकवास करती है वैसे ही शकर मामाजी बकवास कर रहे थे। ऊपर से उन्होने मजाक का आवरण ओढ रखा था किन्तु वास्तव मे उन्हें बहुत दुख, मत्सर हो रहा था। विशेषत मुझे अजिया सासूजी का भय था किन्तु हवा का रुख देखकर उन्होने झट से अपना मत बदल दिया। अपनी बेटी का लडका बडा होकर अब कमाई करने लगा है इतने दिन अपने घर मे आश्रय पाया। अब उसका योग्य फल प्राप्त होते देखकर उन्हे सतोष और समाधान हो रहा था। वे कठोर थी, स्पष्ट वक्ता थी फिर भी अपनी बेटी का घर जमते देखकर उन्हें सन्तोष हो रहा था। बेटी का घर जमाने मे सहायता देकर कृतार्थता पाने की उन्हें मनोमन इच्छा रहना स्वाभाविक था। शकर मामाजी की बातें सुनकर उनके मन मे विचार आया था कि इतनी जल्दी करना ठीक न होगा। किन्तु जब छोटे मामाजी ने उन्हें परिस्थिति से पूर्ण अवगत करा दिया तब उनका मत बदल गया। हम लोगो का बम्बई जाना निश्चित हो गया और सब लोग तैयारी करने मे जुट गए। तैयारी बरतनो से होनी थी। सासूजी जब अपना घर छोडकर मायके मे आकर रही थी तब अपने साथ कुछ भाडे-बरतन लेकर

आई थीं किन्तु इतने वर्षों से वे बरतन घर के उपयोग मे थे, उन्हे अब कैसे माँगा जा सकता था ? झोले आदि सीने-साने मे और छोटा-बडा सामान जुटाने मे दो-चार दिन बीत गए। पत्र मे लिखा था कि आठ-दस दिन मे लेने के लिए आ रहा हूँ, मैं उस दिन की प्रतीक्षा कर रही थी। छोटे मामाजी ने उन्हें आने के लिए पत्र लिख दिया था, इसलिए अब उनका आना निश्चित ही था। आखिर वह सुदिन आ गया। सुबह साढे-सात बजे एक तागा घर के सामने आकर रुका। आज उनका गृह-प्रवेश हो रहा था। मैं चुपचाप सब कुछ देख रही थी किन्तु उनका मेरी ओर ध्यान नही था। मेरी ओर उनका दुर्लक्ष देखकर मैं चिढ गई और मैने निश्चय कर लिया कि अब भेट होने पर मै एक शब्द भी नही बोलूँगी, किन्तु क्या मेरा निश्चय टिक सकता था ? बेग रखकर वे जब अजिया सासूजी के पैर छूने के लिए मझघरे मे आए तब ऐसा ही किसी काम का बहाना बनाकर मैं उनके रास्ते मे आ गई और लाख मना करने पर भी मेरी आँखो ने उनकी ओर देखा। इतना ही नही उनकी आँखो से चार आँखें हो गई और जब वे मुस्करा दिए तो मेरा निश्चय लुप्त हो गया और मैं भी मुस्करा दी।

४६

तीसरे दिन रात को नौ सवा-नौ बजे एक घर मे कुछ लोगो की भीड-सी लगी थी। तीन व्यक्ति गाँव जा रहे थे। एक युवक, एक युवती तथा एक अधेड महिला। सामान की बाँधा-बूँधी चल रही थी। क्या यह ले लिया, वह रख लिया, आदि प्रश्न पूछे जा रहे थे। एक उठा-पटक मची थी। घर के बड़े बूढे लोग बम्बई जाने पर यह करना, वह करना, आदि उपदेश कर रहे थे। उस युवती के मायके से दो व्यक्ति आए थे वे भी उसे उपदेश दे रहे थे।

मायके वालो के साथ एक लडकी भी आई थी। उस युवती ने लडकी को अपने पास लेकर कहा, "सुन्दरे" दादी माँ को सताया न करो। किसी बात का हठ न किया करो। उसका कहना माना करो। यह लो तुम्हारी मिठाई के लिए। बम्बई से मैं तुम्हारे लिए गुडिया भेज दूँगी। पाडेजी की लडकी के पास देखी है ना तुमने ? उसी-जैसी बालदार गुडिया।" ऐसा कहकर उसने उस लडकी के हाथ मे एक रुपया थमा दिया। उस युवती के पास रुपया कैसे आया ? उसके पास रुपया होना कुछ आश्चर्यजनक ही था।

होते-होते दस सवा-दस बजे का समय हो गया। नौकर गाडी लेकर आ गया। प्रस्थान की दौड-धूप मच गई। अनाज और नारियल उस युवती के आँचल मे बाँधा गया। जाने वाले लोगो ने घर मे जाकर भगवान् को नमस्कार किया। घर की औरतो की आँखो से आँसुओ की झडी लग रही थी। एक वृद्धा कह रही थी "सम्हलकर जाना—रात मे जागना नहीं, अच्छी-सी जगह देखकर सोने की व्यवस्था कर लेना, गाडी मे भीड बहुत रहती है, जरा सावधानी से रहना।" दूसरी दो स्त्रियाँ कह रही थी, "दीदी, सम्हलकर जाना। सीता, अपनी सासूजी का सदैव खयाल किया करो, आज पद्रह-सोलह वर्षों के बाद वे इस घर से बाहर जा रही हैं, उनकी ठीक से सेवा करना।" जो लोग गाँव जा रहे थे उनमे से जो वयस्क महिला थी वह सबसे पहले तागे मे जाकर बैठ गई, उसके बाद युवती और अन्त मे दो युवक तागे मे जाकर बैठ गए। तागा चलते समय वयस्क स्त्री ने कहा, "माताजी जा रही हूँ।" युवती ने भी कहा, "बडी माँ, जा रही हूँ। सुन्दरे ... ..." और तागे वाले ने तागा हाँक दिया। स्टेशन पहुँचने पर टिकट और लगेज आदि की व्यवस्था की गई। डिब्बे के एक कोने मे अच्छी-सी जगह देखकर दो स्त्रियाँ और एक युवक रेलगाडी मे जाकर बैठ गए। दूसरा युवक प्लेटफार्म पर खडा उन लोगो के साथ बातें कर रहा था। युवती को लक्षकर प्लेटफार्म पर खडे युवक ने धीमे स्वर मे कहा।

"कहो, अब तो तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो गई ? कई दिन से कह रही थी कि अब तक पत्र नही भेजा, क्या कोई घर नही मिला होगा, हर काम मे आलस किया जाता है ......"

"चलो हटो ! कभी एक बार भी मैंने ऐसा कहा था ? तुम्हें तो सिवाय

मजाक करने के दूसरा काम ही नही रहता। क्या मैं ऐसा कह सकती हूँ।"

"नही, कभी नही गणपतराव!" गाडी मे बैठे हुए युवक ने बहुत धीमे स्वर मे दूसरे युवक से कहा, "जब से मैं लौटकर यहाँ आया हूँ मेरे पीछे तकाजा लग रहा था—हर रोज मुझ से कहा जा रहा था कि . . ."

"लो, सुनलो! अब तो मेरे कथन की पुष्टि हो गई?"

"अरे, जरा धीरे बोलो, माताजी सुन लेगी। तुम्हे तो किसी बात का खयाल नही रहता भैया। हर समय मजाक करते रहते हो . . ."

और इसी समय सीटी बज गई और धीरे-धीरे गाडी चलने लगी। दोनो युवक एक-दूसरे से कह रहे थे—"सम्हल कर जाना, पत्र देते रहना" "तुम भी नियमित रूप से पत्र लिखना—तागे मे जाना—पैदल नही जाना—" इन शब्दो का उच्चारण करते समय युवती का कण्ठ गद्‌गद् हो गया, आँखो से आँसू टपक पडे। प्लेटफार्म पर खडे युवक की ओर वह खिडकी से देख रही थी। आखिर बैंच पर बैठकर उसने अपने आँसुओ को पोछा। खिडकी के बाहर देखने के बहाने से युवक उसके समीप आया और दबी आवाज मे उसने कहा, "क्यो, अब आँखे क्यो पोछ रही हो? इतनी देर से तो कह रही थी . . ." किन्तु आँखो के इशारे से उस युवती ने उसे सुझाया कि जरा बस करो, माताजी सुन लेगी।

आज हमारी दीर्घकालीन आशा साकार हो रही थी। स्वतत्र जीवन का उपभोग लेने के लिए हम बम्बई जा रहे थे। जब से वे लौटकर पूना आए थे हम दोनो मे इसी विषय पर चर्चा चला करती थी। "घर किस स्थान पर लिया है, चाल मे तो नही लिया है?" इस प्रकार पचासो प्रश्न मैंने पूछे थे। बम्बई की चाले, अच्छी नही होती, उनमे दो-दो सो परिवार रहते है, वहाँ का जीवन छिछोरा होता है आदि कई बाते मैने सुनी थी। इस कारण मेरी धारणा थी कि चाल मे रहना ठीक नही होता। और इसी कारण मैने पूछा कि कही "चाल" ही मे तो घर किराए पर नही लिया है? जवाब मे मैंने जब "नही" शब्द सुना तब मेरे मन को शान्ति मिली। कितना आश्चर्य है। मैने स्वय चाल कभी देखी नही, मुझे उसकी कल्पना भी नही थी—चाल के बारे मे जो कुछ सुना था उसी आधार पर मेरा मत प्रतिकूल हो गया था। बम्बई के सम्बन्ध मे मुझे इस प्रकार जानकारी दी गई थी।

"घर किसी बात मे नही लिया गया । बम्बई के गिरगाँव नामक मोहल्ले की एक बाडी मे दो बगले हैं उनमे से एक बगले की एक मजिल किराए पर ली है । बगला तिमजिला है, शेष दो मजिलो मे अन्य परिवार रहते हैं । तीसरे मजिल का परिवार ब्राह्मण जाति का है । दूसरी मजिल मे हमारा निवास है और पहली मजिल मे बिलकुल हम-जैसा ही एक परिवार रहता है ऐसा पडोस मिलना बम्बई मे बडा ही दुर्लभ होता है । केवल इन पडोसियो के लिए ही दो रुपये अधिक देकर मैंने यह घर किराए पर लिया है। तीसरी मजिल के परिवार मे केवल पति-पत्नी है । सबसे निचले हिस्से मे जो लोग हैं वे पति-पत्नी और उनकी माँ—ठीक हम-जैसा ही परिवार है । इस युवक से मेरा थोडा-बहुत परिचय था । बम्बई आने पर हम दोनो मे घनिष्टता हो गई । वह मेरे साथ कालेज मे है । हम दोनो की परिस्थिति बिलकुल एक-सी है । रह-रहकर मुझे आश्चर्य होता है कि हम दोनो का परिचय कैसे हुआ ? मैं तो इसे दैवयोग ही मानता हूँ ।"

इस प्रकार बम्बई के सम्बन्ध मे मुझे कई बाते बताई गई । वहाँ की बातें सुनकर मुझे हर्ष हो रहा था । बम्बई जाने पर पडोसियो से मेरा जो परिचय होना था उसकी भूमिका पहले ही बन गई । पडोस की उन दोनो महिलाओ की उन्होने बहुत प्रशसा की थी । वास्तव मे वे दोनो यदि की गई प्रशसा-जैसी ही होगी तो उनके सामने मैं बिलकुल ही तुच्छ हूँ, ऐसा विचार मेरे मन मे आ रहा था । उन दोनो महिलाओ के साथ किस प्रकार, किस विषय को लेकर बातचीत करनी होगी यह मेरी समझ मे नही आ रहा था—और इस कारण कभी-कभी मेरा मन उद्विग्न हो जाता । किन्तु मेरा खयाल था कि मुझे बनाने के लिए बात बढा-चढाकर कही गई है, और यह सोचकर मेरा मन शान्त हो जाता ।

जिस दिन बम्बई के लिए प्रस्थान करना था उस दिन अजिया सासूजी की आज्ञा लेकर मे मायके मे गई थी । मायके मे दादी के साथ मेरी क्या बातचीत हुई, पिताजी ने मुझ से क्या कहा, भैया ने किस प्रकार मजाक किया, भाभी को मैंने क्या कहा आदि बाते कहने से कोई फायदा नही, उन्हे तो कल्पना से भी जाना जा सकता है । दादी ने मुझे कई बाते समझाई थी । दूसरो का मन किस प्रकार रखना चाहिए, किसी को उलटकर उत्तर नही देना चाहिए,

नौकरो के साथ अच्छा बर्ताव करना चाहिए आदि कई बाते थी। इसके लिए उसने मेरी माँ के जीवन मे से दृष्टान्त दिए थे। माँ इस प्रकार बर्ताव करती थी, उसका स्वभाव ऐसा था, अमुक समय पर उसने ऐसा किया था और उसका परिणाम ऐसा हुआ था। आदि कई उदाहरण देकर मुझे उसने उपदेश किया। यह सब कहते समय दादी की आँखो मे यदा-कदा आँसू उमड आते थे। भैया मजाक कर रहा था फिर भी मेरे प्रस्थान की कल्पना से उसका मन भी उद्विग्न हो रहा था। नई माँ ने भी उस दिन ढग से बातचीत की थी। भाभी ने अधिक कुछ नही कहा किन्तु उसका एक वाक्य मेरे विशेष ध्यान मे रहा। उसने कहा, "दीदी, तुम तो अब स्वतन्त्र हो गई किन्तु हम ऐसे ही · " आगे उसने कुछ नही कहा। उसके कहने का आशय मेरे ध्यान मे आ गया। दुपहर मे भोजन के बाद मै दुर्गी के घर गई। उसकी प्रसूति मे कुछ विलम्ब हो जाने से घर के सभी लोग चिन्तित थे। दुर्गी के चेहरे पर एक अजीब रग छाया था। चेहरा कुछ फूला-सा और हाथ-पैरो पर भी वरम दिखाई दे रहा था। उठने-बैठने का सामर्थ्य भी अब उसमे नही रहा था। शरीर मे सदैव थकान बनी रहती थी। कुछ देर तक मैं दुर्गी के साथ बैठी बातचीत करती रही। जब मैं घर लौटने को हुई तब मेरे गले मे बाहे डालकर दुर्गी फूट-फूटकर रोने लगी। रोते हुए उसने कहा, "यमू, अब हम लोगो की भेट नही होगी—यही अन्तिम भेंट है।"

उसके आर्त शब्दो को सुनकर मेरा दिल बैठा जा रहा था। ऐसे समय क्या कहकर मैं उसे सात्वना दे सकती थी ? कुछ देर मौन रहकर मैंने कहा, "दुर्गा, तुम गर्भवती हो, भरे-पूरे घर मे ऐसे अभद्र शब्दो का उच्चारण करके दूसरो को क्यो दुःख देती हो ? शान्ति धारण करो। प्रसूति के बाद " आगे मुझसे बोला नही गया, मेरी आँखो से आँसुओ की झडी लग गई। बहुत देर हो गई थी इसलिए मैं घर लौटने के लिए निकल पडी। दुर्गी की माँ और दादी के पैर छूए। उन्होने खठा नारियल से मेरी झोली भरदी। वहाँ से मैं मायके आ गई। भैया के आते ही उससे मिलकर मुझे ससुराल लौटना था। लौटते समय विनोदी वृत्ति को त्यागकर भैया ने कुछ गम्भीर होकर मुझसे कहा, "यमुना, तो तुम जा रही हो ? यदा-कदा सुख-दुःख की बातचीत करने के लिए जो सहारा था वह भी अब नही रहा। ठीक है, पत्र अवश्य लिखा करो। सप्ताह

मे एक बार अवश्य पत्र भेजना। गलत-सलत क्यो न हो, किन्तु तुम लिखना जानती हो और अब तुम जहाँ जा रही हो वहाँ तुम्हारे पडोस की स्त्रियाँ पढी-लिखी हैं। उनसे लाभ उठाना। उनमे से एक तो अग्रेजी पढी-लिखी है।"

मैंने भैया से हाँ कह दिया किन्तु मेरा मन दुर्गी की स्मृति से व्यग्र हो रहा था। मैंने भैया से कहा, "भैया, मैं अवश्य चिट्ठी लिखूँगी किन्तु तुम भी यहाँ की समस्त बातो की सूचना मुझे दिया करो। अब केवल तुम्हारे पत्र पढकर ही मैं सब बातो को जान सकूँगी। और भैया, पत्र लिखने से पहले दुर्गी के घर जाकर उसका हाल अवश्य लिखते रहना। दुर्गी की अवस्था बहुत ही दयनीय है। उसकी प्रसूति होते ही मुझे तत्काल सूचना देना। मुझे उसकी बहुत चिन्ता है—उसकी हालत ठीक नही है। हर हालत मे मुझे उसकी सूचना देते रहना।"

भैया को भी दुर्गी के सम्बन्ध मे चिन्ता हो रही थी। उसने कहा, "क्या यह कहने की आवश्यकता है? दिन मे एक बार नही, दो बार उसके घर जा-कर मैं तुम्हें उनकी सूचना देता रहूँगा।"

शाम हो जाने से मुझे ससुराल लौटना पडा। भैया मुझे पहुँचाने आया था। रास्ते मे ही उसने कहा था कि वह हमे स्टेशन तक पहुँचाने आयगा और जाते समय ससुराल मे दादी और सुन्दरी को अपने साथ ले आयगा। तदनुसार वह आया था, जिसका वर्णन परिच्छेद के आरम्भ मे ही किया गया है।

४७

दूसरे दिन सुबह सात बजे गाडी बम्बई पहुँच गई। बम्बई के उस विशाल स्टेशन को देखकर मैं दग रह गई। पहले ही दस-पन्द्रह स्टेशनो से आस-पास के नए ढग के मकान, दूर से दिखाई देनेवाले मिलो के विशाल भवन और

गगन चुंबी चिमनियाँ आदि देखकर मैं मन ही मन सहम-सी गई थी और अब उस प्रचड स्टेशन को देखकर तो मेरा दिल बैठा-सा जा रहा था। बम्बई के सम्बन्ध मे मेरी केवल यही धारणा थी कि वह पूना से कुछ बडा शहर होगा, किन्तु यहाँ तो सभी बाते विचित्र मालूम देती थी। रेलगाडियो का जाल-सा बिछा था और ट्रामबे भी मेरे लिए नई चीज थी। पूने की किसी बात से यहाँ की बाते मेल नही खा रही थी। पूने को मै बहुत बडा शहर मानती थी किन्तु पूना बम्बई के पासग मे भी नही उतर सकता था। बम्बई बहुत बडा शहर—शहर क्या छोटा-सा प्रान्त ही मालूम हुआ। देखकर मे हतबुद्ध हो गई। इस प्रकार हतबुद्ध अवस्था मे बोरीबन्दर स्टेशन पर उतर कर मैं भौचक्की-सी चारो ओर देख रही थी। मुझसे अधिक सासूजी को विचित्र मालूम हो रहा था। घोडागाडी मे बैठकर जब हम लोग निवास स्थान की ओर जा रहे थे तो सासूजी ने उनने कहा,

"अरे यह भीड-भाड, ये गाडियाँ—यह सब कुछ क्या है ? कहाँ लाकर हमे पटका है ? रास्ते पर ये इतने लोग कहाँ से निकल आए ?"

उनकी बात सुनकर वे ठहाका मारकर हँस दिए। मैं भी अपनी हँसी को रोक न सकी।

रास्ते की भीड-भाड का चमत्कार देखते-देखते हम लोग गिरगाँव नामक मोहल्ले के हमारे निवास स्थान तक पहुँच गए। गाडी-वाडी के भीतर चली गई। वहाँ एक बगला छोडकर दूसरे बगले के पिछवाडे मे हमारा निवास था। हम लोग गाडी से उतर रहे थे तभी दो युवतियाँ सम्मुख आ गई। दोनो ही खूबसूरत थी और उनको देखते ही कहा जा सकता था कि वे सुशील और भली हैं। समीप आकर उनमे से एक ने कहा, "सुस्वागतम काकीजी, आइए सीतादेवी, हम लोग आपकी राह देख रहे थे।" उन्होने मेरे साथ इस ढग से बातचीत आरम्भ करदी जैसे हम लोग चिरपरिचित हो। उनके होते हुए उन दो युवतियो को खुले ढग से बातचीत करते, हँसते देखकर मुझे कुछ विचित्र-सा लगा था किन्तु क्षण-भर के लिए। उनमे से एक ने अपने नौकर को बुलवाकर हमारा सामान ऊपर पहुँचवा दिया। ऊपर जाते ही एक अधेड विधवा सासूजी के पास आकर उनसे बातचीत करने लगी। उस स्त्री को लक्ष्य कर उन्होने कहा, 'गोपका काकी, हम लोग अब तुम्हारे पड़ोस मे आ गए है। ये लोग यहाँ

पहली बार आए हैं—यहाँ की इन्हें कोई जानकारी नहीं है। अपने बेटे-जैसा ही मुझे मानकर……"

उस सुशील स्त्री ने बीच ही मे बात काटकर कहा, "तुम्हे किसी बात की चिन्ता करने का कारण नहीं, अब हम सब एक हैं।" इस प्रकार बातचीत हो रही थी तभी दो युवक वहाँ आ गए। उनमे से एक ने कहा, "रघुनाथरावजी, आप तो कुटुम्ब परिवार सहित आ गए।"

उन दोनो को वहाँ आते देखकर मैं झट से कमरे मे चली गई। सासूजी भी मेरे पीछे आ रही थी, किन्तु गोपिका काकी ने कहा, "तुम्हें भीतर जाने की कोई आवश्यकता नही। इन दोनो के लिए जैसी मैं हूँ वैसी ही आप हैं।"

उन दोनो मे जो कुछ बडे थे उन्होने कहा, "काकीजी, जैसे रघुनाथरावजी आपके बेटे हैं वैसे ही हम लोग हैं। हमारे आ जाने से आपको उठकर भीतर जाने की क्या आवश्यकता है।"

मेरे कमरे मे चली जाने से वे दोनो युवतियाँ भी मेरे पीछे कमरे मे आ गईं। मेरा हाथ पकडकर मुझे उन्होंने घर के हर कमरे मे घुमाया। घर की पूर्ण व्यवस्था देखकर मैं दग रह गई। हर कमरे की सफाई की गई थी, ईंधन, अनाज आदि सभी चीजें लाकर रखी गई थी। बर्तनो मे पानी भरके रखा गया था। मानो वर्षों से हम लोग उसमे रहते हो और बीच मे चार दिन के लिए ताला लगाकर कहीं चले गए हो। सब चीजे जहाँ की तहाँ रखी गई थीं। यह किसकी दक्षता थी ? हमे लिवाने के लिए पूना जाने से पहले उन्होने यह व्यवस्था की हो, यह तो असम्भव था। एक तो उन्हें इन समस्त बातो की सूझ ही नहीं हो सकती थी, दूसरे यह व्यवस्था किसी स्त्री का हाथ लगे बिना—कम-से-कम स्त्री द्वारा सुझाये बिना होना बिलकुल असम्भव था। उस समय इस व्यवस्था के पीछे कौन है इसे मैं नही जान पाई। इतनी व्यवस्था होने पर भी उस दिन हम लोगों को अपने घर भोजन करने का उन लोगो ने आग्रह किया था। पहली मजिल पर जो परिवार रहता था उन्ही के घर हम सब लोगो को, अर्थात् तीसरी मञ्जिल के परिवार के लोगो को भी भोजन करना था। जब हम लोग भोजन करने बैठे तब बाहर वाले कमरे मे बैठे तीन युवक और भीतर के कमरे मे मेरे साथ बैठी दो युवतियो को देखकर मेरे मन में विचार आया कि परमात्मा ने ये बिलकुल यथा योग्य जोडे निर्माण किये हैं। सासूजी

और गोपिका काकी भोजन करने नही बैठी। आग्रहपूर्वक उन्होने पहले हम लोगो को भोजन करने के लिए बैठाया था। हम लोगो ने बहुतेरा कहा कि बाद मे बैठेंगी किन्तु उन्होने नही माना। बाद मे क्यो एक साथ हो जाने दो, ऐसा उन्होने आग्रह किया। हम लोगो को आये प्रहर भी नही बीत पाया और सासूजी तथा गोपिका काकी मे अच्छा खासा मेल हो गया। मैं भी उन दो युवतियो के साथ घुल मिल गई। अब बार-बार युवतियाँ कहकर उनका उल्लेख करना ठीक नही होगा। उनमे से एक का नाम लक्ष्मीबाई और दूसरी का यशोदाबाई था। लक्ष्मीबाई यशोदाबाई से उम्र मे कुछ जेठी थी। रूपवती तथा गेहुएँ वर्ण की बहुत होशियार थी। बाहर बैठे हुए युवको मे, जिनका नाम विष्णुपन्त था उनकी ये धर्म-पत्नी थी। उन दोनो का जोडा बहुत-ही सुन्दर था। इस जोडे का यथा योग्य वर्णन करना मेरे लिए असम्भव है। इसके पहले मैं मन-ही-मन सोचा करती थी कि हम दोनो का जोडा बहुत सुखी है किन्तु इन दो जोडो को देखकर मुझे विश्वास हो गया कि हम-जैसा ही नहीं अपितु हमसे भी अधिक सुखी जोड़े इस ससार मे है। विष्णुपन्त की पत्नी उन-जैसी न हो फिर भी बहुत कुछ पढी-लिखी स्त्री थी। अंग्रेजी की किताबो को पढकर उनका अर्थ वह भली-भाँति समझ लेती थी। उसकी पढाई आगे चल रही थी। दूसरी युवती का नाम यशोदाबाई था। जैसा उनका रूप सुन्दर था वैसे ही उन्हे शिक्षा भी अच्छी मिली थी। उनके पति को नाना अथवा नाना साहब कहा करते थे। इन दो परिवारो के सहवास मे हमारे दो-ढाई वर्ष बडे ही सुख से व्यतीत हुए थे। बम्बई के मेरे जीवन-काल मे जिनके सहवास मे मेरा मन विकसित हो पाया था उनका वर्णन आवश्यक मानकर मैं उनके बारे मे यहाँ कुछ कहना चाहती हूँ। प्रथमत नाना साहब और उनके परिवार की जानकारी दे रही हूँ। मैं पहले ही कह चुकी हूँ कि नाना साहब और हमारे जीवन-क्रम मे बहुत कुछ साम्य था। जिस प्रकार अपने मामा के घर आश्रय पाकर मेरे पतिदेव ने शिक्षा-दीक्षा प्राप्त की थी उसी प्रकार नाना साहब ने अपने काका के घर रहकर शिक्षा पाई थी। पूने की पढाई पूर्ण करके जिस प्रकार ये बम्बई आये थे। उसी प्रकार वे भी आये थे। उनके और मेरे पति के विचार बिलकुल एक-जैसे थे। स्त्री-शिक्षा, बाल-विवाह की रोक, विभक्त कुटुम्ब पद्धति आदि

सभी बातो में दोनो का मतैक्य था। उनके परिवार मे स्वय वे,. उनकी माता और पत्नी थी।

दूसरा परिवार विष्णुपन्त और लक्ष्मीबाई का था। इन-जैसा सुखी कुटुम्ब ससार मे बिरला ही होगा। पति-पत्नी मे प्रगाढ प्रेम था। उनमे से किसी एक के पैर मे काँटा चुभने पर उसकी वेदना दूसरे को होने वाली बात उनके बारे मे चरितार्थ होती थी। इसका विशेष कारण भी था। उनका इतिहास कुछ विचित्र होने से उसके बारे मे कुछ कहना आवश्यक होगा। बचपन से वे दोनो एक-ही जगह बडे हुए थे, एकत्र खेले थे और एक साथ उनकी पढाई हुई थी। विष्णुपन्त स्कूल से घर लौटने पर अपनी भावी पत्नी को समयानुसार पढना-लिखना सिखाया करते, छुट्टी के दिन उससे कोई किताब पढवा लिया करते। हर बात को एक-दूसरे के विचार से किया करते। बचपन से आज तक उनमे कभी किसी बात पर झगडा नहीं हुआ था। विष्णुपन्त के माता-पिता उनके बचपन मे ही स्वर्गलोक सिधार चुके थे। मरते समय उनके पिताजी ने उनके पास जो कुछ चल-अचल सपत्ति थी उसके सहित विष्णुपन्त को लक्ष्मीबाई के पिता के हाथो सौप दिया था। इस प्रकार उनका पूर्वइतिहास होने से लक्ष्मी-बाई के माता-पिता ही विष्णुपन्त के माता-पिता बन गए थे और उन दोनो को एक-दूसरे के चिर सहवास का लाभ हुआ था। ईश्वरी सकेतानुसार उनका भावी जीवन भी एक-दूसरे के सहवास मे ही व्यतीत होना था। लक्ष्मीबाई के माता-पिता इस समय काशी यात्रा करने के लिए गए थे।

विष्णुपन्त तथा उनकी पत्नी के विचार भी मेरे पति-जैसे ही थे। लक्ष्मी-बाई को बहुत-सी बातो का ज्ञान था। हर बात मे मुझे उनसे जानकारी प्राप्त होती रहती। यशोदाबाई भी उन-जैसी ही बुद्धिमति थी, किन्तु कुछ कम मात्रा मे। फिर भी दोनो का ज्ञान समान ही था। मैं ही गवार-जैसी उन लोगो मे आ पडी थी और जिसके लिए मन-ही-मन लज्जित थी। कई बार मेरे मन मे विचार आया करता कि मैं अपने पति के योग्य नही हूँ। वे मुझे मन से चाहते हैं इसका श्रेय उनकी उदार वृत्ति को ही है। बाहर वाले कमरे मे बैठकर जब पुरुषो मे किसी बात को लेकर चर्चा चला करती तो मैं उसे ध्यानपूर्वक सुना करती थी। इन दिनो प्रतिदिन रात को वे मुझसे एक घण्टा

कोई किताब पढवा लिया करते थे। एक दिन पढते समय मुझसे कोई गलती हो गई तो उन्होने कहा,

"तुम्हारी बुद्धि बहुत ही मन्द है। जरा अपनी पडोसिनो को देखा करो। यह दृष्टान्त सुनकर मुझे अपनी मन्द बुद्धि का बहुत दुःख हुआ। मुँह बिगाड कर मैंने कहा, "आजकल तो मैं बहुत लगन से पढाई कर रही हूँ। क्या मैं नही जानती कि मैं आपके योग्य नही हूँ ? किन्तु क्या कर सकती हूँ।" कहते-कहते मेरे हृदय की पीडा चेहरे पर झलक आई थी। उसे देखकर उन्होने झट से मेरा हाथ पकडकर अपनी ओर खीचते हुए कहा, "छी, छी। तुम यह क्या कह रही हो ? पगली कही की। क्या मेरे कहने का तुमने इस प्रकार विपरीत अर्थ लिया ? मेरा आशय यह नही था। मुझे जैसी चाहिए थी वैसी ही तुम हो।"

"आपके योग्य न होने पर भी आपने मुझे स्वीकार किया किन्तु अब मैं अपनी योग्यता को अवश्य बढाऊँगी। लक्ष्मीबाई हर बात मे मेरी सहायता करती हैं, वे मुझे नित्य नई बाते सिखाया करती हैं। समय पाने पर मैं उनके यहाँ जाती हूँ या फिर वे ही दोनो मेरे यहाँ आ जाती है। दोनो पढी-लिखी है। फिर भी उन्हे जरा भी गर्व नही है। मेरे कुपढ होने पर भी वे दोनो कभी मेरी खिल्ली नही उडाती। परिचय हो जाने पर पहले दिन उन्होने आग्रहपूर्वक मुझसे एक किताब पढवा ली और कहा, "अरे वाह। सासरे और मायके मे इतना प्रतिकूल वातावरण होने पर भी तुमने बहुत कुछ सीख लिया है।"

"अच्छा! तो यह सुनकर तुम फूलकर कुप्पा हो गई ?"

"धत्। कुप्पा होने की कौन-सी बात है ? मैं कोई विदुषी तो हूँ नही।"

"खैर, छोडो इन बातो को। सौभाग्य से हमे जैसा पडोस चाहिए था वैसा ही मिला है। अब देखना तो यह है कि तुम कितनी पढाई कर सकती हो ? अच्छा, यह तो बताओ, वे दोनो और उनकी घरवालियाँ एक जगह बैठकर आपस मे चर्चा करते हैं, क्या तुम वहाँ आ सकती हो ? इन चार-छः दिनों में संकोचवश वे लोग एकत्र नही बैठ पाये, यह सोचकर कि इस प्रकार स्त्री-पुरुषों का एकत्रित बैठना सम्भवत हमारी माँ को पसन्द नही आयगा। किन्तु आज मैंने उन लोगों से कह दिया है कि वे निःसकोच होकर बैठ सकते हैं और हम लोग भी उनकी बैठक मे सम्मिलित हो सकेंगे।"

"क्या कहा ? स्त्री-पुरुष एक-ही जगह बैठकर बातचीत करते हैं ? बड़े आश्चर्य की बात है। पुरुष और स्त्रियो का एकत्रित बैठना।"

"क्यो ? इसमे आश्चर्य करने की क्या बात है ? मैं तो इस प्रथा को बहुत पसन्द करता हूँ, अरे, हम लोग समवयस्क और एक-दूसरे से भली-भाँति परिचित हैं। हम लोग और हमारी गृहणियाँ यदि एकत्रित बैठकर कुछ चर्चा करें अथवा कुछ पढ़ें तो क्या आपत्ति है ? इस प्रकार एक जगह बैठने-उठने से ही तो आपस मे विचारो का आदान-प्रदान हो सकता है। खैर, आज रहने दो किन्तु कल हम लोग अवश्य वहाँ जायेंगे। यदि चाहो तो तुम यशोदा भाभी के साथ चली आना और मैं फिर······"

"ना बाबा ना ! माताजी क्या कहेंगी ? कहेंगी कि इन लोगो ने बम्बई आते ही लाज-शरम उठाकर ताक पर रख दी है। औरतो को अपने साथ लेकर बैठते हैं।

"माँ कुछ नही कहेंगी। नाना की भी तो माँ है। क्या वे कभी कुछ कहती हैं ? वैसे ही हमारी माँ हैं। इन पाँच-छ दिनो मे तुमने कभी उन सास-बहू मे झगडा होते देखा है ? सास-बहू से क्यो कुछ कहेगी। बहू कैसी है ? उसी का अनुकरण तुम भी किया करो। और हमारी माँ को पूर्ण विश्वास है कि मैं कभी कोई अनुचित बात नही करूँगा। फिर बताओ, चलोगी ना कल वहाँ ?"

"आपकी इच्छा मेरे लिए शिरोधार्य है, किन्तु माताजी······"

"तुम्हें उससे क्या—मैं सब देख लूंगा। और फिर यदि माँ की इच्छा न हो तो हम लोग नही जायँगे। लेकिन कम-से-कम कल तो जायँगे ही।"

"कल नही—फिर कभी सोचेंगे।"

"क्यो ? इसमे फिर कभी सोचने की कौन-सी बात है ? क्या कोई मुहूर्त देखना है ?"

"मुहूर्त काहे का। किन्तु व्यर्थ ही······"

"व्यर्थ अर्थ कुछ नहीं। मै विष्णुपन्त की घरवाली को ही तुम्हें बुलाकर लाने के लिए भेज दूंगा, फिर तो······बस, निश्चित हो गया।"

उस रात मेरे मस्तिष्क में विचार चक्र घूम रहा था—वहाँ कैसे जाऊँगी ? कैसे बैठूँगी ? क्या बोलूंगी ? माताजी क्या कहेंगी ?

समय मुझे लगता कि कहाँ बैठना होगा, कैसे बैठना होगा, वहाँ बैठने से उनकी व्यवस्था मे कोई बिगाड तो नही होगा ? हर चीज व्यवस्थित रूप से सजाकर रखी रहती थी। जैसे कोई प्रदर्शनी लगी हो। उन वस्तुओ मे बहुत-सी कढ़ाई-बुनाई से बनाई गई कलात्मक वस्तुएँ थी। उन्हें देखकर लक्ष्मीबाई की चातुरी, कलात्मकता और बुद्धिमानी पर आश्चर्य होने लगता। उनके सहवास मे उनकी लीनता, सुस्वभाव, मेल-जोल की वृत्ति और हर काम मे दूसरो को सहायता देने की तत्परता, मनकी निर्मलता आदि बातो का सहज ही मे परिचय हो जाता और विश्वास हो जाता कि देवता कभी-कभी पृथ्वी पर आकर वास करते हैं यह बात सत्य है। उनके अपनी सास नही थी किन्तु नाना की माँ और मेरी सासूजी का वे बहुत आदर किया करती थीं। इसलिए एक परिपाटी-सी बन गई थी कि लक्ष्मीबाई का किसी बात मे अनुकरण करने के लिए हमे हमारी सास की आज्ञा लेने का प्रयोजन नहीं रहा था।

लक्ष्मीबाई के यहाँ जाने पर नित्य के अनुसार हम लोगो मे बातचीत और कुछ पढाई आदि का कार्य होता रहा फिर भी मेरे मन मे रात वाली बात घर किये बैठी थी। रात मे सब लोगों के एकत्र बैठने पर क्या बातचीत होती हैं, किस प्रकार होती हैं आदि बातो की जानकारी लक्ष्मीबाई से प्राप्त करने का विचार मन मे आ रहा था। इस कारण नित्यकार्य मे मेरा मन नहीं लग रहा था। यशोदाबाई ने मेरी मन स्थिति को ताड लिया। उन्होंने कहा, "सीताबाई आज तुम्हारा मन स्वस्थ मालूम नही देता। कहाँ भटक रहा है ? वे बाहर गए हैं, कहीं उनके साथ तो नही भटक रहा है। हमारी लक्ष्मीबाई का सदैव यही हाल रहता है इसलिए तुमसे भी पूछ रही हूँ।"

लक्ष्मीबाई ने बीच ही मे कहा, "अच्छा जी। अपनी दृष्टि से ससार देखने जा रही हो। मालूम होता है कि आज तुम्हारा चित कहीं····· "

उनकी बात काटकर यशोदाबाई ने कहा, "मेरी बात छोडो, किन्तु सीता-बाई का चित्त आज स्थिर नही है, फिर चाहे वह कही भटक रहा हो।"

मैंने कहा, "नहीं, ऐसी कोई बात नही—आप लोग व्यर्थ मे मजाक कर रही हैं। मैं सोच रही थी कि तुम दोनो सुविज्ञ हो और मैं अपढ, मैं कैसे और कब पढ पाऊँगी ? हर समय वे मेरी अपढता की खिल्ली उड़ाया करते हैं। इसलिए······"

सान्त्वनापूर्ण स्वर मे लक्ष्मीवाई ने कहा, "अच्छा तो हर समय तुम्हारे पीछे पढाई का तगादा लगा रहता है ? तो इसमे डरने की कौन-सी बात है। तुम भी कह देना कि एक वर्ष मे तुम-जैसा पढना-लिखना सीख लूगी। अरे, चिन्ता किस बात की। आजकल तुम-जैसी पढाई कर रही हो वही क्रम चालू रखो, बस, दो-तीन वर्ष मे तुम पडिता बन जाओगी। और हाँ, तुममे जरा ढिठाई भी होनी चाहिए।"

बीच ही मे यशोदाबाई ने कहा, "हाँ लक्ष्मीबाई, जरा इनसे तो पूछो—इन्हे यहाँ आए अब पाँच-सात दिन हो गए। मुझसे तो कल ही कहा गया था कि ..."

उनकी बात काटकर उतावले-पन से मैंने कहा, "क्या कहा गया तुम से ?"

मैंने सोचा कि जो बात मुझे कही गई सभवत वही यशोदाबाई से उनके पति ने कही हो। मेरा अन्दाज ठीक था। मेरा प्रश्न सुनकर लक्ष्मीबाई ने कहा, "इसमे पूछने की कौन-सी बात है ? हम-जैसी ही तो ये भी है। इनकी सासूजी का कुछ भय मालूम होता है। उन्हे यदि पसन्द न हो तो इन्हे व्यर्थ मे कष्टदायक होगा और हम लोगो के सम्बन्ध मे भी उनका मन दूषित हो जायगा। वैसे तो उनका स्वभाव भी गोपिका काकीजी-जैसा ही मालूम होता है। क्योजी, क्या तुम्हारी सासूजी कुछ कहेगी ?"

उनके प्रश्न का आशय मेरे ध्यान मे आ गया। मैंने कहा, "कैसे कहा जा सकता है। आज तक वे स्वय स्वतन्त्र नही थी इसलिए उनकी पसन्दगी या नापसन्दगी का अन्दाज नही लगाया जा सकता। फिर भी सभव है कि उन्हे पसन्द हो या न हो, वे इस बारे मे कुछ नही कहेगी। प्रत्यक्ष अनुभव अब हो जायगा।"

मेरा उत्तर सुनकर यशोदाबाई ने जान लिया कि जिस विषय को लेकर चर्चा चल रही थी उसे मैं जानती हूँ। उन्होने कहा, "अच्छा, तो क्या रघुनाथराव ने इस सम्बन्ध मे तुमसे पूछा था ?"

"उसी बात का विचार-चक्र तो मेरे मन मे घूम रहा था और इस कारण मेरा चित्त नित्यकार्य मे नही लग रहा था। बहुत देर से तुम्हे पूछना चाहती थी किन्तु समझ मे नही आ रहा था कि कैसे पूछूं ?

हँसकर लक्ष्मीबाई ने कहा, "वाह ? इसमे पूछने की कौन-सी बात है ? मुझे तो तुम्हारी सासूजी का भय था, नही तो तुम्हारे आने के दूसरे ही दिन मैंने तुमसे कहा होता । इस प्रकार आपस मे एक-दूसरे से हँसना, बोलना, एकत्रित बैठकर कुछ पढना अथवा किसी विषय पर चर्चा करना इसमे क्या हानि है ? कैसी ओछी मर्यादा है हम लोगो मे । मैं तो जब पूने मे थी तभी नाना साहब हमारे घर आया करते और हम दोनों आपस मे बोला करते, वाद-विवाद किया करते किन्तु मेरे माता-पिता ने कभी कुछ नही कहा । उलटे हमे उत्तेजन दिया करते थे । मेरे मत मे इस प्रकार स्त्री-पुरुषो का एकत्रित होना अपने समाज के लिए हितकारक सिद्ध होगा । इस उम्र में मित्रो और सहेलियो मे बैठकर वाद-विवाद करना हमारे लिए बहुत लाभदायक होगा । इससे अधिक हम और कर भी क्या सकती हैं । कई दिनो से हम लोग रात में एकत्र बैठकर कुछ पढा करते हैं—समाचार पढने का वही समय नियत किया है हम लोगो ने ।"

उनका भाषण मुझे स्वप्नवत और यदि स्वप्न नहीं तो आश्चर्यकारक लग रहा था । मेरी मन.स्थिति ताडकर यशोदाबाई ने हँसकर कहा, "क्यो, इस प्रकार मौन क्यो हो गई ? शायद तुम्हें सुनकर आश्चर्य हो रहा है । केवल वृत्तान्त सुनकर तुम्हें इतना आश्चर्य हो रहा है तो रात को प्रत्यक्ष देखने पर तुम्हारा क्या हाल होगा ? फिर तो तुम्हारी दृष्टि मे हम लज्जाहीन कहलाएगी ।"

झटसे मैंने कहा, "यह क्या कह रही हो यशोदाबाई । क्या मैं कभी तुम्हें लज्जाहीन कह सकती हूँ । मैं इन बातो को बिलकुल नही जानती इसलिए मुझे कुछ विचित्र-सा लग रहा है । एक बार सबसे घुल-मिल जाने पर·· ·· अच्छा, यह तो बताओ कि पुरुषो के होते हुए तुम आपस मे कैसी बातचीत करती हो ?"

मेरा प्रश्न सुनकर यशोदाबाई खिलखिलाकर हंस दी । उन्होने कहा, "ऐसे ही ! जैसे तुम्हारे साथ बोल रही हैं वैसे ही उन लोगो से भी बोला करतीं हैं ।"

बीच ही मे लक्ष्मीबाई ने कहा, "अरे क्यो बेकार मे उनका मज़ाक उडा रही हो ? वे तो बेचारी भोले भाव से पूछ रही हैं । देखो सीताबाई आज

रात को भोजनादि कार्यों से निवृत्त होकर तुम यहाँ आ जाओ, अपने आप देखकर सब कुछ समझ मे आ जायगा। इसमे कौनसी बडी बात है।"

इस प्रकार हम लोगो मे बातचीत होती रही। नित्यक्रमानुसार मेरी पढाई भी होती रही। तीन-चार बजे मैं उठकर अपने घर चली गई और रात की रसोई बनाने मे जुट गई। हमारे यहाँ शाम का भोजन सात बजे हो जाया करता था। कालेज से लौटते ही वे भोजन करने बैठ जाते। यही परिपाटी नाना और विष्णुपन्त के यहाँ भी थी। भोजनोपरान्त आठ-नौ बजे तक वे लोग अन्य कार्यो मे व्यस्त रहते और उसके बाद सब लोग एकत्र बैठकर किसी विषय को लेकर चर्चा किया करते थे।

शाम को रसोई मैं बनाया करती थी क्योकि शाम को सासूजी भोजन नही करती थी। लक्ष्मीबाई के घर से आकर मैं अपने काम मे जुट गई। हमारे बगले के समीप एक मन्दिर था वहाँ सासूजी गोपिका काकीजी के साथ शाम को कीर्तन सुनने जाया करती थी। हम लोगो के आने के दो-तीन दिन बाद गोपिका काकीजी ने सासूजी से कहा, "अब तो जहाँ तक बन पडे अपनी बहू के ऊपर सब भार डालकर तुम मेरे साथ कथा, कीर्तन सुनने के लिए चला करो। सुबह की रसोई हमारे जिम्मे रहती है। इन लोगो ने अच्छी गृहणियाँ पाई हैं—उन्हे उनकी इच्छा के अनुसार चलने का अवसर हमे देना चाहिए। भगवान् की दया से हमारे लडके भी बडे योग्य है। अब वे सुख से रहे और समाधानपूर्वक उनकी गृहस्थी देखा करे। चलो मेरे साथ कीर्तन को।" हमारी सासूजी का स्वभाव भी उन-जैसा ही था। अति सरल! जो कोई कुछ कह देता तो उसी का अनुसरण करने लगती। विशेषत गोपिका काकी की बात उन्हें बहुत जंच गई थी। मन्दिर समीप होने से किसी ने कोई बाधा नही दी। उलटे उन्होने कहा, "माँ, मामा के घर तुमने बहुत परिश्रम किया है। अब भगवान् की दया से हमे अच्छी प्राप्ति हो जाती है इसलिए अब तुम विश्राम लो। मैं तो चाहता हूँ कि सुबह भी तुम रसोई न बनाया करो। चाहो तो रसोई के लिए किसी महाराजिन को रखलो। ले देकर यही होगा न कि कुछ बचा न पायेंगे। नही बचेगा तो बला से।"

"नही बेटा, महाराजिन रखने की क्या आवश्यकता है। तीन जनो की रसोई बनाने में क्या कष्ट होता है?"

"मेरा यह आशय नही है माँ, किन्तु कई वर्ष तुमने अथक परिश्रम किया है, इसलिए मैंने कहा। महाराजिन न सही फिर भी अब तुम आराम किया करो।"

"वाह। और उस लडकी से काम कराती रहूँ ? तुम भी······"

बीच ही मे मैंने कहा, "कौन-सा बडा काम है। मैं तो सहज ही मे कर लूंगी।"

सासूजी की आँखो मे पानी भर आया। रुद्ध स्वर मे उन्होने कहा, "बेटा, तुम्हारे इस प्रकार कहने से ही मैं प्रसन्न हो गई। लेकिन सुबह की रसोई मैं ही बनाया करूँगी, शाम की नही करूँगी। मैंने अब गोपिकाबाई का व्रत धारण किया है। उन्होने मुझे गुरुपदेश सुनाया है।" और तभी से सासूजी का नित्यक्रम बन गया था।

उस दिन भोजन करते समय धीमे स्वर मे मुझ से कहा गया, "क्यो, आज ऊपरी मजिल मे जाना है न ? जाते-जाते यशोदा भाभी तुम्हें बुलाने के लिए आयँगी। मैंने उनसे कह दिया है।"

"वाह ! उनसे क्यो कहा आपने ?"

"क्यों, अब क्या आपत्ति है ?"

"आपत्ति तो कोई नही, किन्तु माताजी क्या कहेंगी ? इसलिए जरा···"

"तुमने अभी माताजी को पहिचाना नही, इसलिए ऐसा सोच रही हो। वह उफ भी नहीं करेंगी।"

"नहीं करेंगी तो अच्छा ही है। हमे उनकी इच्छा के विरुद्ध कोई काम नही करना है। उन्हें किसी प्रकार दु:ख न हो। आजतक उनका जीवन दु.ख मे ही बीता है और अब हम यदि इस प्रकार······"

"क्या कहने हैं ! बडी चिन्ता है सास की।"

"चिन्ता की बात नहीं। यदि मैं वहाँ न जाऊँ तो क्या काम चल नहीं सकेगा ? वहाँ जाने पर मैं बौखला जाऊँगी और फिर सब लोग आपकी खिल्ली उडायँगे कि बडी गवार घरवाली पाई है आपने। जरा सोच लीजिए।"

"जी हाँ। और आज तक मैंने उन लोगो के सामने तुम्हारे हौसले और बुद्धिमानी के बारे मे तारीफ के पुल बाँध रखे हैं—क्या वे निरर्थक होगे ?"

"झूठी तारीफ निरर्थक ही होगी।'

"इसलिए तो कहता हूँ कि अब मेरी बात रखदो। शरमाना नही, जरा हौसला दिखाना। यदि मैं कुछ पढने को कहूँ तो मना न करना।"

"नही, नही—आप मुझे पढने के लिए न कहे।"

"अच्छा तो जाने दो। कम-से-कम वहाँ आकर बैठने मे और हम लोगो की बातचीत सुनने मे तो तुम्हे कोई आपत्ति नही है ?"

"देखना है अब कैसे निभाव होता है।

४९

जैसे-जैसे नौ बजने का समय समीप आ रहा था मेरे दिल की धडकन बढती जा रही थी। बडे आश्चर्य की बात है। समवयस्क मित्रो के अपनी पत्नियो को साथ लेकर एकत्र बैठने मे क्या हानि है ? कौन-सी बुराई है ? किन्तु नही। हमारी बिचित्र आँखे इसमे भी बुराई देखती है। एक स्त्री और एक पुरुष को आपस मे बातें करते देखकर हमारे सकुचित मन मे कुशका का बवडर खडा हो जाता है। बचपन से ही इस प्रकार की सीख देकर हमारे मन को नादान बना दिया गया है। इसमे विशुद्धता और अच्छाइयो को हम देख ही नही सकते। इस कारण, वास्तव मे जो बात सर्वथा योग्य थी, इष्ट थी, उसी बात को करने मे मुझे भय लग रहा था। अब यशोदाबाई मुझे बुलाने के लिए आयेंगी तो मुझे क्या करना चाहिए ? जाऊँ या न जाऊँ यह विचार मुझे परेशान कर रहा था। आखिर यशोदाबाई आई और सासूजी के सामने ही उन्होंने मुझ से कहा, "चलो, जरा ऊपर लक्ष्मीबाई के घर चले।" काम-काज समाप्त हो ही चुका था इसलिए सासूजी ने कहा, "जाओ, कुछ देर वहीं जाकर बैठो। मैं भी अब घटा-आधा घटा गोपिकाबाई के पास जाकर बैठूंगी। इतने जल्दी बिस्तरे पर लेट जाने से नीद तो लग जाती है किन्तु फिर बीच ही में खुल जाती है।"

यशोदाबाई के लिए इतना ही बहुत था। उन्होने मुझे चलने के लिए आग्रह किया। आखिर हाँ, नाही करते-करते मैं उनके साथ चली गई। हम दोनो जब ऊपर चढ रही थी तभी अपना काम-काज समाप्त कर लक्ष्मीबाई हमे बुलाने के लिए नीचे उतर रही थी।

छत पर एक राउड टेबल और उस पर अग्रेजी फेशन का जगमगाता लैम्प रखा था। उसके आस-पास चार-पाँच कुर्सियाँ और एक सोफा बिछा था। कुर्सियों पर तीनो युवक बैठे थे। ऊपर जाते ही लक्ष्मीबाई मेरा हाथ पकडकर घसीट कर मुझे छत पर ले गई। मैं बार-बार मना कर रही थी, किन्तु वे कब मानने वाली थी। आखिर मैं उनके पीछे चली गई। वे दोनो जाकर सोफे पर बैठ गईं। पुरुषो के सामने जाकर बैठने का धैर्य मुझे नहीं हो रहा था—मैं चुपके से भागना चाहती थी। पुरुषो की ओर पीठ फेरकर मैं खडी थी और वे दोनो मुझे अपने समीप बैठने के लिए आग्रह कर रही थी। यह देखकर विष्णुपन्त ने यशोदाबाई से कहा, "वाह भाभी, यह अच्छा तरीका है। पहले स्वय आकर बैठ जाना और बाद मे दूसरो को बैठने के लिए आग्रह करना।"

"तो क्या हुआ ? कल ही तो कही से पढकर सुनाया गया था कि दृष्टात का प्रभाव उपदेश से अधिक होता है।"

बीच ही मे लक्ष्मीबाई ने कहा, "किस तरह बैठना यह दिखाने के लिए ही तो हम यहाँ आकर बैठ गईं। सीताबाई, यहाँ हमारे समीप आकर बैठने में किस बात की शरम है ? चलो, आकर बैठ जाओ।"

धीमे स्वर मे यशोदाबाई ने कहा, "हमारे कहने से नही बैठेंगी। उन्हें तो……"

वह क्या कहना चाहती है यह ध्यान मे आते ही मैंने झटसे कहा, "चलो रहने दो, मजाक न करो।" और मैं आकर बैठ गई। मुझे बैठते देखकर उन्होंने कहा, "अब ठीक हो गया। किन्तु सामने मुँह करके बैठना। इस प्रकार तिरछी बैठने की क्या आवश्यकता है ?"

उनका भाषण सुनकर मैं शरमा गई। इस प्रकार मेरा आह्वान और प्रतिष्ठापन हो जाने पर वे लोग आपस मे बातचीत करने लगे। मैंने मौन व्रत धारण किया था। मुझे स्वय अपने सम्बन्ध मे जो वृथा अभिमान था वह आज

नष्ट हो गया जैसा कि मैं पहले कह चुकी हूँ, मेरी धारणा थी कि हम दोनो मे घनिष्ट प्रेम है और सही अर्थ मे हम ही पति-पत्नी कहलाए जा सकते है। यह धारणा बनू दीदी और उमा मामीजी की स्थिति देखकर बनी थी। मुझे मालूम नही था कि हमारे अतिरिक्त अन्य कोई सुखी दम्पत्ति हो सकते है। मेरे माता-पिता और दादा-दादी की गृहस्थी देखकर मुझे स्वय अपने बारे मे गर्व होना स्वाभाविक ही था। सुख के साथ-साथ मुझे अपनी पढाई-लिखाई पर भी गर्व था। किन्तु बम्बई आने पर जब मैंने इन दो दिव्यागनाओ को देखा तब मेरा सारा अभिमान जाता रहा था और आज रात को जब मैंने लक्ष्मीबाई को पुरुषो के साथ वाद-विवाद करते सुना तो मेरा सारा गर्व चूर-चूर हो गया और मैं लज्जित हो उठी। बार-बार मन मे विचार आ रहा था कि अपना जन्म व्यर्थ है। स्त्रियो का जन्म केवल चूल्हा-चक्की के लिए ही होता है, उसके अतिरिक्त अन्य बातो की ओर ध्यान देने की आवश्यकता नही, उनके ज्ञान की मर्यादा चूल्हे के आस-पास के क्षेत्र तक ही सीमित रहती है, इससे अधिक बुद्धि-मानी दिखाने पर बेशर्मी कहलाएगी," आदि कल्पनाओ ने सौभाग्य से मेरे मन को नही ग्रसा था। यदि ग्रस लिया होता तो फिर वह खग्रास ही सिद्ध होता, फिर उस पर कुछ और अकित नही होने पाता। इन कल्पनाओ से ग्रसित मेरी बहनो की सख्या कुछ कम नही है। बचपन से ही मुझे पढने-लिखने का चाव था। सौभाग्य से जीवन-भर के लिए जिनका आश्रय पाया था वे तो स्त्री-शिक्षा के पुरस्कर्ता थे, और बम्बई आने पर कैसे विद्वत् रत्नो का सहवास प्राप्त हुआ, इससे अधिक मेरा सौभाग्य और क्या हो सकता है ?

घबराहट के कारण मेरा चित्त उन लोगो की बातचीत मे एकाग्र नही हो रहा था। लक्ष्मीबाई और यशोदाबाई कुछ प्रश्न पूछकर मुझे चर्चा मे भाग लेने की सुझा रही थी किन्तु मैं मौन थी। उन लोगो की बातचीत पर मैं मन-ही-मन मुग्ध हो रही थी। मुझे मौन बैठी देखकर मेरे पति ने कहा, "देखा आपने नाना साहब, आज हमने यहाँ एक पाषाण मूर्ति को लाकर बैठाया है।"

झट से नाना साहब ने कहा, "रघुनाथराव, आप भी ठीक हमारे गणपत रावजी-जैसे ही हैं। राह देखना तो जानते ही नही। अजी, आज तो प्रथम

दिवस है। आज तक जिस बात का जरा भी अनुभव नही, वह एकदम कैसे की जा सकती है।"

इस प्रकार मेरा पक्ष समर्थन होते देखकर मुझे सतोष हो गया। जैसे-तैसे वहाँ बैठने की दो घटो की सजा भुगतकर मैं और यशोदाबाई नीचे चली आई। हमारे पीछे वे लोग भी उठकर चले गए। घर आने पर रात को मेरी शरमाने के लिए खिल्ली उडाई गई। अपनी पत्नी—जिसे ऐसे वातावरण का अनुभव नही, उसका पक्ष समर्थन करने की अपेक्षा, मजाक किया जा रहा है, इसके लिए मैने भी बहुत कुछ उन्हे सुना दिया। चार लोगो मे मुझे लज्जित करने का आरोप लगाकर और आयन्दा मै आपसे कभी नही बोलूंगी ऐसा कहकर मैं चुप हो गई, किन्तु मुश्किल से मेरा यह निश्चय चार-पाँच मिनिट तक टिक पाया। इस बीच मे मुझे मनाने के लिए जो प्रयत्न किये गए उनका वर्णन करने की आवश्यकता नही। इस प्रकार मेरी भीष्म-प्रतिज्ञा भग हो जाने पर बहुत देर तक हम दोनो उस दिन की चर्चा को लेकर बातें करते रहे। बीच ही मे उन्होने पूछा, "वे दोनो तुम से बोलने के लिए कह रही थीं तो तुम मौन क्यो, बैठी रही ?

मैने कहा, "इसका उत्तर तो नानाजी ने दे ही दिया था, क्या वह पर्याप्त नही है ?" इसी समय मुझे स्मरण हो आया और मैंने पूछा, "नाना साहब ने गणपतराव कहकर जिनका उल्लेख किया था, वे कौन हैं ? परसो यशोदाबाई और लक्ष्मीबाई के मुँह से भी उनका नाम सुना था।"

"वे हमारे मित्र हैं। नाना के बचपन के साथी हैं। विष्णुपन्त का भी उनसे बहुत स्नेह है। मेरा भी उनसे परिचय हो गया है। बहुत ही सज्जन पुरुष हैं।"

"मैंने सुना है कि वे यहाँ आ रहे हैं।"

"हाँ, मैंने भी यही सुना है।"

बातचीत करते-करते उन्हें नीद लग गई। मुझे बहुत देर तक नींद नहीं आई। छत पर सुनी हुई बातो का स्मरण हो रहा था। होते-होते दुर्गी का ध्यान आ गया। क्या उसकी प्रसूति हो गई ? अब उसका क्या हाल होगा ? उसकी बहुत बुरी दशा है। प्रसूति में वह कुछ कर तो न लेगी ? क्या मै उसे अपने यहाँ ला सकती हूँ ? क्या उसके माँ-बाप उसे चार दिन के लिए यहाँ

भेज सकेगे ? यदि वे हाँ कर दे फिर भी उसका वह चाडाल पति—जो हाथ धोकर उसके पीछे पडा है—क्या वह उसे यहाँ आने देगा ? इस प्रकार कई बातें मन मे आ रही थी, किन्तु कितनी देर तक मै जाग सकती थी ? कुछ देर बाद मुझे नीद ने आ घेरा।"

५०

कई बार ऐसा होता है कि भविष्य मे होने वाली घटना के सम्बन्ध मे मन पहले से ही चिन्तित हो उठता है। उस दिन ऐसा ही हुआ। उस रात दुर्गी के सम्बन्ध मे मेरे मन मे विचार चल रहे थे। दूसरे दिन भी मेरे मन पर उन विचारो का विचित्र परिणाम बना रहा, मैं उदास हो गई। भैया का पत्र क्यो नही आया ? यदि दुर्गी की प्रसूति हो जाती तो भैया ने सूचना अवश्य दी होती। क्या भैया दुर्गी के घर जायगा ? उसके सम्बन्ध मे पूछ-ताछ करेगा ? आदि प्रश्न मेरे मन मे उठ रहे थे। इच्छा हो रही थी कि भैया को पत्र लिख दूं। भोजनोपरान्त जब मैं पान देने के लिए उनके कमरे मे गई तब मैने अपना विचार उनके सामने व्यक्त किया। उन्होने कहा, "अवश्य लिख दो। मैं शाम को घर लौटूगा तब मुझे दिखा देना—अशुद्धियाँ सुधार दूंगा।"

"तो फिर कागज दवात आदि निकाल कर मेज पर रख दीजिएगा।"

इतना कहकर मैं कमरे से बाहर जा रही थी, तभी मेरी ठोडी पकड कर हँसते हुए कहा,

"जो हुक्म रानी सरकार।" मैंने उत्तर मे कहा, "रहने दीजिए। इतना बडा खिताब देने की आवश्यकता नही।"

"देने की वास्तव मे आवश्यकता नही, अब तो सम्पूर्ण राज्य आप ही का है।" मुझे जाते देखकर उन्होंने फिर कहा, "क्यो, क्या तुम पान नही खाओगी ?"

"धत्" कहकर मैं वहाँ से भाग गई।

दुपहर मे मैं पत्र लिखने बैठ गई। पूना स्टेशन से निकलने से लेकर आज तक की सारी घटनाओ का ब्यौरा मैंने पत्र मे लिख दिया। उस एक पत्र को लिखने मे मेरा दुपहर का पूरा समय व्यतीत हो गया। कई बार मन मे विचार आया कि लक्ष्मीबाई के पास जाकर उनके किसी को लिखे हुए पत्रो को पढलूं, किन्तु फिर सोचा कि उनके पत्र कैसे मांगे जा सकते हैं ? साथ ही अपना लिखा हुआ पत्र उन्हें दिखाने मे भी सकोच हो रहा था। मेरा पत्र देखकर वे खिल्ली तो नही उडायेंगी ? आखिर निश्चय हुआ कि शाम को उनके घर आने पर पहले उन्हे दिखाया जाय और यदि उनके मत मे किसी को दिखाने योग्य हो तो फिर लक्ष्मीबाई को दिखाया जायगा।

उनका घर आते ही पहला प्रश्न था, "क्या पत्र लिखा गया ?" मैंने कहा, "हाँ, मेज पर स्याही-सोख्ते मे चार-पांच कागज रखे हैं।"

सासूजी मन्दिर मे गई थी और मैं रेशमी वस्त्र परिधान करके रसोई बना रही थी। लिखा हुआ पत्र मेरे सामने पढने के विचार से कागजो को उठाकर वे मेरे समीप चौके मे आकर बैठ गए। शरमाकर मैंने कहा, "यह क्या ? कोई देख लेगा तो हँसेगा। बिलकुल चौके मे आकर बैठे हैं आप—अपने कमरे में बैठिएगा।"

"लोग बाग तो फालतू होते हैं। दूसरो पर हँसने मे उनका क्या खर्च होता है ? घर आने पर गृहिणी के पास बैठकर बातें नही करें तो किसके पास बैठकर करनी चाहिए ? यदि तुम नही चाहती कि मैं यहाँ बैठूं तो तुम मेरे साथ कमरे मे चलो। हमे कोई आपत्ति नही।"

"जी हाँ। और रसोई कौन बनायगा ?"

"यह तुम सोचो। हमारा चौके मे बैठना पसन्द नही, स्वय उठकर कमरे में आओगी नही, रसोई के लिए महाराजिन रखना मान्य नही—फिर तो सभी ओर से हमारी मुसीबत है।"

"धत्—मुसीबत काहे की। लक्ष्मीबाई या यशोदाबाई यहाँ आयेंगी तो देखकर क्या कहेंगी, यह सोचकर ही मैंने आपसे ऐसा कहा। वैसे क्या मैं स्वयं नही चाहती कि आप यहाँ बैठे रहें। मैं तो चाहती हूँ कि हमेशा आपके साथ बनी रहूँ।"

"अच्छा—यह बात है ? तो क्या कोई मार्ग निकाला जाय ?"

"अवश्य ।"

"सोचलो, नही बाद मे बदल जाओगी ।"

"नही बदलूंगी ।"

"देखो ।"

"देख लिया ।"

"देख लिया । कल जरा अपने साथ ले गया था—वहाँ तो तुम्हारी सहेलियाँ भी मौजूद थी—फिर भी तुम डर गई । और कहती है कि हमेशा साथ रहना चाहती हूँ—बस बातें ही सुन लो ।"

"बातें क्यो ? कल तो पहला दिन था । चार दिन के बाद देख लेना । मैं अकेली इतना बोलूंगी कि दूसरो को बात करने का अवसर ही न मिलने पाए । समझे आप ?"

खूब समझा ! एकान्त मे ही बोलोगी ना ? तब तो हमारा मुँह बन्द हो सकता है ।"

"हिष्ट—हर बात पर आपकी उक्ति रहती है । अच्छा तो आप पत्र पढ रहे हैं ना ?"

"इस समय नही, रात को सब लोगो मे बैठकर ही पढेंगे ।"

यह सुनकर मैं घबडा गई । सब लोगो के सामने मेरा अशुद्धियो से भरा हुआ पत्र पढ़ा जायगा ? घबडाकर 'नही, नही' कहती हुई मैं पत्र को झपटने के लिए उनके पास चली गई । मेरी घबडाहट को देखकर उनसे अपनी हँसी रोकी नही जा रही थी । चिढाकर उन्होने कहा ,

"क्यो, अब आपका वह धैर्य कहाँ जाता रहा ? बस—समाप्त ? लिखा हुआ पत्र दूसरो के सामने पढने की बात सुनकर इतनी घबडा गई फिर खूब बोलने की उस शेखी का क्या होगा ?"

यह सुनते ही मैं समझ गई कि उन लोगो के सामने पत्र पढने की बात मजाक में कही गई थी । साहस बटोर कर मैंने कहा, "हाँ कहते ही हौसला थोड़े ही आ जाता है । आते-आते आ जायगा । अच्छा तो अब पत्र पढकर देख लीजिएगा । माताजी के घर लौटने का समय हो रहा है । फिर भोजन करने बैठना होगा ।" इतना कहने पर पत्र पढना आरम्भ हुआ ।

मेरा वह औंधा-सीधा लिखा पत्र—किन्तु कितने चाव से पढ़ा गया । यह

तो उनका स्वभाव ही था। मेरी हर बात की बडाई की जाती थी, मुझे खूब उत्साहित किया जाता था। पूने से मैंने उन्हें पत्र भेजा था उसे लिखे अधिक समय नहीं हुआ था। पूना से बम्बई आकर आठ दिन ही तो बीते थे। इतनी अल्पावधि मे मेरी लिखावट में क्या सुधार हो सकता था ? किन्तु बहुत सुधार हुआ है कहकर मेरी सराहना की गई। मेरी दृष्टि मे केवल स्वच्छता के बारे में अवश्य सुधार हुआ था। व्याकरण दोष, अक्षरलोप आदि बातें वैसी ही थी। पत्र पर स्याही का एक भी धब्बा नही था। योग्य अन्तर रखकर अक्षर लिखे गए थे इस कारण गिचा-पिच नहीं हो पाए थे। वे सुधार अवश्य दिखाई दे रहे थे और इसका श्रेय लक्ष्मीबाई की चार दिन की पढाई को ही दिया जा सकता है।

इस प्रकार अपने पत्र की स्तुति सुनकर मैं फूली नही समाई। दूसरे दिन लक्ष्मीबाई को दिखाकर पत्र भेजने के लिए कहा गया किन्तु उस पत्र में मैंने लक्ष्मीबाई की बहुत स्तुति की थी और शायद वह उन्हें पसन्द न हो तो वे लिखने के लिए मना कर देंगी यह सोचकर मैंने विचार किया कि रात को इनसे पत्र मे दुरुस्ती करवाकर फिर उसकी प्रतिलिपि बना लूंगी और तब लक्ष्मीबाई को पत्र दिखा दूंगी। रात को सब लोगो के एकत्रित होने पर लक्ष्मीबाई और यशोदाबाई के सम्बन्ध में लिखा गया अंश छोडकर शेष पत्र उन्होंने सबको पढकर सुना दिया। सुनते समय शरम के मारे मैं गडी जा रही थी। पत्र सुनने के बाद लक्ष्मीबाई ने उस पत्र की माँग की। माँग करने पर मना कैसे किया जा सकता था किन्तु मैंने उनसे वचन ले लिया कि मेरी समझ मे जो आया उसे मैंने लिखा है। आप उसमे किसी प्रकार की काट-छाँट नही करेंगी। उनके हाँ करने पर पत्र मैंने उन्हें दे दिया। उन्होंने पत्र पढकर उसकी अशुद्धियों को सुधार दिया। उन्होंने कहा, "मैंने तुम्हें वचन दिया है इसलिए आग्रह नहीं कर सकती अन्यथा पत्र का कुछ भाग कम करवा देती।" दूसरे दिन पत्र साफ लिखकर डाक से भेज दिया गया। उसी दिन शाम को कालेज से लौटने पर मुझे मेरे नाम का एक पत्र लाकर दिया। लिफाफे की लिखावट से ही मैं जान गई कि पत्र भैया का है। पत्र में क्या लिखा है यह जानने की मुझे उत्सुकता लग रही थी इसलिए मैंने पत्र पढ़ने के लिए उनसे अनुरोध किया।

५१

"अनेकानेक आशीर्वाद । तुम्हे दिये गए वचनानुसार मैं परसो दुर्गी के घर गया था । उसी दिन प्रात काल उसकी प्रसूति हुई थी। उसके भाई से पूछ-ताछ करने पर मालूम हुआ कि तीन-चार दिन से उसके पेट मे दर्द था और डाक्टर की सहायता से प्रसूति हो पाई । मैं उसकी माँ से भी मिला था किन्तु उनसे अधिक पूछ-ताछ न कर सका । योग्य पूछ-ताछ मैंने अवश्य की । उन्हीं से मैं जान गया कि दुर्गी को बहुत कष्ट हुए थे । उसकी दादी ने कहा कि दुर्गी ने बहुत देर तक अपने पेट मे दर्द होने की बात को छिपा रखा था । सन्तोष-जनक बात तुम्हे केवल इतनी-ही लिखनी है कि प्रसूति होकर दुर्गी ने एक पुत्र को जन्म दिया है । प्रसूति के अनन्तर अब उसका क्या हाल है यह आगे जानने पर मैं तुम्हे लिखूंगा । उसके बारे मे स्त्रियो-जैसी जानकारी तो मुझे नही मिल सकती । दुर्गी से तुम्हे जितना प्रेम है उससे कही अधिक मुझे भी है । मुझे उस पर बहुत तरस आता है । यदि तुम यहाँ होती तो उसके घर जा सकती, उसके पास घटो बैठ सकती, जिससे उसे भी सन्तोष होता । लेकिन मैं तो नही जा सकता । दूसरो से उसके सम्बन्ध मे पूछ-ताछ करना अथवा अधिक-से-अधिक उसके सामने खडे होकर उसे पूछना, "क्यो दुर्गीबाई, सब ठीक तो है ? क्या यमू बाई को कुछ विशेष लिखना है ?" मैं पुरुष होने के कारण इससे अधिक उस बेचारी के लिए क्या कर सकता हूँ । जाने उस बेचारी के भाग्य में क्या लिखा है ? उसका पति आजकल यहाँ नही है । नौकरी की खोज मे कही गया है । भगवान जाने किस नौकरी की खोज मे है । अच्छा है कि इस समय वह यहाँ नही है । कम-से-कम प्रसूनि काल मे तो दुर्गी को दु ख नही देगा । भगवान करे वह चार-छ महीने लौटकर न आए ।

इन दिनो नई माँ की वृत्ति कुछ अस्थिर मालूम देती है । तुमने उस दिन जिस स्त्री को देखा था उसे मैंने भी दो बार घर आते देखा है । वह क्यों आती है इसका कारण मैं नहीं जान सका । दादी माँ ने कल गॉव को प्रस्थान किया। आजकल मुझे यहाँ अच्छा नहीं लग रहा है । तुम यहा थी तब चार-आठ दिन में तुम से भेंट हो जाती थी और दिल खोलकर हम लोग बातचीत कर लेते

थे, किन्तु इन आठ दिनो मे मैं बहुत उदास हो गया हूँ। दिन में कई बार तुम्हारी याद आती है। और हाँ, यहाँ से जाते समय बम्बई की सब बातें विस्तारपूर्वक लिखने का वचन देकर तुम गई थी, उस पत्र का क्या हुआ ? शायद तुम्हें अपने भैया का विस्मरण हो गया। बम्बई के नवीन वातावरण में तुम यहाँ के लोगो को भूल गई हो। तुम्हारा घर कैसा है ? इन आठ दिनो मे तुमने क्या काम किया ? तुम्हारे पडोसी बडे मिलनसार लोग हैं, फिर तो तुम वहाँ बडे मजे मे हो ? एक बार मुझे आकर देखना होगा।

हाँ, और तुम्हारी पढाई का क्या हाल है ? बम्बई जाने पर यूँ करूँगी त्यूँ करूँगी ऐसी डींग मारा करती थी—अब तुम्हें वह सब करके दिखाना होगा। हर सप्ताह तुम्हारा जो पत्र आयगा उसे पढकर मैं तुम्हारी प्रगति का अन्दाज लगा सकता हूँ। बम्बई मे जो कुछ देखो, पढो उसका सम्पूर्ण वृत्तान्त मुझे लिखकर भेजती रहो। मैं भी यहाँ का हाल लिखकर भेजता रहूँगा।

बस—अब और क्या लिखना है ? महत्त्वपूर्ण बात कोई नहीं। तुम्हारे ममिया ससुर के घर मैं नही गया। तुम्हारे शकर मामाजी को देखकर मेरे शरीर मे आग-सी लग जाती है। परसो रास्ते मे उनसे भेंट हुई थी। मैं उनसे बोलना नही चाहता था किन्तु उन्होने मुझे टोककर कहा, "क्यो गणपतरावजी हम पर इतनी अब कृपा क्यो ?" मैंने विशेष कुछ नहीं कहा, बात टालकर चला गया। आज तक मैंने किसी व्यक्ति का इतना तिरस्कार नहीं किया। स्वय उनसे बोलने के लिए जाने पर वे अवश्य टालकर चले जायेंगे और उनकी ओर दुर्लक्ष करने पर वे सामने आकर टोके बिना नही रहेंगे। बडे ही विचित्र मनुष्य हैं। उनका यह विलोपित माथा, उस पर लगाया हुआ त्रिपुंड चन्दन, उनके बारे में सुनी हुई चर्चाएँ······किन्तु मैं यह क्या लिख रहा हूँ। उनका नाम निकलते ही उनकी मूर्ति दृष्टि के सामने आ जाती है और फिर······तुम तो खूब जानती हो उन्हें, मेरे लिखने की क्या आवश्यकता है। तुम्हारे तो वे ममिया ससुर हैं—कुछ कम अधिक लिखने से तुम नाराज हो जाओगी। अब इस दीर्घ पत्र को समाप्त करना ही होगा। बहुत रात बीच चुकी है, व्यर्थ जगार हो रही है। हमेशा पत्र भेजकर समाचार लिखती रहो। तुम्हारे पत्र पढकर मुझे बहुत सतोष होगा। यहाँ के वातावरण से तुम पूर्ण परिचित हो। इति। आशीर्वाद।"

पत्र मैंने मन-ही-मन पढ़ा था। उन्होने पूछा, पत्र मे क्या लिखा है तो हाथ बढाकर मैंने कहा, "पढ लीजिए।" किन्तु उन्होने मुझे पढकर सुनाने का आग्रह किया। रात को पढकर सुनाऊँगी ऐसा मैंने कहा और तदनुसार रात को उन्हे पढकर सुना दिया। पढने के आवेग मे मनुष्य सब कुछ भूल जाता है वही हाल मेरा हुआ। बहुत देर तक उस पत्र को लेकर हम दोनो चर्चा करते रहे। इसी समय नित्यक्रमानुसार नाना साहब ऊपर छत पर जा रहे थे। जाते-जाते उन्होंने पुकार कर कहा, "चलो आ रहे हो ना ?" "हाँ, आया," कहकर वे भी उनके पीछे चले गए। आज मैं जाना नही चाहती थी—भैया का पत्र दो-चार बार पढने की मुझे इच्छा हो रही थी, किन्तु मैंने उन्हे सूचित नही किया था इसलिए यशोदाबाई की भी राह न देखकर मैं ऊपर चली गई। जाते-जाते मैंने निश्चय कर लिया था कि आज शरमाऊँगी नही और आवश्यक होने पर कुछ बोलूंगी भी। मेरे ऊपर जाते ही लक्ष्मीबाई ने कहा, "आइए सीताबाई, आज तो अकेली ही ऊपर चली आई ? और बिना बुलाए ?" इसी समय यशोदा-बाई भी वहाँ आ गई। उन्होने कहा, "आज कोई विशेष बात मालूम होती है। आज मेरे बुलाने की भी राह नही देखी गई। हाँ, फिर कल के सम्बन्ध मे क्या विचार किया गया ? क्या इन्हें साथ ले जाना होगा ?"

"आखिर तुम से नही रहा गया ? मैं दुपहर से सोच रही थी कि किस प्रकार विषय निकाला जाय ? इन्हे साथ मे ले जाने का प्रश्न ही उपस्थित नहीं होता। इनकी ओर से कब इन्कार हो सकता है ? सब लोगो के सामने मैं विषय निकालना चाहती थी जिससे अपने आप निर्णय हो जाता।"

"तो अभी क्या बिगडा है। वही चलकर बात निकाली जाय जिससे इन्कार नही किया जा सकेगा।"

"लेकिन इन्कार क्यो करेंगे ?"

उन दोनो का सभाषण मेरी समझ मे नही आ रहा था। इन्कार करने या न करने का क्या प्रश्न है। समझ मे नही आ रहा था। उनसे स्पष्टीकरण चाहने पर यशोदाबाई ने हँसकर कहा, "छत पर चलो, वहीं मालूम हो जायगा।" इतना कहकर वे ऊपर जाने लगी। आज मैंने निश्चय किया था कि शरमाऊँगी नही किन्तु छत पर जाते ही जैसे पुरुषो पर मेरी दृष्टि पड़ी वैसे ही पैर रुक गए और गर्दन झुक गई। आदत का परिणाम

विलक्षण होता है, फिर भी किसी के आग्रह करने से पहले ही मैं जाकर कोचे पर बैठ गई। फिर भी मनस्थिर नही था। यशोदाबाई ने नाना साहब को सम्बोधन करके कहा, "क्या कल हम अपने साथ सीताबाई को ले जा सकती हैं ?"

नाना०—"हमसे क्या पूछती हो ? वे स्वयम् यहाँ उपस्थित हैं, उनके पति भी बैठे हैं। क्यो विष्णुपन्त ?"

विष्णु०—"ठीक तो है। रघुनाथराव यहाँ उपस्थित हैं, उनसे पूछ लो।"

लक्ष्मी०—"उन्ही से तो पूछा है, और किसी से पूछना होता तो यहाँ पूछने की क्या आवश्यकता थी ?"

नाना०—"अच्छा जी। हमारी ओर देखना और दूसरे से प्रश्न पूछना। यह नई प्रथा हमे आज मालूम हुई। खैर, जाने दो। रघुनाथराव अब आप उत्तर दीजिए।"

रघु०—"उत्तर क्या देना है ? पूने से लाकर आपको सौंप दिया है। जहाँ जाना हो जाइए, जो करना हो कीजिए। हमसे पूछने का प्रश्न ही उपस्थित नही होता। यदि जाने वाले की इच्छा हो तो……"

लक्ष्मी०—"साफ-साफ कहिए। उनकी इच्छा का प्रश्न नही है—हमारे कहने से वे तो अवश्य आयेंगी किन्तु प्रश्न माताजी का है।"

रघु०—"यह तुम्हारा काम रहा। गोपिका काकीजी से कहलवाने पर काम बन सकता है।"

यशोदा०—"यह तो ठीक है, किन्तु आपकी ओर से तो कोई आपत्ति नहीं ? माताजी से मैं कह लूंगी।"

रघु०—"मेरी ओर से क्या आपत्ति हो सकती है ? और हमारे मना करने पर क्या आजकल की स्त्रियाँ मान जायेंगी ? वे तो अब अपने पति के नाम का भी उच्चारण करती हैं।"

लक्ष्मी०—"अपने पति का ही तो नाम लेती हैं, किसी दूसरे का तो नहीं लेती।"

रघु०—"वा दूसरे को नाम से पुकारने मे क्या आपत्ति है ? पति का नामोच्चार और उसके साथ सबके सामने सभाषण करने मे ही तो मर्यादा भग होती है। बडो का अपमान हो जाता है, कितनी घृणित प्रथा है। कहते

हैं कि हमे दूसरो के सामने अपनी पत्नी से नही बोलना चाहिए और पत्नी को तो पति की ओर झाँककर भी नही देखना चाहिए।"

नाना०—"ठीक कहते है आप। ये मूर्खतापूर्ण बाते बिलकुल थोथी प्रथाएँ—न जाने कब मिटेगी ? वैसे तो हमे इन बातो का विशेष अनुभव नही है।"

विष्णु०—"और हमे तो बिलकुल जानकारी नही है। हमारा विवाह करते समय काकाजी ने तो कमाल कर दिया था—"

लक्ष्मी०—"बस—बस, रहने दीजिए उन बातो को—"

विष्णु०—"सुनो रघुनाथराव, विवाह सस्कार मे लाजा होम (विवाह की एक विधि जिसमे 'लाजा' या खीले अग्नि मे स्वाहा की जाती है।) करते समय पुरोहित जी बार-बार इन्हे मेरे हाथ को छूने के लिए कह रहे थे और ये शरमा रही थी—मेरा हाथ नही छू रही थी। काकाजी समीप मे खड़े थे, उन्होने कहा, "अरे दो दिन पहले हमारे सामने बैठकर घटो आपस मे बातचीत किया करते थे, झूले पर साथ-साथ बैठकर काना-फूसी किया करते थे और आज शरमा रहे हो ?" यह सुनकर सब लोग खिलखिलाकर हँस दिए। दूसरे दिन तो हम दोनो को एक तरफ ले जाकर काकाजी ने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया, "देखो, तुम दोनो का विवाह कर दिया वह शरमाने के लिए नही। आज तक तुम दोनो मे जैसा बर्ताव होता रहा उसी प्रकार आगे भी चलता रहे। मैं तो उसी क्षण से पहले-जैसा ही बरतने लगा किन्तु ये शरमाती रही। और राधा काकीजी इसी का पक्ष समर्थन करती थी किन्तु हमारे एक दाजीवा थे, उनकी सहायता से कुछ ही दिनो मे मैंने इनकी वृथा शरम को समाप्त कर दिया।

नाना०—"हमे कोई कठिनाई नही आई। ये तो हम से भी एक कदम आगे रही।"

रघु०—"और हमारा हाल आप लोग देख ही रहे हैं।"

इस प्रकार बातचीत होती रही। कुछ देर बाद हम लोग अपने-अपने घर चले गए। कल हमे कहाँ जाना है, उसके लिए आज्ञा क्यो चाही गई आदि बातों को मैं नही जान पाई। घर आने पर जब मैंने प्रश्न किया तो कहा गया, "मुझे नहीं मालूम। लक्ष्मी भाभी ने पूछा और मैंने हाँ कह दिया। जहाँ जायेंगी वहाँ तुम्हें जाने मे कोई आपत्ति नही।" उनकी हँसी देखकर मैं ताड

गई कि उन्हें सब मालूम है। जब मैंने बहुतेरा मनाया तब कहा गया, "कहीं पास-पडोस मे महिलाओं की कोई सभा है, वहाँ जाना है।"

आश्चर्य से मैंने पूछा, "सभा को ? तो क्या वे दोनों सभा मे जायेंगी ? ओ मेरी मैया !"

"ओ मेरी मैया।" मुझे चिढाकर उन्होंने कहा, "क्यो, क्या हो गया ? क्या बधिया बैठ गई ? सभा का नाम सुनते ही घबडा गई।"

आश्चर्य से मैं हकबका गई। मेरे मुँह से शब्द नही निकल रहा था। मन मे विचार आ रहा था कि वहाँ जाने से इन्कार कर दूँ। स्त्रियो की सभा मे सम्मिलित होना ! महान् अनर्थ ! माताजी कभी नही मानेंगी। पूना खबरें पहुँचते ही क्या हाल होगा ? सुनकर शकर मामाजी आग-बबूला हो जायेंगे। पहले ही बम्बई मे घर करने के लिए उनका विरोध था।

मन कुछ स्थिर हो जाने पर मैंने कहा, "वहाँ जाने को मेरा जी नहीं चाहता। माताजी को पसन्द न होगा और पूना मे घर के लोगों को पता चल गया तो क्या हाल होगा इसे भी जरा सोचिए।"

"क्या कहेंगे पूना के लोग ? और कहेंगे इसलिए डरने की क्या आवश्यकता है ? और उन्हें कौन कहने जा रहा है ? गोपाल मामाजी कुछ नही कहेगे। मैं उनका स्वभाव खूब जानता हूँ। छोटी मामीजी का स्वभाव जरा ·· "

"उनकी बात छोडिए किन्तु शकर मामाजी जो हैं·· ·· "

मेरी बात काटकर बीच ही मे उन्होंने कहा, "रहने दो। मैं उनका नाम भी सुनना नही चाहता। मुझे उनकी परवाह नही—उनके ढोंग धतूरो और तिलक त्रिपुडो से मैं खूब परिचित हूँ। स्वयम् उनका आचरण शुद्ध नही और बातें बनाते हैं खूब। क्या मैं ऐसे व्यक्ति से दब सकता हूँ ? अब मामा है इसलिए···· "

इस पर मैं क्या कह सकती थी। सासूजी का बहाना भी व्यर्थ था। यदि यशोदाबाई की सास उन्हें जाने के लिए मना नहीं करती तो मेरी सासूजी भी उनके साथ जाने के लिए मुझे मना नही करेंगी, इसे मैं जानती थी। गोपिका काकीजी से उनकी बहुत घनिष्टता हो गई थी। सुबह से लेकर शाम तक उन दोनो का अत्याधिक समय भजन-पूजन करने मे ही व्यतीत होता था। गोपिका

काकीजी का सहवास होने से सासूजी भी उन्ही-जैसा बर्ताव करने लग गई थी। इसका मुख्य कारण यह था कि दोनो ही समान परिस्थिति से जीवन का मार्ग अतिक्रमण करती आ रही थी। दोनो केवल उनके इकलौते बेटो पर ही निर्भर थी और बेटे भी बडे होनहार और सदैव अपनी माँ की सेवा मे तत्पर रहने वाले थे। किसी बात मे माँ की इच्छा के विरुद्ध कोई काम नही करते। और उनकी बहुएँ—आत्मश्लाघा का दोष स्वीकार कर मुझे स्पष्ट कहना होगा—सदा उनकी आज्ञा मे रहती थी। बेटियो से अधिक उन्हे चाहती थी। आरम्भ मे कभी-कभी नाना साहब को अपनी माँ का विरोध सहना पडा था। नाना ने कभी माँ की इच्छा की अवहेलना नही की थी किन्तु कुछ समय बाद उन्ही बातो को नवीन दृष्टि-कोण से नाना ने अपनी माँ को समझाकर उसकी सम्मति प्राप्त करली थी। इस कारण आज उनकी माँ का स्वभाव इस प्रकार उदार बन गया था। नाना साहब ने जो कार्य किया था उसका लाभ आज हमे मिल रहा था।

५२

आज तक मैंने केवल सभा का नाम सुना था, प्रत्यक्ष जानकारी मुझे नही थी। मैं केवल इतना ही जानती थी कि चार पुरुष एकत्र होकर जहाँ भाषण करते हैं उसे सभा कहा जाता है। भैया ने मुझे यह जानकारी दी थी। यदा-कदा भैया पूना मे हीराबाग की सभाओ मे जाया करता और फिर मेरी आदत के अनुसार मैं उसके मुँह से सभा का वर्णन सुन लेती थी। फिर भी सभा के सम्बन्ध मे मुझे विशेष जानकारी नही थी। स्त्रियो का सम्बन्ध भी सभा से हो सकता है इसकी मैंने कभी कल्पना भी नही की थी इसलिए स्त्रियो की सभा का नाम सुनकर मैं दंग रह गई। मन-ही-मन सोच रही थी कि किसी प्रकार

वहाँ जाने का प्रसग टल जाय। मैंने उनसे एक-दो बार कहा भी था किन्तु उनका उत्तर था—"यह नही चल सकता। लक्ष्मीबाई और यशोदाबाई के कहने के अनुसार काम करना होगा। होते-होते दुपहर का समय हो गया। काम-काज समाप्त करके मैं लक्ष्मीबाई के घर चली गई और उनसे पूछ-ताछ करने लगी। उन्होने मुझे अच्छी तरह समझा दिया। इसी समय यशोदाबाई भी वहाँ आ पहुँची। उन्होने मुझ से कहा, "सीताबाई, तुम्हारी सासूजी तुम्हें हमारे साथ नही भेज रही हैं। अब क्या किया जाय ?"

अब तक मेरा खयाल था कि मैं स्वय जाना नही चाहती किन्तु अब जो मेरी मनःस्थिति हो रही थी उससे पता चला कि मैं जाना चाहती हूँ। क्योकि यशोदाबाई के शब्द सुनकर मैं निराशा का अनुभव कर रही थी। मन कह रहा था कि ये दोनो जा रही हैं तो फिर मैं क्यो नही जा सकती ? मेरी सासूजी ने मुझे ही क्यो मना कर दिया ? क्षण-भर के लिए ऐसा विचार मन मे आया किन्तु दूसरे ही क्षण मैंने सोचा कि उनकी आज्ञा योग्य हो सकती है। इसलिए मैंने यशोदाबाई से कहा, "उनका कहना योग्य है। आप दोनो की और मेरी बराबरी नहीं हो सकती। अभी गृहस्थी जमाए हमे चार दिन हुए हैं, अभी से स्वच्छन्द बरताव कैसे कर सकती हूँ ? पूना मे यदि हमारे घर पता चल जायगा तो हमारी अजिया सास हमें अपने घर मे पैर नही रखने देंगी। बहुत ही तीखा स्वभाव है उनका।"

"तुम्हारी अजिया सास का तीखा हो सकता है किन्तु तुम्हारी सासूजी का नही है। मैंने उनसे केवल इतना ही कहा कि, "आज हम दोनो बाहर जा रही है तो क्या सीताबाई को अपने साथ ले जायें ?" उत्तर मे उन्होने कहा, 'हाँ, ले जाओ।' मेरा खयाल है कि तुम्हारे पति ने उन्हें पहले ही बता दिया होगा, क्योकि उन्होने जरा भी आना-कानी नही की।

"केवल सासूजी का ही प्रश्न नही है—घर के और लोगो का भी विचार करना होगा। अच्छा, तो क्या उन्होने सचमुच सम्मति दी है ? तुमने उनसे क्या कहा ?"

"मैंने अभी जो बताया, बस इतना ही कहा।"

"इससे क्या बनता है ? तुमने यह नहीं कहा कि सभा को जाना है ? यदि सभा मे जाने के लिए वे सम्मति दें तब तो मैं जा सकती हूँ।"

"यह कैसे कहा जा सकता है ? मेरी बात मानो, जब उन्होने कुछ नही पूछा तो बताने की क्या आवश्यकता है ? पूछने पर बता दिया जायगा। तुम्हें डरने की आवश्यकता नही, हमारी सासूजी सब ठीक कर लेंगी।

उनकी बात से मेरा समाधान नही हो रहा था। मैंने कहा, "यह ठीक नहीं। उन्हे साफ-साफ बताकर यदि वे सम्मति दें तो मैं जा सकती हूँ। नहीं तो ···· "

बीच ही मे लक्ष्मीबाई ने कहा, "जरा ठहरो तो, मै जाकर पूछ लेती हूँ। जरा युक्तिपूर्वक पूछना होगा। देखूं, क्या कहती हैं ?"

इतना कहकर वे चली गई। मै भी उनके पीछे जाकर चुपके से उनकी बातें सुन रही थी। मेरे पीछे यशोदाबाई भी आई थी किन्तु वे भीतर चली गई।

लक्ष्मीबाई आरम्भ मे इधर-उधर की बाते करती रही। फिर उन्होने कहा, "आज सायकाल हम एक जगह जा रही है, क्या आप सीताबाई को हमारे साथ भेजेंगी ?" सासूजी ने झट से कहा, "अवश्य लेती जाओ, तुम्हारे साथ भेजने मे क्या आपत्ति हो सकती है ? अभी-अभी मैंने यशोदाबाई से भी तो कहा था। कहाँ जाना है ? कुछ देखने जा रही हो ? मै भी·· ···"

अब आगे वे क्या कहती है इसका मुझे डर लग रहा था। कही वे तो हमारे साथ जाने को नही कह रही है ? किन्तु बीच ही मे लक्ष्मीबाई ने कहा, "नहीं, कुछ देखने नही जा रही है—हमारी कुछ सहेलियाँ एक जगह एकत्रित हो रही हैं, वही हमे भी जाना है विशेष दूरी पर नही है।"

"हाँ, हाँ, अवश्य जाओ। लेकिन अन्धेरा होने से पहले लौट आना।"

उनके उद्‌गार सुनकर मै खुश हो गई। न जाने का अपना विचार मै अब भूल गई। अब तो लग रहा था कि कब जाती हूँ।

चार बजने का समय हो गया। बालो को सवार कर मैं तैयार हो गई। दो-चार आभूषण थे, उन्हे भी धारण कर लिया। नई साडी-चोली परिधान कर ली। बम्बई आते समय अजिया सासूजी ने एक शाल दी थी उसे ओढकर मैं सज-धज कर तैयार हो गई। इसी समय लक्ष्मीबाई भी आ गई। उन्होने विशेष सज-धज नही की थी। उनकी हमेशा की पोषाक थी। साडी बदली थी पैर में जूता था और शाल ओढ ली थी। यही हाल यशोदाबाई का भी था। मेरे

पैरों में जूता नहीं था। हम तीनो घर से निकल दी, लक्ष्मीबाई का नौकर हमारे साथ मे था।

सभा-स्थान हमारे बगले के समीप ही था। हमारे पहुँचने के पहले वहाँ आठ-दस स्त्रियाँ एकत्रित हो गई थी। उनमे से किसी ने कहा, "कहिए लक्ष्मीबाई, आज आने में कुछ विलम्ब हुआ ?" वे स्त्रियाँ मेरी ओर कुछ विशिष्ट दृष्टि से देख रही थी। मुझे वहाँ कुछ विचित्र-सा मालूम हो रहा था। यह क्या है ? हम लोग कहाँ आए हैं ? ये कौन स्त्रियाँ हैं ? सभा किस बात की है ? आदि कई प्रश्न मेरे मन मे उठ रहे थे। मैं शरमा रही थी। विशेष कारण यह था कि ये सब महिलाएँ लक्ष्मीबाई-जैसी विदुषी थीं और मैं गवार इन लोगो मे आकर फँसी थी।

वहाँ पहुँचने पर मुझे मालूम हुआ कि बाल-विवाह विषय पर कोई महिला एक निबन्ध पढकर सुनाने जा रही थी। सभा मे क्या होता है इसे मैं नहीं जानती थी।

कुछ देर तक और महिलाओ के आने की राह देखी गई। फिर उन्हीं में से एक महिला को अध्यक्षा बनाकर सभा का कार्य आरम्भ हो गया। मेरे लिए वह सब नई चीज थी। देखकर मुझे प्रसन्नता हो रही थी। सभा, अध्यक्षा, निबन्ध-वाचन आदि कार्य महिलाओ की ओर से सपन्न होते देखकर मुझे कुतूहल होना स्वाभाविक था। क्या महिलाएँ इतनी विद्वान हो सकती हैं ? आज तक मैं अपने घर की स्त्रियो के अतिरिक्त अन्य स्त्रियो मे कभी सम्मिलित नही हुई थी और आज पहली बार सम्मिलित हुई तो ऐसी बुद्धिमान महिलाओ की सभा मे मेरी धारणा हो गई थी कि बम्बई की सभी महिलाएँ विदुषी होती हैं। मैं दग रह गई। बाल-विवाह, उससे हानि, कई बार लडका मूर्ख निकलने से लडकी का जीवन कैसे दुरुह हो जाता है, बाल्यवस्था मे ही कुप्रथाओ का शिकार कैसें बनना पडता है आदि उस निबन्ध की बातें सुनकर मेरे मन पर विलक्षण परिणाम हुआ था। निबन्ध-वाचन के पश्चात् और भी दो-एक महिलाओ ने कुछ कहा। लक्ष्मीबाई ने भी भाषण दिया। मेरे मन मे विचार आ रहा था कि मैं भी बेचारी दुर्गी की जीवन-गाथा सुना दूं। मन मे आ रहा था कुछ बोलूँ, किन्तु इस प्रकार की स्फूर्ति क्षणमात्र के लिए आती है और फिर उसका लोप हो जाता है। स्त्रियो के लिए ही क्यो, पुरुषो के लिए भी यह

अनुभव सिद्ध बात है । बोलने का विचार आते ही हृदय धडकने लगा । बहुत देर हो चुकी थी इसलिए सभा का कार्य समाप्त किया गया और हम अपने घर लौट आईं । हम लोगो के आने से पहले ही वे घर आ गए थे और मेरी राह देख रहे थे । कमरे मे पैर रखते ही उन्होने कहा,

"आइए देवीजी । अब तो आपकी सभाएँ होने लगी । अब देखना है कि इसका परिणाम क्या होता है ? सभा का वर्णन समाचारपत्रों मे छपेगा, तुम्हारा नाम भी छपेगा, पूना मे घर के लोग उसे पढेगे, और फिर......"

यह सुनते ही मैं घबडा गई । सभा देखकर मुझे जो हर्ष हुआ था, उत्साह बढा था, वह सब जाता रहा । सभा का समाचार पूना के लोग पढेंगे, तब तो मैं कही की नही रहूँगी—मैंने बार-बार उनसे कहा, "सच बताइए, क्या अखबारो मे छपेगा ?" उन्होने फिर भी कहा, "तो क्या मैं झूठ कह रहा हूँ ।" रुआसी होकर मैंने कहा, "जब यह मालूम था तो फिर मुझे जाने के लिए क्यो कहा गया ? ठीक है होकर एक बार ही तो लगती है । भविष्य मे फिर कभी नही जाऊँगी ।" कहते-कहते मेरी आँखो मे पानी भर आया । यह देखते ही उन्होने कहा, "अरे यहाँ तक नौबत आ गई ? पगली कही की । अरे, तुम्हारी चार महिलाओ की वह छोटी-सी सभा—उसका समाचार कौन छापेगा ? और यदि समाचारपत्रो मे छप भी गया तो डरने की कौन-सी बात है ? अच्छा, पहले यह बताओ कि सभा मे क्या हुआ ?"

"सभा मे कुछ नही हुआ । वह सभा नही थी । पहले मुझे बताइए कि क्या सचमुच हम लोगो के नाम छपेगे ?"

"तुम्हे उससे क्या मतलब ? सभा का ब्यौरा सुनाओ । अध्यक्षा......"

"पहले मुझे साफ-साफ बताओ, तब तक मैं नही बताऊँगी ।"

"साफ-साफ क्या बताना है । कह तो दिया कि कोई कुछ नही छापेगा और यदि छप भी जाय तो चिन्ता करने की क्या आवश्यकता है ?"

"चिन्ता क्यो न होगी ? समाचारपत्र मे छपते-ही शकर मामाजी अपनी माँ को पढकर सुनायँगे—ऐसी आग लगा देंगे......"

"यहाँ किसे परवाह है उनके आग लगाने की । सनातनी होने का ढोंग रचते हैं, मुफ्त में मिलने पर हर चीज को हडप जायँगे बस अपने दामन को आँच न आए ।"

"उनकी बात उनके साथ। किन्तु······"

"अब किन्तु रहने दो, पहले मुझे सभा का हाल सुनाओ।"

"जरा दम खाइए। माताजी के लौटने से पहले मुझे रेशमी-वस्त्र पहनकर चौके मे जाना होगा। वहाँ बैठकर-ही सब हाल सुनाऊँगी—" इतना कहकर मैं चौके मे चली गई और वहाँ बैठकर सभा का वृत्तान्त सुनाने लगी। कहते-कहते मैंने यह भी कह दिया कि मेरी भी बोलने की इच्छा थी, मैं दुर्गी की आँखो देखी कहानी सुनाना चाहती थी।"

उन्होने कहा, "तो फिर क्यो नही सुनाई? ऐसे काम नही चलेगा। तुम उस कहानी को लिख लो और किसी दिन सभा में पढकर सुना दो।"

सासूजी के आ जाने से बात वहीं समाप्त हो गई किन्तु रात की बैठक में सबके सामने इस बात का उल्लेख किया गया। यशोदाबाई ने कहा, "अरे वाह। हमें मालूम नहीं था, नही तो मैं उसी समय वहाँ कह देती कि हमारी सीताबाई एक आँखो देखी घटना बताना चाहती हैं।"

"मैं जानती तो मैं भी कह देती।" लक्ष्मीबाई ने कहा।

"खैर, वहाँ नही बताया तो न सही, किन्तु यहाँ बताने मे तो कोई हर्ज नहीं है? हम लोगो को ही सुना दो। जो वहाँ कहना था वह यहाँ कह दो।"

बीच ही में लक्ष्मीबाई ने कहा, "उन्हें इस प्रकार क्यो चिढाते हो? क्या वे कभी सभा में बोल सकेंगी? तुम लोग चाहते हो तो किसी दिन उस कहानी को लिखकर वे तुम्हें सुना देंगी।"

उनकी बात सुनकर मेरा ढाढस बँध गया। मैंने कहा, "टेढ़ी-मेढी भाषा में जैसे भी हो मैं लिखूँगी—इसमे कौनसी बडी बात है।"

यशोदाबाई ने भी कहा, ठीक है, इसी प्रकार धैर्य से काम लो सीताबाई पुरुष सोचते हैं कि हौसले और विद्वत्ता का उन्होने ही ठेका ले रखा है। क्यों लक्ष्मीबाई, कल दुपहर मे हमने एक महिला का चरित्र पढा था। उन-जैसा, स्त्रियो मे तो क्या पुरुषो मे भी उदाहरण मिल सकता है?"

विष्णु पंत ने कहा, "रघुनाथराव, अब बोलना व्यर्थ है, पाँसा हम पर ही पलट रहा है।"

"पलटने दो। इन लोगों को चिढाने से ही कुछ काम निकल सकता है। नही तो क्या आज ये यहाँ बोल सकती थी ?"

५३

गत परिच्छेद मे वर्णित घटनाओ के बाद दो महीने बीत चुके थे। इसी बीच मे कोई विशेष उल्लेखनीय बात नही हुई थी। मेरी पढाई मे अनजाने बहुत प्रगति हो रही थी। अब टेढी-मेढी वाक्य रचना और अशुद्धियाँ नही होती। प्रतिदिन वाचन होने से अब पढने मे धारावाही प्रवाह आ चुका था। अब कोई मेरी खिल्ली नही उडा सकता था। इस सुधार का श्रेय मेरी प्रिय सहेलियो को ही था। केवल लिखना-पढना ही नही तो उनके सहवास मे मुझे कई बातो की जानकारी हो गई थी। मैं कुछ आलसी थी किन्तु उन दोनो के सहवास से बहुत उद्योग-प्रिय बन गई थी। मुझे स्वयम् इसका आश्चर्य लगता था किन्तु मेरे पति का कहना था कि मुझ में कर्तृत्व-शक्ति पहले से ही थी जो अब प्रसग प्राप्त होने पर उभर आई है। मैं जानती हूँ कि अगाध प्रेम के कारण ही वे इस प्रकार कहते थे। मेरे सम्बन्ध मे उनके जो विचार थे उनका वर्णन करना असम्भव है। मुझे उनसे प्रेम होना स्वाभाविक है क्योकि उनमें दुर्लभ गुणो का समुच्चय था। किन्तु मेरे गुणवती न होने पर भी जब वे मेरी इतनी सराहना करते थे तो इसका अर्थ स्पष्ट है कि प्रिय व्यक्ति की हर बात प्रिय होती है। मेरे हाथो जरा कोई अच्छी बात होने पर वे तारीफ के पुल बाँध देते थे। कोई स्वादिष्ट, रुचिकर पदार्थ मैं बना लेती तो वे उसे पडोस के दोनो घरो मे भिजवा देते। हर समय मुझे उत्साह देते रहते और इसीलिए मेरा निश्चय था कि उनकी इच्छा के विरुद्ध मैं कोई कार्य न करूँ। ज्ञान की मिठास, सुघडता, सुव्यवस्था आदि बातो का मूल्य मैंने अब जाना और दिन प्रतिदिन अपनी सहेलियो की सहायता से उसमे प्रगति करती जा रही थी। पढाई-लिखाई, सभा-सम्मेलन, ऊन की बुनाई, रेशम की कढ़ाई, कपडो की

सिलाई आदि बातो के साथ-साथ घर की सफाई और सुव्यवस्था आदि बातो की ओर अब मेरा सदैव ध्यान बना रहने से समय पाते ही मै इन बातो में जुट जाती। अन्य स्त्रियो-जैसी, एकत्र होने पर परनिन्दा, जेवर गहनो के सम्बन्ध मे निरर्थक चर्चा, अमुक स्त्री ने अपनी बहू से ऐसा कहा और बहू ने सास को त्यो कहा आदि जैसी अनर्गल बातचीत हम लोगो मे कभी नही होती। उन स्त्रियो का भी इसमे क्या दोष है ? सस्कार और परिस्थिति पर ही ये बाते निर्भर रहती हैं।

भैया की ओर से नियमित रूप से पत्र आया करते जिनसे घर का और दुर्गी का हाल मालूम हो जाता। सोर के दिनो मे ही दुर्गी की खाँसी बढ़ गई और उसे जीर्ण-ज्वर ने घेरा ऐसा भैया ने एक पत्र मे लिखा था। पढ़कर मुझे बहुत दु ख हुआ। बच्चा बिलकुल जरत्कारु था। सीक-जैसे बारीक हाथ-पैर, खूब बडा पेट और जन्म से ही माँ के दूध का अभाव। फिर उसकी वृद्धि कैसे हो सकती थी ? दु ख मे सुख केवल इतना ही था कि नौकरी की खोज मे दुर्गी का पति कही बाहर गाँव चला गया था। भैया ने यह भी लिखा था कि दुर्गी के पैर बहुत कमजोर हो गए हैं। मन चाहता था कि एक बार जाकर उसे देख आऊँ। दुर्गी का हाल सुनकर मेरी दोनो सहेलियाँ और नाना साहब को भी बहुत दु ख हुआ। यशोदाबाई ने बताया कि उनकी ननद की कहानी भी बहुत अशो मे दुर्गी-जैसी ही है। हम लोगो मे इस बात को लेकर बहुत देर चर्चा चलती रही। अब मैं भी चर्चा मे भाग लेने लगी थी और अपना मत निर्भीक होकर प्रगट करती थी। एकाद बार कुछ अच्छे विचार व्यक्त करने पर वे मेरी खूब सराहना करते थे।

ढाई महीने समाप्त हो चुके। अब शीघ्र ही छुट्टियाँ आरम्भ होगी और हमें पूना जाना होगा, यह सोचकर मेरा दिल धडकने लगा पूना मे यह स्वतन्त्रता कहाँ ? वहाँ तो हमेशा गर्दन झुकाकर मौन रहना होगा। इन विचारो से मन उदास हो रहा था। यदि हमारी यहाँ की गति विधियो का पूना के लोगो को पता लग गया हो तो फिर घर के लोग तग करेंगे। अब तक के पत्र व्यवहार से हमे इस बात की सूचना नही मिली थी। अन्यथा शकर मामाजी अपने पत्र मे इसके बारे मे लिखे बिना न रहते। उनकी ओर से दो-चार पत्र आए थे किन्तु उनमे केवल इतना ही लिखा रहता, "दो थान

बनात, छपा हुआ कपडा, लडको के कुरतो के लिए कोई अच्छा-सा कपडा शीघ्र भेज दो। दाम भेज रहा हूँ।" दो-चार पत्र गोपाल मामाजी ने भी भेजे थे किन्तु उनके पत्रो मे कुशल समाचार के अतिरिक्त और कुछ नही लिखा रहता। शकर मामाजी के पत्रो मे किसी बात की माँग अवश्य रहती और हर पत्र मे मूल्य चुकाने का आश्वासन भी रहता था। अभी-अभी जो पत्र आया था उसमे लिखा था, पिछले पत्र की और इस पत्र की वस्तुओ का मूल्य शीघ्र भेज रहा हूँ। विशेष ध्यान देने की बात तो यह है कि जिस पत्र मे किसी वस्तु की माँग की जाती उस पत्र की भाषा और मजमून बडा मीठा रहता था। जैसे, अपनी प्रकृति की ओर ध्यान दिया करो, बम्बई की आब-हवा अच्छी नही रहती। कालेज का क्या हाल है ? आदि। उनका पत्र आते ही अन्दाज लग जाता था कि पाँच-सात रुपए का खर्चा आ गया। माँगी गई वस्तुओ को भेजे बिना छुटकारा नही था। इसमे गलती हो जाने पर भीषण परिणाम हो सकता है, इसे हम जानते थे। इसलिए चुपचाप उनकी माँगो की पूर्ति करना यही एक मार्ग था। हमने बहुत वर्ष उनका आश्रय जो पाया था फिर उनकी माँगो की पूर्ति कैसे नही होगी ? वास्तव मे जिन्होने आश्रय दिया था वे गोपाल मामाजी कभी किसी वस्तु की अपेक्षा नही करते थे किन्तु शकर मामाजी सिवाय माँगो के और कुछ लिखना ही नही जानते थे। शंकर मामाजी जब स्वय अपने लिए किसी वस्तु की माँग करते तो हम छोटी मामीजी, बनू दीदी और उमा मामीजी के लिए भी कोई वस्तु भेज देते थे। एक बार मैंने अपने लिए चोली की किनार के लिए लेस मोल ली थी उसी नमूने की ऊँचे किस्म की लेस उन तीनो के लिए और छोटी मामीजी को छपी हुई साडी पसन्द थी, इसलिए उनके लिए एक साडी भेज दी। किसी कारणवश ही मैंने इन बातो का उल्लेख किया है।

मार्च महीने मे किसी कन्या-शाला का पारितोषिक वितरण समारोह था, उसके लिए हम लोगो को आमन्त्रित किया गया था। अब जाने न जाने का प्रश्न ही नही था। सब लोगो ने मिलकर जाना निश्चित किया। हम सब लोग गाडी में बैठकर गए थे। समारोह बडे ही अच्छे ढग से सम्पन्न हुआ था। दिन प्रतिदिन स्त्री-शिक्षा का प्रचार होता जा रहा है, यह पाठशाला इस बात का उत्तम उदाहरण है आदि-जैसी बातो का उल्लेख वक्ताओं ने किया।

था। सायकाल घर लौटने पर इसी बारे में हम लोगो मे चर्चा होती रही। दूसरे दिन के एक दैनिक पत्र मे इस समारोह का समाचार छपा था। उसमें वहाँ उपस्थित लोगों के नाम छपे थे। मिशनरी स्कूलो के समारोहो मे हिन्दू लोग सपत्नीक बहुत कम सख्या में जाया करते थे, इसलिए हम सब लोगो के नाम दैनिक पत्र मे छपे थे। मुझे डराने के लिए दैनिक पत्र की प्रति मुझे लाकर दिखाई गई। नाम अंग्रेजी मे छपे थे। मुझे विश्वास नहीं हो रहा था इसलिए मैंने लक्ष्मबाई को समाचार-पत्र दिखाया और जब उन्होंने भी हाँ कहा तब मेरा दिल धडकने लगा। दो-तीन महीनो मे सजोई हुई निर्भीकता जाती रही। मन मे विचार आया कि अब पूना मे कैसे मुँह दिखाऊँगी। अब तो अच्छी खासी बदनामी होगी। अजिया सासूजी और छोटी मामीजी खूब ताने देंगी। शकर मामाजी क्या कहेंगे इसकी तो कल्पना भी नही की जा सकती थी। दो दिन तक मन उदास बना रहा। उन्हे इस बात का कोई महत्त्व नही था। घर मे और सब लोगो के सामने वे मेरी खिल्ली उडाया करते। आखिर मेरी कल्पना के अनुसार शकर मामाजी की ओर से एक लम्बा पत्र आया। पत्र इस प्रकार था :—

"अनेकानेक आशीर्वाद। आजकल के लडको को अंग्रेजी पढाने से उन्हें मान-मर्यादा का भाव नही रहता, वे व्यवहार शून्य बन जाते हैं, ऐसा मैं दूसरो के लडको को देखकर सोचा करता था और मन ही मन हँसा करता था। आज तक बीसो लोगो ने मुझे कहा था कि आप भी उन्ही लोगो के मार्ग पर जा रहे हैं किन्तु मुझे विश्वास नही हो रहा था। उल्टे मैं उन लोगो की बात टाल देता था। जब मैंने सुना कि नारोपत के दामाद आपके पडोसी हैं तभी मुझे शका हो गई थी कि आप उनकी सगत मे बिगडे बिना नही रह सकते। क्योंकि नारोपत के ढग मुझ से छिपे नही हैं और मुझे मालूम है कि उनका दामाद एक पाजी मनुष्य है। मैं तो इसके पहले ही लिखना चाहता था कि उनका पड़ोस छोड दो किन्तु सोचा कि इतने दिनो तक आपने हमारी देख-भाल मे शिक्षा पाई है इसलिए किसी की सगत से लड़का बिगड नहीं सकता। किन्तु आपने तो कमाल कर दिखाया। हमारी तालीम और आज तक आपका पालन-पोषण करके दी गई शिक्षा का आपने खूब मूल्य चुकाया। जिस चीज का हमारे कुल ने कभी स्वप्न भी नहीं देखा था, उसे प्रत्यक्ष करके आपने हमारे

घराने पर कालिख पोत दी है। हमे अब अपना मुंह लोगो को दिखाने मे शर्म आती है। कल शाम को दफ्तर से लौटते समय मैं बुधवार पेठ मे गोविन्दराव गधी की दुकान मे चला गया तो वहाँ मुझे दस-पाँच लोगो ने कहा, "कहिए शकरराव जी, आपके भानजे तो बडे सुधारक बन गए है। परसो अपनी श्रीमतीजी को लेकर कौन-सी सभा मे गए थे ? आप तो कहते थे कि हमारा रघु इन सब बातो से परे है ? बस, आप तो केवल दूसरो की ही बदनामी करना जानते है।" एक व्यक्ति ने तो मुझे आकर कहा "कि सीता ने उस सभा मे भाषण दिया था। भाषण देते समय वह घबडा गई फिर भी वहाँ के साहब ने अपने भाषण मे उसकी सराहना की और अपने हाथो उसके गले मे पुष्पहार पहिनाया। न जाने आप ऐसी बाते किस प्रकार सह सकते है। मै तो ऐसी बाते पसन्द नही कर सकता।" सुनकर मेरे शरीर को आग-सी छू गई। मन कह रहा है कि मैंने अपने घर मे साँप के बच्चे को आश्रय दिया। आपकी पढाई-लिखाई मे मैंने जो धन व्यय किया और आपको सुमार्ग पर लाकर अपने घराने का नाम उज्जवल करने के लिए मैंने जो अथक परिश्रम किए वे व्यर्थ सिद्ध हुए। इससे तो किसी भिखारी··· किन्तु अब लिखने से भी क्या लाभ ? हमारे, हमारे कुल और घराने के नाम पर आपने जो कालिख पोत दी है अब वह किसी प्रकार मिटाई नही जा सकती। घर के बाहर पैर रखते ही लोग-बाग मुँह पर थूकते हैं, कहते हैं, "क्यो, अब तो तुम्हारी बहू बडी विदुषी बन गई है। आगामी मई मास मे हीराबाग मे जो बहुत बडी सभा होने जा रही है, वहाँ तुम्हारी बहू का व्याख्यान होगा, तब क्या अध्यक्ष आपको बनाया जायगा ?" माँ का हाल तो पागलो-जैसा हो रहा है। किन्तु यह आपको लिखने से क्या लाभ ? आप पर इसका क्या परिणाम होता है ? यदि आपको हमारे घराने और इज्जत-आबरू की चिन्ता होती तो इस प्रकार का भ्रष्टाचार और विडबना आपके हाथो नही हो सकती थी। बहुत अच्छा किया आपने। हमारी शिक्षा और धन का आपने सदुपयोग किया। हमारा उद्धार हो गया। आज तो आपकी धर्मपत्नी के गले मे भरी सभा मे गोरे साहब ने फूल की माला पहनाई है, कल को क्या होगा भगवान् जाने। अब यदि कोई कुछ आकर कह देगा तो हमें विश्वास करना ही होगा। बहू ने अच्छा नाम कमाया। आज तक लोग-बाग हमें हमारे नाम से जानते थे अब बहू के नाम से पहिचानेंगे, आप

का शुभ नाम ? ऐसा पूछने पर दूसरे कहेंगे, परसो गोरे साहब ने जिस महिला को पुष्पहार पहिनाया था उसके ये ममिया ससुर होते हैं। वाह रे हमारी तारीफ। किन्तु यह लिखकर मैं व्यर्थ ही सतप्त हो रहा हूँ। आपको इसकी जरा भी परवाह नही। अब केवल इतना ही लिखना शेष है कि कृपया आप अब इस घर मे पैर रखने की तकलीफ न करें। हमारी बहन कि आप कैसी पूछ-ताछ करते होगे और उसे कितना सम्मान देते होगे यह स्पष्टतया मालूम हो रहा है। ऐसी अवस्था में इस प्रकार के अनाचारी वातावरण मे दु खो को झेलकर उसका रहना योग्य नही। आप उसके सुपुत्र अवश्य हैं किन्तु कृपा करके आप उसे यहाँ भिजवा दें। अब उसका आपके पास रहना अथवा हमारा उसे वहाँ रहने देना, उसके दुःखों को बढावा देना ही सिद्ध होगा। आज तक हमने जिस प्रकार उसका भरण-पोषण किया है उसी प्रकार भविष्य मे भी करते रहेंगे। पति की मृत्यु के समय जैसे वह अनाथ थी वैसी ही आज भी है, ऐसा सोचकर हम उसे आश्रय देंगे। उस समय उसे आशा थी कि लडका बडा होकर उसे सुख देगा किन्तु अब वह आशा नही रही, इतना ही उसकी अवस्था मे अन्तर होगा। दूसरो के कपूतों को देखकर हम आज तक हँसा करते थे, आज हम पर वही प्रसग आया है। अब अधिक लिखकर आपका अमूल्य समय नष्ट करना योग्य नहीं, क्योंकि आप का सीताराम का जोडा अवश्य किसी सभा मे जा रहा होगा। आश्चर्य तो इस बात का है कि कल तक तो आपसे अपने मुँह की मक्खी नहीं उडाई जाती थी और आज आप बडे विद्वान बने फिरते हैं। क्या हम नहीं जानते कि इसका श्रेय आपकी श्रीमतीजी को ही है ? वह भला ऐसी क्यो न होगी ? उसकी माँ के बारे मे बहुत कुछ सुन चुके थे, सौतेली माँ के बारे मे प्रतिदिन सुना करते हैं। बाप के बारे मे तो दुनिया जानती है—बस, यही हाल सतान का होगा। कान-जैसी मिट्टी। बाप ने जेल मे जाकर झण्डा फहराया, अब बेटी अपने सुधार की झडियाँ फहराएगी, आप भी उसकी और अपने पडोसियो की संगत से दिये जलाइए। तुम्हारे पडोसी नाना को भी मैं खूब जानता हूँ। उसकी माँ को आश्रय पाने के लिए कही स्थान नहीं है किन्तु आपकी माँ की स्थिति उससे भिन्न है। तुम्हारी माँ के भाई अपनी बहन का भरण-पोषण करके फूल की तरह उसके मान-सम्मान की रक्षा करने के लिए सक्षम हैं। कम-से-कम मैं तो उसे आजीवन आश्रय दे सकता हूँ। किसी बात मे उसे दुःख नही होने दूंगा।

मै उसे ले जाने के लिए स्वय आ जाता किन्तु सोचा कि आपकी सुहावनी गृहस्थी मे किस लिए बाधा डालूं ? और मै अपनी आँखो से आपका वह अनाचार देख नही सकूंगा इसलिए दूर रहना ही अच्छा । पहली बार लिख रहा हूँ, यदि कुछ बुद्धि रखते हो तो सम्हल जाओगे, अन्यथा क्या होना है सो स्पष्ट दिखाई दे रहा है । केवल कमाई कर लेने से ही आपने सब कुछ नही पा लिया किन्तु ये सब लिखना आपके लिए व्यर्थ है इसलिए यही समाप्त करता हूँ । स्वच्छन्द वर्ताव करके सुखी बनो और कुल घातक बनकर अपनी पत्नी के सहवास मे अधिकाधिक सुधारक बनते जाओ—बडे सुधारक कहलवाकर दिग्विजय करो ।"

पत्र पढकर वे आग-बबूला हो गए । मैने आज तक उन्हे इस प्रकार नाराज होते नही देखा था । बहुत देर तक उन्होने मुझे पत्र के सम्बन्ध मे कुछ नही बताया था, किन्तु कोई बात अच्छी हो या बुरी, अधिक देर तक मुझ से छुपा कर रखने की उन्हे आदत नही थी । आखिर जब मैने दो-चार बार क्रोध आने का कारण पूछा तब मुझे पत्र की बात बताई गई और वह पत्र भी पढने के लिए दिया गया । मै पढ़ सकूं इसलिए मामाजी ने जान-बूझकर पत्र देव नागरी-लिपि मे लिखा था । बहुधा उनके पत्र मोडी लिपि मे लिखे रहते किन्तु उनका स्वभाव इतना कुत्सित था कि पत्र दूसरे के मुँह से सुनने की अपेक्षा स्वय पढना अधिक परिणामकारक होगा, यह सोचकर ही शायद पत्र देव नागरी लिपि मे लिखा गया था । सभवत मेरी सहेलियाँ भी उस पत्र को पढ ले यह भी उन्होने सोचा हो ।

आज उस पत्र के बारे मे मै इतना लिख सकी किन्तु उस दिन तो उसे पढ़कर मुझे खूब क्रोध आया और मै खूब रोई । उस दिन मैने भोजन नही किया, किसी से भाषण नही किया, दिन-भर अपने कमरे मे बैठकर रोती रही । उन्होने मुझे समझाने-बुझाने का बहुत प्रयत्न किया । किन्तु मैने उनके साथ भी भाषण नही किया । मेरे पिताजी के बारे मे जिस बात का उल्लेख किया गया था उसे मै पहले एक बार सुन चुकी थी, इस कारण मुझे उसके लिए विशेष दुःख नही था किन्तु जिसकी जूती की बराबरी कोई नही कर सकता, जिसके स्मरण मात्र से चित्त-शुद्धि होकर मेरा हृदय भर आता है, जिसे मैं भू-लोक की देवी मानती हूँ उस मेरी परम-पूज्य माता के सम्बन्ध मे उस पत्र मे

लिखे कुत्सित विचार पढकर मेरे मन की बडी शोचनीय अवस्था हो गई। आज तक मैंने अपनी माँ के बारे मे कभी किसी को एक अपशब्द भी कहने नही सुना था और उस साध्वी का स्वर्गवास हो जाने पर आज ऐसे उद्गारो को पढना मेरे भाग्य मे लिखा था। दु ख और खेद के कारण मैं दिन-भर रोती रही। मेरे कारण ही मेरे पति पर दोषारोपण किया गया। मेरे कारण ही मेरे अच्छे पडोसियो पर कीचड उछाला गया। मेरी पूज्य माँ के सम्बन्ध मे जो लिखा गया उसका कारण भी सभवत मैं ही थी। मुझे सताने के लिए ही ऐसा लिखा गया होगा। कुत्सित वृत्ति का मनुष्य यह नही सोचता कि वह किस के बारे मे क्या लिख रहा है। वह तो केवल इतना ही चाहता है कि किस प्रकार और क्या लिखने से अपनी बात किसी के दिल मे शूल-जैसी चुभ सकती है? किसी को कुत्सित घृणित, दूषित एवं चुभते हुए शब्द-शर मारने मे शकर मामाजी सिद्ध-हस्त थे।

कालान्तर से सभी बातो की विस्मृति हो जाती है। सात-आठ दिन के बाद हम लोगो पर भी उस पत्र का विशेष परिणाम नही रहा। उल्टे मैं स्वय अपने आप पर हँसती कि उस पत्र को पढने से इतना दु ख करने और रोने का क्या कारण था? लक्ष्मीबाई और यशोदाबाई ने कई बार पूछा कि तुम उदास क्यो रहती हो? कारण उन्हें कैसे बताया जा सकता था। कई बार मन मे विचार आया कि उन्हें पत्र दिखा दूं किन्तु न दिखाना ही योग्य मालूम हुआ। जैसे मुझे दु ख हुआ वैसे ही पत्र पढकर उन्हे भी होगा। व्यर्थ उनके सुख मे विष घोलना था। किन्तु आठ-दस दिन बाद जब उस पत्र का महत्त्व कम प्रतीत होने लगा तब एक दिन रात को सब लोगो के सामने बातो-बातो मे उन्होंने सहज ही उस पत्र की बात छेड दी। उन्होने कहा, "मैं तुम लोगो से कहना नहीं चाहता था कि हम लोगो के विरुद्ध कैसा बवडर मचा है, और तुम लोग भी उसकी लपेटो में आ गए हो, किन्तु मुझ से नही रहा गया। बुरा न मानना। इतना कहकर वे पत्र लाने के लिए नीचे चले गए। मैंने इशारे से मना करना चाहा किन्तु उन्होंने उत्तर मे कहा, "अ, इसमे छिपाने की क्या आवश्यकता है। ये भी तो जान लें कि दुनिया मे कैसे लोग होते हैं," इतना कहकर वे चले गए। उन्हें इस बात का ध्यान नहीं रहा कि पत्र मे मेरे माँ-बाप के विरुद्ध लिखा गया है।

पत्र लाकर सब लोगो को पढकर सुनाया गया। मुझे भय लग रहा था कि कही अनर्थ न हो। मे एकटक लक्ष्मीबाई और यशोदाबाई का मुह ताक रही थी किन्तु उन दोनो पर पत्र सुनकर विशेष परिणाम होते दिखाई नही दिया। उल्टे यशोदाबाई ने कहा, "धत् तेरे की। जरा इनसे पूछिए कि हमारे यहाँ इस प्रकार काकाजी के लिखे कितने पत्र आज तक आये है? उन पत्रो की तुलना मे यह पत्र नगण्य-सा है। क्या आपके ये मामाजी सनातन धर्माभिमानी और पूजा-पाठ करने वालो मे से हैं?"

उत्तर मे मेरे पति ने कहा, "कट्टर। उनका पूजा-पाठ तो देखने जैसा है। माथे पर खूब भस्म विलेपन करते हैं और यदि कही मुफ्त......"

बात को बढते देखकर बीच ही मे मैंने टोक कर कहा, "बस बस, रहने दीजिए। आपके मामा हैं, कुछ तो लिहाज़......"

हँसकर उन्होने कहा, "बापरे? अब तो बहू उनका पक्ष समर्थन कर रही है। और पत्र मे सारा दोष इसी के मत्थे मढा गया है। सच ही तो है कि पुरुष स्त्री की सगत मे ही बिगडता है। क्यो नाना साहब, आपका क्या मत है?"

"अजी, मत को क्या लिये बैठे हो? वस्तुस्थिति ही ऐसी है। मेरी काकी और तुम्हारे मामा जिन लोगो के मत्थे दोष मढते है वे लोग हैं भी ऐसे। हमारे लोगो ने तो हमे विवाह के पहले ही बिगाड दिया था। हम काका भतीजो मे बिगाड होने का कारण कौन था? मायके जाकर पहले दिन से ही.. .. "

यशोदाबाई ने तुनककर कहा, "हमने लाख बिगाडा किन्तु बिगडने वाले भी ... "

हँसकर नाना साहब ने कहा, "तुम? तुम्हारा क्या सम्बन्ध? तुम किसे बिगाड सकती हो? तुम से किसने क्या कहा? देखा लक्ष्मी भाभी, व्यर्थ मे बात अपने ऊपर लादी जा रही है।"

इस प्रकार विनोदपूर्ण वातावरण मे मामाजी के उस पत्र की खिल्ली उडाई गई।

५४

उस पत्र के कुछ वाक्य मेरे हृदय मे इस तरह चुभे थे कि मैं उन्हें भूल नहीं सकती थी। पिताजी जेल भुगत चुके, इस बात को मैंने दूसरी बार सुना था। एक बार जब मैंने भैया से पूछा था तो उसने पता नही लगने दिया, इसलिए पत्र भेजकर मैं उससे स्पष्टीकरण चाहती थी। मैंने उनसे भी इसके बारे मे पूछ-ताछ की किन्तु बात को टालने की दृष्टि से उन्होंने कहा, "अरे मामाजी की बातो का क्या विश्वास करती हो ? जो मन मे आया सो बक दिया। उनके हृदय नहीं है। जितना बुरा लिखा जा सकता था लिख मारा। तुम उस पत्र को भूल गई ऐसा केवल दिखावा करती हो, वास्तव मे तुम उसे भूली नहीं हो। आखिर इन बातो को जानकर तुम्हे क्या लाभ होगा।"

मैंने कहा, "लाभ न हो, किन्तु दो बार मैं इस विषय मे सुन चुकी और स्वयं कुछ नहीं जानती इसलिए पूछ रही हूँ। बताइएगा—"

बीच ही में उन्होने कहा, "तुम्हे पूछना नही चाहिए, न जानने से तुम्हारा क्या बिगड जायगा ?"

इस पर मैं क्या कह सकती थी ? मैंने केवल इतना ही कहा, "ठीक है, मैं पत्र भेजकर भैया से ही पूछूंगी—उसने मुझे वचन दिया था कि बम्बई जाने पर इस सम्बन्ध मे वह मुझे अवश्य बता देगा।"

"नही, नही, पत्र भेजकर उन्हे व्यर्थ परेशान न करो।"

"वाह ! यह खूब रहा। माँ खिलाती नही, और बाप भीख नहीं माँगने देता" इस कहावत जैसा मामला हो रहा है। किन्तु मैं नही मानूंगी, उसे पत्र लिखकर मैं सब जान लूंगी। और कब तक राह देखी जा सकती है ? कई बार मैंने भैया से पूछा है किन्तु हर बार उसने मेरी बात टाल दी। आपका भी वही हाल है। जैसे मैं अब भी नासमझ हूँ।"

"बापरे। आपको नासमझ कौन कह सकता है ? आपमे जितनी समझ है उतनी तो हम मे भी नहीं है।"

"आप चाहे जो कहें, फिर भी मैं भैया को पत्र लिखकर अवश्य पूछ-ताछ करूंगी।"

"अच्छा तो रहने दो। मैं ही तुम्हे बताऊँगा। भैया को पत्र लिखकर पूछ-ताछ करने की आवश्कयता नही।"

"ठीक है, तो बताइए, क्या पिताजी वास्तव मे जेल मे···· " मेरा प्रश्न सुनकर वे कुछ देर तक मौन बैठे रहे फिर धीमे स्वर मे उन्होने कहा, "हाँ एक महीना जेल मे थे।" फिर वे मौन हो गए। कुछ देर बाद उन्होने कहा, "अपने ही लोगो के सम्बन्ध मे अपने ही लोगो के मुँह से ऐसी बातो का तुम क्यो उच्चारण करवाना चाहती हो ?"

इस पर मैंने और कुछ नही कहा, और भी प्रश्न पूछने की मुझे उत्कठा लग रही थी किन्तु आश्चर्य की बात है कि आत्मसयमन करने मे मैं उसी दिन समर्थ हो सकी। मै जानती थी कि यदि मै इस सम्बन्ध मे अधिक जानना चाहूँ तो वे मुझे निराश नही करेगे किन्तु वे उसे पसद नही करेगे, इसलिए मैने सोचा कि अधिक आग्रह करना उचित नही। फिर भी आगे कभी अवश्य पूछ-ताछ करूँगी ऐसा मन-ही-मन मैंने निश्चय कर लिया।

दूसरे दिन भैया का पत्र आया। पत्र छोटा था किन्तु विनोदपूर्ण था। उसने लिखा था—

"आप जानते हैं, आपके बारे मे यहाँ क्या चर्चा चल रही है ? आप दोनों धर्म-भ्रट हो गए है। गोरे साहब ने तुम्हारे गले मे माला पहनाई। तुम अपनी सहेलियो के साथ हमेशा गाड़ियो मे बैठकर घूमा करती हो। आपका बहुत-सा समय सभाओ मे व्यतीत होता है। तुम लोगो की सगत से तुम्हारे पति-देव भी बिगड गए है। परसो तुम किसी साहब के बगले पर पार्टी मे सम्मिलित हुई थी और······पचासो बाते है। इन बातो को मैंने अपने पुरोहितजी को पिताजी से कहते सुना है। पुरोहितजी को मैंने पूछा कि आपको यह कैसे मालूम हुआ, तब उन्होने कहा "मैं ही क्यो, सारा गाँव जानता है इन बातो को।" फिर भी आपको किसने कहा ऐसा जब मैंने फिर पूछा तब उत्तर मे उन्होंने कहा कि उन्हे बावदेव भट ने बताया और बावदेव भट को तुम्हारी ससुराल के पुरोहित ने बताया था—अर्थात् उसने आपके ममिया ससुर वे० (वेदसून्य) शा० (शास्त्र शून्य) सम्पन्न श्री शकर मामाजी से सुना था। वाह। बम्बई जाकर दो-तीन महीनो मे ही तुमने बहुत कुछ नामवरी पा ली। अभी तक नई माँ को इसके सम्बन्ध मे कुछ कहते नही सुना।

नई माँ की माताजी परसो काशी से लौटकर यहाँ आ गई। अब काम ठीक जम गया। शायद कल माँ-बेटी मे कुछ झगडा हो गया। शनिवार होने से मैं घर पर ही था। सम्भवतः रुपयो पैसो का ही कुछ मामला था। तुम्हारी परिचिता वह मोटी स्त्री भी आई थी। उनके सवाद के "हँसली, बिछुए, माला—और कुछ नही चाहिए—पटेली हो तो—महालक्ष्मी—" आदि कुछ शब्द मैंने सुन पाये थे। मैं सोच रहा हूँ कि इसमे अवश्य कोई भेद छिपा है। शायद उन लोगो को पता नही था कि मैं ऊपर बैठा हूँ—नही तो जीने के पास, इतने जोर से वे लोग बातचीत नहीं करते। न जाने क्या मामला है। इससे अधिक मुझे और कुछ नही लिखना और न लिखने के लिए समय ही है। सर्वत्र कुशल है। बहुत दिनो से तुम्हारा पत्र नही मिला—कब लिखोगी ? शायद सभाओ के कारण समय नही मिल पाता। ठहरो, जरा इस पूने मे तो आओ, फिर देखो शकर मामा तुम्हें कैसा पाठ पढाते हैं।"

केवल पत्र मे हम लोगो को गाली प्रदान करने से शकर मामाजी को सतोष नही हुआ—गाँव भर मे हमारे नाम का ढिढोरा पीटने का व्रत उन्होने ले रखा था। एक दिन मजाक मे लक्ष्मीबाई ने कहा, "व्रत वैकल्यो को धारण करना उन-जैसे धर्माभिमानी के लिए उचित है। अन्य नित्य व्रतो को धारण कर उनका वे उद्यापन भी कर चुके, इसलिए हम गरीबो की निंदा, छलना रूप नवीन व्रत उन्होने धारण किया है। आज तक जब मैं किसी की निन्दा होते सुना करती तो मुझे लगता कि उनमे बहुत-सी बातें सत्य हो सकती हैं तभी तो लोग निन्दा करते है। राई होगी तभी तो पहाड बन सकता है किन्तु यह भी सत्य है कि भ्रम पटल को नष्ट करने के लिए अनुभव के सामान अमोघ औषधि नही है। जब स्वय मुझे अपने बारे मे यह अनुभव हुआ तब मैंने जान लिया कि लोग निन्दा मे पख का पक्षी ही नही अपितु गरुड पक्षी भी बनाया जा सकता है।" पारितोषिक वितरण समारोह मे हमारा सम्मिलित होना क्या था, उस पर एक प्रचड व्यूह रचा गया। भैया का पत्र पढकर उन पर कोई परिणाम नहीं हुआ हँसकर वे मामाजी की खिल्ली उडाते रहे। खिल्ली उडाते देखकर मैंने कहा, "क्या खूब सिर तक नौबत आ गई और फिर भी आप इसे मजाक समझ रहे हैं। हम लोग पूना जायेंगे और हर

किसी की जबान पर यही बात होगी—हर कोई हम से इसके बारे मे पूछ-ताछ करेगा—इसके लिए जरा तो कुछ सोचिए।"

"किस प्रकार सोचना होगा ? किसी का मुँह तो बद नही किया जा सकता।"

"लोगो का मुंह क्यो बद किया जाय ? जो लोग ऐसे गलत समाचार • "

"उन्हे क्या करना होगा ?

"क्या करना होगा ? एक तीखा पत्र लिखकर उनसे पूछा जाय कि आपने यह क्या शुरू किया है ? आपको यह किसने बताया ? किस समाचार-पत्र में छपा है ? व्यर्थ किसी के नाम की गाँव भर ने बदनामी करना—"

"अच्छा, इस प्रकार लिखा दिया जायगा, फिर ?" शान्त भाव से उन्होंने पूछा।

आवेश मे आकर हम किसी से कुछ कहे और शान्त स्वर मे—ठडे मिजाज से उसका वह उत्तर दे तो तबियत जल-सी जाती है। उनका उत्तर सुनकर मेरा भी वही हाल हुआ था। उसी आवेश मे मैने कहा, "यही—यही तो मेरा कहना है। फिर ? फिर कहने से काम नही चलेगा—उन्हे साफ-साफ लिखा जाय कि झूठ-मूठ समाचार फैलाकर आप हमारी बदनामी क्यो कर रहे हैं ?"

"यह तुम्हारा भ्रम है। क्या तुम यह समझती हो कि ऐसा लिखने से शकर मामा जी चुप हो जायँगे ? उलटे इस पत्र का विपरीत अर्थ करेंगे। इससे अच्छा तो यह है कि हमे जो करना है करते रहे—उनकी बात पर ध्यान न दे। वे मनचाही बदनामी करते हैं, हमे उससे क्या • "

"आपके लिए कुछ नही है कल पूना जाने पर मेरा क्या हाल होगा ? घर बाहर, जहाँ-तहाँ, उठते-बैठते मेरे सामने सभा का उल्लेख होता रहेगा।"

"होगा तो होने दो। अब स्वय सभाओ मे जाना चाहती हो तो लोगों के ताने भी सुनने होगे।"

"अच्छी बात है, अब फिर कभी नही जाऊँगी—"

"क्या पागल हो गई हो ? सभा ने तुम्हारा क्या बिगाडा है ? क्या स्वय तुम्हें कोई आपत्ति है ?"

"मुझे आपत्ति न हो—किन्तु लोग-बाग जब······"

"अरे, जब हम लोग कोई नवीन बात करते हैं तब लोग-बाग तो सताएँगे

ही—यदि उनका सताना हम लोग सहन नहीं करेंगे तो फिर नई प्रथाम्रो का आरम्भ कैसे होगा ?"

"यह तो ठीक है, किन्तु—"

"किन्तु-विन्तु को गोली मारो। दुनिया तो बकने के लिए ही होती है। पत्र लिखने से कोई लाभ न होगा। क्या शकर मामा चुप हो जायेंगे ? गाँव भर मे उस पत्र का प्रदर्शन करेंगे। जो देखना नही चाहता उस-जैसा अधा और जो सुनना नही चाहता उस-जैसा बहरा दूसरा नही हो सकता। शकर मामा-जैसे लोगो को ऐमी ही सामग्री की आवश्यकता रहती है। उन्होने इसीलिए जन्म पाया है कि किसी को कुछ करता देखकर, कुप्रथाम्रो को त्यागकर नवीन कुछ करते ही उसकी खिल्ली उडाना और उसे परेशान करना। क्या उन्हे अपनी सनातन प्रथाम्रो के लिए अभिमान होता है ? स्वय उनका चरित्र देखो—अब उनके बारे मे क्या कहा जाय ? खैर, छोडो इन बातो को।

शकर मामाजी के पत्र के बारे मे हमने सासूजी से कुछ नहीं कहा। उन्हें व्यर्थ खेद होता। मेरा कहना था कि उन्हें सब बातो से अवगत कराया जाय ताकि पूना जाने पर जो हगामा मचेगा उसका उन पर विशेष परिणाम न हो। किन्तु उनका कहना था कि वहाँ जाने पर जो होना है वह तो होगा ही, आज उन्हे बताने से उस हगामे का परिणाम कम थोडे ही हो सकता है। मैं भी इस बात को जानती थी इसलिए सासूजी से कुछ न कहना ही उचित था।

५५

आठ-दस दिन बीत गए। उस पत्र की विस्मृति होती जा रही थी। हमारा कार्यक्रम पूर्ववत आरम्भ हो गया। इन आठ दिनो में हम लोग कही

बाहर नहीं गए । मेरी पढाई मे प्रगति हो रही थी । मराठी बहुत कुछ पढ ली थी और अब अग्रेजी पढने की महत्त्वाकाक्षा जाग उठी थी । मैंने जब उनके सामने इच्छा प्रगट की तो उन्होने कहा, "अच्छा जी ।क्या मराठी पढाई की इतिश्री हो गई ? अभी मराठी तो ठीक से जानती नही और अग्रेजी सीखना चाहती हैं । जो भाषा सीखने के लिए हमे कई वर्ष खून-पसीना एक करना पडा उसे तुम जरा अ आ इ ई सीखते ही पढने की इच्छा करती हो ?" मैं जानती थी कि वे मज़ाक मे ऐसा कह रहे है । वे स्वय चाहते थे कि मैं अग्रेजी सीखूं । उन्होने मुझ से कई बार कहा भी था । मेरी अग्रेजी सीखने की इच्छा तीव्र होती जा रही थी । मराठी की पढाई पूर्ण न हो, फिर भी अग्रेजी अवश्य सीखूंगी, ऐसा मैंने निश्चय कर लिया था । लक्ष्मीबाई की ओर से मुझे उत्साह दिया जा रहा था । किन्तु मई मास मे पूना जाना था । वहाँ से लौटने पर अग्रेजी की पढाई का आरम्भ किया जाय, तब तक मराठी का अभ्यास किया जाय, ऐसी योजना बनाई गई । होते-होते पद्रह दिन और बीत गए । पूना जाने का समय समीप आ रहा था । इस बीच गोपाल मामाजी का कोई पत्र नही आया । जाने का समय समीप आ रहा था और मेरे मन की अस्वस्थता बढती जा रही थी । न जाने पूना जाने पर क्या हाल होगा ? उस घर मे पैर रखते ही यदि शकर मामाजी कह दे कि "यहाँ से निकल जाओ, हमारे कुल और नाम को तुमने बट्टा लगाया है—अब यहाँ आने की आवश्यकता नही," तो हमारी क्या शोभा होगी ? अपने इन विचारो को मैंने उनके सामने व्यक्त किया किन्तु उन्होने इसे बिलकुल महत्त्व नही दिया । उल्टे मुझ से कहा, "क्या तुम पागल हो गई हो ? तुम्हारा दावा है कि तुम शकर मामा को खूब जानती हो किन्तु मुझे विश्वास नही होता । हमारे उस घर मे घुसने पर वे उफ भी नही करेगे । देख लेना । मुझे उनकी बात का भरोसा नही था ।

छुट्टियो से पहले परीक्षा होगी और फिर हम लोग पूना जायँगे, ऐसा निश्चित किया गया । परीक्षा का समय अब समीप था । अब पूना जाने का समय भी आ रहा है यह सोचकर मेरा मन अस्वस्थ हो रहा था—पढाई-लिखाई में मन नही लग रहा था । हमारे पडोसी अभी नही जा रहे थे । उनके जाने मे अभी समय था, और केवल विष्णुपत ही पूना जाने वालो में

से थे। नाना अपने गाँव—जहाँ उनके मित्र गणपतराव रहते थे—जाने की सोच रहे थे। इसलिए मेरा पूना न जाकर बम्बई मे रहना भी असम्भव था। सासूजी का मत स्पष्ट नही था। पूछने पर उन्होने कहा, "मेरे लिए यहाँ रहना अथवा पूना जाना एक-सा है। जहाँ तुम वहाँ मैं। किन्तु अब छुट्टियाँ है तो पूना जाना ही उचित है। यदि तुम्हें वहाँ कुछ काम हो तो चलने के लिए मेरा आग्रह नही है।" वे सचमुच ही साध्वी थी। हम लोग बाहर घूमने जाते हैं, सभा-सम्मेलनो मे सम्मिलित होते हैं, इसमे कोई बुराई है, ऐसा उन्होने कभी नही माना। यदि वे इन बातो को पसद न करती तो किसी समय इस सम्बन्ध मे अवश्य कुछ कहती। किन्तु उन्होने कभी कुछ नही कहा। शायद एक बार उन्होने अपने बेटे से पूछा था, "क्योरे, हर शनिवार को ये कहाँ जाती है और क्या किया करती है?" उत्तर मे उन्होने कहा, "कुछ नही, ऐसे ही एक जगह बैठकर सिलाई-कढाई, कताई आदि का काम सीखा करती हैं।" इतना सुनकर ही सासूजी का समाधान हो गया। हम लोगो ने उनके और गोपिका काकी के लिए मदिर मे बिछाकर बैठने के लिए सफेद ऊन के आसन बना दिए थे, जिन्हें देखकर उन्हें हमारे कार्य के बारे मे विश्वास हो गया। उसी नमूने का एक आसन अपनी माताजी के लिए बनाने को उन्होने मुझसे कहा। हम लोग रात मे छत पर एकत्रित होकर चर्चा किया करते हैं, इसकी जानकारी की सम्भवत उन्हे नही थी। क्योकि रात मे वे गोपिका काकी के घर सोने के लिए जाया करती थी। हम लोगो का उनके साथ अति मर्यादा शील बर्ताव रहा करता था। उनके सामने हम लोग आपस मे बातचीत नही करते थे। वे मानती नही थी इसलिए केवल सुबह की रसोई उनके जिम्मे थी, इसके अतिरिक्त और किसी काम को मैं उन्हें छूने नही देती थी। हमारे पडोसी भी उनके सामने कभी आपस मे बातचीत नही करते। यशोदाबाई अपनी सास-जैसा ही उनका भी आदर किया करती। एक दिन हम लोगों की बातचीत मे इसी मर्यादा—अमर्यादा को लेकर चर्चा चल उठी तब शायद नाना साहब ने कहा, "देखिए, इन बडे-बूढो की इच्छा पालन मे कोई विशेष कठिनाई नही होती। जरा-जरा-सी बाते हुआ करती हैं, उन्हें उनकी इच्छा के अनुसार करनी चाहिए, फिर यदि हमे कोई बडी बात करनी हो तो इन छोटी बातो के बल पर उसके लिए ये लोग विशेष

विरोध नही करते। उनके सामने पति-पत्नी का आपस मे बातचीत करना वे लोग पसन्द नही करते तो हम न करे, क्या बातचीत करने के लिए उतना ही समय होता है ' यदि चार बाते करनी हो तो तीन के लिए उनकी सम्मति प्राप्त करनी चाहिए, फिर यदि चौथी करने के लिए अनुमति नही माँगी गई तो विशेष आपत्ति उपस्थित नही होती।"

उनका कहना मुझे जच गया। फिर मर्यादा की अतिशयोक्ति के बारे मे विषय निकला तो उन्होने अपने अनुभव की एक बात हमे सुनाई, "बडे लोगो के सम्बन्ध मे तुम्हारा कहना उचित है, लेकिन हम घर मे न हो और हम से मिलने के लिए कोई पुरुष घर आ जाय तो हम घर मे नही है, किस काम के लिए हमे याद किया गया आदि बातचीत उसके साथ कौन करेगा ? नाशिक का वह कृष्णराव—जानते हो ना उसे ? शायद नही जानते। उसने पूना मे आकर कुछ ही दिन पहले अपनी गृहस्थी जमाई थी। मै एक दिन उसके घर पर उससे मिलने गया, उसकी पत्नी दरवाजे मे खडी थी। मैंने पूछा, कृष्णराव घर मे है ? उसने कोई उत्तर नही दिया और वह दरवाजे के पीछे चली गई। अन्दर जाकर उसने किसी से कहा, "देखो तो, बाहर कोई उनसे मिलने आया है। कह दो कि वे घर मे नही है।" यह सुनकर मैं लौट गया। किन्तु उसी समय मैंने मन ही मन निश्चय कर लिया कि अपनी घरवाली को ऐसी मर्यादा त्यागने के लिए अवश्य सिखाऊँगा। अरे यह तो निरा पागलपन है। कोई घर मिलने आता है तो उसे पति घर मे नही, इतना कहने मे अमर्यादा किस बात की। केवल मूर्खता। और इसका आधार है धार्मिक परिपाटी, इस कारण ऐसी कुप्रथाओ का निर्मूलन करने मे भी बडी रुकावट है।"

नाना—धीरे-धीरे नष्ट हो जायगी। जो चीज समय के अनुकूल नही होगी वह अधिक समय तक टिक नही सकती। अवश्य ही मिट जायगी। हमें तो इस बात की ओर ध्यान देना है कि आनेवाली पीढी के मस्तिष्क मे ये बातें न उतरने पायें।

लक्ष्मी—ठीक है। वृद्धो के बारे मे हम क्या कर सकते हैं। उनके जन्म जात सस्कारो को हम कैसे मिटा सकते हैं।

विष्णु—मिटाना असम्भव है और यदि मिटाने का प्रयत्न किया गया तो निष्फल सिद्ध होगा और उसका विपरीत परिणाम होना ही अधिक सभव है।

रघुनाथ—आप लोग एक बात और भूल रहे हैं। हमारे शकर मामा-जैसे लोग जान-बूझकर कुमार्ग पर चलते हैं। उनके कर्मों को कैसे भुलाया जा सकता है। ऐसे लोगों का निजी बर्ताव धर्म की दृष्टि से बडा ही अशुद्ध है, किन्तु बातें बनाते हैं बडे धर्माभिमानियो-जैसी। तुम हम-जैसो को गालियाँ देकर—सुधारक कहकर—चार लोगो मे अपना बडप्पन दिखाते हो।

नाना०—फिर भी यह कितने दिनो तक चल सकता है। जब तक इनके ढोंग की पोल नहीं खुल जाती तब तक। एक बार पोल खुल जाने पर दुनिया इन पर थूकती है। लोग-बाग एक बार जान लेने पर······

रघुनाथ—जी नही, यह आपका भ्रम है। इनका ढोग जानने की लोगों मे बुद्धि कहाँ है ? वे इनकी बातो मे आ जाते हैं। क्या लोग-बाग इनका ढोग नही जानते ? सब जानते हैं किन्तु सर्वसाधारण लोगो मे अच्छी-बुरी बातो का निर्णय करने की पात्रता बहुत कम होती है। यदि किसी से कुछ कहें भी तो उत्तर मे कहते हैं, "रहने दीजिए, हमे उससे क्या, लेकिन पूजा-पाठ तो करते हैं। हर चतुर्थी को मदिर मे ब्राह्मणो को भोजन कराते हैं—धर्म के प्रति उन्हें अटल श्रद्धा है—घर के बाहर वे चाहे जो किया करें—हमे उससे क्या।" इस प्रकार जहाँ लोगो की धारणा रहती है वहाँ····

विष्णु०—तुम्हारा कहना सच है। मेरे मत मे यदि कोई किसी नवीन प्रथा को अपनाना चाहे तो बेधडक अपनी शक्ति के अनुसार उसका पालन करता रहे। कुछ दिन अवश्य कठिनाई आयगी किन्तु उसे सहना पडेगा या फिर उस बात को छोड देना होगा। विशेषत. कोई नई प्रथा अपनाना स्त्रियो के लिए बडी टेढी खीर है।

रघु०—टेढी खीर कैसे ?

मैं—ऐसे कि उन्हें हर समय दुहरा बर्ताव करना होगा। पति के सम्मुख उसका मनचाहा बर्ताव करना और घर के बडे-बूढो के लिए उनकी इच्छा के अनुसार। इस प्रकार जो दोनो को प्रसन्न कर सकती है उसकी जीत होगी।

विष्णु०—क्यो रघुनाथराव, कैसे पकड लिया तुम्हें ?

मैं—इसमें पकडने की कौन-सी बात है ? आप ही बताइए, क्या मेरे कहने मे कोई तथ्य नहीं है ? देखिए ना, आपकी इच्छा के अनुसार तो हमे

करना ही होगा और यदि घर के अन्य लोगो को हमारा यह बर्ताव पसन्द न हो तो जो हमारी पूजा होगी उसे भी चुप-चाप सहना होगा। क्या मेरा कहना सारहीन है ?

रघु०—जी नही, आपका कहना बिल्कुल तथ्यपूर्ण है। आप बुद्धिमान हैं तभी तो इसमें से पार लग रही हैं—तुम्हारे साथ हमारा भी निभाव हो जायगा। हम तो······

मैं—इस मज़ाक से क्या लाभ ? बताइएगा—मेरे कहने मे झूठ क्या है ? अब पूना जाने पर आपको जो तकलीफ होगी उससे कही अधिक मुझे घर मे सहनी होगी। हर घडी मेरी पढाई और सभा सम्मेलनो की बात छेडी जायगी।

रघु०—भविष्य मे आनेवाली पीढी की आप लोग माताएँ हैं। यदि तुम इसे नही सहोगी तो फिर काम कैसे चलेगा ? तकलीफ तो सहनी ही होगी। जहाँ तक होगा हम लोग उस तकलीफ को कम करने का प्रयत्न करेंगे किन्तु फिर भी समय आने पर सहनी होगी। इसके अतिरिक्त और क्या किया जा सकता है। तुम्हे तकलीफ होगी वह क्या हमारे लिए तकलीफ नही है ? हम भी तो उसमे साझीदार हैं। क्यों नाना साहब, आपका क्या खयाल है ?

नाना०—बिलकुल ठीक कहा आपने।

५६

उपरोक्त उपदेश कसौटी पर कसने का समय समीप आ गया। पूना जाने मे केवल दो-चार दिन शेष रह गए। दो दिन पहले गोपाल मामाजी को पत्र लिखकर पूछा गया था कि यहाँ से कोई वस्तु लानी हो तो सूचित करें। उनकी ओर से कोई उत्तर नहीं आया किन्तु शंकर मामाजी का पत्र आया था। हमारे

यहाँ से भेजे गए पत्र मे उनका नामोल्लेख तक नही किया गया था। शंकर मामा ने अपने पत्र मे लिखा था—

"आशीर्वाद विशेष—इसके पहले आपको कड़ी भाषा मे पत्र लिखा था, आप सम्हल गए इसका सतोष है। आखिर हमारी शिक्षा मे, हमारी दृष्टि में तुमने आश्रय पाया है, इसलिए तुम्हारे सम्हल जाने का विशेष आश्चर्य नहीं। पत्र मे लिखी-तीखी भाषा का स्वय मुझे दु ख हो रहा था किन्तु किसी बेहोश व्यक्ति को शीघ्र होश मे लाने के लिए अजन की ऊँगली उसकी आँख में फेरनी होती है। उस समय ममता के फेर मे पडकर, वह चिल्लाएगा, चीखेगा आदि बातो का विचार नही किया जाता। यही हाल मेरा हुआ। बहुत दिन हो गए, तुम्हारा पत्र नही आया, तभी मैं समझ गया कि यह पश्चाताप का लक्षण है। कल तुम्हारा पत्र देखकर मन को सतोष हुआ। घर मे माताजी को समझा-बुझाकर उनका क्रोध शान्त करने का प्रयत्न कर रहा हूँ। हम सब लोग सकुशल हैं। आते समय निम्न वस्तुएँ लेते आइए। जरीन टोपियाँ दो, मूल्य अधिक न हो, अधिक-से-अधिक पन्द्रह रुपयो की जोडी, एक बोहू के नाप की और दूसरी उससे कुछ बडी। चि० बारी चार-आठ दिन मे यहाँ आ रही है। उसकी लडकी को फ्राक के लिए अच्छा-सा रेशमी कपडा ले आइए।"

इस प्रकार दस-पाँच वस्तुओ की सूची थी। अन्त मे यहाँ आने पर मूल्य चुकाया जाने का आश्वासन था और बार-बार लिखा था कि आप लोगों को अपनी करनी पर पछतावा है, मेरे जरा-सा लिखने पर आपने सुधारकों का मार्ग त्याग दिया यह बडा अच्छा किया।

उस पत्र को पढ़कर मेरी हँसी रोके नही रुकी थी। उन्होने कहा, "क्यों आखिर वही हुआ न, जो मैंने कहा था। देखा, शकर मामा कैसे हैं? किन्तु इतने ही पर खुश होने की आवश्यकता नहीं। पूना पहुँचने पर हम लोगो को जो तकलीफ सहनी है वह कम नही होगी और हमारे नाम से गाँव मे उन्होने जो ढोल पीटा है वह भी कम नही होगा—यह पत्र तो केवल वस्तुओ की माँग के लिए है। और अपना बडप्पन दिखाने का मौका भी क्यो गँवाया जाय। वे तो हर किसी से कहते होंगे, "देखा, मेरे जरा-सा लिखने से बच्चू के होश ठिकाने आ गए। मुझे कितना गिडगिडाकर पत्र लिखा है। उसे बहुत दु:ख

हुआ होगा, आखिर मैंने ही उसे लिख दिया था कि पूना चला आए। फिर ऐसे झमेलो मे न पडना।"

उस पत्र को पढकर मुझे उनके कहने पर पूर्ण विश्वास हो गया। रात को सब लोगो मे जब उस पत्र का उल्लेख किया गया तो अच्छा खासा मज़ाक होता रहा। नाना साहब ने कहा, "भई वाह। एक बार आपके शंकर मामाजी का दर्शन करना ही होगा। किसी उपन्यास मे उनका चरित्र-चित्रण बहुत रोचक सिद्ध होगा। हमारे काकाजी भी अजीब किस्म के व्यक्ति है किन्तु यह नमूना कुछ और ही है।"

रघु०—देख लीजिएगा। यहाँ से हम जो वस्तु ले जायँगे उसकी खुशी मे दो-चार दिन तो सुख से कटेंगे और फिर वही पुरानी रफ्तार। पहले-पहले तो मैं भी उनकी इन खूबियो से अपरिचित था किन्तु बाद मे समझ मे आया कि पानी कितना गहरा है ? सम्हलकर रहना होगा।

मैं—अजीब सनकी स्वभाव के है। हम लोगो की बात छोडिए किन्तु उनकी पत्नी बेचारी इतनी भोली-भाली स्त्री है, कभी किसी के लेने-देने मे नही, फिर भी ये उसे इस कदर परेशान किया करते है कि कहा नही जा सकता। वह बेचारी भोजन करने बैठी हो तो ये वहाँ से दिया उठाकर ले जायँगे—और ऊपर से कहेगे कि अँधेरे मे भोजन करने मे क्या हानि है ? और खुश हुए तो एक मोमबत्ती और लाकर उसके सामने जलाकर रख देंगे। कभी प्रेम मे आकर उसका सिर दबायँगे और नही तो आठ दिन तक उसके साथ बात भी नही करेंगे। कभी सनक आ जाने पर छोटे-बडे का लिहाज न करके उसके साथ हँसी-मज़ाक करते रहेगे और जरा देर बाद कुछ इच्छा के विरुद्ध हो जाने पर लडके से कहेगे, "धोडया, एक तमाचा जमा दे उसे।"

विष्णु०—बडे अजीब मनुष्य हैं। ऐसे पति से पाला पडने पर बेचारी पत्नी क्या करे। और सृष्टि का नियम भी तो देखिए कितना विचित्र है। पति यदि इस प्रकार दुष्ट हो, मूर्ख हो तो उसे अच्छी पत्नी का लाभ अवश्य होता है। मेरे देखने मे ऐसे कई उदाहरण हैं। दोनो का अच्छा होना बहुत कम दिखाई देता है। हज़ार दो-हज़ार मे एकाध।

रघु०—आप ऐसा क्यो कहते हैं ? मैंने हज़ार दो-हज़ार जोड़े देखे नही किन्तु सभी बातों में अति उत्तम ऐसे दो जोड़े मैं अवश्य देख रहा हूँ।

नाना०—आप ही क्यो ? हम तीनो मे से हर कोई अपने सामने दो अच्छे जोड़े देख रहा है।

नाना साहब का मार्मिक भाषण सुनकर हर एक ने विनयपूर्वक कहा, "जी नहीं, आपकी बराबरी हम कैसे कर सकते हैं ?" किन्तु मन-ही-मन सब प्रसन्न हो रहे थे। अधिक समय हो जाने से सब लोग उठकर अपने-अपने घर चले गए। घर आने पर उसी विषय को लेकर उन्होने कहा, "सभी वस्तुएँ लानी होगी। टोपियो के बारे मे मुझे जानकारी नही है, किसी से मँगवा लूँगा।"

मैंने कहा, "एक टोपी तो धोंडू भैया के लिए मँगाई है, और दूसरी किसके लिए ?"

हँसकर उन्होने कहा, "कौन जाने किसके लिए मँगाई है ? ले जाकर उन्हें सौंप देंगे।"

मैं—इसका क्या मतलब है ? मेरे विचार मे एक टोपी ली जाय, कह देंगे कि दूसरी टोपी मनपसद नही मिली। जब से हम लोग यहाँ आए हैं तब से पचासो रुपयो की चीज़ें उन्हें भेज चुके।

रघु०—जाने भी दो। अब सोचना व्यर्थ है। कम-से-कम इस बार तो सोचने का समय ही नही। अच्छा यह बताओ, क्या दुर्गी अथवा उसके बच्चे के लिए तुम्हें कुछ लेना है ?

मैं—हाँ, यह तो मैं भूल ही गई थी। उसके बच्चे के लिए एक कुर्ता और टोपी लेना है।

रघु०—और मायके वालो के लिए ?

मैं—उन लोगो के लिए तो मैंने कुछ चीज़ें लेकर रखी हैं।

रघु०—अच्छा जी। वैसे तो तुम बहुत चतुर हो किन्तु अब पूना जाने पर क्या हाल होगा ? सब लोग जब तुम पर टूट पड़ेंगे तो क्या हाल होगा ?

मैं—हाल क्या होगा ? मैं साफ कह दूँगी कि इसमे मेरा क्या दोष है ? जैसा मुझ से कहा गया वैसा ही मैंने किया।

रघु०—अच्छा तो पूना जाने पर साफ-साफ कहने के लिए बडा ही धैर्य जुटा लिया है तुमने। साफ-साफ कह दोगी ?

मैं—हम स्त्रियो का क्या है। जिसके पल्ले बँध जायँ उसकी इच्छा के अनुसार ही हमे सब काम करने पडते है। क्या मैं इस बात को कह न सकूँगी? समय आने पर पीछे नही हटूँगी। मैं किसी से नही डरूँगी।

यह सुनकर उन्हे हँसी आ गई। उन्होने कहा, "वहाँ जाने पर देखना है कि डरती हो या नही? किन्तु यह सही है कि आजकल हम से बिलकुल नही डरती। फिर तो हमे पूना जाकर सावधानी से रहना होगा। देखो, वहाँ यहाँ जैसा नही चलेगा। चाहे जो बोलना, मन चाहे तब मेरे कमरे मे आ जाना आदि बाते वहाँ नही चलेगी।"

"मेरे बारे मे डरने का कारण नही, मैं तो आँख ऊपर उठाकर भी नही देखूँगी। किन्तु आप सम्हलकर रहिएगा। आपको चौके मे बैठकर मेरे साथ बातचीत करने की आदत हो गई है—कही वहाँ आकर न बैठ जाइएगा?"

मेरी बात सुनकर वे ठहाका मारकर हँस दिये।

५७

तीसरे दिन हम पूना जाने की तैयारी मे जुट गए। बाजार से जो कुछ लाना था वह लाया गया। सब लोगों से विदा होकर और छुट्टियाँ समाप्त होते ही लौटने पर यह करेंगे और वह करेंगे आदि अभिवचन ले-देकर तथा पत्र लिखने के लिए अपनी सहेलियों को बार-बार जतलाकर हम लोग बम्बई से पूना जाने के लिए रवाना हुए। तीन-चार महीने पूर्व जब मैं पूना से बम्बई आने के लिए रवाना हो रही थी तब की मेरी जो मन स्थिति थी उससे आज की मन स्थिति सर्वथा भिन्न थी। उस समय आनन्ददायक उत्कंठा थी और आज भयकारक औत्सुक्य था। उस समय भविष्य के लिए अनिश्चितता थी किन्तु फिर भी दृढ

विश्वास था कि सब कुछ आनन्दमय होगा। आज भी क्या होगा इसकी निश्चित कल्पना नहीं थी फिर भी दृढ़-विश्वास था कि अवश्य कोई भयानक प्रसंग आनेवाला है। पूना के बाहर निकलने तक स्वतन्त्रता एवं सत्समागम सुख का मुझे जरा भी अनुभव नहीं था। किन्तु अब स्वतन्त्रता का बहुत कुछ अनुभव लेकर और देवी तुल्य मेरी सहेलियो के सत्समागम का सुख भोगकर पुनश्च उस दलदल मे फंसने के लिए मैं जा रही थी। ऐसी अवस्था मे मन का अस्वस्थ होना स्वाभाविक ही था। माताजी को जरा झोंक आती देखकर मैंने धीमे स्वर मे उनसे कहा, "मेरे मन की बडी विचित्र अवस्था हो रही है। क्या होगा, वे लोग क्या कहेंगे इसका भय लग रहा है।"

"इसमे भय की कौन-सी बडी बात है ? मुझे तो जरा भी भय नहीं मालूम होता। अधिक-से-अधिक वे दो-चार दिन बक-झक करेंगे और फिर चुप हो जायेंगे। उनकी ओर ध्यान देने की क्या आवश्यकता है ?"

"आपका कहना ठीक है—आप हम स्त्रियों का स्वभाव नही जानते। एक बार बात चल उठने पर फिर क्या वह दो-चार दिन में समाप्त हो सकती है ? हर समय अकुश चलता रहेगा—"उसका काम मे ध्यान नहीं है, उसका ढग बदल गया है, कही सभा मे जाना होगा ......"

"माना कि वे ऐसा ही कहेंगे। एक दिन नही, दो दिन नही, प्रति दिन कहते रहेंगे। किन्तु उनकी बातों पर ध्यान क्यो दिया जाय ? कानों को बहरा बना लेना चाहिए।"

"जी हाँ। आप पुरुषों का ठीक है। भोजन करके हाथ धोकर छलाँग मार दी सो फिर दुबारा भोजन के समय उपस्थित हुए। आप क्यों सोचने लगे ऐसी बातों को ? हमारे लिए चौबीसों घंटे घर में ही मरना होता है। मेरे कहने की यथार्थता अभी सामने आई जाती है। दिन भर में जो होगा उसका पहाड रात मे भेंट होनें पर सुनाया करूँगी—"

"अच्छा जी, तो प्रति दिन रात को हमें यही रामायण सुनना होगी। फिर पढाई-वढाई का मामला तो बिलकुल गोल हो जायगा। मैं सोच रहा था कि इस बीच में तुम से मराठी की दस-बीस किताबें पढवा लूँ—"

"पढने के लिए मैं कब मना कर रही हूँ ? किन्तु......"

इसी समय माताजी को हलचल करते देखकर हमारा वाद-विवाद बंद

हो गया और हम मन-ही-मन सोच-विचार करते रहे। आखिर पूना स्टेशन आ गया। लेने के लिए भैया स्टेशन पर आया था। उससे मिलकर मैं फूली नही समा रही थी। रेल से उतरकर हम लोग घोडा गाडी पर सवार हुए। सासूजी साथ मे होने से भैया से विशेष बातचीत नही की जा सकती थी। भैया कुछ दुबला दिखाई दे रहा था। गाडी हमारे घर की ओर मुडने पर भैया नीचे उतर गया। हमारे साथ हमारे घर आने की उसे इच्छा नही थी।

दरवाजे के सामने गाडी रुक गई, मेरी छाती धडक रही थी—लग रहा था, घर मे पैर रखते ही कोई कुछ कह तो न देगा। दरवाजे के सामने कोई नही था, केवल धोडू भैया खडे थे—देखते ही उन्होने पहला प्रश्न किया, "भाभी, मेरे लिए टोपी लाई या नही ? हाँ कहकर मेरे घर मे पैर रखते ही बनू दीदी ने त्योरियाँ चढाकर दूसरा प्रश्न पूछा, "क्या अकेली आई है भाभी साहिबा ? मैं तो सोच रही थी कि, मेम साहब-जैसे हाथ मे हाथ डालकर दोनो आयँगे।" उनकी ओर ध्यान न देकर मैं आगे बढ गई। मेरे स्वागत मे ऐसा कहने का विचार उन्होने सम्भवत दो दिनो से निश्चित कर लिया हो। आखिर शकर मामाजी की लडकी थी ना। घर मे जाकर मैंने सब बडो के पैर छुए और एक ओर जाकर खडी हो गई। पैर छूने पर केवल उमा मामी जी ने बात की, छोटी मामीजी ने केवल हूँ कर दिया। अजिया सासूजी ने कुछ नही कहा। चुपचाप मैंने अपनी पोटलियो को खोला और उनमे से साडियाँ आदि वस्त्र धोने के लिए निकाल कर बनू दीदी से कहा, "इन कपडो को धोना है, क्या आप पानी देंगी ? किन्तु वे नाराज थी, मेरे प्रश्न का उत्तर क्यो कर देती ? घर मे पैर रखते ही स्वागत की यह सिद्धता देखकर मैं अस्वस्थ हो उठी। मैं चुपचाप खडी रही। सभी लोग चुप थे। आखिर उमा मामीजी ने पानी डाला और फिर हम लोग घर मे गए। सासूजी से भी कोई ढग की बात नही कर रहा था। प्रत्यक्ष उनकी माताजी भी उनसे रूखी बातचीत कर रही थीं। सासूजी बेचारी इसका कारण भी नही जानती थी। क्योकि शकर मामाजी के पत्र के सम्बन्ध मे हम लोगो ने उनसे कुछ नही कहा था। इस कारण उन्हें किसी बात की शका भी नही थी। हम लोग कहाँ और किसलिए जाया करते थे इसकी उन्हें कोई जानकारी नही थी। विशेषत: हमारे हाथो कोई बुरी बात नहीं हो सकती ऐसा उन्हें दृढ़-विश्वास

होने से उन्होंने कभी किसी बात की पूछ-ताछ भी नहीं की थी। वे नहीं जानती थी कि हम लोगों के सम्बन्ध मे यहाँ पूने में किस प्रकार ढिंढोरा पीटा गया था और इसी कारण उनसे कोई दिल खोलकर बात नहीं कर रहा था। बार-बार वे अपनी माँ से कह रही थीं कि, "माँ तुम बोल क्यो नही रही हो ?" और उनकी माताजी चुप थी। तब उन्होने छोटी मामीजी से पूछा, उत्तर में उन्होने कहा, "मैं क्या जानूं ?" और वे अपने काम के लिए चली गईं। यह हाल देखकर मेरे मन मे विचार आ रहा था कि हमें इन्हें पहले सब बातो से सचेत कर देना चाहिए था। कम-से-कम इस समय उनकी जो दयनीय अवस्था हो रही है वह तो न होती। किन्तु हमने ऐसा नही किया—विचार आने पर भी नही किया। अब उस बात को सोचकर भी क्या लाभ हो सकता था ?

अन्त मे सासूजी ने उमा मामीजी से पूछा—उत्तर मे उन्होने क्या कहा होगा इसकी मैं कल्पना कर सकती थी, क्योकि उसके बाद सासूजी के चेहरे को मैंने बदला हुआ देखा। गुस्सा शायद उन्हे नही आया था। फिर भी यह स्पष्ट था कि उन्हे किसी बात का खेद है। सौभाग्य से शकर मामाजी इस समय घर मे नही थे। उनके घर लौट आने पर क्या होगा इस विचार से मेरे मन मे उथल-पुथल मची थी। आखिर वे भी आ गए। आते ही उनका मुँह बद करने के लिए शायद मेरे पति देव राह देख रहे थे। झट से टोपियाँ आदि सामान उनके सामने रखकर उन्होने कहा, "देख लीजिए, आपने जो मगाया था वह सब आ गया या नही ?" मैं उनके इरादे को ताड गई और रात मे इस बर्ताव के लिए मैंने उनसे मजाक मे कहा भी था। उत्तर में मुझे कहा गया, "क्या किया जाय। तुम्हारे लिए सब करना पडता है। नही तो क्या मैं शकर मामा की खुशामद करता ? लेकिन तुम डर गई थी इसलिए सोचा कि कम-से-कम दो-चार दिन तो सुख से बीत जायें। नही तो मैं उनकी क्या परवाह करता ? देखा, गोपाल मामाजी ने इसके सम्बन्ध मे कुछ भी नही कहा। मेरे साथ प्रेमपूर्वक बातचीत की, खूब गप शप होती रही, नाना साहब, विष्णुपत आदि के बारे मे भी पूछ-ताछ की। कहा, वे बडे अच्छे लोग है।

मैं—आपका तो सब ठीक है, किन्तु मेरे साथ घर मे कोई बात भी नहीं कर रहा है। मेरी बात छोडिए, कुछ औंधी-सीधी बातचीत करने की अपेक्षा मौन रहना अधिक अच्छा है। किन्तु बेचारी माताजी को हमारे कारण व्यर्थ ही मे······मैंने कहा था कि उन्हे सब कुछ बता दिया जाय, किन्तु······

रघु०—तो क्या हुआ ? तुमने कहा न कि उमा मामीजी ने सब कह दिया है ?

मैं—क्या कहा इसे तो मैं अच्छी तरह नही जानती। कुछ कहा अवश्य है। और यह कब तक छिपा रहेगा ? कल ही सब बातो का विस्फोट हो जायगा। अधिक समय तक किसी के पेट मे नही रहेगा।

रघु०—मालूम होता है कि तुम गालियाँ खाने के लिए तुली बैठी हो।

मैं—जी हाँ, जैसे गालियाँ खाकर ही तो मैं अपना पेट पालती हूँ। कहते हैं, गालियाँ खाने को तुली बैठी हूँ ? वैसे भी अब छुटकारा तो है नही।

५८

जब दिन में खूब ऊष्मा हो, सध्या समय जब आकाश मेघाच्छादित होकर बिजलियाँ चमकती हो, हल्की-सी गडगडाहट का आरम्भ हो जाय, तब समझ लेना होगा कि खूब वर्षा होगी—जबर्दस्त तूफान उठेगा। हमारे घर का वातावरण ठीक ऐसा ही हो रहा था। बम्बई मे हमने जो किया था उसका पूना के लोगों को बहुत सताप हो रहा था। शकर मामा रूपी वायु ने अपना बल लगाकर बहुत सारे मेघो को एकत्र कर दिया था। अजिया सासूजी वर्षा को दबाने का भरसक प्रयत्न कर रहीं थी फिर भी उनकी बीच-बीच मे बडबड की गडगड़ाहट सुनाई दे रही थी। छोटी मामीजी की जिह्वा रूपी विद्युल्लता भी

बीच-बीच में चमक रही थी। बहू दीदी टिटर्ई-जैसी 'टयाँव टयाँव' करके सूचित कर रही थीं कि अब अनावर वृष्टि होने वाली है । ऐसे वातावरण मे मेरा मन अस्वस्थ होना स्वाभाविक ही था। फिर भी स्वतन्त्रता की हवा कुछ अलग ही होती है। जिसने स्वतन्त्रता का आस्वाद लिया है उसे एक बारगी भयभीत करना दुर्लभ होता है। बम्बई को जाने से पहले यदि मुझ पर ऐसा सकट आ जाता तो परिणाम कुछ अलग हो सकता था। अब जितना भय मुझे लग रहा था उससे सौ गुना, हज़ार गुना अधिक भय मुझे उस समय लगता। उस समय मैं नही जानती थी कि मेरी पीठ पर कोई है। किन्तु इस समय परिस्थिति सर्वथा भिन्न थी। मुझ से कहा गया था, "अरे, तुम क्यो घबड़ाती हो ? हमने किसी की चोरी नही की और न किसी का खून किया है । बकना है सो बकेंगे और फिर चुप हो जायँगे। नही सहा गया तो हम दूर हो जायँगे। कर नही तो डर किस बात का ?" इस पर मैंने भी कहा, "ठीक तो है। सभा मे जाने से कोई धर्म-भ्रष्ट नही हो जाता। हमने ऐसी कोई लज्जाहीन बात नही की। फिर इन लोगो से दबने का क्या कारण है ? इस समय देख लेंगे यदि सस्ते मे मिट जाय तो ठीक है—नही तो फिर कभी इस घर में आने की आवश्यकता नहीं।"

गालियो की वर्षा कब आरम्भ होगी इसकी हम लोग प्रतीक्षा कर रहे थे। हमे हमसे अधिक सासूजी के लिए भय लग रहा था। पूरा एक दिन बीत गया फिर भी उनसे उनकी माताजी ने ढग से बातचीत नही की। इसका उन्हें बहुत दु ख था। उमा मामीजी ने उन्हें कुछ अधूरा हाल बताया था किन्तु उनकी समझ मे ठीक से नही आ रहा था। आखिर अपने बेटे को एक तरफ लेजाकर सासूजी ने सही बात बताने के लिए कहा। उन्होने पूरी कहानी सुनाकर अन्त मे कहा, "माँ, यह सब शकर मामा का रचा हुआ जाल है।" इस प्रकार उन्होने अपनी माँ को सचेत कर दिया।

हमारे आ जाने के चौथे दिन सुबह भैया मुझे लिवाने के लिये आया। जिस वर्षा की हम लोग प्रतीक्षा कर रहे थे वह भैया के आगमन का सहारा लेकर बरस उठी।

परिपाटी के अनुसार अजिया सासूजी के पास जाकर मुझे लिवा ले जाने की भैया ने आज्ञा चाही थी। उत्तर मे उन्होंने कहा, "तुम्हारी बहन के लिए

हमसे पूछने की कोई आवश्यकता नही। अब तो उसकी सास, स्वय वह और उसका पति—जो चाहें करें। हमसे उसका क्या सम्बन्ध ? हम उसके कौन होते हैं ? हमे कौन पूछता है ? जाओ—उन्ही के पास जाओ। और किसी से पूछने की क्या आवश्यकता है ? वह तो स्वय मुखत्यार है।"

शकर मामाजी समीप ही पूजा करने बैठे थे। धीमे स्वर मे गभीरता से उन्होने कहा, "माँ, यह तुमने क्या मचाया है ? अरे, लडको की जरा-सी बात, उसे लेकर क्या बैठी हो ? होना था सो हो गया। आखिर हमारे घर की शिक्षा व्यर्थ सिद्ध नही होगी। हो जाती है गलती कभी एकाध बार' '' 'अब छोडो उसे''''''"

अजिया सासूजी—"ठीक है। लोग-बाग तुम्हारे मुँह पर थूकते हैं, वह तुम्हें पसन्द है ना ? फिर मेरा कुछ'' '''

शकर मामा—"अरे, हमे पसन्द हो या न हो। हमारा बच्चा यदि हमारी गोद मे विष्टा कर दे तो क्या हम अपनी जाँघ काटकर फेक देंगे ? हर मिलने-वाला मुझ से कहता है, 'क्यो जी, तुम्हारा भानजा इतना कैसे बिगड गया ? क्या यही तुम्हारी शिक्षा है ?' अब इसका क्या उत्तर दिया जाय ? जब अपनी ही नाक नकटी है तो '''''यदि यह उसे सभा मे न ले जाता''''''"

अजिया०—"सब कुछ जानती हूँ—आज तक हम दूसरो के किये पर हँसा करते थे अब दूसरे हम पर हँसेगे। मैं कहती हूँ कि इस गधे को इतनी भी अक्ल नही कि''''''"

शकर मामा—"हाँ, हाँ, माताजी, जरा सब्र करो। उसके साले के सामने ''''''अरे भई अब वह बडा आदमी हो गया है, सौ सवा-सौ रुपये वेतन पाता है और तुम उसे कह रही हो''''''हमे कहती हो सो ठीक है, हमारी बात अलग है—हम तो पचास-साठ रुपल्ली पाने वाले''''''

अजिया०—"किसी के वेतन की धौंस मुझे न दिखाओ। मैं ऐसी धौंस से दबने वाली नही हूँ। सौ सवा-सौ नही पाँच सौ वेतन मिले—मुझे उससे क्या सरोकार। परमात्मा ने मुझे खूब दिया है। उससे कह दो कि वह और उसकी घरवाली, और यदि उसकी माँ को भी उसके ये ढग पसन्द हो तो वह भी, मजे मे स्वच्छन्द

होकर रहें—मन चाहे सो करें। गोरे साहबो के घर जाओ, सभाओं में जाकर लैक्चर दो और घर में माँ को नौकरानी बनाकर रखो।"

शकर०—"बम्बई में बिलकुल यही हाल होता होगा। बहुत सोचता हूँ कि मुझे क्या करना है इन बातो की ओर ध्यान देकर। फिर भी मन नही मानता। रह-रहकर इस बात का आश्चर्य होता है कि यह नादान छोकरा इतना कैसे बहक गया ?"

भैया चुपचाप बैठा सुन रहा था। मुझे उसकी दशा पर तरस आ रहा था। अन्त मे उनकी बातो से उकताकर भैया ने कहा, "तो फिर यमू ताई को भेजिएगा ना ?"

उसका प्रश्न सुनकर फिर एक उबाल आया। धीमे स्वर में शकर मामाजी का मन्त्र पाठ चल रहा था। बनू दीदी हवा कर रहीं थी, छोटी मामीजी घृत डाल रही थी और इस प्रकार अजिया सासूजी की प्रदीप्त होमाग्नि में हम दोनो की आहुतियाँ दी जा रही थी। बीच ही मे हमारी सासूजी ने कह दिया, "उसे नही करना चाहिए था और उसने कर दिया। हो गई एक बार गलती। किन्तु अब कहाँ तक उसे घिसते रहोगे ? उसने कोई बडा भीषण अपराध तो किया नही, पडोस के लोग गए थे, वह भी उनके साथ चला गया।" उन्होंने केवल इतना ही कहा किन्तु वह सुनकर हम दोनो को बडा आश्चर्य लग रहा था, क्योकि उनके मुँह से शब्द निकलना भी दुश्वार था। जब उन्होंने इतना कह दिया फिर क्या था। अजिया सासूजी ने कडककर कहा, "तुम्हें पसन्द है ना ? बस तो हो चुका। अरे, मैं तुझे खूब जानती हूँ। तू कम थोड़े ही है। यही किसी दूसरे के लडके ने किया होता तो उसकी हँसी उडाती और आज मुझ से तनककर कह रही है कि कहाँ तक घिसते रहोगे ? बताओ, मैंने ऐसा क्या घिसा है ? क्या मैंने उन्हें मारा है, पीटा है, किया क्या है मैंने, जो इस प्रकार ताने दे रही हो ? अब फिर कभी इसके बारे मे मुँह खोलूँ तो मुझ से कसम उठवालो।"

छोटी मामीजी—"ठीक ही है। आपका अब कुछ न बोलना ही योग्य होगा। जब स्वयं उन्हें पसन्द है तो······मुझे नही मालूम था कि स्वय दीदी को भी यह मान्य है······"

शकर मामा—"पसन्द क्यो न होगा ? जब अपने लडके ने ही किया है तो

क्या करेगी बेचारी ? हम लोग व्यर्थ चिन्ता कर रहे थे कि लडके का यह ढग देखकर दीदी को बहुत दु ख होगा। क्या किया जाय। ठीक है, जब दीदी को ही पसन्द है तो चलने दो। हमारा तो बस केवल इतना ही कहना है कि हमारे घर मे यह नही चल सकता।"

भैया की बडी विचित्र अवस्था हो रही थी। एकदम उठकर भी नही जा सकता था और न उससे वहाँ बैठा ही जाता था। आखिर उकताकर वह चला गया।

इस प्रकार तूफान उठ खडा हुआ। रह-रहकर वर्षा हो रही थी। दो दिन तक दबा रहने से अब उसमे विशेष शक्ति आ गई थी। बनू दीदी की शक्ति तो तिगुनी हो गई थी। घर मे उनका कोई विरोध नही करता था इसलिए दिनो दिन उनका दिमाग आसमान छूने लगा था। उन्हे दूसरा काम भी नहीं था। जब-तब वे कहा करती, "क्यो भाभीजी आज हीरा-बाग मे जो सभा हो रही है, उसमे तो तुम अवश्य जाओगी ना ? तुम्हारे बिना वहाँ काम कैसे चलेगा ?" कभी कहती, "क्यो भाभीजी, तुम्हारे गले मे पुष्पमाला डालते समय उस गोरे साहब ने तुमसे क्या कहा था ?" कहाँ तक लिखा जाय ? मुझे तो लिखने मे भी शरम आती है। फिर भी मुझे उनकी बातो का दु ख नही था। उल्टे उन पर तरस आता था। उन्हे इस प्रकार की बातें करने मे सन्तोष होना स्वाभाविक है। आखिर वे और क्या करे। पति का सुख तो उनके भाग्य मे था नही , उसने तो उन्हे त्याग दिया था। कुछ पढना-लिखना सीखकर पोथी पुस्तक पढने का साधन भी उन्हें अवगत नही था। मूलतः वे दुष्ट स्वभाव की थीं और बुरे वातावरण मे पली थीं, इस कारण उनका इस प्रकार होना आश्चर्य-कारक नही था। दु ख था छोटी मामीजी और अजिया सासूजी के बाग्बाणो का। हमें अपने लिए दु ख नही था, हमारे लिए यह नई बात नहीं थी। सहने के लिए हम सक्षम भी थे, किन्तु गरीब बेचारी हमारी सासूजी जब उन्हे भला-बुरा कहा जाता तो हमे बहुत दु ख होता।

एक दिन तो शकर मामाजी ने हद करदी। मेरे पति के नाम से एक पत्र आया। लिफाफे पर देव नागरी लिपि में स्पष्ट पता और नाम लिखा था। डाकिये ने पत्र लाकर शकर मामाजी के हाथ मे दे दिया—वे ताड गए थे कि पत्र कहाँ से आया है। फिर भी शंकर मामाजी ने पत्र खोलकर उसे पढ लिया।

नहाकर मझबरे में मेरे पति धोती बांध रहे थे । वहाँ आकर शकर मामाजी ने सब को सुनाते हुए कहा, "अरे, सीता की किसी सहेली का पत्र आया है तुम्हारे पते पर । मैंने समझा कि मेरा ही पत्र है, इसलिए मैंने खोल लिया । सम्भवतः किसी सभा सम्मेलन के बारे मे लिखा होगा । देखता हूँ · ···"

इतना कहकर वे लिफाफे से पत्र निकाल रहे थे । मेरे पति गुस्से के मारे तमतमा उठे और उन्होंने मामाजी के हाथो से लिफाफा झपटकर ले लिया । किन्तु पत्र तो पहले ही पढा जा चुका था । यह देखकर क्रोध से मेरा शरीर काँप रहा था । मेरा पत्र पढने का शकर मामा ने जो असभ्य व्यवहार किया था उसके लिए मुझे बहुत क्रोध आ रहा था । पत्र पढ लेने से शंकर मामा को नया विषय मिल गया । दिन भर मे कई बार मुझे अपशब्दो को सहना पडा । "अब तो उसे उसकी सहेलियाँ पत्र भेजती हैं । कल को कोई मेम और साहब उससे मिलने के लिए आयेंगे और हमारे सामने उसका हाथ पकडकर उसे ले जायेंगे ।" "कहाँ तक वर्णन किया जाय । चुपचाप सुनने का मेरा निश्चय टूट चुका था । मुझे वह असह्य हो रहा था । रात मे भेंट होने पर असहाय होकर उनके गले मे बाहें डालकर रोते हुए मैंने कहा, "अब कहाँ तक सहा जाय ?" वे भी उदास थे । उन्होने कहा, "चिन्ता न करो । छुट्टियाँ समाप्त हो जाने पर हम लोग वापस चलेंगे और फिर कभी यहाँ नहीं आयेंगे । तुम कल अपने मायके चली जाओ, फिर देखता हूँ शकर मामा मेरे सामने क्या करते हैं ? कहावत हैं कि छुपकर सुनने वाले को अपनी निन्दा सुननी पडती है । यही बात छुपकर पढने वालो के सम्बन्ध मे भी चरितार्थ हो सकती है । यदि उन्होंने पत्र पढा होगा तो उनकी मन स्थिति वे ही जान सकते हैं । आज हम नहीं जान सकते किन्तु दो दिन बाद अवश्य जान लेंगे । जरा पढकर तो देखो पत्र······

मैंने कहा, "इस समय मुझ से नही पढा जाता, आपही पढकर सुनाइएगा ।" मेरे बहुत आग्रह करने पर उन्होने पत्र पढकर सुनाया । पत्र छोटा था किन्तु उसमें सभी बातों का समावेश था । अन्त मे दोनो सहेलियो की सही थी और अन्य सहेलियों की ओर से वन्दना । पत्र में यह भी लिखा था, "घर मे कैसे स्वागत हुआ ? धर्माभिमानी शकर मामाजी ने घर मे आश्रय दिया अथवा नहीं ? उनके लिये टोपियाँ, कुर्ते आदि सामान ले गए थे इसलिए अधिक रुष्ट

नही हुए होगे। आपके साथ शकर मामाजी हम लोगो का भी उद्धार कर रहे होगें। आदि।"

और दो-चार दिन बीत गए। एक दिन सुबह पिताजी हम लोगो को भोजन का न्यौता देने आए। बडे भाई और घर के ज्येष्ठ कर्ता पुरुष इस दृष्टि से पिताजी शकर मामाजी के पास ही गए थे। अपने स्वभावानुकूल शकर मामा ने भी बडे आवभगत के साथ पिताजी का स्वागत किया। उठते समय पिताजी ने कहा, "यमू को जरा जल्दी ही भेज दीजिएगा।" शकर मामा ने हूँ हूँ करके हँसते हुए कहा, "देखता हूँ। माताजी से आज्ञा लेनी होगी। इन लोगो के बम्बई के ढग देखकर वे जरा नाराज हो गई हैं। मैंने उनसे बहुतेरा कहा कि बच्चे हैं गलती हो ही जाती है, किन्तु उन्हे कहाँ सब्र है ? और ठीक ही है इन वृद्धो को स्त्रियो का इस प्रकार सभाओ मे जाना······हूँ हूँ हूँ······ हम लोगो को भी ···हूँ हूँ हूँ······"

गोपाल मामाजी पास ही बैठे थे, उन्हे शकर मामा की बात पसन्द नही आई।

पिताजी ने कुछ नही कहा, चुपचाप सुनते रहे। पिताजी के लौट जाने पर शकर मामाजी ने भीतर आकर सब वृतान्त सुना दिया। पिताजी ने घर के सभी लोगो को भोजन के लिए आमन्त्रित किया था। दुपहर मे नई माँ स्त्रियो को न्यौता देने आई थी। कहने की आवश्यकता नही कि उनके सामने भी पूरी गाथा सुनाई गई। वे भी बडी उत्सुकता से सब सुनती रही। दूसरे दिन सुबह मुझे भेजने को कहकर नई माँ लौट गईं।

रात मे उनसे भेट होने पर मैंने पूछा, "मायके मे मुझे कितने दिन रहना होगा ?" उत्तर मे कहा गया, "अब तुम्हे इस घर मे लौटकर आने की आवश्यकता नही। हर समय की इस झझट से पिड तो छूटेगा।"

"कितनी रात हो गई कुछ ध्यान भी है ? अच्छा तो बताइए कि मैं कब लौटकर आऊँ ?"

"कह तो दिया कि अब बम्बई जाते समय ही लौटकर आना। नही तो ऐसा करो—कोई बहाना बनाकर अपनी दादी माँ के गाँव चली जाओ। सभी झगड़ा मिट जायगा।"

फिर इस योजना के बारे मे बातचीत करते-करते हम सो गये थे।

दूसरे दिन बडी झंझट के बाद मुझे मायके जाने की आज्ञा मिल पाई थी। मैं मायके चली गई। दादी के यहाँ जाने का प्रस्ताव सुनकर मेरा मन विचलित हो उठा था। दादी से मिलने की उत्सुकता थी किन्तु कौन-सा बहाना ढूंढ़कर निकाला जाय, यह समझ में नहीं आ रहा था। भोजन समारोह समाप्त हो चुका था। पुरुषो में जो लोग आनेवाले थे वे सभी आए थे। स्त्रियों में केवल उमा मामाजी के अतिरिक्त और कोई नहीं आया था। उस दिन एक बात मेरे ध्यान मे विशेष रूप से आई थी। नई माँ ने रोजमर्रा के ही गहने पहिने थे। विशेष आभूषण नही पहिने थे। इसका कारण मेरी समझ मे नहीं आ रहा था। भैया से पूछने पर ही पता चल सकता है यह सोचकर मैं चुप हो गई थी। किन्तु सध्या को भी भैया से भेंट नहीं हो पाई थी। मैं यह भी जानना चाहती थी कि इन दिनो नई माँ इतनी उदास क्यो रहती है? यह भी मेरे ध्यान मे आ चुका था कि उनकी माँ से उनकी कुछ अनबन-सी थी। दोनो मे केवल काम के ही बारे मे बातचीत हो रही थी। कारण मेरी समझ मे नहीं आ रहा था। नई माँ को देखकर मालूम होता था कि उन्हें किसी बात का दु ख है। किस बात का, इसका कुछ पता नहीं चल रहा था। हम लोगो के साथ अब उनका व्यवहार विशेष तीखा प्रतीत नहीं हो रहा था।

भाभी का हाल पहले जैसा ही था। उनके स्वभाव मैं मिलनसारी पहले ही कम थी अब और कम हुई मालूम होती थी। वे हमेशा मुँह लटकाए रहती थीं। कभी एकाद बार मुँह बिगाडकर कह देती थीं, हमारी बात छोडिए, हमारा क्या है—सारी जिन्दगी ऐसी ही बीतनी है। पहले दिन इससे अधिक मैं उनके मुँह से और कुछ नही सुन पाया था। तब मुझे दुःख हुआ था कि मेरे भैया-जैसे के भाग्य मे क्या यही स्त्री बँधी थी? फिर भी मुझे आशा थी कि उसमें अवश्य सुधार होगा।

उस दिन लौटकर मैं ससुराल नहीं गई। मैं दुर्गी से मिलना चाहती थी। ससुराल से मायके आने मे ही कई रुकावटें आती थीं, फिर भला वहाँ से मैं दुर्गी के घर कैसे जा सकती थी? मायके आए बिना दुर्गी के घर जाना असम्भव था। हम दोनों बहनों-जैसी बचपन से एक ही स्थान पर खेली-कूदी थीं, फिर भी उसके घर जाने की मेरे लिए सुविधा नहीं थी। यह थी हमारी स्वतन्त्रता। यह था हमारा जीवन। प्रत्यक्ष पिता के घर जाने के लिए भी

सैंकडों रुकावटें आती थीं। गुलामी इस अवस्था से क्या भिन्न हो सकती है ? अस्तु।

दूसरे दिन सुबह नई माँ से कहकर मैंने जच्चा-बच्चा के लिए प्रथानुसार आवश्यक सामग्री मँगवाली थी और उसी दिन दुपहर में मैं दुर्गी से मिलने के लिए गई थी।

५९

मुझे देखते ही दुर्गी प्रेमावेग से पुलकित हो उठी थी। उससे उठा नहीं जाता था। मैंने बहुतेरा मना किया फिर भी वह एकदम उठकर बैठ गई। बच्चे को उठाकर मेरे सामने करते हुए उसने कहा, 'यमे, तुम्हें आए इतने दिन हो गए और भानजे को देखने के लिए आज यहाँ आई हो। देखो ना इसे, कैसे मुट्ठियाँ बाँधकर तुम्हारी ओर ताक रहा है।'

उस बच्चे को देखकर मेरे रोंगटे खडे हो गए थे। उसका शरीर झुर्रियो से भरा था। वह बहुत ही मन्द स्वर मे रोता था। उसके शरीर मे शक्ति नाममात्र भी नही थी। ऐसा लगता था कि जरा-सा धक्का लगने पर उसके प्राण व्याकुल हो उठेंगे। उसकी शोचनीय अवस्था को मैं देख रही थी तभी दुर्गी ने फिर से कहा, 'लो ना इसे। देख क्या रही हो ? देखो ना, कैसी हलचल कर रहा है। मेरा छोटा-सा मुन्ना। जाओ, अपनी मौसी के पास जाओ। ओ मेरी माँ—क्या हो गया मेरे मुन्ने को ?'

बच्चे के प्रति उसका अपार प्रेम देखकर मुझे बडा आश्चर्य हो रहा था। बडी ही सावधानी से मैंने बच्चे को गोद में ले लिया और उसे हिलाती-डुलाती रही। यह देखकर दुर्गी की दादी ने कहा, 'वाह बहुत सुन्दर—शोभनीय ! अब हमारे मुन्ना को मौसेरा भाई लादो शीघ्र !'

मेरा ध्यान भी उनकी बातो की ओर नही था । मैं एकटक दुर्गी को ताक रही थी । उसकी हालत देखकर मेरा दिल टूटा-सा जा रहा था । क्या यही मेरी बचपन की सहेली दुर्गी है ? बम्बई जाने से पहले मैंने देखा था उससे भी अधिक अब उसका स्वास्थ्य गिर गया था । विशेष ध्यान मे आने लायक बात यह थी कि वह अपने बच्चे मे घुल-मिल गई थी । मुझे बच्चे को हिलाते-डुलाते देखकर उसे सतोष हो रहा था । उसका ध्यान बच्चे की ओर लगा था । एक-दो बार जरा-सा बच्चे की गर्दन को झटका लगते देखकर उसने कहा, 'हूँ, हूँ यमे, उसे ठीक से पकडो ! बहुत छोटा है वह ! जरा सभलकर लो ।' ऐसा कहकर उसने-जैसे उसे लेने के लिए ही हाथ आगे बढ़ाए थे ।

प्रसूति से पहले जो दुर्गी आत्मघात करने पर उतारू थी, जिसने स्पष्ट शब्दो मे अपना मनोरथ व्यक्त कर दिया था और मेरी भी धारणा हो चुकी थी कि वह अवश्य ऐसा कुछ करेगी, वही दुर्गी आज स्वय अपने आपको भुलाकर उस बालिश्त भर माँस पिण्ड से इतना अगाध प्रेम कर रही थी उसमें अपने आपको भूल चुकी थी, यह देखकर मुझे बडा आश्चर्य मालूम हो रहा था। साथ ही मुझे सतोष भी था । इस बच्चे के लिए वह सब कुछ सह सकेगी, उसके लिए उसका स्वास्थ्य भी सुधर जायगा ऐसा मुझे दृढ़-विश्वास हो रहा था। जो अपने प्राणों पर उतारू हो गई थी उसे जीने के लिए एक बहुत बडा साधन मिल गया था । जब तक यह बच्चा जीवित रहेगा तब तक वह सैंकडो आपदाओ का सामना कर जीवित रह सकती है—अपने प्राणो का मोह नहीं त्याग सकती ऐसा सोचकर मन-ही-मन मुझे बहुत हर्ष हो रहा था, किन्तु मन कह रहा था कि यह बच्चा अधिक समय का साथी नहीं है । और यदि बच्चा दुनिया से चल बसेगा तो फिर दुर्गी के जीवन का भी अन्त होने मे समय नही लगेगा। दुर्गी का स्वभाव एक मार्गी था और उसके मनोविकार जाज्वल्य थे । एक बार किसी बात से मुँह मोड लेती थी तो फिर उधर आँख उठाकर नही देखती थी। यदि किसी चीज से प्रेम हो जाता था तो उसकी भी हद नही रहती थी । इस कारण उसका अपने बच्चे के प्रति जो प्रेम था उसे देखकर मुझे सतोष हो रहा था । मैं उसके घर बहुत देर तक बैठी रही । इधर-उधर की बातें करती रही। उसके स्वास्थ्य के बारे मे पूछ-ताछ करती थी । उसकी माँ ने और दादी ने बताया था कि अब उसके स्वास्थ्य मे बहुत कुछ सुधार है—यह सुनकर

उसकी प्रसूति के समय कैसी अवस्था थी इसका अन्दाज करना मेरे लिए दुश्वार था। इस समय उसकी हालत कितनी गिरी हुई थी इसके बारे मे मैं पहले कह चुकी हूँ। इससे खराब हालत और क्या हो सकती है इसकी मैं कल्पना भी नही कर सकती थी। आखिर उठते-उठते मैंने कहा था कि यदि मैं मायके मे रहूँगी तो अवश्य एक-दो दिन बाद चक्कर लगाया करूँगी। रास्ता चलते समय कुछ खेद, आश्चर्य, चिंता, सतोष आदि विषयक विचारो का चक्र मेरे मस्तिष्क मे घूम रहा था। दुर्गी का जो हाल था उसे देखकर मेरे मन मे इस प्रकार परस्पर विरोधी विचारो का आना स्वाभाविक ही था। फिर भी डर के मारे मैंने उसके पति के बारे मे कुछ पूछ-ताछ नही की थी। सुनकर मुझे मालूम था कि नौकरी के बहाने वह कही गया है और बहुत दिनो से उसकी ओर से कोई पत्र नही आया है। इसलिए उसे अथवा उसके सामने उसकी माँ और दादी से मैंने उसके बारे मे पूछ-ताछ करना योग्य नही समझा।

इस प्रकार अस्वस्थ मन स्थिति मे मैं मायके लौटकर आई थी। भैया घर लौटकर नही आया था। उसके साथ बैठकर दिल खोलकर बातें करने के लिए मेरा मन बेचैन हो उठा था। विशेषत. दुर्गी के घर से लौटने पर मेरी उत्कण्ठा और भी बढ गई थी। बहुत देर तक मैं उसकी राह देखती रही किन्तु वह अपने नियोजित समय पर ही घर लौटा था।

किसी से मिलने के लिए जब मन बैचेन हो उठता है तो मन मे कई प्रकार के विचार-तरग उठा करते है। मिलने पर मैं यह कहूँगी, वह कहूँगी ऐसे मनसूबे बनाए जाते हैं किन्तु प्रत्यक्ष भेट होने पर न जाने ये विचार कहाँ लुप्त हो जाते हैं। यही हाल मेरा हुआ था।

कुछ देर इधर-उधर की बातचीत, कुछ हास्य-विनोद होता रहा था। बम्बई के बारे मे उसने बहुतेरी पूछ-ताछ की और मैं उत्तर देती रही। लक्ष्मी-बाई, यशोदाबाई, विष्णुपत आदि के बारे मे उसने कई प्रश्न किए थे और मैं भी बड़े उत्साह से उनका उत्तर दे रही थी। विशेषतः मेरी सहेलियो के बारे में जानकारी देना मेरे लिए बहुत ही सुखद था। कुछ देर के बाद भैया ने कहा, 'यमे, यदि किसी को बताओगी नहीं तो मैं अपने मन की एक बात तुम्हें बताऊँ।' मैंने जब उसे वचन दिया तब धीरे से उसने मेरे कान मे एक बात बताई। उसे सुनकर मेरे मुँह से एक दम निकल गया, 'वाह! तब तो बडा ही

अच्छा होगा।' किन्तु कुछ सोच-विचार करने के बाद मैंने कहा, 'किन्तु भैया, क्या पिताजी सम्मति देंगे ?'

'यदि रघुनाथराव जी उन्हें पत्र लिखकर पूछेंगे तो वे कदापि मना नहीं करेंगे। मुझे दृढ़-विश्वास है इस बात का। हम लोग रघुनाथरावजी से कहेंगे। किन्तु इस समय नहीं। इस समय इस बारे मे एक शब्द भी नही कहना होगा।'

भैया का विचार मुझे बहुत भाया था। इस कारण फिर हम दोनो में उस समय अधिक बातचीत नहीं हुई थी। मैं और कुछ कहने जा रही थी तभी नई माँ की पुकार सुनाई दी और मुझे वहाँ से उठकर जाना पडा। फिर भी रात मैं भोजनोपरान्त बहुत समय तक हम दोनो बातचीत करते बैठे रहे। मैं नई माँ के बारे में भैया से पूछना चाहती थी। सब लोगो के सो जाने पर ही इस सम्बन्ध मे पूछा जा सकता था। सौभाग्य से भैया के कमरे में और कोई नहीं सोता था। वह अकेला ही सोया करता था। इस कारण रात मे दिल खोलकर उसके साथ बातचीत की जा सकती थी। इधर-उधर की, दुर्गी के विषय को लेकर भी बातचीत हो जाने के पश्चात् मैंने धीमे स्वर मे भैया से कहा, 'भैया, मैं कल से तुम्हें पूछना चाहती हूँ, किन्तु अब पहले-जैसा छिपाने का प्रयत्न न करना। जो कुछ जानते हो मुझे बता दो। नही तो……भैया, अब मैं अबोध बालिका तो हूँ नही……'

'जी नही, यमूताई साहिबा, अब तो बहुत बडी हो गई हैं। बिलकुल आसमान को आपका सिर छू रहा है। खैर जाने दो। आखिर पूछना क्या चाहती हो ?'

'आजकल नई माँ इस प्रकार खोई-खोई-सी क्यो दिखाई देती हैं ? किसी से अधिक बातचीत भी नहीं करती। शायद उनकी माँ से उनका कुछ बेबनाव है ? उनमे विशेष सख्य नहीं दिखाई देता। और हाँ, आजकल गहने भी नहीं दिखाई देते। कल मेरे ससुराल के लोग भोजन के लिए आए थे किन्तु नई माँ ने विशेष आभूषण नही पहिने थे।'

'अरे वाह ! अब तो तुम्हारी दृष्टि बहुत पैनी होती जा रही है। फिर मेरे कान के पास मुँह लाकर बहुत धीमे स्वर मे उसने कहा, 'मेरा ख्याल है कि आभूषण अब घर मे नही हैं।'

"क्या कह रहे हो ?" आश्चर्यावेग से मैं चीख पडी।

"धीरे-धीरे, इस प्रकार चीखो नही, कोई सुन लेगा। मुझे दृढ-विश्वास है। मैं नही जानता कि वे आभूषण कहाँ गए और उनका क्या हुआ। किन्तु इसमे अवश्य कोई रहस्य है ? आभूषणो के जाने मे नई माँ की माताजी का कुछ सम्बन्ध है। इस कारण माँ-बेटी मे बेबनाव मालूम होता है।"

"भैया, यह तुम क्या कह रहे हो ? तो घर के सब जेवर चले गए ?"

"मेरी तो यही धारणा है। यदि ऐसा न होता तो क्या नई माँ इस प्रकार उदासीनता धारण कर सकती थी ? इस प्रकार सफेद साडियाँ और चोलियाँ परिधान कर इतनी सादगी से रह सकती थी ? जी नही। वे आभूषण अब इस घर मे नही है। इसलिए ऐसा ही कुछ बहाना बनाकर कहा जा रहा है कि मुझे अब आभूषण पहिनना ही नही है—पहिनना मुझे पसन्द ही नही—समझी ?"

"भैया, तुम्हारी बात का मुझे विश्वास नही होता। घर के आभूषण आखिर जायँगे कहाँ ?"

"यदि मैं जानता तो तुम से न कह देता ?"

"फिर भी उनके बारे मे कुछ तो ..."

"मेरा ख्याल है कि वही मोटी-सी स्त्री, जिसे एक बार तुमने देखा था—उसी का इस रहस्य से निकट सम्बन्ध है। और भी कोई ...."

फिर भी मुझे उसकी बात पर विश्वास नही हो रहा था। इसी सम्बन्ध मे कुछ देर तक और बातचीत करने के बाद मैं सोने के लिए चली गई।

६०

भैया का कथन बहुत ही चमत्कारपूर्ण था। घर के जेवरो का चला जाना बहुत ही महत्त्वपूर्ण घटना थी । हम लोग अधिक धनवान नही थे फिर भी

कलेक्टर कचहरी में रहकर पिताजी ने जो कुछ कमाया था वह सब आभूषण बनाने मे ही व्यय हुआ था। हमारी माँ के लिए प्रथा के अनुसार जो आभूषण बनवाए थे वे सब ठोस थे। नई माँ के विवाह के उपलक्ष मे और बाद में उसकी इच्छा के अनुसार उन पुराने आभूषणों मे वृद्धि ही होती रही। इसके अतिरिक्त भाभी के लिए भी प्रथा के अनुसार अच्छे ठोस आभूषण बनवाए गए थे। हमारे दादाजी की खेती-बाडी की आय अच्छी हो जाती थी, इस कारण पिताजी को उन्हें कभी कुछ नही भेजना पडता था। उल्टे ब्याह-शादी के मौके पर दादाजी की ओर से ही सहायता मिलती रहती थी। इस कारण हमारे घर मे आभूषणो मे बहुत-सी रकम व्यय हो चुकी थी। और भैया के कथनानुसार यदि वे आभूषण चले गए होंगे तो—तो बड़ा ही अनर्थ कहा जा सकता है। इस विचार से आश्चर्य, चिंता, खेद आदि स्वाभाविक ही था। बडी देर तक मैं इसी उथल-पुथल मे पडी रही थी। आखिर यह सब क्या है। अच्छे-अच्छे गहने, कपडे पहिनने के विषय में नई माँ की इच्छा एकदम कैसे लुप्त हो गई? अब भी उनका बनाव-सिंगार कायम था—अब भी उनकी वेश-भूषा मे तडक-भडक रहती थी किन्तु बड़ी-बडी जरीन किनारी की साडियाँ पहिनकर आभूषणो से लदने की अपेक्षा अब उसमे सादगी, ऐश्वर्य का अभाव प्रतीत होने लग गया था। पहले-जैसी वे अब किसी पर टूट नही पडती थी अपितु विचारपूर्वक कुत्सित भाषण करने का एक नवीन रूप उन्होंने अपनाया था।

इस प्रकार उनमे परिवर्तन होने का क्या कारण था। प्रत्यक्ष अपनी माँ से भी वे अधिक बातचीत क्यो नही करती थी? आदि कई बातो को मैं मन-ही-मन सोचा करती थी। जब मैं और कोई निष्कर्ष न निकाल सकी तब मुझे भैया का कथन यथार्थ प्रतीत होने लगा था। गहने घर में रहने पर भी नई माँ उन्हे धारण नहीं करेंगी यह असम्भव था। साथ ही मुझे भाभी के आभूषणो की भी याद आ गई थी। क्या वे भी नई माँ के आभूषणो के साथ चले गए? इस विचार को मन से दूर करने का मैंने बहुतेरा प्रयत्न किया किन्तु मुझे इसमे सफलता प्राप्त नहीं हो रही थी। मेरा स्वभाव मूलतः चौकस ही था और फिर गहनो-जैसा विषय—किसी प्रकार मेरे मन से यह विचार दूर नही हो रहा था। इस रहस्य को मैं कैसे जानूंगी? इसका तथ्य मुझे कैसे मालूम

होगा ? इसकी खोज करने के लिए कौन-सा मार्ग अपनाना होगा आदि बातें सोचते-सोचते मैं सो गई । सुबह उठने पर फिर उन्ही विचारो ने मुझे आ घेरा। एक बार मन मे विचार आया कि भाभी से पूछा जाए । उसे अपने विश्वास मे लिया जाय । लेकिन सोचा कि वह लहरी है । लहर लगने पर बता देगी अन्यथा कह देगी, मुझ से क्या पूछती हो, माताजी से अथवा पिताजी से पूछो ।" इस प्रकार उत्तर देने का कारण उसे माताजी से विशेष प्रेम है अथवा उनकी गुप्त बात किसी प्रकार दूसरे को बताई जाय, इस भावना से नही अपितु केवल लहर लगने के कारण ही वह इस प्रकार कह सकती है । इसलिए उससे बात करने मे मुझे डर लगता था ।

फिर भी अपने इस विचार के बारे मे भैया की सहमति प्राप्त करने के हेतु मौका देखकर मैंने बात छेड दी थी । एक दो-बार कहने पर उसने सुनी अनसुनी कर दी थी । किन्तु मैं जब पीछे पड गई तो उसने कहा, "क्या तुम पागल हो गई हो यमू ? किसी बात के लिए उसके साथ मत्रणा करने का अर्थ होगा शैतान के साथ......

"भैया, भैया—तुम यह क्या कह रहे हो ? तुम्हारी जबान मे—तुम्हे तो हर समय मजाक करने की आदत हो गई है । बताओ, क्या इस बारे मे भाभी से पूछा जाए ?"

"एक बार कह तो दिया कि उसे पूछने से कोई मतलब हल नही हो सकता । क्या आज तक तुमने प्रतीति नही पाई ? कभी किसी के साथ उसने सीधे मुँह-बात भी की है ? अरे, वह तो......खैर छोडो इन बातो को । मैंने इन दो दिनो मे कभी उसका तुम्हारे पास उल्लेख किया है ? कभी पत्र मे उसके बारे मे कुछ तुम्हें लिखा था ?"

"वाह । बिलकुल ठीक ही तो करते है आप । और मुझे बडी लम्बी-चौडी बाते सुनाया करते हो । यो करना चाहिए और त्यो करना चाहिए । परोपदेशे पाडित्य......"

शान्त स्वर में उसने उत्तर दिया, "क्यो न हो । किन्तु जब तुम्हारे सामने अपने पाडित्य का प्रदर्शन किया तभी तो तुम कुछ सीख पाई हो ?"

"मैं कब ना कहती हूँ ? और इसीलिए तो कहती हूँ कि जैसे मुझे सिखाया उसी प्रकार भाभी को भी सिखाकर होशियार बना दो—"

"अरे वाह । अब तो तुम बडी वाक्पटु बन गई हो । अब ऐसा करो— जब तुम स्वय यहाँ आ गई हो तो अब तुम अपना पुन्य खर्च करके देखो कि क्या परिणाम निकलता है । हमने तो हार मानली । अब देखें तुम्हारे प्रयत्नो का क्या असर होता है ? यमे, आश्चर्य तो इस बात का है कि अब तक तुम्हें मनुष्य को पहिचानने का ज्ञान नही है । आज तक मैंने उस-जैसी वाहियात स्त्री नही देखी ।"

इसी समय किसी के पैंरो की आहट सुनाई दी थी । मैंने उठकर देखा किन्तु कोई दिखाई नही दिया, फिर भी मालूम होता था कि वह अवश्य ही भाभी के पैंरो की पदध्वनि थी । शायद हमारा सम्भाषण सुनने के लिए वह जीने मे छिपकर खडी थी । भैया का भी यही अदाज था किन्तु उसका कहना था कि नई माँ के कहने से वह आकर खडी होगी । प्रथम मुझे उसकी बात का विश्वास नही हो रहा था किन्तु फिर मैंने भी सोचा कि हम दोनो क्या बाते करते रहते हैं यह जानने ले लिए अवश्य ही नई माँ ने भाभी को छिपकर सुनने की आज्ञा दी होगी । मन-ही-मन मैंने ठान लिया था कि इस बात की छान-बीन करूँगी । मुझे आश्चर्य लग रहा था कि यह सब क्या हो रहा है ? आखिर हम अपनी भाभी को कैसे समझ पायँगे ? क्या सचमुच वह अपने पति और ननद का सास के बारे मे क्या सम्भाषण हो रहा है यह सुनकर सास को कहने के लिए छिपकर वहाँ खडी थी ?

मेरे मन मे जो विचार आ रहे थे उन्हे मेरे भैया को प्रगट करने पर उसने कहा, "इसे जान लेने मे कोई कठिनाई नही होगी । ऐसी बातो का छिपाना भला भी कहा जा सकता है और बुरा भी, किन्तु वाहियात नही कहा जा सकता । किन्तु उसने क्या सुना है यह कुछ देर बाद मुझे सहज ही मे मालूम हो जायगा । ऐसे लोगो से कोई बात छिपाई नही जा सकती ।"

"जेवरो के सम्बन्ध मे हम लोगो मे जो सम्भाषण हुआ था उसे सुनकर यदि भाभी नई माँ से कह दे तो क्या होगा ?

"क्या होगा ? जो होना है सो होगा । उसके बारे मे किसी का कोई उपाय नही चल सकता । नई माँ की आज्ञानुसार यदि उसने छिपकर हमारा सम्भाषण सुना है तो वह अवश्य जाकर कह देगी । रोके नही रुकेगी । यदि

तुम उसे मनाने जाओगी तो वह अधिक खुराफात करेगी, इससे अधिक और कोई तात्पर्य नही निकल सकता।"

"तुम भी किसी बात मे हद कर देते हो। मेरे ख्याल मे भाभी इतनी मूढ नही होगी। और फिर वह उसकी सगी सास भी तो नही है।"

"ठीक है। तुम्हे स्वय अनुभव हो जायगा। मेरा अधिक कहना व्यर्थ है। मेरी बात का तुम्हे विश्वास नही होता किन्तु छुट्टियो मे अब तुम यहाँ हो और वह भी यही है—अनुभव लेकर देख लेना। उसके बारे मे तुम कुछ नही जानती—"

"जी हाँ। और तुम खूब जानते हो। अभी उसकी उम्र ही क्या है। कई बातो को समझने की अभी उसे पात्रता नही है। इसका मतलब यह नही कि उसमे सुधार होना असम्भव है। अभी तुमने उसे क्या जान लिया है जो इस प्रकार कहते हो ?

"लेकिन इसके बारे मे वाद-विवाद करने की क्या आवश्यकता है। स्वय देख तो लो।" इतना कहकर कुछ देर तक वह मौन बैठा रहा। कुछ देर के बाद उसने कहा, "हाँ यमू, दुर्गी के बारे मे तुमने मुझ से कुछ नही कहा। मैं तो समझ रहा था कि तुम्हारे आ जाने पर मैं दुर्गी के बारे मे पूरी-पूरी जानकारी पा सकूँगा।"

यह पूछते समय उसकी आतुरता और कुछ देर पहले भाभी के बारे मे उसकी उदासीनता देखकर मुझे कुछ विचित्र-सा मालूम हो रहा था। मैं कुछ कहना चाहती थी किन्तु मैंने केवल इतना ही कहा, 'क्या कहना है उस बेचारी के बारे मे उसका हाल वही है।'

'हाल रहने दो किन्तु तुम कह रही थी उसका अपने बच्चे से···'

'मालूम तो है तुम्हे···फिर बार-बार बताने की क्या आवश्यकता है ?'

इस प्रकार मुझे टाला-टूली करते देखकर उसे कुछ बुरा मालूम होता दिखाई दिया किन्तु मैं वहाँ से उठकर सोने के लिए चली गई।

इस प्रकार इन दो-चार दिनो मे कुछ विचित्र घटनाएँ घटी थी कि जिन्हे देख कर मैं हतबुद्धि-सी हो गई थी। समझ मे नही आ रहा था कि क्या किया जाय। ससुराल से बुलावा नही आ रहा था। स्वय जाऊँ अथवा नही इसका मैं निर्णय नही कर पाई थी। दादी से मिलने के लिए क्या उपाय किया जाय, यह भी

समझ मे नही आ रहा था। उससे मिलने के लिए मन छटपटा रहा था। सूझ-बूझ जाती रही। मन मे विचार आ रहा था कि शकर मामाजी और अजिया सास की तोपो की बौछार मे उन्हे अकेला छोडकर जाना योग्य नही होगा। कभी सोचती थी कि जिस प्रकार मुझे सताया जाता है उन्हें नही सताया जा सकता। इस प्रकार परस्पर विरोधी विचार मन मे आ रहे थे फिर भी दादी से मिलने की उत्सुकता कम नही हो रही थी। क्या किया जाय। पिताजी तो आज-कल मौन व्रत धारण किये हुए थे। केवल नई माँ से ही बातचीत करते पाए जाते थे। मैं इतने दिनो के बाद घर लौटी थी किन्तु पहले दिन पिताजी ने केवल इतना ही कहा था, 'क्यो यमू बाई, सब ठीक चल रहा है ना।' इससे अधिक एक शब्द भी नहीं कहा। मैं इतनी बडी हो चुकी थी फिर भी स्वयं उनसे बातचीत करने का साहस मुझ मे नही था। भैया ने पत्र द्वारा दादी को मेरे यहाँ आने की सूचना दे दी थी। यदि दादी का बुलावा आ जाता तो जाने की कुछ आशा बँध जाती। यहाँ मायके मे रहकर उनसे दूर रहने मे कोई तात्पर्य नही था। मुझ से रहा नही जाता, और उन्होने भी बारबार मायके मे जाकर रहने के लिए कहा था फिर भी वे अकेले नही रह सकते थे। दो ही चार दिनो मे भैया अथवा और किसी के हाथो सदेशा आ जाता कि घर चली आओ। इसलिए मैंने सोचा था कि दो-चार दिन रहकर ससुराल चली जाऊँ। दादी का यहाँ आना असम्भव था। क्योकि दादाजी का स्वास्थ्य दिन प्रतिदिन गिरता जा रहा था। वैसे वे बीमार नही थे, किन्तु उनका बुढापा था और ऐसे समय किसी आत्मीय व्यक्ति का उनके पास रहना आवश्यक था। हम भी नही चाहते थे कि दादी यहाँ आए। ऐसी दशा मे यदि वह बुलावा भेजती तो हम जा सकते थे. अन्यथा कोई उपाय नही था। भैया पिताजी से कहने से रहा और मैं भी नही कह सकती थी। नई माँ के द्वारा पिताजी की सहमति प्राप्त की जा सकती थी किन्तु नई माँ से तो हमे बहुत ही प्रेम था ना।

६१

जिस प्रकार मनोवाछित सभी बाते पूर्ण नही होती उसी प्रकार कभी-कभी इच्छित बाते योग्य समय आने पर पूर्ण होते देखी जाती है। कम-से-कम मेरे मन की इच्छा जो किसी प्रकार पूर्ण होने की आशा मैं लगाए बैठी थी वह पूर्ण हो गई थी। दादी से मिलने के लिए मे बैचेन हो उठी थी। जाने के लिए उपाय की खोज मे थी, किन्तु कोई साधन नही दिखाई दे रहा था। और तभी एक दिन प्रत्यक्ष दादाजी का पत्र आ गया था। दादाजी ने पत्र मे लिखा था, 'इन दिनो गणू को छुट्टियाँ है, यमू भी वहाँ आ गई है, इसलिए गणू और यमू के साथ गणू की बहु को भी चार दिन के लिए यहाँ भेज दिया जाय। यमू के ससुराल वालो से उसे भेजने के लिए सम्मति प्राप्त कर ली जाय। आजकल मेरा स्वास्थ्य अच्छा नही है। बच्चो के यहाँ आने से उनका दिल बहलेगा और मुझे भी सतोष होगा। पिताजी ने पत्र भैया की ओर भेज दिया। साथ मैं एक चिट्ठी भी रख दी, उसमे लिखा था कि यदि तुम और यमुना जाना चाहते हो तो उसके ससुराल वालो से उसे भेजने की सम्मति प्राप्त कर लो। एक ही घर मे रहकर पिता पुत्रो का पत्र व्यवहार होते मैं प्रथम बार देख रही थी। देखकर मुझे हँसी आ गई थी। भैया ने भी प्रथम बार ही घर मे पिताजी की चिट्ठी पाई थी किन्तु उसे मुझ-जैसी हँसी नही आई थी। प्रत्यक्ष बोलने की अपेक्षा यह प्रकार उसे अधिक पसन्द था।

पत्र आने के बाद दोपहर मे उसने मेरी ससुराल मे जाने का निश्चय किया था। किन्तु कैसे जाना और किसके पास जाना यह एक समस्या थी। हम लोग इसी बात को सोच रहे थे। बीच मे ही भैया ने कहा, 'यमुना क्या मैं रघुनाथराव से कहूँ कि तुम भी चार दिन के लिए हमारे साथ गाँव चलो? क्या वे आयँगे? उनके आने से बड़ा मजा आयगा। तुम, मैं और वे, तीनो मिलकर खूब गपशप लडाया करेंगे—सुबह कही घूमने जाया करेगे। दादी माँ भी कुछ नही कहेगी, उसे तो बड़ी खुशी होगी।'

'तीनों क्यों चौथी भाभी भी हमारे साथ होगी भैया। दादाजी ने उसे भी बुलाया है।' उसे चुभने के लिए मैंने कहा था और वह बात उसे चुभी थी।

उसने कहा, 'यमे, मैंने तो निष्पक्ष दृष्टि से कहा था फिर तुम क्यो इस प्रकार चुभने वाली बात कहती हो ?'

उसकी बात सुनकर मुझे अपनी बात पर पछतावा हुआ था, किन्तु मनुष्य स्वभाव के अनुसार अपनी गलती मान्य करना बहुत ही कठिन होता है, इसी न्याय से मैंने भी अपनी गलती को उस समय नही माना था।

बहुत देर तक भवति न भवति होने पर निर्णय किया गया था कि शाम को मैं ससुराल चली जाऊँ और दूसरे दिन सुबह भैया दादाजी का पत्र लेकर और किसी के पास न जाकर सीधा गोपाल मामाजी के पास चला जाय। और किसा के पास जाने पर मुझे भेजने का प्रश्न एक तरफ रह जायगा और टीका टिप्पणी होती रहेगी, इसका मुझे डर था। इसलिए ऐसा मार्ग निकाला गया। यह भी निश्चित किया गया कि पत्र के बारे मे मैं उनमे पहले ही कह दूंगी।

नई माँ से कहकर शाम को मैं ससुराल चली गई। रात मे भेंट होने पर मैंने सब हाल उन्हें सुना दिया। सुनकर उन्होने कहा, 'अरे वाह ! इन चार-पाच दिनो मे षड्यत्र रचकर आखिर तुमने अपने मन की बात पूरी कर ली। लेकिन मैं तुम्हे नही जाने दूंगा ! तुम्हारे बिना मुझे घड़ी भर भी चैन नहीं आती। इन चार दिनो मे खूब अनुभव पा लिया है।'

'जी हाँ ! जैसे मैं सच ही मान लूंगी ! यदि ऐसा ही था तो आ जाते वहाँ भैया के पास आने का बहाना बनाकर ! कोई नाम थोड़े ही रखता।'

'सच मानो, दो-चार बार मैंने सोचा था कि जाकर तुम्हारे दर्शन करलूं। किन्तु क्या करता ? यदि इस घर के लोग जान जाते तो मेरी बडी दुर्गति होती ! जानती हो तुम्हारे जाने के बाद यहाँ क्या काड हुआ ? शकर मामाजी ने.......... '

'क्या ? क्या हुआ ?'

'होना क्या है ! अपनी बीवी पर गुस्सा उतारा गया। परसो रात में शायद उस बेचारी को बुखार आ गया था इस कारण सुबह जल्दी उठकर इनके पूजा-पाठ की व्यवस्था नही कर पाई। फिर क्या था—इन्हें गुस्सा आ गया, लगे उसे गाली देने ! 'ठोकर से उडा दूंगा, क्या समझती है मुझे ? पूजा-सामग्री की व्यवस्था नही की गई—अब कौन तेरा बाप आयगा व्यवस्था करने ?............'

'और ? और क्या उन्हे पीटा भी था ?'

'उस बेचारी पर टूट पडे थे। एक तमाचा मारकर हाथ पकड कर घसीट रहे थे। मैं और गोपाल मामाजी पहुँच गए तब जाकर बीच-बचाव हो पाया। गोपाल मामाजी ने उन्हे खूब फटकारा। उनसे वे क्या कह सकते थे। किन्तु मुझे उन्होने ललकारा—'खबरदार जो तू मेरे सामने आया ! निर्लज्ज कही का ! तुझे शर्म नही आती ! मेरी तेरी बराबरी है ? बडा आया है स्त्रियों का पक्ष लेने वाला। मै चाहूँ तो जूतो से उसकी पिटाई करूँ—तू कौन होता है रोकने वाला ? पैर की जूती पैर मे ही होनी चाहिए। कल देखता हूँ कैसे पूजा की व्यवस्था नही की जाती। बुखार चढा है—देखता हूँ कैसे बुखार चढता है। लेकिन तू क्यो बीच मे दखल देता है ? क्या मैं तेरी बराबरी का हूँ ? क्या वाहियात लडके है। तू अपनी स्त्री के बारे मे चाहे जो कर ! इस राज्य मे तो सभी अँधाधुन्दी है। हम तेरे मामा बने बैठे है। बचपन से तुझे पढाया-लिखाया—लेकिन तूने ये ढग दिखाए। आखिर हम क्या कर सकते है। चुप बैठ गए ना ? यही पेशवाओ का राज होता तो—किन्तु अब क्या किया जा सकता है ? अब तू अपनी बीवी को साहब के यहाँ भी भेजदे तो.........'

बीच ही मे गोपाल मामाजी ने टोका—भैया, क्या बक रहे हो ? मैं तो गुस्से से तमतमा गया था। नौबत आ गई थी कि उन्हे खरी-खरी सुनाकर घर से निकल जाता। किन्तु गोपाल मामाजी का ख्याल कर चुप हो गया। इसी समय माँ ने भी मुझे पुकारा था। सौभाग्य से नानी घर मे नही थी। कहीं देव-दर्शन के लिए बाहर चली गई थी। यदि झगडा हो जाता तो—तो आज हम लोग बम्बई मे होते।'

'हरे राम !' इतना ही मैं कह पाई।

'हाँ—महत्त्व की बात तो तुमने सुनी ही नही। सुबह यह तमाशा हुआ था और शाम को कही से काढे का नुस्खा लिखवाकर लाए और कहने लगे, काढा पिला दो उसे ! गोपाल मामाजी ने कुनेन की गोलियाँ दी थी। डाक्टर की दवा नहीं देंगे कहकर गोलियाँ फेक दी और स्वय बैठकर काढा उबालने मे लग गये। काढा पीने के लिए उमा मामाजी को मनाते हुए सुना था। अब तक मुझसे कुछ नही कहा है किन्तु दो-चार दिन मे आकर कहेगे, 'मैंने तो तुम्हें

सुधारने के लिए हो ऐसा कहा था—तुम बुरा न मानो !' उनकी बातो में क्या अर्थ है।

इस बातचीत मे हमारे जाने का विषय एक तरफ रह गया था। शकर मामाजी के गुणानुवादो की चर्चा मे हमे उसका विस्मरण हो गया था। एक बार यहाँ से जाने पर फिर कभी इस झमेले में नही आयँगे ऐसा निश्चय किया जा रहा था। वे चाहते थे कि हमारे साथ गाँव चले, किन्तु कैसे जा सकते थे। कोई बहाना बनाकर जा सकते थे किन्तु माताजी को लेने के लिए उन्हे फिर लौटकर आना पडता। सब स्थिति मे उनका जाना असम्भव-सा था। मेरी बहुत इच्छ, थी कि वे हमारे साथ चलें—किन्तु क्या किया जा सकता था।

योजना के अनुसार दूसरे दिन भैया ने आकर गोपाल मामाजी को दादा-जी का पत्र दिखाया। पढकर उन्होने कहा, 'ठीक है, माँ से कहकर मैं व्यवस्था करता हूँ। तुम भी जा रहे हो ना ? अवश्य जाओ चार दिन के लिए। वह जाना चाहती है न ?'

भैया ने उत्तर मे कहा, 'हाँ, यदि आप इजाजत दें तो ?'

बीच ही मे मामाजी ने कहा—'इजाजत की क्या बात है ? अरे वे बेचारे दोनो हैं तभी तक तो तुम लोगो का जाना है। ठीक है ! जाओ तुम—मैं सब व्यवस्था किये देता हूँ।'

इस प्रकार मामाजी का आश्वासन प्राप्त कर लेने पर रुकावट का कारण ही नही रहा। उनसे मिलकर भैया घर लौट गया। गोपाल मामाजी ने घर मे वह पत्र अजिया सास, छोटी मामीजी, शंकर मामाजी आदि को जब पढकर सुनाया था तब क्या हुआ था ? उसे भेजने वाले अब हम कौन होते हैं ? उसका पति, उसकी सास जो जी मे आए करें। हमेशा का वही परिसवाद। कितनी बार इस प्रकार कहा गया था ? मुझे भेजने के लिए प्रार्थना करने स्वय न आकर उस जरा-से बच्चे को भेजा गया इसलिए पिताजी के घमड का उद्धार कैसे किया गया था ? हमारे घर को वे किस प्रकार तुच्छ समझते हैं यह कहकर उनकी कैसी टीका टिप्पणी की गई थी, अन्त मे गोपाल मामाजी ने कहा था, 'सब ठीक है किन्तु इसमे उस लडकी का क्या दोष है ? उसके जाने मे क्यो रुकावट लाते हो ? कुछ नही, उसके जाने की तैयारी कर दो। यह सुनकर अजिया सासूजी द्वारा उनकी भी कैसी टीका टिप्पणी की गई, शकर मामाजी

ने कैसे कुत्सित भाष्य किया था और किस प्रकार मेरा जाना निश्चित किया गया था, आदि बातो का मैं सविस्तार वर्णन करना नही चाहती।

रात मे हम दोनो मे इसी बारे मे बहुत देर तक चर्चा होती रही। वियोग की कल्पना से हम दोनो उदास हो गए थे। उन्होने बार-बार कहा था, 'छब्बीस मई के बाद एक क्षण के लिए भी वहाँ न रुकना। पत्र नियमित रूप से भेजा करो, अब तो तुम खूब लिख लेती हो।' जैसे मैं किसी बहुत दूर की यात्रा के लिए जा रही थी। वे बार-ब्रार मुझे अपनी तबियत सभालने और पत्र लिखने के लिए कह रहे थे। मैं भी उनसे इसी प्रकार कह रही थी। मेरी आँखो मे आँसुओ का आ जाना स्वाभाविक ही था किन्तु उनका दिल भी अत्यन्त मृदु था। आखिर जैसे-तैसे मैं ससुराल से मायके मे आ गई थी। भैया और भाभी की भी प्रस्थान की तैयारी चल रही थी। किन्तु भैया भाभी के साथ मे जाने के सम्बन्ध मे उदासीन मालूम हो रहा था। उसके उद्‌गारो से मालूम होता था कि भाभी का हमारे साथ जाना उसे पसन्द नही था। किन्तु मैं उसे अपने साथ ले जाना चाहती थी। मुझे उसकी परीक्षा करनी थी कि वास्तव में वह कैसी है ?

भैया का उसके बारे मे यदि अभी से मन कलुषित हो गया तो वे दोनो अपना जीवन किस प्रकार व्यतीत कर पायँगे ? पति-पत्नी की दिल जमई न हो तो सुख कैसा ? आगे चलकर भैया और नई माँ मे क्या सलूक होगा इसकी कल्पना की जा सकती थी। इसलिए कही दूसरे गाँव मे नौकरी करने पर ही भैया के अपनी गृहस्थी में सुखी होने की आशा थी। जीवन के प्रथम चरण मे ही यदि भैया और भाभी मे बेबनाव-सा मालूम होता है तो किसी प्रकार उसे दूर करके उनकी दिल जमई का उपाय करना आवश्यक था। भाभी के स्वभाव को समझकर, उसे समझाने-बुझाने का अवसर पूना की अपेक्षा गाँव मे ही अधिक सुगमता से प्राप्त हो सकता था, इसलिए मैं चाहती थी कि, भाभी को अपने साथ ले जायँ। किन्तु डर था कि कही नई माँ की ओर से कोई विघ्न उपस्थित न हो। किन्तु न जाने क्यो नई माँ की ओर से कोई आपत्ति नही की गई। पिताजी ने एक नौकर हमारे साथ कर दिया था और इस प्रकार हम तीनो ने गाँव जाने के लिए प्रस्थान किया था।

६२

'जहाँ बचपन बीता हो अथवा जहाँ की कुछ बातें अविस्मरणीयरूप मे हमेशा मन मे बनी रहती हो वहाँ बहुत काल के उपरात जाने पर भी जो आनन्द आता है उसकी कल्पना ही की जा सकती है। देश मे बहुत कुछ सुधार होकर रेल गाडियाँ आदि आवागमन के साधन निर्माण हो चुके थे फिर भी हमारे गाव का मार्ग उसी अनादिसिद्ध रूप का बना रहा था। उसमे कोई परिवर्तन नहीं हुआ था। प्रवास करते समय उन्ही पुरानी बातो का स्मरण मैं और भैयाजी करके हँस रहे थे। बीच ही मे माँ की याद आ जाने से हम दोनो उदास हो गए थे। भैया के रास्ता भूल जाने वाली घटना का वर्णन करते हुए मैंने भाभी से कहा, 'ऐसे गुणी है आपके पतिदेव।' इस पर भैया की ओर एक दृष्टि से ताकते हुए भाभी ने तत्काल उत्तर मे कहा, 'मुझ-जैसी बाहियात को क्यो सुना रही हो दीदी ? मैं तो बहुत ही बाहियात स्त्री हूँ।' मैं उसकी बात का सन्दर्भ जान गई थी फिर भी मैंने प्रगट नही किया। बात बनाकर मैंने कहा, 'वाह ! तुम बाहियात क्यो हो ? हम-जैसी ही तुम हो ! तुम बाहियात क्यो होने चली ?'

'बाहियात होने के लिए किसी कारण की आवश्यकता नही होती। मनुष्य प्रकृति से ही बाहियात होता है। और दीदी अब मैं कभी सुधर नही सकती।' भैया हमारे साथ, बिलकुल समीप ही गाडी मे बैठा था और भाभी हम दोनो को लक्ष्यकर इतनी ढिठाई के साथ इस प्रकार कुत्सित भाषण कर रही थी। मैं उसका स्वभाव जानना चाहती थी। उसका भाषण सुनकर मैं हतबुद्धि-सी हो गई थी। चार दिन पूर्व हम दोनो मे जो बातचीत हुई थी उसे भाभी ने छुपकर सुना था और मौका लगते ही स्पष्ट शब्दो मे हमे सुना दिया था। क्या इसे बाहियाती नहीं कहा जा सकता ? उसका भाषण सुनकर मेरी धारणा हो गई थी कि वह कुढने वाली और [illegible] वृत्ति की स्त्री है। उसके मन मे इस प्रकार कई बातो ने घर कर लिया होगा। हमारे सभाषण मे, भैया ने कोई भाग नही लिया। भाभी का अन्तिम वाक्य सुनकर वह गाडी से उतर कर पैदल चलने लग गया था। मैंने उसे बहुतेरा कहा किन्तु वह नही रुका। नौकर भी गाडी के पीछे चला आ रहा था। गाडी मे मैं और भाभी ही थी।

'सुसधि देखकर मैंने भाभी से कहा, 'भाभी, अब तुम छोटी नही हो ! क्या तुम इतना भी नही जानती कि अब तुम्हारे लिए भैया और भैया के लिए तुम हो ! दूसरे किसी का सहारा नही।'

'मुझ-जैसी बाहियात, गवार स्त्री तुम्हारी बाते कैसे समझ सकती है ? मुझ से क्यो कहती हो तुम ?' उसने फिर कुत्सित भाव से कहा।

मैंने उसकी बात पर ध्यान नही दिया। आगे कहती रही, 'भाभी तुम भैया के मन को नही पहिचान पाई हो ! और नई माँ के कहने से हम लोगो का सभाषण छुपकर सुनना क्या तुम्हे शोभा देता है ?'

यह सुनते ही उसकी त्योरियाँ चढ गई। आँखे तरेरकर उसने कहा, 'क्या ? किसके कहने से मैं खडी थी ? और कहाँ, खडी थी ?'

'उस दिन, जब मैं और भैया, उसके कमरे मे रात को बातचीत करते बैठे थे। तब क्या तुम जीने पर नही खडी थी ? किसने कहा था तुमसे खडा रहने के लिए ? नई माँ ने ?'

'जिसके बारे मे तुम्हारा ख्याल हो, उसी के कहने से खडी थी। बस हो गया तुम्हारा समाधान ?'

'तो क्या यह तुमने अच्छा किया ? क्या-क्या सुना था तुमने उस दिन ?'

'जो सुना था वही।'

'और क्या सब कुछ जाकर नई माँ से कह दिया था ?'

'हाँ, जब तुम्हारा कहना है कि उनके कहने से ही मैं वहाँ खडी थी तो उनसे कहे बिना कैसे रह सकती थी ?'

इस प्रकार के उत्तर सुनकर मैं जान गई थी कि यह भाषण बाहियात मनुष्य का नही हो सकता। फिर प्रश्न था कि आखिर यह सब क्या है ? उस दिन नई माँ के कहने से वह छुपकर नही खडी थी, यह बात स्पष्ट थी। इसी उधेड-बुन मे मै लगी रही थी और इसी समय भैया जो आगे चला जा रहा था, उसने रुककर कहा, 'यमू, देख रही हो यह झाडी ? याद आता है इस स्थान पर क्या हुआ था ? देखो आज भी कोई तुम्हें सताने के लिए यहाँ से न निकल पडे ?' ठहाका मारकर वह हँस दिया था। मैं भी हँसकर उसके साथ बातें करने लगी थी। उस घटना का मुझे स्मरण हो आया था और मन कुछ भयाकुल हो उठा था।

इस प्रकार हम अपने गाँव पहुँच गए थे। पहले दिन शाम को घर पहुँचने के कारण दादी से कुशलवृत्त के अतिरिक्त अधिक बातचीत नहीं हुई थी। दादा जी को देखकर मुझे दुःख हुआ था। उनकी हालत खराब थी। जीर्णावस्था होने पर भी उनके स्वर की कडकता कायम थी। दादाजी की चिन्ता तथा अन्य कारणो से दादी भी बहुत दुर्बल-सी जान पडती थी हम लोगो के आगमन से वह बहुत खुश थी।

भाभी वहाँ पहली बार आई थी इसलिए न जाने उसे कैसा लगता हो किन्तु मैं और भैया बहुत खुश थे। हमारे आनन्द मे एक बात की कमी थी। यदि हमारे साथ वे आए होते तो फिर हम लोगो की खुशी मे चार चाँद लग जाते।

बचपन की कई बातो का स्मरण जाग उठा था। वह खुशी अब कहाँ है? उसका विवाह हो गया है और अब वह अपने पति के साथ हैदराबाद में है, जहाँ वह नौकर था। अब उसके चार बच्चे हैं—तेरह वर्ष की उम्र में ही वह प्रथम बार प्रसूति हुई थी। और वह दूसरी कहाँ है? प्रसूति के समय वात हो कर उसे मरे चार वर्ष हो गए हैं। और वह तीसरी? उसका पति मर चुका है और वह अपने देवर के पास रहकर मोल मजूरी करके अपना पेट पालती है। इस प्रकार अपनी पूर्व परिचिताओ के बारे मे पूछ-ताछ करने पर मुझे बताया गया था। उनकी बाते जानकर मुझे अपनी बम्बई वाली सहेलियो की बडी याद आने लगी।

६३

भैया और भाभी मे किस प्रकार समझौता हो? इस गुत्थी को सुलझाने के लिए क्या उपाय किये जायँ इसी विचार-चक्र मे मेरा मन चक्कर खा रहा

था । भाभी केवल बाहियात है, यह जो मेरी भ्रान्ति थी वह अब दूर हो गई थी । अब दूसरा प्रश्न उपस्थित था कि फिर उसका स्वभाव कैसा है ? वह अब छोटी नही थी । कम-से-कम अपनी हिन्दू कल्पना के अनुसार उसे छोटा नहीं कहा जा सकता था और मैं देख रही थी कि व्यावहारिक बातो को समझने-बूझने मे वह वास्तव मे छोटी नही थी । मुझे इस बात का आश्चर्य हो रहा था । उसकी समझ मे यह बात क्यो नही आती कि उसके लिए भैया और भैया के लिए वही एकमात्र है । दादी के यहाँ हम तीनो के मिलकर आने मे मैंने यही फायदा सोचा था कि उसे समझाने-बुझाने की सधि मुझे प्राप्त हो सकेगी । किन्तु अब समझ मे नही आ रहा था कि किस प्रकार आरम्भ किया जाय ?

मेरे ध्यान मे आ चुका था कि यदि उसे कुछ कहा-सुना जाय तो सीधे ढग से वह उत्तर नही देती थी । उससे कुछ कहने पर वह मुँह बिगाडकर कहती, 'मैं क्या जानू !' उसके चेहरे पर कभी आनन्द का भाव दिखाई नही देता था—किसी बात मे उसे सतोष नही होता था । मायके मे मेरे ध्यान मे ये बाते नही आई थी । मायके मे मेरा रहना थोडे समय के लिए ही होता था । प्रथम कुछ दिनो मे नव-बधू होने से और बाद मे सौतेली सास तग किया करती हो, इस ख्याल मे मेरा उसके साथ अधिक सम्पर्क नही हो पाया था । किन्तु अब ऐसा कोई कारण न होने से उसका बर्ताव जब मैंने पहले-जैसा ही देखा तब मैं जान गई थी कि उसे पहिचानने मे मैने गलती की है । अवश्य ही उसका स्वभाव विचित्र है ।

सभवत दादी के ध्यान मे भी यह बात आ चुकी थी, क्योकि एक दिन बात-चीत मे उसने भैया से कहा, 'गणु, तुम्हे घरवाली अच्छी नही मिली, इसके साथ तुम्हारा निर्वाह कैसे होगा ?'

मुझे मालूम था कि भाभी भीत के पीछे छुपकर खडी है, इसलिए बात को बरकाकर बीच ही मे मैंने कहा, 'वाह ! अच्छी क्यो नही है, बडी माँ ? वह तो बडी अच्छी है । काम-काज आदि किसी बात मे वह कम नही है !' इतना कहकर मैंने बातचीत का विषय ही बदल दिया था ।

हम लोगो को यहाँ आए आठ दिन हो गए थे । इसी बीच मे पूना से उनका पत्र आया था । पत्र में वही हमेशा का रोना लिखा गया था । उनकी

मामाजी की प्रकृति अब ठीक थी। दुर्गी के बारे मे कुछ जानने का अब साधन नहीं रहा था। बम्बई की सहेलियो की ओर से कोई पत्र नहीं आया था।

दादाजी की हालत खराब थी इस कारण दादी का अधिकतर समय उनकी सेवा-सुश्रुषा करने मे ही व्यतीत होता था। घर का अधिकतर काम-काज हम दोनो ही किया करती थी। इस कारण हम दोनो मे अधिक सहवास हो जाने से मैं भाभी के स्वभाव को भली-भाति जान गई थी। भैया जितना आनन्दी था उतनी ही भाभी खिन्न रहती थी। वह जितना मिलनसार था उतनी ही वह कुढने वाली थी। भैया को मैं जितना प्रिय थी उतना ही भाभी मेरा तिरस्कार करती थी। ये बातें अब स्पष्ट हो चुकी थी। किन्तु इसका कारण मेरे ध्यान मे नही आ रहा था। मुझे और भैया को एक साथ कुछ पढते अथवा हास्य विनोदपूर्ण बातचीत करते देखकर भाभी की तिरस्कार से भौंहें सिकुड जाती थी। मुझे इस बात की तीव्र अभिलाषा थी कि मैं, भैया और भाभी एक-साथ बैठकर कुछ हँसी मजाक करें, आनन्द से समय बितावे। इसलिए मैंने उसे एक दो बार हम दोनो बैठे थे वहाँ आकर बैठने के लिए बुलाया भी था, किन्तु उसने नही माना। एक बार तो मैंने उसे खीचकर लाने का प्रयत्न किया था, किन्तु चिढकर उसने तीखे स्वर मे कहा था, 'मुझे ऐसी बातें पसन्द नही हैं—मेरे पीछे न पडो! आपको ही यह शोभा देता है। हम-जैसे गरीबो को ये ढग नहीं सुहाते...'

एक बार मैंने कहा, 'भाभी, ऐसा क्या करती हो? भैया की इच्छा है तो तुम धीरे-धीरे पढना-लिखना क्यो नहीं सीख लेती?'

बीच ही मैं मेरी बात काटकर उसने कहा, 'हाँ, अब पूना लौट जाने पर तुम्हारा वह क्या स्कूल या फँस्कूल होता है ना, उसी मे अपना नाम लिखवा लूँगी। अनायास अभी से मेम सहाबो मैं बैठने बोलने की आदत हो जायगी!' इस प्रकार के उत्तर देना अज्ञान मूलक नही कहा जा सकता। यदि यह कहा जाय कि जान-बूझ कर वह ऐसा करती है तो उसकी उम्र इतनी नही थी। हमारी बनू दीदी-जैसा ही प्रकरण था—किन्तु निश्चय पूर्वक नही कहा जा सकता था।

जिस दिन हम दोनो मे उपरोक्त सभाषण हुआ था उस दिन मैंने इसके सम्बन्ध मे भैया से कुछ नही कहा था। चार-छ दिन बाद मैंने सहज भाव से जब

भैया से कहा तो गुस्से से वह तमतमा उठा था। उसने कहा, 'यमू, मैं तुमसे कई बार कह चुका, किन्तु तुम मेरी बात नही मानती। आखिर तुम्हें इन बातो से क्या मतलब है ? एक चावल से ही पूरे भात की परीक्षा की जाती है। इस प्रकार अपमानित हो चुकी अब तो उसका नाम छोडो। ऐसे मनुष्यो को तो कुछ दिन और राह देखूंगा, नही तो किसी दिन कसम उठा लूंगा कि आजीवन फिर कभी उसका नाम न लूँ। उसकी यह मजाल कि तुम से ऐसा कहे।' उसका गुस्सा देखकर मैं मन-ही-मन लज्जित हो उठी थी। व्यर्थ मे मैंने उसे बताया। आयन्दा भाभी ने कभी कुछ कहा तो भैया को न बताने का मैंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया था। गुस्से में आकर किसी दिन वह कोई शपथ उठाले तो अनर्थ हो जायगा।

इस प्रकार भाभी साहिबा के रग-ढग देख लेने पर आवश्यकतानुसार ही उनके साथ अपना सम्बन्ध रखना ठीक था। यहाँ उसे ले आने पर उसके स्वभाव मे परिवर्तन कराने विषयक मेरे विचार अब लुप्त होते जा रहे थे। फिर भी बिलकुल निराश नही हो पाई थी। मेरे प्रयत्न चल रहे थे। किसी दिन कोई बात सुनाने के लिए मैं उसे जबर्दस्ती करके घसीट कर हम लोगो मे लाकर बैठा लिया करती थी। फिर भी उसका वही हाल था। आखिर एक दिन पूर्ण निश्चय करके मैंने उसे एकान्त मे ले जाकर कहा, 'भाभी, तुम इस प्रकार मन-ही-मन कुढकर क्यो दुखी होती हो ? हम केवल तेरी दो ननद हैं। मैं और सुन्दरी ! भैया-जैसा पति पाकर भी तुम्हारा बर्ताव ऐसा क्यो ? आखिर तुम क्या चाहती हो ? यदि तुम्हारा यही ढग रहा, भैया की इच्छा के अनुसार तुम्हारा बर्ताव न होगा, तो आगे चलकर तुम लोगो का क्या हाल होगा ? तुम्हे अपने हित का ख्याल क्यो नही है ? पति-पत्नी मे यदि एक का मुख एक तरफ और दूसरे का दूसरी तरफ हो तो कैसे निर्वाह होगा ? जरा सोचो तो। दोनो में इस प्रकार के बनाव होने से कैसे काम चलेगा ? कैसे सुख प्राप्त होगा ? भाभी, कल को तुम्हारी गृहस्थी.........'

'काहे की हमारी गृसस्थी......'

पागल न बनो ! अभी क्या हुआ है ? क्या तुम लोग बूढे हो गए हो ?'

इस पर उसने कुछ नही कहा। झटके से गर्दन हिलाकर मुँह बनाए वह बैठी रही। कुछ देर बाद त्योरियाँ चढ़ाकर उसने कहा, 'फिर इसके लिए वाद-

विवाद करने की क्या आवश्यकता है ? मैं बुरी हूँ ना ? बस हो गया। अब कहने से क्या लाभ ?'

'किसने कहा तुम बुरी हो ?'

'कहने की क्या आवश्यकता है ? जो है उसे कहकर पुकारने की आवश्यकता नही होती।'

'नही, नही, तुम ऐसा न समझो।'

'मैं बुरी हूँ, गवार हूँ, वाहियात हूँ……'

'बस करो! इसी से तो बात बिगड जाती है।'

'अब और क्या बिगडना है। कुत्ते की दुम बारह साल तक नली मे रखने पर भी सीधी नही हो सकती।'

'भाभी, इस प्रकार कुत्सित भाषण करने से क्या लाभ होगा ? अभी तक तुमने भैया को नही पहिचाना है। उसके-जैसा दयालु, प्यारा……'

'मैं कब अस्वीकार करती हूँ दीदी ? तुम व्यर्थ मे बात को बढा रही हो। मेरा तो कहना है कि सभी अच्छे हैं, केवल बुरी तो मैं हूँ।'

'कल को उसे कोई अच्छी-सी नौकरी मिल जाने पर……'

बीच ही मे वह कुछ विचित्र, चुभने वाले ढग से हँस दी थी। उसने कहा, 'इस जन्म मे तो असम्भव है!' उसके मुँह से निकले हुए इन शब्दो को सुनकर मैं अवाक् रह गई थी। भाभी की उम्र अभी छोटी है, अज्ञानतावश वह यह सब कह रही है, भविष्य मे अवश्य वह सुधर जायगी, ऐसी जो मुझे भ्रान्ति थी वह उसके उपरोक्त शब्द सुनकर एकदम दूर हो गई थी। मैं समझ गई कि उसकी उम्र छोटी है किन्तु मन सामान्य नही है। उपरोक्त विचारधारा बचपन की नही, समझदारी की सूचक है। फिर भी उसका आशय स्पष्ट रूप से समझने के लिए मैंने कहा, 'अभी से तुमने पूरे जन्म का हिसाब कैसे लगा लिया ?'

'हिसाब की कौनसी बात है ? अभी तक परीक्षा भी तो……'

मैं उत्सुक हो उठी थी कि आगे वह क्या कहती है। किन्तु इसी समय भैया ने मुझे पुकारा था। उसे सुनकर वह चुप हो गई। और पुकारने पर मैं उठकर चली गई। इस सुसधि को खोने का मुझे खेद था। किसी प्रकार क्यो

न हो किन्तु आज वह दिल खोलकर बात कर रही थी और इसी बीच यह विघ्न आ गया था ।

फिर भी उसने जो कुछ कहा था वह सोचने के लिए पर्याप्त था। उसके मन मे क्या है, इसे अब जाना जा सकता था। मैने अपने मन मे तर्क कर लिया था और आगे चलकर वह यथार्थ सिद्ध हुआ था। फिर कभी भाभी से एकान्त मे मिलकर उसके मन की बात समझ लेने की सधि प्राप्त नही हो पाई और न मैने ऐसा प्रयत्न ही किया था। क्योकि मे समझ गई थी कि उसके बर्ताव का इगित क्या है।

६४

एक दिन रात को मै और भैया बाहर के आँगन मे चाँदनी रात मे बैठे बातचीत कर रहे थे। बातचीत किसी खास विषय को लेकर नही हो रही थी। ऐसे ही बाते हो रही थी। कभी हमारे बम्बई के घर के सम्बन्ध मे, कभी वहाँ के लोगो के बारे मे, कभी दुर्गी, कभी नई माँ, कभी शकर मामाजी आदि को लेकर हम बाते कर रहे थे। एक बार भैया ने कहा, यमू, तुम्हे मालूम है कि आगे मैं क्या करने जा रहा हूँ ? परीक्षा पास हो जाने पर कालेज-वालेज मे नही जाऊँगा।"

"तो फिर ? परीक्षा पास होने पर क्या करना चाहते हो ?" मुझे भाभी के उद्गारो का स्मरण हो आया था।

"क्या करूँगा।" गम्भीरता से इतना ही कहकर वह स्तब्ध होकर बैठा रहा।

उसके उद्गारो का आशय मेरी समझ मे नही आ रहा था। आखिर उसकी क्या इच्छा है ? ऊपर की बात कहकर वह चुप बैठा रहा था। मैं भी उसकी ओर ताकती बैठी थी। परीक्षा पास हो जाने पर कालेज मे नही जायगा

तो फिर क्या करेगा ? अभी से यदि भैया पढाई छोड देगा तो आगे चल कर उसका क्या हाल होगा ? क्या अभी से कोई नौकरी कर लेगा ? इस समय नौकरी करने से उसे दस-बारह रुपयो से अधिक वेतन तो मिलेगा नही। बहुत देर तक मैं इसी उधेड-बुन मे बैठी रही थी। कुछ देर बाद भैया ने कहा, "यमू, तुम देख रही हो—जिस प्रकार मैं अपना भविष्य बनाना चाहता हूँ, क्या इस घर मे रहकर वह सभवनीय है ? रहना तो दूर रहा किन्तु इस घर मे एक क्षण भी सुख और समाधान से नही बिता पा रहा हूँ। घर मे आते ही लगता है जैसे मैं किसी जेलखाने मे हूँ। इसलिए मैं सोच रहा हूँ कि जहाँ तक सभव हो स्वतन्त्र हो जाऊँ। पिताजी आजकल कुछ बोलते नही किन्तु पाँच-सात महीनो पहले नई माँ को पिताजी से कहते हुए मैने सुना था "यह इतना बडा हो गया, अब तक परीक्षा पास नही की। समधिन ताने मारा करती है। पिताजी ने इस पर कुछ नही कहा था, केवल एक ही वाक्य कहा था किन्तु वह मेरे मन मे घर किए बैठा है।" इतना कह कर भैया चुप हो गया था।

उत्कण्ठा से मैने पूछा, "क्या ? पिताजी ने क्या कहा था ?"

"कुछ विशेष नहीं कहा। उनका कहना स्वाभाविक ही था।"

"क्यो न हो, लेकिन क्या कहा ?"

"कहना क्या था ? उन्होने कहा, एकाद परीक्षा पास होने पर कही नौकरी करवा दूँगा। और क्या कहते !"

"तुमसे नौकरी करवाना चाहते है पिताजी ?"

"हाँ !"

"अभी से ?"

"किन्तु इस समय तो दस-बारह रुपयो से अधिक प्राप्ति नही होगी।"

"वही पर्याप्त है, जिससे.........

पिताजी को ऐसा नही कहना चाहिए था ......

इसे तो वे ही जान सकते है। नई माँ और पिताजी मे मेरा विषय लेकर यह पहली बार ही चर्चा नही चली थी। मेरे बारे मे उनमे कई बार चर्चा चल चुकी होगी। "इतना कहकर वह चुप हो गया था। मैं भी चुप बैठी रही मेरे कान मे भाभी के शब्द गूँज रहे थे। अवश्य ही उसने नई माँ और पिताजी का सभाषण सुना होगा। उनका सभाषण सुनकर उसे बुरा लगा

होगा और इसी कारण उसने मुझसे ऐसा कहा था। सभवतः उसके मायके के लोग-वाग भी इसी विषय को लेकर आपस मे बातचीत करते होगे। ससुराल मे और मायके मे इसी बात की चर्चा होते देखकर भाभी की विचारधारा इस प्रकार बनना असम्भव नही था। फिर भी मैने भाभी का मत भैया के सम्मुख प्रकट नही किया। देखना चाहती थी कि भैया आगे क्या कहता है? भाभी का स्वभाव वैसे ही अन्तर्मुख, कुढने वाला सशयी और मत्सर ग्रस्त था। यदि वह जान पाती कि मैं उसकी बाते सुनकर भैया से चुगली खाती हूँ तो फिर वह मुझ से कभी बात तक न करती। मेरी धारणा हो चुकी थी कि इस स्त्री से भैया को कोई सुख प्राप्त नही हो सकता। किन्तु मुझे सन्देह हो रहा था कि इसका कारण मै स्वय तो नही हूँ? मेरा भैया से इतना अकृतिम स्नेह और मेरी सुस्थिति क्या उससे सही नही जाती? यही तो उसके जलने का कारण नही होगा? मेरे मन से ये विचार दूर नही हो रहे थे। कई बातो का स्मरण होकर दृढ-विश्वास होता जा रहा था कि मै ही भाभी के दुःख का मुख्य कारण हो सकती हूँ। इसलिए सोच रही थी कि पति-पत्नी के बेबनाव के लिए अधिक कारण न बनूँ। इसलिए भाभी की बात मैने भैया से नही कही थी।

कुछ देर बाद भैया ने कहा, "जब पिताजी का यह विचार है तब मेरी कालेज की पढाई का भार उन पर डालना क्या योग्य होगा? सुन्दरी का विवाह होना है—उसके लिए योग्य घर देखना आवश्यक है। नई माँ का तकाजा है कि विवाह मे अधिक व्यय न हो। कभी-कभी उन दोनो मे सुन्दरी के विवाह को लेकर बातें होती रहती है। अब कोई पेनशन तो मिलेगी नही। चार पैसे बचेंगे तो बुढापे मे काम आयेंगे। क्या लडकियो को सब दे देना होगा। मालूम है यह चर्चा कब हुई थी? तुम्हारे बम्बई चली जाने के बाद दादी माँ ने कही पिताजी से कहा था कि तुम्हे कान के कुन्दे दिए जायँ। दादी माँ के गाँव लौट जाने पर घर मे इस प्रकार चर्चा चल उठी थी। घर का यह हाल है और कही घर के जेवरो का भी सफाया हो गया हो तो फिर कहना ही क्या है। ऐसी दशा मे मैंने जो सोचा है वही एक मार्ग छुटकारा पाने का हो सकता है। पिताजी पर अब कालेज की पढाई का भार डालना व्यर्थ है। यमू, तुम दूसरों की बहनो-जैसी नही हो। तुम परिस्थिति को जानती हो,

इसीलिए मैं तुम से कह रहा हूँ। मेरे लिए इन परीक्षाओ के चक्कर मे पडना व्यर्थ है। तुम्हारे पति-जैसा होशियार व्यक्ति ही कुछ कर सकता है। हमारे लिए परीक्षा पास करना बडी-टेढी खीर है। और चार-पाँच वर्ष बिताकर बी० ए० पास कर लेने पर भी क्या होगा ? वही तीस-चालीस रुपयो की कही नौकरी करनी होगी—और वह भी न मिलने पर · · नही, नही, अपनी सीमा के बाहर की बाते हैं ये। इसीलिए मैंने एक उपाय खोजा है।"

"कौन-सा ?" मेरे इस प्रश्न मे विशेष आतुरता नही थी। क्योकि उत्तर मे वह यही कहता कि कही दस-बीस रुपयो की नौकरी कर लूँगा। मुझे यह बिलकुल पसन्द नही था। कम-से-कम सौ पौन-सौ वेतन तो होना ही चाहिए।

भैया ने कहा, "परीक्षा पास होते ही मे वकालत की पढाई आरम्भ कर दूँगा। दो वर्ष मे परीक्षा पास कर लेने पर अपना स्वतन्त्र धन्धा चल उठेगा—कुछ प्राप्ति भी हो जायगी।"

यह सुनकर मेरा मन कुछ सचेत हो गया था, फिर भी मैं सुनना चाहती थी कि आगे वह क्या कहना चाहता है। भैया ने कहा, "मेरा विचार है कि बम्बई मे रघुनाथरावजी के पास रह कर पढाई करूँ। वे भी एल० एल० बी० की पढाई कर रहे है—अपने साथ मुझे भी पढाया करेगे। उनकी भी पढाई अच्छी होगी। मै भी गोता न खाकर परीक्षा पास कर सकूँगा—और·· ·· "

बीच ही मे हँसकर वह रुक गया। हँसने का कारण मैंने पूछा किन्तु उसने केवल इतना ही कहा, "कुछ नही—बम्बई वाले लोगो से परिचय हो जायगा और समय सुख से बीतेगा। सम्भवत उसके मन मे कुछ और विचार आ रहा था, किन्तु मेरे मन मे एक अलग ही विचार-चक्र चल रहा था इसलिए मैंने फिर उससे अधिक कुछ नही कहा। बहुत देर तक हम ऐसी ही बातो पर चर्चा करते बैठे रहे थे। चाँदनी छिटकी थी। सुहावनी हवा चल रही थी। कितनी रात बीत गई इसका भी हमे भान नही था। आखिर दादी ने पुकारा, "अरे, बारह बज गए, तुम लोग क्या कर रहे हो ?" तब हम उठकर भीतर जाने के लिए निकले। भैया आगे चला गया था और मैं कुछ दूरी पर पीछे से जा रही थी। इसी समय बायी ओर की भीत के पीछे मैंने कुछ खडखडाहट सुनी थी। कौन है ? कहकर मैं पुकारने जा रही थी तभी चूडियो की ध्वनि मैंने

सुनी। मैं समझ गई कि कौन है। मैं आगे निकल गई। कोई मेरे पीछे से आकर चुपके से आगे भी निकल गया था। मै जाकर बिस्तरे पर लेट गई। बहुत देर तक मुझे नीद नही लगी।

६५

और भी चार-पाच दिन बीत गए थे। हम लोगो का क्रम ठीक चल रहा था, किन्तु दादाजी का स्वास्थ्य दिनप्रतिदिन गिरता जा रहा था। उन्हे कोई बुखार आदि नही था किन्तु उनका आहार कम होता जा रहा था और खाँसी बढ रही थी। फिर भी उनका स्नान-ध्यान और पास-पडोस के गाँव तक आना-जाना वैसा ही बना हुआ था। इन दो दिनो मे उनकी खाँसी विशेष-रूप से बढ गई थी। वे अपनी प्रकृति के बारे मे स्वय कुछ नही कहते थे। किसी दूसरे ने कहा कि आपको यह तकलीफ है तो कह देते—"नही, नही, मुझे कोई तकलीफ नही—मैं बिलकुल ठीक हूँ। मट्ठा, घी लेने से सब ठीक हो जायगा।" और वे मजे मे सेर दो सेर छाछ चढा जाते थे। वे बडे निग्रही थे। हठीले स्वभाव के अनुसार ही उनका बर्ताव रहता था। खाँसी के लिए दादी माँ कुछ दवाई आदि कूटकर काढा बनाकर उन्हे देती तो वे उसे फेक देते और हँसकर कहते, "बडा चमत्कार है। इसे लगता है जैसे मैं मर रहा हूँ। क्या अब स्वतन्त्र जीवन बिताने की इच्छा है तुम्हारी ?" दादी माँ कब कसर रखने वाली थी। वह कहती, "मेरा ईधन तो नदी पर पहुँच गया अब मैं स्वतन्त्र जीवन बिताऊँगी ? और इसके लिए तुम्हे दवाइयाँ दे रही हूँ ? हद हो गई। बुढापा आ गया, अब तो जरा · · ।"

"कौन कहता है बुढ़ापा आ गया ? अभी दस साल तक मुझे धोखा नही है। आने दो खाँसी आती है तो। मैं उसके बाप से भी नही डरूँगा। तुम

बुढिया को पार लगा दूंगा तभी आखरी दम तोडूंगा। मैं मरकर तुम्हे स्वतन्त्र नही होने दूंगा।"

"यहाँ कौन चाहता है स्वतत्रता। आपकी आँखो देखे चल बसूँ, यही एक मात्र इच्छा है मेरी। और मैं कुछ नही चाहती।"

"तो फिर जल्दी मर जाओ, ताकि तुम्हारी इच्छा पूर्ण हो।"

"अभी तो दस वर्ष की अवधि है ना ? फिर क्यो शीघ्रता कर रहे हो ?"

"शीघ्र मर जाओ, फिर मुझे चिंता नही रहेगी। क्यो ठीक है ना बच्चो ?"

इस प्रकार उम वृद्ध दम्पत्ति का विनोद हम कभी-कभी देखा करते थे। कभी-कभी उन दोनो मे तीव्र झगडा हो जाता था, उमे भी हम देखा करते थे। उनके झगडो का वर्णन मैं आरम्भ मे कर चुकी हूँ। इस प्रकार दिन बीत रहे थें। दिनप्रतिदिन दादाजी की बीमारी बढती जा रही थी और पाँच-छ. दिन के बाद एक दिन सुबह उनसे बिस्तरे से उठा नही जा रहा था। उनका हाल देखकर दादी घबडा गई थी और उसने पिताजी को पत्र लिखने के लिए कहा। भैया ने पिताजी को पत्र लिख दिया। दूसरे दिन खाँसी ने बहुत ही उग्र रूप धारण कर लिया था। दादाजी बिस्तरे पर करवट भी नही बदल पा रहे थे। फिर भी वे नहाने के लिए छटपटा रहे थे। बिस्तरे से उठने का वे प्रयत्न करते, खाँमी का दौर आते ही फिर तकिये पर सिर पटक देते, फिर ऊपर सिर उठाकर हम लोगो को गालियाँ देने लगते थे, "मुझे नहाने दो, मुझे सध्या-पूजा करने दो—नही तो मैं तुम्हारा सिर तोड दूंगा। ये बुढिया भी आज इन लोगो मे शामिल हो गई है। मुझ से उठा नही जाता इसलिए मुझे परेशान करना चाहते हो ?" आज हम दोनो उन्हे स्नान न करने के लिए बार बार मना रहे थे। वे बडबडाते जा रहे थे। हम उनका मन शान्त करने का प्रयत्न कर रहे थे। किन्तु वे कब मानने वाले थे। दादी को गालियाँ सुना रहे थे। उसने भी बहुतेरा समझाया। आखिर एक ओर ले जाकर हम दोनो ने पकडकर उन्हे बिठाया और दादी ने उन्हे नहलाया। नहाने के बाद आधा घटा भी नही बीत पाया था और उन्हे सर्दी लगने लगी। शीत के मारे उनका सारा शरीर थरथर काँप रहा था। कई वस्त्रो से उन्हे ढाका गया, उन्हे

दबाकर हम लोग बैठे रहे फिर भी उनकी ठड कम नही हो रही थी। आखिर उन्हें बुखार चढ आया—शरीर का दाह हो रहा था। सध्या के समय ज्वर बहुत ही तीव्र हो गया था और दादाजी चुपचाप पडे रहे।

दो-तीन दिन हो गए, फिर भी पिताजी नही आए थे। अश्रुपूर्ण नेत्रो से सदिग्ध होकर दादी के मुँह से उद्गार निकल रहे थे, "वह नही आयगा। उसे कोई दया-मोह नही है। उसे किसी के मरने-जीने की परवाह नही है।" भैया ने समझा-बुझाकर उसे शान्त किया और पिताजी को फिर एक पत्र लिखा। रात मे दादाजी का बुखार उतर जाता और खाँसी का जोर बढ जाता था। दिन मे खाँसी बद हो जाती थी और बुखार चढ आता था। यह हाल हो रहा था। दो दिन और बीत गए थे। हम लोग अस्वस्थ हो उठे थे। दादी के आँसू नही रुकते थे। अब उसे दादाजी की तबियत का भरोसा नही रहा था। भरोसा क्या, उसे विश्वास हो गया था कि अब वे अधिक समय के मेहमान नही है। एक दिन-रात को दादी बिलख-बिलख कर रो रही थी। दादाजी ने कही कह दिया था कि मैं अब इस बीमारी से नही उठूँगा। दादी को रोते देखकर मै भी रो उठी। हम दोनो को रोते देखकर दादाजी ने कहा, "अरे, क्यो रो रही हो? अब तुम्हारी हमारी तो उम्र हो चुकी है ना? मै पहले गया क्या और तुम गई क्या? कभी न कभी आगे-पीछे तो जाना ही होगा। चिता केवल इसी बात की है कि तुम्हारा क्या हाल होगा? गणू, मेरे पश्चात् इसकी अच्छी तरह देखभाल करोगे ना?" इस प्रकार दादाजी बडबडा रहे थे, एक ही हगामा मचा था। और दो दिन बीत गए, पिताजी नही आए। तब तो हम लोग भी पिताजी को दोषी कहने लग गए थे। दादाजी बहुत घबडा रहे थे। एक-दो बार उन्होने प्रश्न भी किया था, "क्या वह आ गया? क्या वह आ गया?" इसके उत्तर मे हम क्या कह सकते थे? आखिर दादाजी ने कहा था, "वह नही आयगा। खैर जाने दो, उसकी मर्जी। मेरा गणू तो है यहाँ।" खाँसी का दौर आ जाने से वे रुक गए थे। फिर उन्होने लडखडाती जबान मे कहा, "मुझे केवल इसकी चिता बनी रहेगी। अब बुढापे मे इसे··· ··· कोई··· कष्ट न हो·· ···यही एक··· ·" इससे अधिक वे कुछ कह न सके। रात मे उनकी क्षीणता बढती गई। इशारे से सूचित कर रहे थे कि हाथ पैरो मे बहुत जलन हो रही है। दादी उनके माथे पर घी की मालिश कर

रही थी। मैं उनके पैरो के पास बैठी थी। मध्य रात्रि के समय वे बहुत ही अस्वस्थ हो उठे थे। इसी समय पिताजी दरवाजे के सामने घोडे से उतर रहे थे। अन्दर आते ही उन्होने यह चित्र देखा। वे आकर दादाजी के सिरहाने बैठ गए। दादी से नही रहा गया। रोते-रोते उसने कहा, "दो दिन पहले तुम से नही आया गया ?" उत्तर मे पिताजी ने केवल इतना ही कहा, छुट्टी नही मिल रही थी और वे दादाजी का मुख निहार रहे थे। दादाजी ने आँखे खोलकर उनकी ओर देखा और बडे कष्ट के साथ कहा, "आ गए तुम ?" इतना कहकर उन्होने करवट बदलकर पिताजी की ओर पीठ फेर दी। मरणा-सन्न हो रहे थे फिर भी ऐठ कायम थी। कुछ देर के बाद उन्होने फिर पिताजी की ओर देखकर आगे झुकने के लिए इशारे से कहा, फिर गणू कहकर उसे भी अपने समीप बुलाया। दादी की ओर उगली उठाकर अत्यन्त क्षीण स्वर मे उन्होने कहा, "मैंने इसे कभी सुख ·· ·दिया। तुम भी क्या·· ···" उनसे अधिक नही बोला गया। इशारो मे समझाने की शक्ति भी अब उनमे शेष नही रही थी। उनके समीप जाकर मैने पूछा, "थोडा-सा दूध पिला दूँ ?" किन्तु उन्होने मेरा हाथ दूर झटक दिया और सदैव के लिए आँखे बन्द करली। हम सब रोने लगे। दादी पर तो पहाड टूट पडा था।

अपनी परम्परा के अनुसार तेरह दिन तक क्रिया-कर्म और श्राद्धादि विधि होते रहे। पूना से नई माँ और उनकी माताजी आई थी। श्राद्धादि विधि से निवृत्त हो जाने पर हम सब लोग दादी को साथ लेकर पूना लौट आए। अब गाँव मे कौन रह सकता था। पिताजी ने घर-बार की कुछ व्यवस्था कर दी थी।

इस प्रकार हमारे गाँव जाने की परिसमाप्ति हुई थी। किस उत्साह से हम गाँव गए थे और किस परिस्थिति मे वहाँ से वापस लौटे थे। यह सोचकर हमे बहुत दुख हो रहा था। दादाजी की आयु पूर्ण हो चुकी थी इसलिए उनका देहान्त होना विशेष उद्वेगपूर्ण नही था। फिर भी उनसे पहले दादी का जाना अधिक समयोचित कहा जाता। पिताजी के पास रहकर दादी को सुख नही मिल सकता था। दादाजी को यही चिता थी, स्वय दादी भी खूब समझती थी और हम लोग भी इसे अच्छी तरह जानते थे। इस दृष्टि से दादी का पहले प्रस्थान कर जाना अधिक आवश्यक था। दादाजी और दादी मे हमेशा

झगडा होता रहता फिर भी वे दोनो एक-दूसरे से अलग रहना कभी नही चाहते थे। वे हमेशा एक-दूसरे के सहवास मे रहना चाहते थे। और अब वे हमेशा के लिए जुदा हो गए थे। दादाजी ने विनोद मे एक दिन कहा था, "तुम्हे स्वतन्त्रता चाहिए इसलिए मेरे मरने की राह देख रही हो।" किन्तु दादाजी के राज मे वह जितनी स्वतन्त्र थी, उनके आश्रय मे, उनसे लड-झगड कर उसने जितना अपना अधिकार चला पाया था उसका शताश अधिकार भी अब उसके भाग्य मे नही रहा था। हमे डर था कि अब उसकी कोई विशेष पूछ-ताछ नही करेगा। मैंने भैया के साथ इसके बारे मे बातचीत की थी। हम लोग जानते थे कि अब दादी बहुत ही दीन-हीन हो गई है। दादी की अवस्था को देखकर भैया ने अपनी भावी योजना को और भी दृढ बना लिया था। उसने मुझ से कहा भी था, "यमे, दादी को ऐसी अवस्था मे कितने दिन रखा जा सकता है ? जैसा कि मैने तुम से कहा था, इस वर्ष मैं परीक्षा मे सम्मिलित होऊँगा। यदि पास हो गया तो वकालत की पढाई आरम्भ कर दूंगा। अब दूसरा मार्ग नही है। मै कमाई करने लग जाऊँ तो फिर उसे कष्ट नही उठाने दूँगा। फिर तो कुछ मेरी भी धाक जम जायगी। दो-तीन वर्ष की और झझट है, किन्तु दूसरा चारा भी तो नही है।"

अब मुझे उसकी योजना विशेष उपयुक्त प्रतीत हो रही थी। फिर भी मन कह रहा था कि वह भी उन-जैसा बी० ए० पास करले तो अच्छा होगा।

छुट्टियो मे मै गाँव इसलिए गई थी कि फिर कभी वहाँ जाने की सधि प्राप्त न हो। दु ख मे सुख केवल इतना ही था कि दादाजी के अतिम समय मे तथा दादी के दु ख मे सहभागी होने के लिए मै वहाँ उपस्थित थी। छुट्टियाँ समाप्त होकर यदि हम लोग बम्बई लौट जाते तो इस दुर्घर्ष प्रसग का समाचार पाने के अतिरिक्त और क्या किया जा सकता था ?

६६

इस दुनिया मे अब अपना कोई नही है, अपना जीवन अब पराधीन है यह सोचकर मनुष्य कितना भावुक हो जाता है इसका मुझे अनुभव नही था, फिर भी दादी का अब क्या हाल होगा, उसके मन की अवस्था क्या होगी आदि विचारो से मैं अस्वस्थ हो उठती थी। पिताजी का आज तक उनके साथ जो बर्ताव रहा था तथा वह अब हमेशा के लिए इस घर मे रहेगी यह सोचकर नई माँ और उनकी माताजी का उनके साथ कैसा बर्ताव होगा आदि बातो से मेरा दिल टूट-सा जा रहा था। किन्तु दिल टूटने से क्या लाभ हो सकता था ? उसकी परिस्थिति को तो बदला नही जा सकता था। भैया को भी बहुत दुःख हो रहा था और इस कारण उसने भविष्य के बारे मे अपनी योजना निश्चित कर ली थी। किन्तु यह दीर्घकालीन योजना थी, वर्तमान मे उसका कोई उपयोग नही था। दादी को सुखी बनाने की शक्ति इस समय उसकी योजना मे निहित नही थी। सिवाय हाथ मलने के हमारे हाथ मे और कुछ नही था।

हमारे लौटने पर प्रथा के अनुसार मेरे ससुराल वाले बैठने आए थे। चार-पाँच दिन पश्चात् मैं भी ससुराल लौट गई थी। उनसे भेट होते ही दादाजी की स्मृति से मेरी आँखो मे आँसुओ की झडी लग गई थी। दादी की दुखद स्थिति का जब मैंने वर्णन किया तब उन्होने कहा "उनसे कह दो कि हमारे साथ बम्बई चले।" किन्तु इस बात की आवश्यकता ध्यान मे आते ही हम दोनो को बहुत दुःख होता था। बम्बई का उल्लेख होने से और बाते छोडकर उन्होने बम्बई से आए दो पत्र मुझे पढने के लिए दिए थे। पत्र पढकर जब मैं बम्बई के लोगो के बारे मे चर्चा कर रही थी तभी गभीर स्वर मे उन्होने कहा, "अब तो मुझे इस बात की शका हो रही है कि तुम्हारा बम्बई जाना होगा या नही ?"

"आश्चर्य से मै अवाक् रह गई। भीत स्वर मे मैंने पूछा, क्यो ?"

"क्यो क्या ? घर मे चर्चा चल रही है। शकर मामाजी का प्रस्ताव है कि अब तुम्हे और माताजी को बम्बई न भेजा जाय। नानी की भी सम्मति है।"

"यह क्यो ? हम लोगो की जुदाई से उनका क्या लाभ होगा ?"

"क्या लाभ होगा ? हम लोगो ने शकर मामाजी के घराने को कालिख पोत दी है ना ? भविष्य मे फिर ऐसा न हो, उनका घराना सदैव उज्ज्वल बना रहे इसलिए। चाहे वे स्वय चार-चार क्यो न रखे हो।"

"हमे उनसे क्या करना है। आपने क्या सोचा है ? क्या अकेले जाओगे ?"

"हाँ। बडे लोगो की बात टाली तो नही जा सकती। यदि वे लोग तुम्हे न भेजे तो मै क्या कर सकता हूँ ?"

उनके इस प्रकार के निराशा भरे शब्द सुनकर मेरा दिल बैठ गया। वैसे ही मेरा मन कमजोर हो गया था। उनका भाषण सुनकर तो मैं रो पडी। मेरे सामने दादी और उमा मामीजी का चित्र खिच गया था—अकेले यहाँ रहने पर मेरा हाल भी उमा मामीजी-जैसा ही होगा, यह सोचकर मैं बिलख-बिलख कर रो रही थी। मेरी समझ मे नही आया था कि यह मजाक भी हो सकता है।

मेरी यह दशा देखकर उन्हे बहुत दु ख हुआ। वे मुझे मना रहे थे, "मैंने जो तुम्हे वचन दिया था क्या उसे तुम भूल गई ? मेरे जीते जी मै तुम्हे अकेला नही छोडूँगा ऐसा मैंने तुम्हे वचन दिया था। क्या तुम उसे भूल गई ? क्या तुम यह सोचती हो कि एक बार तुम्हे स्वतन्त्रता का सुख प्राप्त कर देने पर मैं अब तुम्हे कष्ट झेलने के लिए यहाँ अकेला छोडकर चला जाऊँगा ? कितनी पगली हो तुम। तुम बहुत उदास थी इसलिए सोचा कि कुछ मजाक करके तुम्हारा मन बहलाया जाय। तुम मजाक भी नही समझ सकती। मुझ से गलती हो गई, माफ कर दो।" अन्तिम शब्द सुनकर मैं लज्जित हो गई। झट से मैंने कहा "यह क्या ? आप इतना क्यो कह रहे है ? गलती और माफी की कौन-सी बात है ? आपकी बात सुनकर मैं भयभीत हो गई थी, इसलिए ' ''' इससे अधिक मैं नही बोल सकी—उनके कन्धे पर मस्तक रखकर कुछ देर और रोती रही।"

इस प्रकार आँसुओ के रूप मे बह जाने से मेरे हृदय का भार कुछ हल्का हुआ। फिर शकर मामाजी तथा अजिया सापूजी के विरुद्ध विशेष कुछ न कहते हुए अपना मनोवाँछित पूर्ण करने के लिए कौन-सा मार्ग अपनाया जाय इसके

बारे मे हम सोच-विचार करते रहे। मुझे और सासूजी को बम्बई न भेजने के लिए शकर मामाजी की ओर से भरसक प्रयत्न किया जा रहा था। "पृथक् गृहस्थी जमाने से क्या लाभ है ? व्यर्थ मे खर्चा बढा रखा है। छुट्टियो मे यहाँ चले आया करो। व्यर्थ के चोचले है। वहाँ बडी खराब सगत है"—आदि कह-कर हमारे जाने मे वे रोडे अटका रहे थे। आखिर एक दिन इन्हे बहुत गुस्सा आ गया। उन्होने माताजी से कहा, "माँ, मै तुम लोगो को यहाँ नही छोड सकता। होस्टल का भोजन मुझे अच्छा नही लगता। हमे घर भी साल भर की शर्त पर मिला है—घर मे साल भर के लिए अनाज आदि क्रय करके सग्रहीत किया गया है। यह नही हो सकता। शकर मामा चाहे जो कहते हो, मैं अकेला नही जाऊँगा। तुम लोगो को अपने साथ ले जाऊँगा।"

माताजी ने कहा, "सो तो ठीक है किन्तु जब वे और माताजी कह रहे है तो फिर· ···।"

बीच ही मे बात काटकर उन्होने कहा, "नानी कुछ नहीं कहती—यह सब शकर मामाजी की करतूत है। तुम नानी से स्पष्ट शब्दो मे कह दो कि मुझे जाना ही होगा। वह अकेला नही जाना चाहता। यदि नानी मुझ से पूछेगी तो मै ही स्पष्ट शब्दो मे कह दूंगा।

इस पर बेचारी सासूजी क्या कह सकती थी। किन्तु माँ-बेटे का सम्भाषण बनू दीदी ने छुपकर सुन लिया था। उसमे नमक-मिर्च मिलाकर उन्होने रिपोर्ट पेश कर दी थी। फिर क्या था। एकदम ज्वालामुखी फट पडा। किन्तु एक दृष्टि से यह अच्छा ही हुआ था। क्योकि अजिया सासूजी तक उनके निश्चय की बातो पर पहुँचना जरा टेढी खीर थी। स्वय जाकर कहना कठिन काम था और सासूजी मे भी इतना साहस नही था। इसलिए बडी समस्या आ गई थी। किन्तु अनायास ही वह हल हो गई। बनू दीदी की बात सुनकर ज्वालामुखी फट पडा था किन्तु सदैव की भाँति हमारा छुटकारा करने के लिए गोपाल मामाजी को उपस्थित होना पडा। घर मे झगडा आरम्भ होते ही वे अपनी धीमी वृत्ति से उसे सुलझा कर कोई मार्ग खोज निकालते थे। इस समय भी उन्होने कह-सुनकर हम लोगो के जाने का निर्णय निश्चित कर दिया था। अजिया सासूजी ने पहले तो उन्हे भी खूब खरी-खरी सुनाई थी किन्तु अन्त मे कहा, "मजे मे चले जायँ—मुझे क्या करना है। हम से क्या सम्बन्ध—जो

मन मे आए सो करे।" आखिर जैसे-तैसे हम लोगो का जाना निश्चित हो गया। हम तो सब बाते सुनी-अनसुनी करके चुप बैठे रहे। किसी प्रकार क्यो न हो, यहाँ की झझट से मुक्ति पाने की हमे खुशी हो रही थी। शकर मामा जी अपने कुत्सित वाग्वाणो की हम दोनो तथा सासूजी पर वर्षा कर रहे थे। उनकी बाते सुनकर मुझे क्रोध हो रहा था, किन्तु क्या किया जा सकता था।

जाने से एक दिन पूर्व मै मायके गई थी। मै बम्बई जा रही हूँ यह जान कर दादी को बहुत दुःख हो रहा था। उसे लग रहा था जैसे अब वह बिलकुल ही निराश्रित हो गई। वैसे मेरा उसे क्या आसरा था—किन्तु डूबने वाले को तिनके का भी बडा सहारा होता है। वही हाल दादी का था। मुझे भी उसकी जुदाई का बहुत दुख हो रहा था। योग्य शब्दो मे मैने उसे सात्वना देने का प्रयत्न किया था। उसने भी मुझे बहुत उपदेश किया था। भैया से मैने दादी के बारे मे ही बातचीत की थी। उसकी भावी योजनाओ के बारे मे भी हम लोगो ने चर्चा की। मेरे मन मे एक विचार और आ रहा था, यद्यपि उसकी निष्फलता मुझे पहले ही प्रतीत हो रही थी फिर भी मैने उसे पूर्ण करने का ही निश्चय किया था।° भैया कही बाहर चला गया था, नई माँ किसी काम मे लगी थी। मौका देखकर मैने भाभी को ऊपर बुलाया। सदैव की भाँति त्योरियाँ चढाकर वह ऊपर आई थी और अप्रसन्न स्वर मे उसने पूछा, "क्या है? मुझे किस लिए बुलाया? मेरे साथ कौन-सी मत्रणा करनी है?" मैने उसे बैठने के लिए बहुत आग्रह किया किन्तु वह नही बैठी। "क्या कहना है, जल्दी कहो, सासूजी पुकारेगी," आदि कहती रही। इस प्रकार बातचीत का आरम्भ होते देखकर बातचीत की क्या फल निष्पत्ति हो सकती है इसे मै समझ गई थी। फिर भी एक बार अवश्य प्रयत्न करना होगा यह सोचकर मैने उसके समीप जाकर कहा, "भाभी, ऐसा क्या करती हो? यदि तुम्हारा यही बर्ताव रहा तो आगे चलकर क्या हाल होगा? अब दादी की क्या हालत होगी, कुछ सोचती हो? यदि तुम्हे उसका ख्याल न होगा, हम-जैसा ही यदि तुम उसके साथ भी रूखा व्यवहार करती रही तो उसे सुख कैसे मिल सकता है।"

"मैं तो ऐसी ही रूखी हूँ।" उसने तेजी के साथ केवल इतना ही कहा

उसकी बात टालकर मैंने आगे कहा, "बहू के नाते तुम ही को तो दादी की अब फिकर रखनी है।"

"क्यो ? सासूजी भी तो है। मैं तो बाहियात स्त्री हूँ।" कुत्सित स्वर मे उसने कहा।

फिर भी मैंने उसकी बात सुनी-अनसुनी करके आगे कहा, "क्या तुम नही जानती कि भैया को दादी से कितना प्रेम है ? जरा सोचकर देखो। तुम्हे ऐसा नही करना चाहिए। कभी गलती से उसने ऐसा कह दिया हो—"

"कह चुकी तुम ? मैं बाहियात जो हूँ, मेरी समझ मे कुछ नही आता, इसलिए कहती हूँ कि मुझे यह सब कुछ बताने से क्या लाभ होगा ?"

उसकी बात सुनकर मैं सन्न रह गई बहुत खेद था और कुछ क्रोध भी आ गया था। झट से मैंने कहा, "जी हाँ—आप जा सकती है।"

इतना हो जाने पर भाभी के स्वभाव के बारे मे किसी बात की शका रहने का कारण ही नही था। भैया अथवा घर का कोई भी व्यक्ति उससे सुख की अपेक्षा नही कर सकता था। उपरोक्त बातचीत का मैंने भैया के पास उल्लेख नही किया। उन दोनो का वैमनस्य बढाने के अतिरिक्त उससे और क्या लाभ हो सकता था यह सोचकर मैं चुप हो गई।

उसी दिन दोपहर मे मैं ससुराल लौट गई थी क्योकि रात को हमे बम्बई जाना था।

रात को घर से निकलते समय परम्परा के अनुसार भगवान् के सामने पैसा सुपारी रखना मैं भूल गई थी। शकर मामाजी ने झट से ताना मार दिया, "सुधारको को इन बातो का ध्यान क्यो होने चला।" मैं जब उनके पैर छूने को झुकी थी तब आशीर्वाद देते समय उन्होने कहा," सुधारक सौभाग्यवतीभव, सुधार विजयीभव। "इतना कहकर वे ह ह करके ठहाका मारकर हँस दिए। मुझे गुस्सा आ गया, वे क्रोध से काँप रहे थे, किन्तु क्या किया जा सकता था। चुपचाप गाडी मे बैठकर हम लोग रवाना हो गए।

६७

हाल ही मे जो घटनाएँ घटी थी उनकी स्मृति से मन उदास हो गया था। अपनी इच्छा के अनुसार सब बाते न होते देखकर, मन-ही-मन दश रखकर जाते समय प्रतिशोध की दृष्टि से शकर मामाजी ने हँसकर जो ताना मारा था उसका स्मरण होकर सखेद क्रोध आ रहा था। कम-से-कम कुछ समय के लिए तो इस झझट से पिड छूटा, यह सोचकर हृदय का बोझा हल्का हुआ-सा मालूम हो रहा था। ऐसी विविध भावनाओ का नृत्य मन मे चल रहा था इस कारण मे मौन बैठी रही थी। यही हाल उनका और सासूजी का होगा, तभी तो वे दोनो भी गाडी मे चुप बैठे थे।

कुछ देर बाद उन्होने सासूजी से कहा, "तुम क्या निर्णय करती हो, इसका मुझे डर लग रहा था। शकर मामा का भाष्य सुनकर तुम परेशान हो जाती थी और कह देती थी, "ठीक है, मै नही जाऊँगी उसके साथ!" और मैंने तो निश्चय कर लिया था कि तुम्हे छोडकर मै अकेला कभी नही जाऊँगा!"

"मै भी तुम्हे छोडकर अकेली कैसे रह सकती थी? अब तुम चाहे जो करो, मै तुम्हे छोडकर अकेली नही रह सकती। तुम्हे ही जरा सोच-समझकर रहना चाहिए। कोई बाते उन लोगो को पसन्द न हो तो नही करनी चाहिए, हमारा उसमे क्या खर्च होता है?

"किन्तु माँ, तुम स्वय देखा करती थी कि हम लोग क्या करते है और किस प्रकार रहते है? कभी कोई ऐसी बात हुई थी जो तुम्हे खटकती हो? अच्छा हुआ जो तुम स्वय बम्बई मे उपस्थित थी। यदि कानो-कान तुमने सुना होता, विशेषत शकर मामा के नमक-मिर्च के साथ सुना होता तो सभवत. तुम्हारा भी उन-जैसा ही मत हो जाता। क्यो?

"मेरा मत ऐसा कभी न होता न भविष्य मे ही कभी होगा। तुम्हारी खुशहाली मे ही मेरा सुख समाया है। बचपन से ही·· "

इसी समय डिब्बे के दूसरे लोगो मे कुछ झगडा हो जाने से माँ-बेटे की बातचीत अधूरी रह गई थी। उपरोक्त भाषण तथा सासूजी का अन्य सभाषण

स्मृति-रूप मे इस समय मेरे मन मे जागृत हो उठा है। मामूजी का निरिच्छ-पुत्र प्रेम तथा शुद्ध सत्वशील मूर्ति का स्मरण होकर मन मे विचार आता है कि, मुझ-जैसी हत भागिनी का प्रश्न नही किन्तु मासूजी-जैसी सत्वशीला पर दुर्धर्ष प्रसग लाने वाले उस न्यायी परमात्मा के बारे मे अवश्य ही हमारी बुद्धि कुठित हो जाती है। प्रत्यक्ष अहित करना तो दूर रहा कभी स्वप्न मे भी किसी के अहित करने की कल्पना जिसे छू न सकी, ऐसी साध्वी पर दु ख का पहाड़ टूट पडना और जिसे आजीवन सकटो को झेलकर पराश्रित रहना क्या न्याय सगत कहा जा सकता है। किन्तु जिन गुत्थियो को हम सुलझा नही सकते उनके लिए व्यर्थ कुतर्क कर परमात्मा को दोष देने से क्या तात्पर्य है। कौन-सी बाते वह किस कारण किया करता है, इसे वही जान सकता है इतना कह देने के अतिरिक्त और हम क्या कर सकते हैं।

हम लोग सकुशल बम्बई पहुँच गए थे। हमारी मित्र मडली हम लोगो की बडी उत्सुकता से राह देख रही थी। इस वर्ष वे लोग बम्बई छोडकर कही नही गए थे। प्रतिदिन जिनका नाम स्मरण होता रहता था वे गणपतराव अब भी बम्बई मे नही आए थे। प्रतिदिन उनका नाम स्मरण होता था, उनके घरवालो की बात चला करती थी और उन चार लोगो के मन मे उनके लिए अपार प्रेम था, इस कारण मैं उन्हे देखने के लिए बहुत ही उत्सुक हो उठी थी। बम्बई लौटते ही उनका दर्शन होगा ऐसी मुझे आशा थी किन्तु वह निष्फल सिद्ध हुई थी।

बम्बई आने पर पॉच-छ दिन पश्चात् हमारा पूर्ववत् कार्यक्रम आरम्भ हो गया था। पूना के समाचार, उनके कारण निर्माण हुई परिस्थिति, बकर् मामाजी की करतूते, उनका आशीर्वाद, उनके द्वारा रचा गया पडयन्त्र आदि बातो का कथन करने और टीका-टिप्पणी के साथ हास्य-विनोद करने मे पाँच-छ दिन बीत गए थे। पूर्ववत् कार्यक्रम के साथ ही मेरी पढाई भी शुरू हो गई थी। मेरी शिक्षिकाएँ लक्ष्मीबाई और यशोदाबाई ने मुझे कई बाते सिखाई थी। हम सब जैसा कि पहले कहा जा चुका है प्रति शनिवार हम एक स्थान पर सभा मे सम्मिलित हुआ करती थी। वहाँ कोई नवीन निबन्ध वाचन, कढाई, बुनाई, सिलाई आदि नियमित रूप से चला करता का—दिन-प्रतिदिन

मेरी मानसिक उन्नति हो रही थी। सासूजी और गोपिका काकी का मेल-जोल बढता गया—हम लोगो पर गृहस्थी का भार डालकर वे अपने भजन-पूजन मे सुख से कालक्षेप कर रही थी। दोपहर की रसोई का कार्य उन्होने नही छोडा था और गोपिका काकी-जैसी ही मेरे हाथो बनी रसोई को वे ग्रहण नही करती थी। नाना साहब-जैसा ही इन्होने भी माँ को बहुतेरा आग्रह किया था किन्तु दोनो की माँ का कहना था, "हमारे हाथ-पैर थक जाने पर फिर बहुओ का ही आसरा है। तब हम कही अन्यत्र खाने नही जायँगी। अत तब तक बहुओ के हाथ का बनाया हुआ नही खाना चाहिए ऐसा परमात्मा की ओर से विधान है उसे क्यो भग किया जाय! और दोपहर मे हमे रसोई करना ही शोभा देता है नही तो देखने वाले कहेगे कि बहुओ से रसोई बनवाकर बुढिया बैठे-बैठे खाती है।" इस प्रकार बाते बनाकर उन्होने अपना व्रत कायम रखा था। कई बार कहने पर भी जब उन्होने अपना व्रत नही छोडा था तब चुप बैठने के अतिरिक्त अन्य चारा ही नही था। और किसी बात मे उनकी ओर से कोई रुकावट नही आती थी। उलटे सासूजी तो कहा करती थी, "फलाने के लिए एक ऊन की टोपी बनाकर अवश्य भेज देना और अपने बालकृष्ण के लिए एक अगरखा बना लेना।" आदि।

इस प्रकार कार्यक्रम सुचारु रूप से चल रहा था। मराठी मे मेरी अच्छी प्रगति थी, अग्रेजी की भी पढाई आरम्भ कर दी गई थी—मुझे विश्वास नही हो रहा था कि अग्रेजी मे मै पडिता हो सकूँगी। और निकट भविष्य मे ही दुर्भाग्य ने मेरा जो सर्वनाश किया था उसके कारण मेरी अग्रेजी का ज्ञान अधूरा ही रहा था। लोग जिसे सुशीलता कहते है और जिसका कुछ अश पाने का सौभाग्य मुझे प्राप्त हुआ था उसका श्रेय मेरी अग्रेजी एव मराठी शिक्षा को ही दिया जा सकता है। विज्ञ जनो की सगत से, उनके सहवास का लाभ होने से, उनकी शिक्षा-दीक्षा, उनके साथ किया गया सभाषण एव उनका अनुकरण करने से ही मुझ मे कुछ योग्यता आ पाई थी। मामूली-सा अग्रेजी का ज्ञान किंबहुना किसी भाषा मे प्रकाड पाडित्य प्राप्त कर लेने से ही सुशीलता अथवा योग्यता की प्राप्ति नही हो सकती। सौभाग्य से जिनका मैने आजीवन आश्रय पाया था यदि वह मुझे प्राप्त न होता, लक्ष्मीबाई और यशोदाबाई के स्नेहलाभ से मैं वचित रहती, नाना साहब, विष्णुपन्त, गणपतराव आदि की बैठको मे

बैंठकर उनके सभाषण एवं वाद-विवाद को मे न सुन पाती, शनिवार के दिन महिला-सम्मेलन मे सम्मिलित होकर वहाँ की भगनियो की विचारधारा से यदि मै परिचित न होती, इन सभी बातो का जो परिणाम हुआ था वह न होता तो क्या मैं इस प्रकार बन सकती थी ? दुर्भाग्यवश, विशेषत एक व्यक्ति द्वारा मेरा सर्वनाश हो जाने के कारण ऊपर की बातें मेरे लिए जो उपयुक्त सिद्ध हुई थी वह दूसरे के लिए उपयुक्त बनाने का माधन मेरे पास नही है, फिर भी मेरी यह जीवन-गाथा से ऐसी बातो की आवश्यकता तथा रूढि-राक्षसी और उसके ढोगी भक्तो द्वारा जो विध्वस किया जा रहा है, इन दो बातो को सर्वसाधारण लोग जान लेगे यह भी काफी है। किन्तु यह क्या ? मैं कहाँ भटक गई हूँ ? भ्रान्त-जैसी मेरी अवस्था क्यो हो रही है ? सभवत मेरे हतभागी जीवन का अन्त समीप· ···।"

६८

नित्य एक नवीन विषय को लेकर चर्चा होती रहती थी। हम लोगो के दिन सुख से व्यतीत हो रहे थे। सात व्यक्तियो के हमारे उस सम्मेलन मे विविध विषयो पर चर्चा चला करती थी। पुरुष और स्त्रियो को अपने विचार निर्भीकता से प्रस्तुत करने का उस सम्मेलन मे समान अधिकार प्राप्त था। बाल-विवाह, स्त्री-शिक्षा, समाचारपत्र, उपन्यास आदि-जैसे कई विषयो पर वाद-विवाद होते रहते थे। कभी कोई सुन्दर मराठी ग्रथ प्रकाशित हो जाता तो हमारे सम्मेलन मे हम मे से कोई चार-पाँच दिन मे उने पढाकर सुनाता—फिर उसके बारे मे हम लोग वाद-विवाद करते कभी कोई किसी ग्रथ की समालोचना लिखकर हम लोगो को पढकर सुनाया करता—अच्छा लिखा जाने पर किसी पत्रिका मे छपवाने के लिए भेजा जाता था। इस प्रकार हम लोगो का काल बडे सुख से व्यतीत हो रहा था।

भैया के पत्रो से पूना का समाचार मिल जाता था। पढाई के कारण उसे समय कम मिलता था, इस कारण लम्बे पत्र वह नही लिख पाता था। मैं भी उसे लम्बे पत्र लिखने के लिए आग्रह नही करती थी मैं अवश्य उसे विस्तार पूर्वक पत्र भेजा करती थी। इस प्रकार तीन मास की अवधि व्यतीत हो चुकी थी। शंकर मामाजी की ओर से उपदेश भरे पत्र आते रहते थे। उनके पत्रो मे उनका बडप्पन बिखरा रहता था। उनके स्वभावानुसार तथा आवश्यकतानुसार कभी उनके पत्र हम लोगो की निन्दा अथवा अवास्तव स्तुति से भरे रहते थे। दुर्गी की अवस्था मे कोई उल्लेखनीय परिवर्तन नही हुआ था। एक पत्र मे भैया ने लिखा था कि दुर्गी के पति का पूना मे आगमन नही हुआ था और बच्चे के स्नेह मे उसके स्वास्थ्य मे पर्याप्त सुधार प्रतीत हो रहा था। भैया के पत्रो से जाना जा सकता था कि परीक्षा पास करके हम लोगो के सम्मेलन मे सम्मिलित होने के लिए वह बडा ही उत्सुक हो रहा है। मेरी भी यही इच्छा थी और उसके बारे मे भैया से मेरी बहुत कुछ चर्चा हो चुकी थी।

एक दिन सध्या समय भैया का एक पत्र मिला था। पत्र छोटा था किन्तु समाचार कुछ विचित्र था। भैया ने लिखा था —

'घर के आभूषणो के सम्बन्ध मे मैंने जो तर्क किया था वह सभवत सत्य सिद्ध हो रहा है। परसो दादी की किसी घनिष्ट परिचिता ने तुम्हारी अतिप्रिय भाभी को भोजन के लिए आमत्रित किया था। दादी ने नई माँ से उनके आभूषण उसे देने के लिए कहा था। उस समय सोने के कगनो को लेकर विवाद छिड गया और दादी ने नई माँ के आभूषणो के बारे मे पूछ-ताछ करना आरम्भ कर दिया। नई माँ ने बात को टालने का भरसक प्रयत्न किया और अन्त मे कह दिया कि इन बातो मे दखल देने वाली तुम कौन होती हो ?

कल माँ बेटी मे झगडा हो गया। मैंने जो कुछ सुन पाया था उससे मेरी शका का रहा सहा निवारण हो गया। बेटी कह रही थी, 'चाहे जो करो लेकिन उस डायन से मेरे ' लाकर मुझे दो। तुम्हें तो उस पर बडा विश्वास है ना ? तुम ही ने तो मुझे कहा था कि उसे ले जाकर दे दो······अब मैं कुछ नही सुनना चाहती।'

'व्यर्थ मे काशी छोडकर यहाँ लौट आई। फिर चली जाऊँगी।'

'मेरी ओर से मरघट मे चली जाओ ···किन्तु उसके पहले मुझे लाकर दो ···'

इससे अधिक मै सुन न सका। किन्तु इतना सुनकर झगडे का कारण और आभूषणो का वास्तविक स्थान क्या जाना नही जा सकता है ? अब तो मान लोगी कि मेरा तर्क केवल तर्क ही नही, उसमे पर्याप्त यथार्थता है।

पत्र मे केवल इतना ही लिखा था और वह जल्दी मे लिखा गया था। पत्र पढकर मै सन्नाटे मे आ गई थी। मेरे मन पर विलक्षण परिणाम हुआ था। प्रत्यक्ष बेटी ने अपनी माँ से कह दिया था कि मरघट मे जाओ। द्रव्य की अपरिमित शक्ति का इससे बढकर और क्या ज्वलत उदाहरण हो सकता है। पत्र को पढकर अब मुझे विश्वास हो गया था कि नई माँ की माँ ने जेवरो को हडपने के लिए उस डायन स्त्री के हाथो सौप दिए थे और वह डायन उन्हे स्वय हजम कर गई थी। फिर भी मेरी समझ मे नही आ रहा था कि नई माँ ने अपने आभूषण उस स्त्री को क्यो दिए थे ? मेरी समझ मे नई माँ बुद्धू स्त्री तो थी नही। फिर क्या बात थी ?

पत्र पढकर मैंने उन्हे दे दिया था। आभूषण उस स्त्री को क्यो दिए गए ? इस समस्या को वे भी नही सुलझा सके। घर की बात घर मे ही रखना उचित जानकर मैंने इसके बारे मे किसी से कुछ नही कहा, मन-ही-मन चिन्तन करती रही।

और एक महीना बीत गया था। महीने के अन्त मे भैया का फिर एक पत्र आया था। पत्र मे जेवरो के बारे मे विशेष कुछ नही था। भैया ने लिखा था —

'सुन्दरी के विवाह के सम्बन्ध मे चर्चा चल रही है। दादी का सख्त तकाजा है। मैंने उसे बहुतेरा कहा कि तुम इस बखेडे मे न पडो' किन्तु तुम तो उसके स्वभाव से परिचित हो। प्रतिदिन वह सुन्दरी के विवाह की बात छेड देती है। पिताजी की भी इच्छा है कि उसका ब्याह कर दिया जाय। मेरी भी यही इच्छा है कि विवाह होकर वह अपने घर चली जाय। इन दिनो सुन्दरी की इस घर मे जो हालत है उससे अधिक बुरी हालत उसके ससुराल मे कदापि नही हो सकती। दादी ने उसके जो लाड किये है उनके कारण सुन्दरी का स्वभाव कुछ विचित्र-सा बन गया है। दादी उसे प्राणो से अधिक प्यार

करती है। किन्तु दादी का अब इस घर मे कोई अधिकार नही है। फिर भी वह सुन्दरी का पक्ष लेकर झगडने पर उतारू हो जाती है, इसमे उसे अपमान सहना होता है और सुन्दरी की हालत दयनीय हो जाती है। मेरा घर मे होना न होना एक-सा है। आश्चर्य तो इस बात का है कि पिताजी का वह तीखापन कहॉ जाता रहा ? वे तो दिन प्रतिदिन गौ-जैसे होते जा रहे है। क्या आभूषणो के बारे मे उन्हे कोई पता न होगा ? यदि उन्हे मालूम हो तो क्रोध क्यो नही है ? इतने दिन हो गए फिर भी उन्हे कैसे पता नही चला इस बात का ? आदि।

भैया के पत्र को पढकर मेरा मन उद्विग्न हो जाता था। दादी के लिए दु ख होता था। सुन्दरी के भविष्य के बारे मे मन अस्वस्थ हो जाता था। दादी का स्वभाव विचित्र था। फिर भी सुन्दरी के विवाह के लिए उसका उत्सुक होना स्वाभाविक ही था। भैया का पत्र पढकर मेरी भी यह धारणा थी कि सुन्दरी का शीघ्र विवाह होना योग्य होगा। वह अब विवाह के योग्य हो गई थी। मैंने उनसे भी कहा था कि कही कालेज मे कोई अच्छा-सा लडका हो तो सुन्दरी के लिए पसन्द किया जाय। पहले तो उन्होने मेरा मजाक उडाया था किन्तु मैंने जब उन्हे परिस्थिति से अवगत करा दिया तब उन्होने भी मेरी बात मान ली थी। योगायोग से दूसरे ही दिन भैया का उन्हे पत्र आया था। पत्र मे मेरी सूचना को ही दुहराया गया था। अन्त मे भैया ने केवल इतना ही लिखा था कि पिताजी के कहने से आपको सुझाया है।

६९

एक दिन सध्या के समय हम लोग भोजन आदि से निवृत्त हो चुके थे। गरमी अधिक होने से विष्णुपत ने सब लोगो से समुद्र तट पर चलने के लिए कहा। इन दिनो बम्बई मे बहुत गरमी रहती थी। गरमियो के दिनो से भी अधिक सितम्बर मास मे गरमी रहती है। जिस दिन की मैं बात कहने जा रही

हूँ उस दिन तो बहुत ही अधिक गरमी थी। इसलिए विष्णुपत के प्रस्ताव का सभी लोगो ने हार्दिक स्वागत किया। नाना साहब ने अपनी माँ और हमारी माताजी से अनुज्ञा प्राप्त करली थी। हम लोगो के निवास स्थान से समुद्र तट समीप ही था। हम लोग पैदल घूमते हुए वहाँ जा पहुँचे।

समुद्र शात था, मन्द समीर बह रहा था इस कारण तट पर घूमने से मन प्रसन्न हो उठा था। आज तक केवल घूमने के लिए उनके साथ मैं कभी नही गई थी। इस कारण कुछ शरमा रही थी। किन्तु वहाँ जाने पर हम-जैसे ही अन्य लोगो को घूमते देखकर मेरी शरम, लज्जा काफूर हो गई थी। केवल इतना ही नही तो जो लोग ऐसी बातो को अनिष्ट मानते हैं, हँसी उडाते हैं, उनकी मूर्खता पर मुझे हँसी आ गई थी। केवल रुढि की गुलामी मे जकडने से लोगो ने कई आनन्दयुक्त बातो को त्याज्य मान रखा है इसका मुझे उस समय खेद हो रहा था। समयवयस्क स्त्री-पुरुषो, भाई-बहनो, माँ-बेटो का घूमने के लिए जाकर घटे दो-घटे मन बहलाना जिन्हे पसद नही है, स्वय इस प्रकार का बर्ताव तो करेगे नही, किन्तु दूसरे लोगो को करते देखकर जिन्हें दुःख होता है, उनसे अधिक गुलामी के लिए योग्य और कौन लोग हो सकते हैं। हमने ऐसा कौन-सा पाप किया है कि खुली हवा खाने की सहूलियत भी हमे न मिल सके? किसी सस्कृत कवि ने कहा है कि स्त्रियो का घर के बाहर कदम रखना सर्प की फन पर पैर रखने-जैसा भयानक है। प्राचीन काल मे इस उक्ति की यथार्थता कहाँ तक सिद्ध हो पाई थी एव आवश्यक थी इसे तो मैं नही जानती, किन्तु वर्तमान काल के लिए मैं अपनी भगनियो से यह कह सकती हूँ कि उक्त कवि का कथन ठीक है। स्त्रियो द्वारा घर के बाहर कदम रखने के लिए वह यथार्थ है। स्पष्टीकरण मे यह और कहना चाहती हूँ कि घर के द्वार के बाहर रूढि रूपी नागिन अपने फन ताने दश करने के लिए सदा तत्पर बैठी रहती है। उसे लाघकर जाने का प्रयत्न करते ही वह अपनी सहस्र जिह्वाओ से दश करने मे नही चूकती। ऐसी अवस्था मे घर मे भी कहाँ तक बैठा जाय। अपने जीवन साथी को साथ मे लेकर यदि उस सर्पिणी के फन पर जोर से पदाघात किया गया तो उसके कुछ फन अवश्य ही कुचले जा सकते है। उस पर पैर पडने से वह दश करेगी इस भय से घर मे ही मन मसोस कर बैठे रहने की अपेक्षा अपने पति की सहायता से उसकी गर्दन मरोडने से क्या

अधिक सुख नही होगा ? कभी किसी ने इसके बारे मे भी सोचा है ? हम स्त्रियो पर आरोप किया जाता है कि हम स्वय पीछे रहकर दूसरो को भी आगे नही जाने देती। इसलिए ऐसा कदम उठाना हमारे लिए अति आवश्यक है। पति के सहवास मे सध्या के समय बातचीत करना, कुछ पढना अथवा घटे दो-घटे कही सैर करने जाना भी जिसे पसद नही, इसे जो अपने को लाँघकर जाना समझती है और अपनी सहस्र जिह्वाओ से दश करने के लिए झपटती है उस रुढि रूपी नागिन को कुचलने के लिए पति की सहायता अत्यन्त आवश्यक है। इस बात को, पति अथवा पत्नी अकेले नही कर सकते। पति-पत्नी के सहयोग से ही यह सम्भवनीय है। इस बात को ध्यान मे लेकर उपरोक्त सस्कृत कवि के कथनानुसार घर के बाहर बैठी हुई रूढि रूपी नागिन को कुचलने के लिए तत्पर रहना अति आवश्यक है।

घूमते-घामते हम लोग एक बैच पर बैठ गए और बातचीत करते रहे। इसी समय विष्णुपत और नाना का एक परिचित व्यक्ति वहाँ आ गया। कुछ देर बातचीत करके वह चला गया। उसके जाने के पश्चात् विष्णुपत ने उसके सम्बन्ध मे हमे जानकारी दी। वह कुछ विचित्र थी। उसकी बहन का विवाह, जब वह छै वर्ष की थी तभी हो गया था। वह पूरे दस वर्ष की भी नही हो पाई थी और उसके पति का देहान्त होकर भाग्य फूट गया। भाई को सुस्थिति प्राप्त थी, इस कारण उसने उस लडकी की भलाई के लिए, कम-से-कम उसे पढा लिखा कर सुयोग्य बनाने की दृष्टि से उसे कोकणा से लाकर बम्बई मे अपने पास रख लिया था। उसे पाठशाला मे भेजने की व्यवस्था की। उसके माँ-बाप ने बहुतेरा विरोध किया, किन्तु उसने किसी की नही मानी। उसे जो करना था वह करता रहा। उसका मासिक वेतन अधिक नही था, इस कारण "उसे चाल मे घर लेकर रहना पडता था। फिर भी वह किसी के लेने-देने मे नही था। किन्तु चाल मे रहने वाले अन्य नीच पडोसियो ने उन्हें परेशान कर दिया था। कोई उस बेचारी लडकी को बेनामी पत्र भेजा करता था—कोई उसके सामने अश्लील शब्दो का उच्चारण किया करता था। जितना भी उसे परेशान किया जा सकता था, किया गया। उसके बाप को बेनामी पत्र भेजकर लिखा जाता था, "तुम्हारी लडकी किसी का हाथ पकडकर भाग गई—उसे उसके भाई ने गोरे साहब को पेश करदी, परमो उसका पुनर्विवाह हो गया—वह धर्म

भ्रष्ट हो गई ।" एक बार तो तार तक भेज दिया गया था । हर तरह से उस बेचारी को बदनाम करने का प्रयत्न किया गया था । उसके बारे मे अफवाहें फैलाई गई थी । इन सब बातो का मुख्य कारण यह था कि विधवा होकर भी उसने केशवपन नही किया था और पढने के लिए वह पाठशाला मे जाती थी । यही एक महान् अपराध, अघोर पाप उसके और उसके भाई द्वारा किया गया था । इस महान् पाप के लिए सनातन धर्म के ठेकेदार, ऊँट निगल कर मच्छर के लिए अहिंसा के व्रत का पालन करने वाले चाँडालो ने उसे परेशान कर रखा था । फिर भी भैया के भरोसे पर वह सब कुछ सह रहीं थी । दिन-प्रतिदिन उसकी पढाई मे प्रगति होती गई । लग रहा था जैसे वह अवश्य कोई महान् विदुषी होगी । उसकी माँ का देहान्त हो चुका था और पिता की ओर से भी अब पूर्ववत विरोध नही हो रहा था । भाई के वेतन मे वृद्धि होती रही । उसकी महत्त्वाकाँक्षा भी वृद्धिगत होती जा रही थी । किन्तु भाई के भाग्य मे सुख नहीं लिखा था । क्रूर काल ने उसकी बहन को उससे छीन लिया । दु ख के मारे भाई पागलो-जैसा हो गया । जीवन मे अब उसे किसी बात का आकर्षण नहीं रहा । जी चाहे वहाँ रहता है—घूमता-फिरता है । विष्णुपत के मुँह से उसकी कहानी सुनकर हमारे रोंगटे खडे हो गए थे । लोगो ने जिस प्रकार उस गरीब बेचारी लडकी को परेशान किया था उसका विस्तारपूर्वक वर्णन करने से एक ग्रथ निर्माण हो सकता है । यह हृदय द्रावक कहानी सुनकर हम सब लोग उदास होकर शून्य दृष्टि से समुद्र की ओर देखते हुए कुछ देर तक मौन बैठे रहे थे । कुछ समय पश्चात् मेरे पति ने कहा—

"परेशान करने वाला यदि कोई एक व्यक्ति होता तो मैं उस नीच का गला घोट देता । धर्माभिमान का ढोग रचाकर ये पापी दूसरों का जीवन असह्य कर देते हैं । नीच । पापी । हरे राम ! ऐसी होनहार लडकी का इस प्रकार अन्त हो गया ।"

नाना साहब ने कहा, "वाह रघुनाथराव तुम्हें इस प्रकार बोलते देख हमे गणपतराव का स्मरण हो जाता है । ऐसी बातें सुनकर वे आग-बबूला हो जाते हैं । इस व्यक्ति से पहले गणपतराव का ही परिचय था । उन्होने ही इनसे हमारा परिचय कराया था । इनकी बहन का विषय निकलते ही गणपतराव क्रोध से कहा करते, "जिस देश मे स्त्रियो को इस प्रकार परेशान किया जाता

है उस देश का उत्थान कभी नही हो सकता। दिन-प्रतिदिन अवनति ही होती जायगी, और यही योग्य है।"

"सच है।" लक्ष्मीबाई ने बीच ही मे कहा, "भाई साहब का कहना योग्य है। यही होगा। जहाँ गरीब गौओ को क्लेश दिए जाते है, उस देश का यही हाल होगा। कसाइयो का उत्कर्ष होते कभी किसी ने देखा है। याद है ना आपको अपने उस पडोसिन की ? विधवा होने के बाद केवल एक साल भर तक उसने अपना सिर नही मुडवाया, तो उसके माँ-बाप को गाँव मे कितना परेशान किया गया था ?"

मैने कहा, "किन्तु क्या किया जा सकता है। कोई उपाय कही है। जुल्म ढाए जाते है, हम लोग सुना करते है, किन्तु क्या किया जा सकता है। बैठे-बैठे गालियाँ देते रहने के अतिरिक्त और क्या कर सकते है हम।" "सच है। हम क्या कर सकते है। यदि अपने ही घर मे कुछ प्रयत्न···" नाना साहब की बात बीच ही मे काटकर मेरे पतिदेव ने आवेश से कहा, "नही, नही, इस प्रकार काम नही बन सकता। घर मे नवीन विचारो वाला एकाद व्यक्ति हो सकता है और शेष सब होते है उसी पुरानी परिपाटी वाले। इससे काम नही बन सकता। रूढि के विरुद्ध जरा आवाज उठाते ही सब के सब गिद्धो-जैसे नोचने के लिए टूट पडेगे।"

"आखिर आपका क्या कहना है ?" नाना साहब ने पूछा।

"कहना क्या है। यही कि सरकार द्वारा कोडा जमाए बिना···" किन्तु इसी समय एक व्यक्ति "नमस्ते" कहकर हम लोगो के समीप आ जाने से बात-चीत का सूत्र टूट गया। अब समय अधिक हो जाने से हम लोग घर लौट आए, किन्तु उस दिन रात को बहुत देर तक मेरे मन मे उस लडकी के बारे मे विचार आ रहे थे।

७०

दिवाली आ रही थी। हमारा निश्चय हो चुका था कि पूना नही जायँगे। इस निश्चय के अनुसार दिवाली की छुट्टियाँ होने पर भी पूना जाने की बात किसी के मन मे स्वप्न मे भी नही आई थी। फिर भी बम्बई की दिवाली देखने के लिए घर के लोगो को आमन्त्रित करना आवश्यक था। तदनुसार माताजी की सहमति से पत्र भेजे गए थे। किसी के आने की मुझे आशा नही थी। अजिया सास और छोटी मामीजी मे ऐंठ थी। बेटी के घर वे क्यो आयँगी। इस दृष्टि से अजिया सास का आना असम्भव था। छोटी मामीजी अभिमानी थी उनके आने की आशा नही थी। केवल एक उमा मामीजी थी जो आ सकती थी, किन्तु इन दिनो वे सदैव बीमार रहा करती थी। और फिर उनका आना न आना उनके पति पर निर्भर था। पति उन्हे आने की आज्ञा क्योकर देते ? बनू दीदी आ सकती थी किन्तु लहर लगने पर। धोडू भैया को शकर मामाजी हम सुधारको के घर क्योकर भेजते ? ऐसी अवस्था मे पत्र भेजना आवश्यक था इसलिए केवल भेजा गया था। भैया को भी मैंने लिख दिया था कि तुम्हे परीक्षा के लिए बम्बई आना ही है सो चार दिन पहले ही आ जाओ। उत्तर मे उसने सभवतः आने का विचार प्रगट किया था। मैं चाहती थी कि भैया भाभी को भी अपने साथ लेता आए। किन्तु यह इच्छा व्यर्थ थी। पहले तो पिताजी से सहमति प्राप्त करना ही कठिन था। फिर भैया भी कहाँ उसे लाने में उत्सुक था। और सब से बडी बात स्वय भाभी कब आने के लिए स्वीकृति दे सकती थी। मैंने अपने पति द्वारा भैया और भाभी को बम्बई भेजने के लिए पिताजी को पत्र लिखवा दिया था। इस पत्र का केवल इतना ही उपयोग हो पाया था कि भैया अवश्य दिवाली के लिए आ रहा था। ससुराल मे भेजे गए पत्र का परिणाम हमारी अपेक्षानुसार ही हुआ था। हमारे पत्र के उत्तर मे गोपाल मामाजी की ओर से पत्र आया था। उन्होने लिखा था, किसी के आने की सभावना नही है, यदि हो सका तो तुम लोग दिवाली के लिए पूना आ जाओ।' दूसरा पत्र शकर मामाजी की ओर से आया था। पत्र खूब बडा था और उसके द्वारा हम लोगो को खासी 'पुष्पाजली' यानी गालियाँ, अर्पित की

गई थी । अन्त मे लिखा था, 'इस प्रकार तुम लोगो का बर्ताव कुल के लिए कलकवत होकर भी तुम लोग बेशरमी से बार-बार हमें पत्र लिखकर चिढाने का प्रयास करते हो । आखिर इसका क्या मतलब है ? जब तक मैं जीवित हूँ तब तक तुम्हारे घर मे इस घर का फटा जूता तक प्रवेश नही कर सकता ।' आदि । किन्तु विशेष महत्त्व की बात तो यह है कि उपरोक्त पत्र लिखने वाले का फटा जूता ही नही अपितु उसे पहनने वाला स्वय अपने साथ एक लडका और लडकी को लेकर दिवाली के एक दिन पहले हमारे घर आ धमका । उन्हे देख कर हम लोग भोचक्के से रह गए । हम लोगो को विश्वास हो गया था कि हम शकर मामाजी को बखूबी जानते है किन्तु इस प्रकार तीखा पत्र लिखने के दूसरे ही दिन उनका स्वय उपस्थित होना हमारे विश्वास को जबर्दस्त धक्का था । आते ही उन्होने कहा, 'सोचा कि लोग-बाग जो बकते है उसमे कुछ तथ्य भी है या बेपर की उडाते है, इसे स्वय जाकर देखना ही ठीक होगा । चक्षुर्वैसत्य !' उनका पत्र पढकर हम लोगो ने उस पत्र की खूब खिल्ली उडाई थी । क्योकि हमने उन्हे पत्र नही लिखा था, पत्र तो गोपाल मामाजी को लिखा था और उनकी ओर से उसका यथोचित उत्तर भी प्राप्त हो चुका था किन्तु उस पत्र को उन्होने स्वयम् अपने लिए लिखा मानकर उसके उत्तर मे सुधारको की निन्दा विषयक सवा हाथ लबा पत्र भेजा था । इतना ही पर्याप्त मानकर हम लोग स्वस्थ थे । मैं भैया की प्रतीक्षा मे थी । भैया आने पर मैं उसे यह कहूँगी, वह बताऊँगी, ऐसे मसूबे बाँधने मे मैं मग्न थी और भैया आने से पहले ही यह विभूति अवतीर्ण हो गई थी ।

कोई पत्थर की शिला उठाकर हमारे ऊपर फेक देता, फिर भी जितना भय नही लगता उतना उनके आजाने से मैं भयभीत हो उठी थी । अब ये महाशय क्या करेंगे इसकी कल्पना नही हो सकती थी । मैंने मन-ही-मन निश्चय कर लिया था कि किसी प्रकार अपने सुधार के तथ्यो का दर्शन तक नही होने दूँगी । किन्तु करेले को शर्करावगुंठित करने पर भी उसका कडवापन नष्ट नही किया जा सकता ।

हमारे साथी पडोसी भी उनके भय के कारण सावधानी से कार्य कर रहे थे । दूसरे दिन प्रात काल भैया भी आ गया था । उसके आने से मैं आनन्दित हो उठी, किन्तु घर मे शकर मामाजी को देखकर उसकी बडी विचित्र दशा हो

गई थी। उसके मन मे उनके लिए तीव्र तिरस्कार था यह मै जानती थी। विशेषत उन्होने मेरे बारे मे पूना मे जो अफवाहे फैलाई थी उन्हे सुनकर भैया को उनसे घृणा हो गई थी। उनका नामोल्लेख होते ही वह गालियाँ दिया करता था। इन बातो का स्मरण होते ही वह क्रोध से भडक उठा था। मुझे एक तरफ ले जाकर उसने कहा, यमूताई, इसे यहाँ आने मे शरम नही आई ? तुम लोगो के बारे मे चाहे जो बकता है, गन्दा प्रचार करता है और फिर भी यहाँ आ धमका है। आखिर इसे क्या कहा जाय।' उनके विषय मे बातचीत करते समय गुस्से से उसे तैश आ जाता था और उसका स्वर ऊँचा हो जाता था। उसका स्वर उच्च होते देखकर मैने कहा, "शात हो जाओ भैया अब चार दिन के लिए बिलकुल मौन धारण करलो उनके बारे मे।' उस समय शकर मामाजी घर मे नही थे फिर भी बनू दीदी घर मे थी और छुपकर बाते सुनने की उन्हें आदत थी। सुनी हुई बात मे नमक-मिर्च मिलाने मे वे निष्णात थी, इसलिए मुझे डर लग रहा था।

दिवाली मे भैया के आने से बडा मजा आयगा, यह मेरा सोचना अब निष्फल सिद्ध हुआ था। सब लोगो को दिवाली की छुट्टियाँ थी, भैया भी आ गया था किन्तु शकर मामा के आ जाने से सभी लोगो का उत्साह जाता रहा था। जैसे मन भर दूध मे नमक की एक डली डाल दी हो। शकर मामा के डर से हम लोग आपस मे दिल खोलकर बातचीत भी नही कर पाते थे। बनू दीदी हमेशा मुँह फुलाये रहती थी। घर की किसी बात मे चित्त नही लग रहा था। मेरे कारण बनू दीदी को मनाने के लिए मेरी सहेलियो ने बहुतेरा प्रयत्न किया था किन्तु बनू दीदी का मुँह बिगाड कर कुत्सित भाषण करना किसी प्रकार कम नही हो रहा था। मेरे साथ भाषण करते समय हमेशा उनकी त्योरियाँ चढी रहती थी।

एक बार लक्ष्मीबाई ने उनसे कहा, 'आओ, तुम्हे रेशम से कपडे पर फूल बनाना सिखाती हूँ। बनू दीदी ने उत्तर मे कहा, "हमे नही सीखना है वह मेमो का कढाई का काम। हम-जैसे गरीबो को उससे क्या लाभ।" लक्ष्मीबाई बेचारी बहुत सहनशील थी। उन्होने इसका बुरा नही माना। सयत स्वर मे उन्होने कहा, "मेमो की और हमारी क्या बात है ? कढाई तो एकसी होती है। जरा आकर देखो मै तुम्हे सिखा दूँगी।" इस प्रकार लक्ष्मीबाई ने बहुतेरा आग्रह

किया था किन्तु उन्होने उनकी बात को स्वीकार नही किया। बातचीत करते समय यशोदाबाई ने सहज भाव से पूछा था, "क्या तुम कुछ लिखना-पढना जानती हो ? उत्तर मे बनू दीदी ने कहा, "हाँ हाँ, लिखना जानती हूँ, पढना जानती हूँ, लेक्चर-फेक्चर भी देना जानती हूँ और हाथ मे हाथ डालकर घूमना भी जानती हूँ।" मै वही बैठी थी। उनका भाषण सुनकर मेरा शरीर क्रोध से धधक उठा था। जिनसे पूर्ण परिचय भी नही हुआ उन्हे इस प्रकार उत्तर देना कितना लज्जास्पद था। कितना विचित्र स्वभाव था उनका। उनका अन्तिम वाक्य सुनकर मेरा मन कह रहा था कि एकदम उनसे कह दूँ, "इस अभागे हाथ मे हाथ डालकर कौन घूमने जायगा ? पति तो मुँह देखना भी नही चाहता।" किन्तु मैं अपने मन पर काबू पाकर चुप बैठी रही। यदि मैं कह देती तो उसका कितना विलक्षण परिणाम होता इसकी कल्पना से ही मै काँप उठी थी। मन-ही-मन मै सोच रही थी कि आखिर उनका भी क्या दोष है ? जिस परिस्थिति मे उनका जीवन व्यतीत हो रहा है उसमे इस प्रकार कुत्सित विचारो की अपेक्षा सद् विचार क्योकर आ सकते है, उनका इसमे क्या दोष है। यह सोचकर मै चुप हो गई थी। मैंने स्वय उनसे पढना-लिखना, सिलाई-कढाई के बारे मे कभी कुछ नही कहा था। कभी स्वयं उनके साथ बातचीत भी नही की। यदि वे बोलना चाहे तो उनसे योग्य ढग से बातचीत करना, उनकी हर बात को पूर्ण करना, यहाँ तक कि उनकी साडी चुनकर उनके हाथ में देना, इस क्रम को मैंने अपनाया था। नित्य क्रमानुसार एक दिन मे उनकी साडी चुन रही थी—वे दूसरी ओर बैठी नहा रही थी। इसी समय भैया कही से आ गया। वह नही जानता था कि पास ही मे बैठी बनू दीदी नहा रही है। हँसकर उसने कहा, "अहो ! तो क्या नकटु ननद की धोती चुनकर रखनी पडती है ?" बनू दीदी ने भैया की बात सुन ली। फिर क्या था। ताव से आकर उन्होने मेरे हाथ से अपनी धोती झटक कर ले ली और कहा, "खबरदार जो कभी मेरी धोती को तुमने छूआ। तुम्हे मेरे खून की कसम है। हमे घर-द्वार नही था तभी तो तुम्हारे ऐसे शब्द सुनने के लिए हम लोग यहाँ आए है। जैसे तुम रभा, उर्वशी हो तो हो। मैं चाहे जो हूँ, तुमसे मतलब ?" इतना कहकर उन्होने रोना, धोना आरम्भ कर दिया। उस दिन उन्होने भोजन नही किया। मैंने उनसे बहुतेरा कहा कि तुम्हारे खाये बिना मैं भी नही खाऊँगी। आखिर दिवाली के दिन

मुझे भी उपवास करना पडा। उनके पैर छुए, उनके सामने नाक रगड़ी, हर तरह से उन्हे मनाने का प्रयत्न किया, किन्तु उन्होने एक न मानी। सुदैव से उन्होने मामाजी से नही कहा। मामाजी ने नाराजगी का कारण जानने का बहुत प्रयत्न किया था किन्तु उन्होने केवल मौन धारण कर लिया था। इस बात को उन्होने कैसे छुपाया इसका मुझे बहुत आश्चर्य था। कुछ नही कहकर वे केवल रोती रही। किन्तु पूना जाकर उन्होने इस बात का जो बतगड बनाया था उसका वर्णन करना व्यर्थ है। वह बात उन्होने मेरे ऊपर थोपी थी और उसके आगे पीछे एक छोटी-सी कथा बनाकर महाभारत का निर्माण किया था। उस दिन शाम को उन्होने भोजन नही किया था, अर्थात् उनके साथ मैं भी भूखी रही थी। उदाहरण के लिए यह बताई है, इस प्रकार की कई घटनाओ ने हमारे दिवाली के आनन्दोत्सव को मिट्टी मे मिला दिया था।

यही हाल उनके पिताजी का था और धोडू भैया इतने बडे हो गए थे फिर भी उनका अक्ल से विशेष परिचय नही हुआ था। फूफी से मिठाइयाँ और माई से फटाके माँगने के अतिरिक्त उनके लिए दूसरा कार्य नही था। प्रतिपदा के दिन तो उन्होने हम लोगो के होश उडा दिए थे। घर के लोगो की आँख बचाकर न जाने वे कब घर से बाहर चले गए थे। पहले दो दिन हम सब लोग गाडी मे बैठकर शहर की रोशनी देखने के लिए गए थे। किन्तु शायद उनका मन तृप्त नही हुआ था, इसलिए कोट, टोपी पहनकर उन्होने रास्ता पकडा था। किसी से कहा-सुना नही था। हम लोग समझ रहे थे कि नीचे कही फटाके, आतिशबाजी चला रहे होगे। जब बहुत देर हो गई तो शोध की गयी। आस-पास सब तरफ खोज की गई। आखिर ठाकुर द्वार, मार्केट आदि मार्गो की ओर खोज करने के लिए आदमी भेजे गए। विष्णुपत, नाना साहब, भैया आदि सभी लोग उन्हे खोज रहे थे। बनू दीदी रो रही थी। और शकर मामाजी लगातार कहते जा रहे थे, "उसे क्यो जाने दिया ? कोई उस पर नजर क्यो नही रखता ?"

आखिर कोई नन्हा बच्चा तो था नही जो उस पर हमेशा नजर रखी जाती। आखिर रात के दो बजे हजरत घर लौट आए थे। हम लोगो को आश्चर्य लग रहा था कि वे सीधे घर कैसे आ गए ? इतने बडे शहर मे रास्ता भूल जाना सम्भव ही था। बम्बई के मार्गो से वे परिचित नही थे और

समय भी रात का था। किन्तु बाद मे उनकी जानकारी का रहस्य भी मालूम हो गया था। पडोस मे एक सुनार का लडका रहता था। दो दिन मे उन दोनो की दोस्ती हो गई थी और रात मे शहर की रोशनी देखने के लिए चुपचाप वे चले गए थे। हम लोग चिता से अस्वस्थ हो उठे थे। हर्ष की बात थी कि वे सही-सलामत घर लौट आए थे। उनके लौटने से हम लोग खुश थे और तभी उनके पिताजी गुस्से से तमतमा उठे। इतने बडे लडके को गालियाँ देते हुए उन्होने पीटना शुरू कर दिया। तडातड जमाते जा रहे थे और कह रहे थे, बम्बई आते ही लडके देखो कैसे स्वच्छन्द बन जाते है।" चार-छ तमाचे खा लेने पर धोडू भैया ने चीखकर कहा, "खबरदार जो मेरे शरीर को हाथ लगाया है। मै अब बच्चा नही हूँ। कही किसी रडी के घर शराब पीने नही गया था।" विलक्षण दृष्टि से वे पिताजी की ओर घूरकर देख रहे थे। हम तीनो उनकी ओर देखती रह गई। बाकी के लोग जो उन्हे खोजने के लिए बाहर गए थे अब तक लौटकर नही आए थे। शकर मामाजी क्रोध से कॉप रहे थे। दहाडकर उन्होने कहा, "निकल जा मेरे सामने से, नही तो गला घोट दूँगा। छाती तानकर उनके सामने खडे होकर धोडू भैया ने कहा, देखूँ तो कैसे गला घोटते हो।" भय से मै कॉप उठी। किन्तु इसी समय मेरे पति घर लौट आए थे। धोडू भैया को पकडकर वे दूसरे कमरे मे ले गए। फिर भी वे बडबडा रहे थे। गला घोट देगे। बडा आसान है गला घोट देना। "शकर मामाजी क्रोध से कॉप रहे थे। उनके मुँह से क्रोध के मारे शब्द भी नही निकल रहा था। आखिर उन्हे भी समझा बुझाकर बिस्तरे पर लिटाया गया। फिर भी उनकी बकझक चल रही थी, "कसम है मुझे जो फिर कभी इस हरामी का मुँह देखूँ। मेरे मुँह में कालिख पोत दी इसने।" आश्चर्य तो इस बात का है कि लडके के इस उद्दडता का कारण उन्होने उसका बम्बई आना खोज निकाला था। इस प्रकार की घटनाओ के कारण हमारी दिवाली किस प्रकार मनाई गई थी इसका अब वर्णन करना व्यर्थ है। फिर भी एक घटना और बतानी है। उसे जाने बिना हमारे दिवाली महोत्सव का वर्णन पूर्ण नही हो सकता।

दिवाली समाप्त हो चुकी थी। दो-चार दिन और ठहरकर मेहमानो ने जाना निश्चित किया था। शकर मामाजी की छुट्टी समाप्त हो रही थी, इसलिए जाना आवश्यक था। जाने से पहले उन्होने अपने साथ जो चीजे ले

जानी थीं उनकी एक लम्बी सूची प्रस्तुत की थी। प्रस्तावना मे उन्होंने कहा था, "अजीब हाल है इन लोगो का ! चीजे लाने के लिए कहते है किन्तु पहले पैसे नही देते। कोई कहता है यह लेते आना, कोई कहता है वह लेते आइएगा पूना लौटकर आते ही दाम चुका देगे। मैं कहता हूँ, ये लोग पहले वस्तुओ का मूल्य क्यो नही दे देते ? लेकिन नही। जैसे हमारे पास पैसो की खदान गडी है। बेवकूफ कही के। जरा भी अक्ल नही होती इन लोगो को। एक-दो लोगो को तो मैंने साफ कह दिया कि पहले पैसे लाओ तो मैं तुम्हारी चीजे ला सकता हूँ अन्यथा यह काम मुझ से नही होगा। अरे हाँ, ऐसे कामो मे साफ रहना अच्छा। क्यो नाना साहब मैं ठीक कह रहा हूँ ना ? किन्तु आफत तो यह है कि कई लोगो से इस प्रकार स्पष्ट भी तो नही कहा जा सकता। उनसे अपना सम्बन्ध कुछ अलग ही होता है। इसलिए मजबूरन हाँ कहना होता है। क्या किया जाय। केवल हाँ कहकर ही काम नही बनता, अपने आपको गिरवी रखकर भी उनकी माँग को पूर्ण करना आवश्यक हो जाता है। अच्छा, जब मैं इधर आने को हुआ तो मेरे पास केवल दस रुपये शेष थे। वेतन के लिए देर थी। आखिर सोचा कि बम्बई मे रघु से रुपए लेकर चीजे ले आऊँगा और फिर चीजे लोगो को देकर रुपये एकत्रित करके रघु को भेज दूँगा। वैसे कुछ अधिक क्रय नही करना है ! दो-चार विलायती दुशालो के लिए ही कुछ अधिक रकम व्यय होगी। शेष तो सटर-फटर चीजे है। जेवरात रखने के लिए छोटा-सा बक्स, बच्चो के लिए चीजे वगैरह लेनी है। भई, एक बार लाकर पटक दो इन चीजो को जिससे छुटकारा हो जाय।" इस प्रकार प्रस्तावना की जाने पर कोई क्या प्रतिवाद कर सकता है। आखिर जेब कटने का मौका आ ही गया। चीजे दूसरो के लिए क्रय की जाती थी, किन्तु उनका मूल्य हमे ही चुकाना था। गई हुई रकम वापस मिलने की कोई आशा नही थी। सभवतः इन वस्तुओ का मूल्य कुछ अधिक ही वसूल किया जायगा किन्तु वसूल की गई रकम हमे वापिस होगी, यह असम्भव था। अन्य कोई चारा न होने से उनकी माँग पूरी की गई थी। बनू दीदी ने भी अपने पिताजी से एक छपी हुई साडी ला देने के लिए आग्रह किया था। हम लोगो ने सोचा था कि दिवाली के उपलक्ष मे उनके लिए अहमदाबादी जरी किनार के खन की एक चोली सीकर दी जाय। इस योजना के अनुसार खन लाकर मैंने चोली सीना आरम्भ भी कर दिया।

था। हम लोगो से तो कुछ न माँगने का बन्नू दीदी का निश्चय ही था। पिताजी से क्या मिल सकता है, इसे भी वे भली-भाँति जानती थी। फिर भी उन्होने अपने पिता से साडी ले देने के लिए हठ किया था। पिता ने उससे स्पष्ट शब्दो मे कह दिया, "हम गृहस्थो के घर मे छपी हुई साडियाँ नही पहिनी जा सकती —ऐसे ढग मुझे पसन्द नही। मैं नही लाऊँगा और न लाने के लिए मेरे पास पैसे है।" उनका उत्तर सुनकर वे पैर पटकती हुई मैं जहाँ बैठी थी, वहाँ आ गई। मुँह से बकझक चल रही थी। "उस बसती राड के लिए हर चीज लाई जा सकती है . . ." उनकी बात सुनकर उनके भाई साहब ने कहा, "दीदी, क्या तुम जानती हो कि बसती के लडको के लिए जरीन टोपियाँ लाकर दी गई ? अरे, वह तो तुम्हारी माँ है। उसके लिए अपशब्दों का उपयोग करती हो ?"

फिर इसी विषय को लेकर बहन-भाई मे बातचीत होती रही। उनकी बाते सुनकर पूरा हाल मैं समझ चुकी थी। अधिक सुनने की इच्छा रहने पर भी मैं वहाँ से उठकर चली गई थी। ऐसी बाते सुनना मैंने योग्य नही समझा था। इसके पूर्व भी मैं इन बातो को सुन चुकी थी किन्तु उनका उल्लेख करना मैने ठीक नही समझा था। शकर मामाजी बड़े धर्माभिमानी बने फिरते थे, किन्तु उनका खान-पान और आचार-विचार कितने घृणित थे इसकी जानकारी मुझे भैया तथा अपने पति से पहले ही मिल चुकी थी। मेरी धारणा थी कि शकर मामाजी के लडके उनके बर्ताव से अनभिज्ञ होगे किन्तु आज जब उन लडको मे इस विषय को लेकर चर्चा होते मैंने सुना था तब मैं दग रह गई। अपने पिता के बारे मे वे क्या-क्या जानते है, जानकर उनके मन मे पिता के लिए जितना आदर और प्रेम बुद्धि हो सकती है इसका चित्र मेरे सामने खिंच गया था। ऐसे नादान बाप के लडके अपने पिता के बारे मे कैसी चर्चा कर सकते है इसका नमूना दिखाने के लिए ही मैंने उपरोक्त घटना का उल्लेख किया है।

दूसरे दिन मैंने बन्नू दीदी के लिए छपी हुई साड़ी मँगवा दी थी। पहले तो उन्होने लेने से इन्कार कर दिया था किन्तु बाद मे रख ली थी। बाप-बेटी और बाप-बेटो मे अनबन के कारण सभाषण बन्द था। इसलिए जाने का विषय कहीं से नही निकल रहा था। किन्तु शकर मामाजी की छुट्टी समाप्त हो रही

थी इसलिए जाना अनिवार्य था। जाने के पहले दिन शकर मामाजी बडबडा रहे थे, "मैं अकेला जाऊँगा। मैं इन लडको को नही चाहता। धोडू तो मेरे घर मे भी पैर नही रख सकता। साले को भीख माँगनी होगी। मेरे मुँह लगता है। किसी दिन यह मेरा खून कर देगा। यही हाल इस छोकरी का है।" हम लोग मन-ही-मन भयभीत हो उठे थे कि शकर मामाजी कही इन भाई-बहनो को यही छोडकर तो नही चले जायँगे। किन्तु ऐसा नही हुआ। बनू-दीदी और धोडू भैया ने बम्बई रहने से इन्कार कर दिया था। ये दोनो भली-भाँति जानते थे कि पूना की स्वतन्त्रता उन्हे यहाँ प्राप्त नही हो सकती। आखिर हम लोगो को सौ-पचास रुपयो की चपत लगाकर वह त्रिमूर्ति प्रस्थान कर गई थी।

जैसा कि हमने सोचा था उनकी ओर से सवा हाथ का एक दीर्घ कुत्सित पत्र प्राप्त हुआ था। किन्तु अब उनके पत्रो का हमारे पास कोई महत्त्व नहीं रहा था। हम लोगो के लिए वह एक मनोरजन का साधन मात्र था। पत्र मे एक उल्लेखनीय बात विशेष थी और वह थी सासूजी और गोपिका काकी की यथास्थित निन्दा। निन्दा करने का क्या कारण था? कारण यह था कि एक दिन जब शकर मामाजी पूजा-पाठ का ढोग रचाकर नाक पकड कर बैठे थे तब कही सासूजी ने उनसे कहा था, "देख लिया न तुमने अपनी आँखो से? कोई और बात देखी तुमने? फिर व्यर्थ मे इन लोगो को क्यो बदनाम किया करते हो?" यह सुनकर शकर मामाजी ने विचित्र मुद्रा बनाकर उनकी और मेरी ओर देखा था। फिर मर्म भेदक हँसी हँसकर उपहास पूर्ण स्वर से कहा, "नही, नही, मैंने कोई और बात होते नहीं देखा। तुम्हारा बेटा तो बडा ही शुचिमूर्ति है। और बहू के बारे मे तो कहना ही क्या है। और स्वय तुम! वाह क्या कहना है। हम लोग तो पागल है। यूँही बकते रहते है।" इतना कहकर फिर वे मत्र पाठ करने लग गए थे—ओम पृथ्वीत्वा अं अ अ ·· ''हमारी सासूजी बेचारी भोली-भाली थी। उन्होने सहज भाव से कह दिया "तुम्हे तो हर बात की निन्दा करते रहने की आदत-सी हो गई है। "इतना कहकर वे वहाँ से चली गई थी। हम लोगो के भी यह बात ध्यान मे नही रही थी। किन्तु मामाजी इस बात को कैसे भूल सकते थे। इसी बात को लेकर उन्होने पत्र मे अपनी बहन की यथास्थान निन्दा की थी। वह भी अब

सुधारक बन गई है—कल वह भी घूमने-फिरने जायगी और कहेगी इसमे गैर क्या है ? आदि कई बाते पत्र मे लिखी थी—उनका सविस्तार वर्णन करना व्यर्थ है। और लोगो पर भी नाना प्रहार किए गए थे। हमारे पडोसियो ने उनके साथ बडा सद्व्यवहार रखा था, यदि न रखा होता तो शकर मामाजी का उनकी निन्दा करने के लिए एक रिम कागज खर्च हो जाता।

७१

उपरोक्त त्रिमूर्ति और उनकी ओर से प्राप्त पत्र का तूफान निकल जाने के उपरान्त कुछ समय के लिए हम लोग स्वस्थ चित्त हो गए थे। भैया अपनी पढाई मे व्यस्त था। हम लोगो मे आकर बैठने का भी उसके पास समय नही था। वह अपनी पढाई मे जुट गया था। दादाजी के मृत्यु के पश्चात् उसने अपनी पढाई की ओर विशेष ध्यान दिया था। वह जानता था कि पिताजी से अब उसका मेल नही खा सकता। पिताजी का स्वभाव यदि पहले-जैसा होता तब भी निभाव हो सकता था किन्तु इन दिनो उनका स्वभाव कुछ विलक्षण-सा हो गया था। चार-पाँच वर्षो मे उनका स्वभाव एक दम कैसे बदल गया, बदलने के लिए क्या कारण हुआ आदि बातो का रहस्य भेद अब तक नही हो सका। यदि कोई इस गूढ रहस्य का भेद बता सकेगा तो सर्व साधारण के लिए वह बहुत उपयुक्त सिद्ध होगा।

वे भी अपनी पढाई मे जुट गए थे। कहते थे कि फेलोशिप केवल एक वर्ष और मिलेगी। फिर कुछ दिन अपने ही पैरो पर खडा रहकर पढाई का व्यय वहन करना होगा। इसलिए खर्चा भी कम करना चाहिए। मैंने भी अपनी पढाई की ओर विशेष ध्यान देना शुरू किया। हम लोगो के कार्यक्रम ठीक चल रहे थे। पूना के समाचार जानने का अब कोई साधन नही था। दादी का क्या

हाल है, दुर्गी की क्या अवस्था है? उसका पति लौटकर आया अथवा नही आदि बातो की जानकारी नही मिल रही थी। इस बात की कभी-कभी चिन्ता लगी रहती थी—शेष सब यथास्थित हो रहा था।

सुख के दिन बहुत जल्दी बीत जाते है। हँसते-खेलते दो महीने बीत चुके थे। यथा समय भैया की परीक्षा आरम्भ होकर पाँच-सात दिनो मे समाप्त हो चुकी थी। उसे दृढ-विश्वास था कि वह अवश्य उत्तीर्ण हो जायगा। परिणाम घोषित होने मे देर थी। यह समय भैया, मैं, लक्ष्मीबाई तथा यशोदाबाई ने मिलकर सानद बिताया था। हम लोगो को दोपहर मे विशेष कोई काम नही रहता था। दोपहर मे भैया कोई पुस्तक पढकर सुनाता था, कभी हम मे से कोई पढकर सुनाती थी। फिर उस पर चर्चा चला करती थी। कोई बात समझ मे न आने पर रात की बैठक मे वह समझ ली जाती थी। इस प्रकार कल्पनामय सृष्टि मे हम लोग विचर रहे थे। ज्यो-ज्यो परिणाम घोषित होने का समय निकट आ रहा था त्यो-त्यो मेरे मन की अस्वस्था बढती जा रही थी। फिर भैया का क्या हाल होगा। उसे दृढ-विश्वास था कि वह अवश्य उत्तीर्ण होगा, फिर भी मन शका कुशकाओ से भरा रहता था। आखिर परिणाम घोषित हुआ भैया उत्तीर्ण हो गया। मै फूली नही समा रही थी। भैया ने तत्काल पिताजी को पत्र भेज दिया। पूना मे दादी के अतिरिक्त और किसी को इतनी खुशी नही हुई होगी। परीक्षा पास कर लेने की खुशी मे कुछ दिन और बीत गए किन्तु आगे क्या करना होगा यह प्रश्न उपस्थित था। भैया की इच्छा थी कि बम्बई मे रहकर उनकी देख-रेख मे वकालत की पढाई की जाय जिससे परीक्षा पास करने मे उसे बडी सहायता मिलेगी। मेरी इच्छा थी कि कालेज मे दाखिल होकर वह बी० ए० पास कर ले। एक कालेज मे न जाने का कारण भैया ने मुझे स्पष्ट शब्दो मे कह दिया था। उसने कहा, "यमूताई, कालेज मे जाकर मुझे आशा नही है कि मैं तीन वर्षों मे परीक्षा पास कर लूँगा। मुझ-जैसे कई लोग छटपटा रहे है। और यदि मैं पास हो गया फिर भी उससे क्या लाभ होगा? यही होगा कि तीस-पैतीस रुपयो की नौकरी मिलने का सुभीता हो जायगा। उससे तो वकालत पास कर लेना कही अधिक सुविधाजनक होगा। यह सही है कि इस पढाई मे बहुत रटना पडता है। किन्तु रघुनाथरावजी के पास पढने से समझने मे कठिनाई नही होगी।

पहली बार बहुत कम लोग पास होते है किन्तु मै यदि रघुनाथरावजी के पास पढता रहा और योग्य परिश्रम करता रहा तो मेरी दृढ धारणा है कि मैं परीक्षा मे अवश्य सफलता प्राप्त कर सकूँगा। वैसे मेरी बुद्धि विशेष तीक्षण नही है। परीक्षा पास होने पर चार-छ महीने पूना मे बिताऊँगा, फिर कह दूँगा कि वकालत जम नही रही है, कही दूसरे गॉव जाना होगा, और फिर पूना से और कही चला जाऊँगा।' उसने इस ढग से बात कही थी कि मुझे वह जच गई। मेरे पति ने भी अपनी सहमती प्रकट की। उनकी दृष्टि मे बी० ए० का विशेष महत्त्व नही था। अत. भैया की इच्छा के अनुसार ही योजना निश्चित की गई। किन्तु समस्या तो इस बात की थी कि पिताजी को लिखकर उनकी सम्मति किस प्रकार प्राप्त की जाय ? किन्तु जब कोई अच्छी बात होनी होती है तो शत्रुओ द्वारा की गई विपरीत कृति भी सहायक सिद्ध होती है। नई मॉ के बारे मे भी ऐसा ही हुआ था। दो-चार महीने भैया घर से बाहर था, इस घटना को उसने लाभदायक माना था और सोचा था कि वह हमेशा के लिए घर से बाहर चला जाय तो और भी अच्छा होगा। उसके बाहर रहने से उसकी पढाई मे जो दस-पन्द्रह रुपये व्यय होते थे बच जायँगे और अपनी पूँजी मे घाटा नही आयगा। ऐसा नई मॉ ने सोचा था। इसलिए जब भैया को बम्बई मे पढने के लिए रखा जाय, इस आशय का पिताजी को पत्र भेजा गया तो नई माँ ने पिताजी से तकाजा किया कि अवश्य ऐसा ही किया जाय। नई मॉ ने पिताजी से कहा था, "पत्र मे जो लिखा है वह बिलकुल ठीक है। अब आपके भी हाथ-पैर थकते जा रहे है। यदि वर्ष दो वर्ष मे पढाई करके वह वकील बन जायगा तो आपका भार कुछ हल्का हो जायगा। व्यर्थ मे कालेज का खर्चा करने से क्या लाभ होगा ?"

पहले तो पिताजी की इच्छा थी कि भैया बी० ए० की पढाई करे। परीक्षा पास होने का उन्हे जो पत्र लिखा गया था उसके उत्तर मे उन्होंने अपनी यह इच्छा व्यक्त की थी। सभवत. तब तक नई मॉ से उनकी इस बारे मे चर्चा नही हो पाई थी। किन्तु नई मॉ के कहने से पिताजी ने हम लोगो की बात मान ली थी। हमारी इच्छा पूर्ण होकर भैया के हमारे यहाँ ठहरने का निश्चय हो गया था। अब चिन्ता केवल दादी के बारे मे थी। भाभी के बारे मे भैया बिलकुल मौन था। कई बार लक्ष्मीबाई और यशोदाबाई ने भाभी का विषय

निकाल कर भैया को छेडने का प्रयत्न किया था, किन्तु भाभी का उल्लेख होते ही सदा हँसमुख भैया मौन हो जाता था, उसकी मुद्रा पर तिरस्कार झलक उठता था और वह प्रयत्नपूर्वक उस विषय को दूसरे विषय मे बदल देता था। दो-चार बार जब यही हाल रहा तो उन दोनो ने फिर कभी भाभी का उल्लेख नही किया, किन्तु एकान्त मे मुझसे अवश्य पूछा था कि यह क्या रहस्य है ? मैंने उन्हे पूरी कहानी सुना दी थी किन्तु उनका समाधान नही हो रहा था। मान लिया कि भाभी का स्वाभाव विलक्षण था फिर भी भैया को उसके प्रति इतना तीव्र तिरस्कार क्यो था यह बात समझ मे नही आ रही थी। हम लोगो ने निश्चय कर लिया था कि एक बार भाभी को यहाँ बुलाकर उन दोनो की अनबन समाप्त कर दी जाय। भैया से हमने अपनी योजना को गुप्त रखा था।

इस प्रकार हम लोगो का समय सुख से व्यतीत हो रहा था।

७२

सुख का समय शीघ्रता से बीत जाता है और सुखपूर्ण घटनाओ का विस्तारपूर्वक वर्णन करने मे आनन्द आता है किन्तु इस प्रकार मैं इन घटनाओ मे ही फँसी रह गई तो सम्भवत. मेरा बीच ही मे अन्त हो जायगा और जिस उद्देश्य को लेकर मैं अपनी जीवनी लिख रही हूँ वह अधूरा रह जायगा।

सुखपूर्ण घटनाओ मे से एक यह थी कि सुन्दरी का विवाह हो गया था और हम लोगो को विशेषत दादी की चिन्ता दूर हो गई थी। सुन्दरी के विवाह मे सम्मिलित होने के लिए हम लोग पूना गए थे। कोई आनन्ददायक घटना पूर्णत आनन्दयुक्त नही होती, उसमे कुछ अपूर्णता रहती ही है। यही हाल इस घटना का भी था। सुन्दरी को सुयोग्य वर की प्राप्ति हुई थी। लडका

बडा होनहार, सुशील कालेज का विद्यार्थी और नाना साहब, विष्णुपत आदि द्वारा चुना हुआ था। फिर भी नई माँ ने दहेज आदि बातो को लेकर यथा-शक्ति झगडा फैलाया था। यदि वह सुयोग्य चाहिए तो दहेज की रकम भी कुछ अधिक देनी होती है। हाँ, नही होते करते आखिर वर निश्चत किया गया। लडके की स्थिति अच्छी नही थी, गरीब घराने का था। उसके माँ-बाप कोई नही थे, तीन बडे भाई थे। जैसे-तैसे अपनी गृहस्थी चला रहे थे। छोटे भाई के कालेज का भार अवश्य वहन कर रहे थे और भाई भी होनहार मालूम देता था। हम लोगो का देखा, परखा लडका था। विवाहोत्सव मे लडके की तीनो भावजो को नई माँ ने खूब ताने कसे थे। हमारी भाभी भी कुछ कम नही थी। उम्र उसकी अवश्य बढ गई थी किन्तु स्वभाव पहले-जैसा ही बना हुआ था। मै बडी होने से झगडो को जैसे-तैसे मिटाती रही थी। विवाह हो गया। बारात पहुँचाकर हम लोग घर लौट आए थे। मैं दादी के साथ बातचीत करती बैठी थी। सब लोग सो चुके थे। मुझे एक बात का स्मरण हो आया। दूसरे दिन मैंने भैया से उसके बारे मे कहा, क्यो भैया, तुमने तो कहा था कि घर के सब आभूषण चले गए। फिर नई माँ ने कौन से आभूषण धारण किए है ?" मेरा प्रश्न सुनकर भैया हँस दिया। चारो ओर नजर फेर कर धीमे स्वर मे उसने कहा, "यमूताई, आभूषण तो अवश्य है किन्तु इतने नये कैसे ? मुझे तो कुछ और ही शका है। परीक्षा करके देखना होगा। इतने वर्षो पहले बनाए गए जेवर इतने नवीन कैसे दिखाई देते हैं ? मेरी समझ मे किसी और के हो सकते हैं या फिर······" इतना कहकर वह चुप हो गया था, किन्तु बताने के लिए जब मैंने बहुत पीछा किया तो उसने कहा, "जाने से पहले एक दिन नथ और हँसली उठाकर मेरे पास ले आओ तब देखेगे कि मामला क्या है ?"

भैया की बात सुनकर मुझे विवाह के दिनो मे मैंने जो एक विशेषता देखी थी उसका स्मरण हो आया। बात यह थी कि नई माँ अपने गहनो को किसी को छूने नही देती थी। उनकी बालियाँ और कगन पहले से कुछ अधिक बडे मालूम होते थे। चार दिनो मे मेरे ध्यान मे यह बात कैसे नही आई इसका मुझे आचर्श्य हो रहा था। आभूषणो को वे स्वय अपने हाथो सन्दूक मे बन्द करके चाबियाँ कमर मे खुरस कर सोती थी। एक-दो बार मैंने कहा भी था कि लाओ अपने मैं और तुम्हारे जेवर सन्दूक मे रख दूँ। किन्तु उन्होने झट से कह

दिया, "ना, ना। तुम-जैसी भुलक्कड के हाथो जेवर नही दिए जा सकते।" अब मुझे लग रहा था कि ऐसा कहने मे अवश्य उनका कुछ हेतु था। चार दिन के बाद आभूषण न पहने का अपना क्रम उन्होने आरम्भ कर दिया था। भैया ने निश्चय कर लिया था कि वह अपनी शका का समाधान अवश्य कर लेगा। दूसरे दिन नई माँ अपनी सदूक से कुछ निकाल रही थी तभी भैया वहाँ जा पहुँचा, वह कभी उनके पास नही जाता था और न कभी उनकी बातो मे दखल देता था किन्तु आज बिलकुल समीप जाकर उसने झट से सदूक मे से सोने की हँसली उठा ली और उसकी ओर देखकर कहा, "वाह! क्या कहने है। कितनी अच्छी सफाई की गई है। मालूम होता है जैसे नई बनाई हो।"

उसका बर्ताव देखकर मै अवाक् रह गई। वह गभीर स्वभाव का था और आज यह क्या कर रहा है। नई माँ हँसली और भैया की ओर बडी विचित्र दृष्टि से देख रही थी। उनकी आतुर और तिरस्कृत दृष्टि देख रही थी कि कब भैया हँसली को सदूक मे रखता है। भैया का यह कार्य मुझे भी पसद नही था। मेरी समझ मे नही आ रहा था कि वह क्या करना चाहता है। मैं राह देख रही थी कि वहाँ से उठकर वह कब जाता है? हँसली उसने रख दी और फिर कोई दूसरी चीज उठा ली। शायद वह नथ थी। नई माँ के बदन मे आग-सी लग गई। भैया भी इस बात को जानता होगा किन्तु शान्त बैठकर वह नथ को परख रहा था। नई माँ आपे से बाहर हो रही थी किन्तु कृत्रिम हँसी हँसकर उन्होने कहा, वाह। आज तो नई माँ के पास आकर बैठने का बडा चाव हुआ है। चलो, लाओ वह नथ। कही गिरा दोगे। अभी तो उसकी सफाई करवाई है। लाओ, मुझे यहाँ से जाने दो। इतना कहकर नई माँ ने नथ उसके हाथ से झपट कर ले ली, भैया भी उठकर चला गया। जाते-जाते मेरी ओर देखकर वह खिन्नता से हँसा। नई माँ की दृष्टि हम दोनो पर है इसका मुझे ख्याल नही था। भैया के चले जाने के बाद मैंने नई माँ की ओर देखा, उनकी मुद्रा निष्ठुर, क्रोधित एव तिरस्कार से पूर्ण थी। उन्होने कहा, "क्यो यमूबाई, आजकल तुम्हारे भाई साहब बहुत सरल स्वभाव के बन गए हैं?" इतना कहकर वे चली गई।

कालकूट, हलाहल आदि विषो को निचोडकर जो विष बन सकता है वही उनके उपरोक्त वाक्यो मे भरा हुआ मुझे प्रतीत हुआ। वाक्य सरल था किन्तु

उसके पीछे बहुत बडा भेद छिपा था। शीघ्र ही कोई बवडर उठने वाला है और भैया की आज की कृति का प्रतिशोध अवश्य ही लिया जायगा इसकी झलक उपरोक्त वाक्य से प्रगट हो रही थी। मन-ही-मन मैं भय से काँप उठी थी। भैया सीधा-सादा था, घरेलु मामलो मे वह कभी ध्यान नही देता था, फिर न जाने आज उसे क्या हो गया था। रह-रहकर मेरे मन मे विचार आ रहा था कि व्यर्थ मे भैया ने यह झंझट मोल लिया है।

मैं भैया के पीछे उससे मिलने के लिए नही गई। क्योकि मैं जानती थी कि हम दोनो के लिए नई माँ के मन मे विष भरा है। आज की घटना के उपरान्त वे अवश्य हम दोनो पर नजर रखेगी, हमारा भाषण छिपकर सुनेगी अथवा सुनने की व्यवस्था करेगी। इसलिए भैया से भेट न करना ही मैने उचित समझा था। फिर भी उन आभूषणो को देखकर भैया ने क्या निर्णय किया था इसे जानने के लिए मै छटपटा रही थी। उसने जो किया था उसके लिए मुझे गुस्सा आ रहा था। भैया को ऐसा नही करना था—मन-ही-मन मै उससे नाराज थी, फिर भी जानना चाहती थी कि आभूषणो की परीक्षा करके उसने क्या निर्णय किया ?

रात को मेरी जब भैया से मुलाकात हुई तब प्रथम तो मैंने अपना क्रोध प्रगट किया। कुपित शब्दो मे मैने कहा, 'भैया, आज तो तुमने हद करदी। इस तूफान का सचार तुम मे कैसे हो पाया ? यदि मुझ से आकर कोई कहता कि भैया ने ऐसा किया है तो मे कदापि उसकी बात का विश्वास नही कर सकती थी। किन्तु मैंने तो स्वय अपनी आँखो से देखा है। मै तो आश्चर्य से अवाक् रह गई थी। भैया जो तुम कभी नही कर सकते उस कार्य को आज तुमने कैसे किया ?'

"कैसे करने का प्रश्न नही है। आज मौका मिल गया। तुमसे कहकर यह काम नही बन सकता था। हम लोगो को जल्दी ही बम्बई लौटकर जाना है इसलिए सोचा कि एक बार निर्णय कर लेना ही योग्य होगा। नही तो व्यर्थ में चिंता बनी रहती। लेकिन आज काम बन गया। मेरा आज का बर्ताव देखकर तुम्हें आश्चर्य होना स्वाभाविक है किन्तु स्वय मुझे भी आश्चर्य हो रहा है। मैं एकदम इतना ढीठ कैसे बन गया—नई माँ के इतना समीप जाकर कैसे बैठ गया ? मुझ पर पागलपन सवार था—मैं तो और भी बैठना चाहता था किन्तु सोचा जाने दो। जो देखना चाहता था वह देख चुका।"

मैंने कहा, "किन्तु क्या देखना चाहते थे—मुझ से भी तो कहो।"

"क्यो, तुम तो मुझ से नाराज हो, फिर क्यो जानना चाहती हो ?"

"इसलिए कि इन दिनो तुम मेरी देख-रेख मे रहते हो। मेरे कारण तुम्हारा स्वभाव बहुत सरल बन गया है। इसलिए सब कुछ जानना मेरे लिए आवश्यक हो गया है। बताओ क्या बात है ?"

"अच्छा जी। तो मैं तुम्हारी देख-रेख मे हूँ ? मैं नही जानता था। बताओ तो जरा कि तुम्हारे कारण मैं किस प्रकार सरल बन गया हूँ ?"

मैंने परिहास मे कहा, "यह नई माँ से जाकर पूछो—मुझे कहने की क्या आवश्यकता है।"

"अच्छा, तो नई माँ ने सर्टिफिकेट दिया है कि मैं सरल हो गया हूँ। फिर तो कुछ कहना ही व्यर्थ है।"

"खैर जाने दो—मुझे उन आभूषणो के बारे मे बताओ—"

"मैं जो देखना चाहता था देख लिया और जो जानना चाहता था सो जान लिया।"

"हाँ, हाँ वही तो मैं भी जानना चाहती हूँ। तुम बडे अजीब हो। अब तक तुम्हारा बचपन का स्वभाव वैसा ही बना है—अब तो तुम वकील बनने जा रहे हो—पुरानी आदत छोड दो।"

"वाह ! वकीलो के लिए तो यह बडी लाभदायक होती है। वकीलो को चाहिए कि जानी हुई बात वे तत्काल न कह दे। अच्छा, छोडो इन बातो को। मैं तुम्हे बताए देता हूँ।"

स्वर कुछ अधिक गभीर बनाकर उसने धीरे से कहा, "देखो यमुना, अपनी हँसली थी वह तो गई। यह किसी दूसरे की हो सकती है—चार दिन के लिए माँगकर लाई हो। यही हाल नथ का भी हो सकता है।"

इस पर मैंने शका प्रगट की। उसने कहा, "तुम ठीक कहती हो—मैं इस रहस्य को भली-भाँति नही समझ पाया, तभी तो इस प्रकरण से दूर रहा। मुझे थोडी-सी जानकारी मिल जाती तो मैं अवश्य इस रहस्य का भण्डा-फोड कर देता। अपनी नई नानी और वह जो एक बुढिया विवाहोत्सव मे मटकती फिरती थी उसने अवश्य कोई कार्यवाही की है—मुझे तो पूर्ण विश्वास हो गया है।"

"देखो, जरा सम्हालकर कदम उठाना। व्यर्थ मे पिताजी का मन हम लोगो के बारे मे कलुषित न हो इसका ध्यान रखना आवश्यक है।"

"पिताजी का मन कलुषित होने मे अब शेष क्या रहा है। क्या तुम यह सोचती हो कि पिताजी मुझे अच्छी दृष्टि से देखते है, उनकी दृष्टि मे मैं कुढने वाला अतर्मुख और मक्कार हूँ।"

"इसमे भी कोई शका है।" मैने हँसकर विनोदपूर्ण ढग से कहा, किन्तु उसका ध्यान कही और था, उसने मेरी बात नही सुन पाई। फिर हम लोग मौन हो गए और कुछ ही समय के बाद निद्रा देवी के आधीन हो गए।

७३

इस बीच की एक विशेष उल्लेखनीय घटना यह थी कि भैया और भाभी के बीच मेल-जोल करने विषयक कार्यवाही मे मैं और मेरी सहेलियाँ पूर्ण रूप से हार मान चुकी थी। भैया की परीक्षा समाप्त हो जाने के बाद मैंने भाभी को बम्बई मे बुला लिया था। उसे सुधारने के लिए हमने भरसक प्रयत्न किया था। किन्तु कुत्ते की दुम का ही उदाहरण चरितार्थ हो पाया था। उम्र मे वह अब काफी बडी हो चुकी थी, हर बात को समझ सकती थी फिर भी उसका विचित्र स्वभाव और असावधानी वृत्ति जैसे की तैसी बनी थी। पूना से बढकर उसके स्वभाव मे बुराई आ गई थी। मैने एक अलौकिक दुर्गुण उसमे पाया था। वह था मत्सर। इस दुर्गुण ने उसे पूरी तरह से जकड लिया था। लक्ष्मीबाई से उसने पाँच-सात बार बड़े ही विचित्र ढग से बातचीत की थी। हम लोग रात में तीसरी मंजिल पर एकत्र बैठा करते थे, कई बार आग्रह करने पर भी वह हम लोगो मे सम्मिलित नहीं हुई थी। एक बार तो उसने स्पष्ट शब्दों मे कह दिया था, "मुझे ऐसी बातें पसन्द नही हैं। इससे तो अच्छा

है कि मुझे पूना भेज दिया जाय ।" मेरी समझ मे नही आ रहा था कि वह मूर्ख है अथवा उसके सिर पर और ही कुछ भूत सवार है। आखिर इसका भी निर्णय हो गया। हम लोगो का सुख उससे देखा नही जाता था। उसकी इच्छा थी कि वह स्वतन्त्र रहे। दूसरो के घर न रहे। उसके विचार मे, "उसका पति मूर्ख था और उसके पिता ने उसे कुएँ मे ढकेलने की अपेक्षा इस घर में पटक दिया था।" मजबूर होकर वह इन बातो को प्रगटरूप से नही कह सकती थी फिर भी जिस प्रकार आग लग जाने पर पहले दुर्गन्ध, फिर धुआँ और अन्त मे ज्वाला की लपटे निकल आती है उसी प्रकार उसके विचार भी शनैः-शनैः प्रघट होते जा रहे थे। लक्ष्मीबाई और यशोदाबाई के पास उसने अपने मन की जलन तात्त्रिक-रूप से प्रगट की थी किन्तु वह पूर्ण-रूप से स्पष्ट नही हो पाई थी। आखिर भैया ने ही इस बात को स्पष्ट कर दिया था। भैया से वह कई बार कह चुकी थी कि "दूसरो के घर कब तक पडे रहेगे ? यहाँ का रहना व्यर्थ है। पढाई-अढाई कुछ नही हो रही है। कही दूसरे गाँव चलकर नौकरी कर लेना अच्छा होगा।" उससे यदि कोई कह देता कि अब तो तुम्हारे पति वकील साहब बनने जा रहे है तो त्योरियाँ चढाकर उत्तर मे वह कह देती, "इस जन्म मे तो कोई आशा नही है।" आखिर हम सब लोगो ने हार मानली थी। उसके बारे मे भैया का जो आग्रह था वही सही पाया गया। हम लोग समझ चुके थे कि भाभी को सुधारने का प्रयत्न करना निरर्थक है। फिर कभी इस झमेले मे पडना लाभदायक नही हो सकता था। भैया तो पहले ही हार मान चुका था। भैया का भाभी से बुरा बर्ताव नही था। पत्नी की ओर से जो सुख प्राप्त हो सकता है वह अपने भाग मे नही लिखा, यह सोचकर भैया ने भाभी को मनमाने ढग से व्यवहार करने की सहूलियत दे रखी थी।

भाभी के व्यवहार से तग आकर भैया ने एक दिन कहा था, "यमे, दुर्गी का वह हाल है और मेरा हाल तो तुम देख रही हो। जीवन मे सभी सुख प्राप्त नही हो सकते। वास्तव मे तुम और तुम्हारे पडोसी धन्य है। किन्तु तुम-जैसे सुखी जीव बहुत कम होते हैं। ससार मे हम-जैसो की ही अधिकता है।" भैया के इन निराशा भरे उद्गारो का उत्तर मैं किन आशापूर्ण शब्दो मे दे सकती थी। मैंने केवल इतना ही कहा था, "भैया, इस प्रकार निराश होने का क्या कारण ? आज नही तो कल उसमे सुधार अवश्य होगा। अभी तुम्हे कोई

आमदनी नही है, उसे भी स्वतन्त्रता नही है, इस कारण वह दुखी है। कल तुम लोगो के स्वतन्त्र हो जाने पर सुचारु रूपसे वह अपनी गृहस्थी जमा लेगी और फिर मुझे भी चार दिन के लिए अपने घर रहने के लिए बुलाया करेगी। तुम्हे चिन्ता करने का कोई कारण नही। "भैया मेरे शब्दो का खोखलापन खूब जानता था। खिन्नता से हँसकर उसने कहा, "यमू, यशोदा भाभी, लक्ष्मी भाभी और तुम-जैसियो के सहवास मे भी जिसे समाधान प्राप्त न हो सका उसे आजीवन कभी सुख की प्राप्ति नही हो सकती। अन्तिम बार अब हाथ जोडकर मेरा तुमसे निवेदन है कि इस विषय को फिर कभी न निकालना और न कभी उसके नाम का मेरे सामने उल्लेख करना।"

इस पर मैं क्या कह सकती थी। मन-ही-मन मैंने भी निश्चय कर लिया था कि फिर कभी इस विषय की चर्चा नही करूँगी। मुझे इस बात का बडा दुख हो रहा था कि मेरे भैया को उसके अनुरूप पत्नी का लाभ न हो सका। ऐसी विक्षिप्त पत्नी को लेकर वह अपनी गृहस्थी कैसे चला सकेगा। नई माँ के साथ उसका विभाव कैसे लग पाया था, इस बात का मुझे बहुत आश्चर्य था। भ्रम का परदा मेरी आँखो से गिर गया था और भैया के भावी जीवन के बारे मे चिन्तित हो उठी थी। आखिर हम लोगो ने सोचा था कि यदि वह पूना जाना चाहती है तो उसे वहाँ भेजना ही ठीक होगा। क्योकि हमारे यहाँ रहकर उसमे सुधार होने की कोई आशा नही थी। मैं अपनी पडोसिनो के साथ दोपहर मे एकत्र बैठा करती किन्तु वह वहाँ भी नही आती थी। कही धोती बिछाकर उस पर पडी रहती थी। किसी दिन लहर आने पर पूरे घर की झाडा-झूडी, लीपा-पोती और साफ-सफाई करने मे भिड जाती थी। एक दिन इसी प्रकार वह दोपहर मे तीन-चार घटे लेटी रही थी। मैने सहज भाव से उसे कहा, "भाभी, दोपहर मे कोई काम करना चाहिए, इस प्रकार सोने से क्या लाभ होगा? किसी सरल स्वभाव के व्यक्ति को मेरे कहने मे बुराई का आभास नही हो सकता था। किन्तु भाभी का स्वभाव तो विचित्र था? उसने कुत्सित स्वर मे कहा, "ठीक तो है! हम लोग तुम्हारे घर पड़े है न, तभी तो तुम्हारे ताने सहने होगे। जैसे मै इस घर की नौकरानी हूँ। जरा-सा लेटना भी मेरे लिए मना है। मेरा भाग्य ही फूटा है। हमारा जीवन इसी प्रकार बीतना है। अब तो तुम्हारे घर का काम-काज करना ही होगा।" इस प्रकार

वह बडबडाती रही। मैंने उससे बहुतेरा कहा कि मेरे कहने का आशय यह नही था। मै तो तुम्हारी दोपहर की नीद के बारे मे कह रही थी। मैंने तुम्हें अपने घर का काम-काज करने के लिए यहाँ नही बुलाया है। तुम तो रानी-जैसी बनी रहो, कुछ सीखो, हमारे साथ सभा मे और घूमने-फिरने चला करो। किन्तु वह मेरी बात क्यो मानने लगी। अपनी ही बात पर वह अडी रही।

हमारे घर दूसरे मजिल पर दिन मे पानी नही चढ पाता था, रात मे चढता था, इसलिए हम लोग रात मे पानी भर लिया करते थे। भाभी ने पानी का घडा उठाया और निचली मजिल से पानी भरके लाना आरम्भ कर दिया। मैंने उसके हाथ से घडा छीन लिया तो उसने दूसरा बर्तन उठा लिया। मैंने बहुतेरा मना किया किन्तु वह नहीं मानी। मुँह से कहती जा रही थी, "कहती है कि मैं काम नही करती, ठीक है, अब काम करके ही दिखाऊँगी।" और उस दिन से वह काम करने मे जुट गई थी। किसी प्रकार मनाने से भी नही मानती थी। सासूजी ने, गोपिका काकीजी ने, लक्ष्मीबाई और यशोदाबाई ने भी उसे बहुतेरा समझाया-बुझाया किन्तु फिर भी वह नही मानी। अब तो उसके साथ बातचीत करने मे भी भय मालूम होता था। न जाने किस बात का क्या अर्थ बना लेगी। ऐसी बाते मैं भैया से नही कहा करती थी। कहने से कोई लाभ तो था नही, उल्टे उसका मन उद्विग्न होकर आपसी अनबन के और ज्यादा होने की ही सम्भावना थी। फिर भी भैया का निवास-घर मे ही होने से कुछ अश को वह जान लेता था। इस प्रकार कुछ समय और बीत गया। अन्त मे जब कोई चारा न रहा और भैया ने भी बहुत आग्रह किया तब भाभी को पूना भेज दिया गया।

भाभी के पूना चली जाने के बाद हम लोगो का समय सुख से व्यतीत हो रहा था। मेरे पति और विष्णुपन्त एल० एल० बी० तथा भैया वकालत की पढाई मे जुट गए थे। पहले-जैसा समय बर्बाद नही किया जा सकता था। हम लोगो की पढाई मे भी पर्याप्त प्रगति हो रही थी। मैंने अग्रेजी की पढाई आरम्भ कर दी थी। हमारी शनिवार की सभा मे मैं अवश्य सम्मिलित होती थी। वहाँ जाकर मै बहुत-सी नई बाते सीख लेती थी। दिन-प्रतिदिन महिलाओ की उपस्थिति बढती जा रही थी। महिला-मडल की अच्छी प्रगति हो रही

थी। मैने भी दो-चार बार निबन्ध वाचन किया था। मेरे निबन्धो के विषय थे, स्त्रियो की वर्तमान अवस्था, विवाह-कार्य मे स्त्रियो का उत्तरदायित्व, ससुराल का बर्ताव आदि। इसके बाद मैंने एक और निबन्ध पढा था किन्तु उसके बारे मे विस्तारपूर्वक कथन करना चाहती हूँ।

७४

एक दिन सध्या समय मैं रसोई की व्यवस्था मे व्यस्त थी। मेरे पति के साथ भैया भी कहीं घूमने चला गया था। कुछ देर बाद भैया अकेला लौट कर आया और उसने कहा, "आज रघुनाथराव घर नही आयेंगे, कालेज के होस्टल मे ही रहेगे।" आजतक ऐसा कभी नहीं हुआ था, इसलिए भय से मै विचलित हो उठी थी और बार-बार भैया से उनके घर न लौटने का कारण पूछ रही थी। उसे भी पूरी जानकारी नही थी। उसने केवल इतना ही कहा कि उनका कोई परिचित व्यक्ति बीमार हो गया है और वे उसके पास ठहरेंगे। केवल इतना ही सुनकर मेरा समाधान नही हो रहा था किन्तु चिन्ता का विशेष कारण न देखकर मैंने भैया को भोजन कराके स्वय भोजन कर लिया, फिर भी उस रात मेरा चित्त शान्त नही था। बम्बई मे रहते हुए गत दो वर्ष मे ऐसा प्रसंग कभी नही आया था। दूसरे दिन सुबह वे जब घर लौटकर आए थे तो उन पर बहुत ही उदासी छाई थी। बीमार व्यक्ति बी० ए० के द्वितीय वर्ष का बहुत होशियार विद्यार्थी था। उनका घनिष्ट मित्र था। कभी-कभी वह हमारे घर आया करता था। विशेष पढाई के कारण अथवा अन्य किसी कारण से उसे पाँच दिन पहले ज्वर चढ आया था और वह कम न होकर बराबर बढता गया था। वह अकेला था, घर का कोई आदमी उसके साथ नही था। चार-पाँच दिन तक डाक्टर भी उसकी बीमारी का निदान

नही कर पाए थे। पाँचवे दिन जब डाक्टर ने चिन्ता व्यक्त की थी तो उसके घर तार भेजा गया था। घर मे उसके वृद्ध माता-पिता थे और घर भी कोकण प्रात के रत्नागिरी गाँव मे था। इसी मई मास मे उसका विवाह हुआ था। ऐसी अवस्था मे सोच-विचार करने के लिए समय नही था। फिर भी हर बात मे मेरी सम्मत्ति ली जाने की प्रथा के अनुसार सुबह घर आते ही उन्होने मुझसे कहा था, "मैं उसे अपने घर ले आना चाहता हूँ, तुम्हारा क्या मत है?" उसके घर की हालत सुनकर मेरी आँखो मे आँसू उमड आए थे। मैंने कहा, "क्या इसके बारे मे भी मुझसे पूछने की आवश्यकता थी?"

शाम को प्रिंसिपल से आज्ञा लेकर नाना साहब की मदद से वे अपने बीमार मित्र को घर ले आए थे। हम तीनो सहेलियो ने बीमार की यथा सभव परिचर्या की थी। हम लोगो मे से सदैव कोई बीमार के पास बैठा रहता था। फिर भी ऐसे ससय परमात्मा कभी किसी को यश लाभ नही होने देता, फिर हमको कैसे यश मिल सकता था। प्रतिदिन उसका बुखार बढता रहा। सातवें दिन उसके वृद्ध माँ-बाप भी आ गए। बहुत वृद्ध थे बेचारे। उनके साथ उनका एक सम्बन्धी भी आया था। माँ-बाप के आने तक वह लडका होश मे था। माँ-बाप को रोते देखकर उसने रुँधी हुई आवाज मे कहा, "रोओ नही। इन लोगो ने आपसे भी अधिक मेरी दवा-दारू का ध्यान रखा है।" इसके बाद उसकी हालत और भी खराब हो गई। रात मे वात का दौरा आया। वात मे आ जाने से वह छटपटा रहा था। वृद्ध माता-पिता सिवाय रोने के और क्या कर सकते थे। हम लोग हर तरह से उन्हे समझा-बुझा रहे थे, किन्तु वह निरर्थक था। क्या कहकर उन्हे समझाया जा सकता था। उन बेचारो का इकलौता बेटा, जिसका अभी-अभी विवाह हुआ था, बहुत ही होशियार, कुछ ही दिनो के बाद जो कमाऊ पूत कहलाता, उसे इस प्रकार अपनी आँखो के सामने दुनिया से उठकर जाता देखकर उनका दिल बैठा जा रहा था। शोकावेग से वे दोनों पागल हो उठे थे। हर किसी के पैर पकड कर बिलखकर चीख रहे थे, "बताओ, क्या हमारा रामकृष्ण अच्छा हो जायगा? नही, नही अब उसके अच्छे होने की कोई आशा नही हैं।" कोई कुछ करने को कहता तो वे तत्काल करते अथवा करने के लिए हम लोगो से कहते थे। हमारी सासूजी और गोपिका काकी उन्हे समझा-बुझा रही थी, किन्तु उसका क्या उपयोग हो

सकता था। लडके का ज्वर तीव्र होता जा रहा था और उसकी बकझक बढती जा रही थी। किसी उपाय का कोई परिणाम नही हो रहा था। जिस काम मे हाथ डाला था उसमे यश न आता देखकर मेरे पति बहुत दुखी हो रहे थे। आठवे दिन रात को वात मे आकर वह ऊट-पटॉग बकता रहा था, किन्तु सुबह होते-होते उसे कुछ होश आ गया था। फिर भी उसकी बकझक चल रही थी—अधिकतर उसकी बकझक अपनी पत्नी के बारे मे ही थी। वह बड-बडा रहा था, "देखा, मैं तो मना कर रहा था। अब क्या हो सकता है। अब उसे कह दो कि मैं तुम्हारा नही हूँ। यही होना था। हमारे भाग्य मे यही लिखा था। ·" इस प्रकार उसका बुखार बढता गया और दोपहर मे बारह बजे वह इस दुनिया से चल बसा। बेचारे माता-पिता के बारे मे मै और अधिक क्या कह सकती हूँ। केवल स्मृति मात्र से अब तक रोका हुआ मेरा दु ख का बॉध फूट जायगा। किसी प्रकार व्यवस्था आदि कर उन दोनो को उनके गाव भेज दिया गया। इस दुर्घटना के बाद दो महीने तक हम मे से किसी की मुद्रा पर आनन्द का चिन्ह भी नही दिखाई दिया था। इस दुर्घर्ष। प्रसग का परिणाम मेरे पति पर इतना जबर्दस्त हुआ था कि उसे मिटाने के लिए मुझे बहुत ही चिन्ता लगी रहती थी। विशेषत सम्बन्धी लोगो ने उन वृद्ध माता-पिताओ से एक महीने के अन्दर जो भीषण कृत्य करवाया था उसे सुन-कर तो हम लोग विह्वल हो उठे थे। उस अबोध बालिका पर जो अत्याचार किया गया था—किस प्रकार मैं उस घटना का वर्णन करूँ ? रामकृष्ण की मृत्यु से जो अनर्थ हुआ था उसके कारण बहुत दिनो तक हम लोग बहुत ही उदास हो गए थे। किन्तु सब कुछ बहाकर ले जाने वाली काल गति ने हमारी उदासी को भी धीरे-धीरे धो दिया था।

उस दुर्घर्ष घटना के पन्द्रह दिन बाद एक दिन मध्यरात्रि मे मुझे जगाकर बहुत ही उदास स्वर मे उन्होने कहा, "क्या उस रामकृष्ण की और हमारी अवस्था मे विशेष अन्तर नही है न ?" उस प्रश्न को सुनकर मै विचलित हो उठी। घबडाकर मैने उनके गले मे बाहे डालकर रुआँसे स्वर मे कहा, "यह आप कैसी बात कर रहे है ? हमेशा उसी बात का मनन करना ठीक नही। आप उस बात को मन से दूर कर दीजिए।"

किन्तु मेरी बात की ओर उनका ध्यान कहाँ था ? अपनी ही धुन मे वे

बोल रहे थे, "बूढा ही सही किन्तु उसका पिता तो है—जमीन जायदाद भी होगी। किन्तु हमारे पास क्या धरा है ?·· " जोर से उनका हाथ हिलाकर मैंने फिर कहा, "आप क्या कह रहे है ? क्यो ऐसी बाते मुँह से निकाल रहे है ?" फिर भी उनका मेरी ओर ध्यान नही था। कुछ देर बाद उन्होने कहा, "ठीक, ऐमा ही करना होगा। इसके अतिरिक्त अन्य मार्ग नही है। अथवा वह ·· ·· " इतना कहकर उन्होने एक दीर्घ आह भरी थी। मैं बहुत घबडा गई थी—ऊबकर मैने कहा, "आप यह क्या कह रहे है ?", मेरा प्रश्न सुनकर उन्होने केवल इतना ही कह दिया था, "कहाँ, क्या कह रहा हूँ ?" कुछ देर तक मौन रहने के बाद उन्होने फिर कहा, "क्या तुम नही सोचती कि कुछ व्यवस्था करना आवश्यक है ?" मेरी समझ मे कुछ नही आ रहा था। फिर भी मै इतना समझ चुकी थी कि अवश्य कोई गम्भीर प्रसग है। मैंने कहा, "किस बात की व्यवस्था करनी है ?" उत्तर न देकर वे चुप बैठे रहे। मैंने जब दुबारा पूछा तो उन्होने कहा, यदि मेरा भी यही हाल हुआ तो मेरे पश्चात् तुम्हारी और माताजी की व्यवस्था के बारे मे मैं कह रहा था।"

यह सुनकर मेरे मनकी क्या अवस्था हुई थी इसकी कल्पना ही की जा सकती है। मेरे कधे पर हाथ रखकर गद्गद् स्वर मे उन्होने कहा, "बस, इसी बात पर तुम अपने आपको पढी-लिखी और होशियार कहती हो। ऐसी बाते सुनकर अन्य स्त्रियो-जैसी तुम भी घबडा गई ? फिर तुममे और उनमे क्या अन्तर रहा ? क्या ऐसे प्रसग कम लोगो पर आते है ? इसलिए ठडे दिमाग से क्या ऐसी बातो का विचार करना आवश्यक नही है ?" कुछ देर तक वे मौन रहकर देख रहे थे कि मुझ पर उनके कहने का क्या परिणाम हुआ है। किन्तु उनके मेरे पश्चात् शब्द तीर की तरह मेरे हृदय मे चुभे थे—मेरे मुँह से शब्द नही निकल रहा था। उनकी गोद मे मस्तक रखकर मैं मूक रुदन कर रही थी। मेरी विकल अवस्था देखकर मेरे सिर पर हाथ फेरते हुए उन्होने कहा, "खैर जाने दो, इस समय मै इसके बारे मे कुछ अधिक नही कहूँगा। किन्तु दुर्भाग्य से ऐसा प्रसग आ जाने पर तुम्हे सतर्क बना रहना चाहिए।" इतना कहकर वे मौन हो गए थे किन्तु मेरा मन अस्वस्थ हो उठा था। इस विषय को अपने मन से निकालने का मैंने बहुतेरा प्रयत्न किया किन्तु मुझे सफलता नही मिल रही थी। रात भर मुझे नीद नही आई। सुबह होते-होते मेरी आँख

लग गई थी किन्तु उस थोडे से समय मे भी मैने कई भयानक स्वप्न देखे थे। अन्तिम स्वप्न मे मैने देखा कि मेरा भाग्य फूट चुका है और मेरी इस दुरावस्था मे कोई दुष्ट मेरे समीप आया है (इस समय मैं उस दुष्ट का नामोल्लेख करना नही चाहती) समीप आकर एक हाथ से उसने मेरे बालो का जूडा पकडा और दूसरे हाथ मे थामे हुए छुरे से मेरी गर्दन काटली है। मै चिल्लाकर उठ बैठी किन्तु समीप मे केवल वे ही थे।

उपरोक्त घटना का इस स्थान पर उल्लेख करने का कारण केवल इतना ही है कि इसके बाद कई बार उन्होने इस विषय को चालना दी थी। इसका मुख्य कारण यह था कि किसी प्रकार मेरा मन कुछ कठोरता धारण कर सके। कुछ ही दिनो बाद उन्होने अपना ७,००० रु० का बीमा उतरवा लिया था।

रामकृष्ण की हृदयद्रावक घटना के बाद उसकी अल्पवय की विधवा पर धर्म के नाम पर जो अत्याचार किया गया था उसे सुनकर हम लोगो पर जो उदासी छा गई थी, वह कालगति के अनुसार धीरे-धीरे कम होती गई किन्तु फिर भी उस घटना को भुलाया नही जा सकता था। मैंने इस विषय पर एक लेख लिखा था जिसे मैने हमारी शनिवार की सभा मे पढकर सुनाया था। वह लेख आज भी मेरे पास मौजूद है। कई स्थानो पर मेरे लिए अतिप्रिय कर-कमलो द्वारा उसकी अशुद्धियो को शुद्ध किया गया है। यदि मुझे इस बात का ज्ञान होता कि ऐसी ही दुर्धर्ष घटना का एक दिन मुझे भी शिकार बनना है तो मेरा लेख इससे भी अधिक ज्वलत भाषा मे लिखा जाता। इन स्मृतियो से मेरा मन अब अस्वस्थ हो उठा है। मुझे शका है कि मैं अन्त तक अपनी इस जीवनी को लिख सकूंगी या नही, किन्तु नही, अब मैंने अपने कलेजे पर पत्थर रख लिया है और जिस कार्य के लिए मैं अब तक जीवित हूँ उसे पूर्ण करके ही अन्तिम श्वास छोडूंगी। अब इस समय कुछ लिखने के लिए मैं बिलकुल असमर्थ हूँ इसलिए कुछ समय के लिए लेखनी को अलग रखना ही अनिवार्य हो गया है।

७५

गत परिच्छेद मे वर्णित घटना को बीते अब बहुत दिन हो चुके थे। उसी-जैसी विशिष्ट घटना की वार्ता सुनते ही उस घटना की स्मृति होकर मन उदास हो जाता था। भैया और वे अपनी पढाई मे जुट गए थे। अब पढाई मे किसी प्रकार की ढील-पोल न करने का उन दोनो ने निश्चय कर लिया था। परीक्षा मे सम्मिलित होने के लिए एक वर्ष की अवधि थी। किन्तु परीक्षा मे उच्च श्रेणी प्राप्त करने के लिए परिश्रम की अत्यन्त आवश्यकता थी। फेलोशिप का कोई भरोसा नही था, उसकी मुद्दत दो वर्ष की थी किन्तु तीसरे वर्ष के लिए भी सौभाग्य से मिल गई। और भी पचास साठ रुपये मासिक प्राप्ति हो सकती थी किन्तु अधिक समय नष्ट करना ठीक नही था। साथियो का कहना था कि फेलोशिप बन्द नही होगी इसलिए दूसरी नौकरी नही की गई। भैया की परीक्षा के लिए केवल दो-चार महीने ही शेष रह गए थे। उसकी परीक्षा मे बहुत ही कठिनाई थी। दो-तीन सौ परीक्षार्थियो मे से मुश्किल से दस-बारह उत्तीर्ण किए जाते थे। इसलिए भैया का घबडाना स्वाभाविक था। सब लोग उसे खूब हिम्मत दिला रहे थे और वह भी खूब पढाई कर रहा था। इन चार-छ महीने मे उसने पढाई मे बिलकुल ढिलाई नही की थी। इसलिए मुझे भी आशा हो गई थी कि पास होने वाले दस-बारह विद्यार्थियो मे भैया का नम्बर अवश्य आ जायगा। इस बीच मे पूना मे दो महत्त्वपूर्ण घटनाएँ घटी थी। अजिया सासूजी काशी गई थी और धोडू भैया घर से भाग गए थे। उनके भाग जाने पर दूसरे दिन गोपाल मामाजी का तार आया था और फिर शकर मामाजी का पत्र भी आया था। बाप-बेटे मे तुमुल वाग्युद्ध हुआ था और परिणाम स्वरूप लडका घर से भाग निकला था। पूना वालो का तर्क था कि घर से भागकर वह बम्बई मे हमारे यहाँ ही आ सकता था, इसलिए उन्होने तार और पत्र भेजे थे। हमारे यहाँ से भी तार भेजकर सूचित किया गया था कि यहाँ नही आया, आते ही सूचना दी जायगी। हम लोगो की पहले ही से धारणा थी कि एक दिन वह अवश्य घर से भागेगा। बम्बई मे वे लोग जब आए थे और बाप-बेटे मे जो झगडा हुआ था तभी से उन दोनो मे अनबन हो गई थी। जो बेटा बाप की सीख के अनुसार अपनी माँ का अपमान किया करता था वही अब पिता का भी

अपमान करने पर उतारू हो गया था। "शिष्यादिच्छेत्पराजयम्" जैसी कहावत चरितार्थ होते देखकर अब पिताजी को अवश्य संतोष हुआ होगा। हम लोग प्रत्यक्ष तो वहाँ नही थे किन्तु लोगो के मुँह से हमने पूरी कथा सुन ली थी। धोडू भैया के पलायन का मुख्य कारण यह था कि उन्होने अपनी माँ का पक्ष लिया था। कुलीन एव सभ्य घर मे जिसका प्रवेश होना वर्ज्य माना जाता है ऐसी एक स्त्री को घर मे लाकर उसकी आवभगत और देख-भाल करने के आदेश शकर मामाजी ने अपनी श्रीमती को दिए थे। गोपाल मामाजी कही गाँव गए थे। छोटी मामीजी बडबडाती रही, किन्तु उनकी बकभक का क्या परिणाम हो सकता था। स्त्रियो की बकभक तो चूल्हे तक ही सीमित रहती है। फिर छोटी मामीजी हो या और कोई तेज मिजाज वाली स्त्री क्यो न हो। उनसे जो बन सका वह उन्होने किया—उनके बस का इतना ही था कि एक धोती लेकर ऊपर वाले कमरे मे वे जाकर सो गई और बकभक करती रही। बनू दीदी भी मुँह बिगाड कर एक ओर बैठी रही और उमा मामीजी मन-ही-मन चिढती रहीं। धोडू भैया ने जाकर पिताजी को सारा ब्यौरा सुना दिया—फिर क्या था। शकर मामाजी गुस्से के मारे आग-बबूला हो उठे और उमा मामीजी को गालियाँ सुनाने लगे। इतने पर भी उनका क्रोध शात नही हुआ और ये हाथापाई पर उतर आए। सुपुत्र देख रहे थे, उनसे नही सहा गया। चीखकर उन्होने कहा, "शरम नही आती मेरी माँ पर हाथ उठाते हुए?" और उन्होने पिताजी का हाथ पकड लिया। और यह सब महाभारत उस बाजारू औरत के सामने होता रहा। फिर क्या था। एक ही हगामा मच गया। बाप-बेटे मैं हातापाई हो गई और बेटा घर से निकल गया। उमा मामी को बहुत तग किया गया। दो दिन पश्चात् छोटे मामाजी घर लौट आए थे। उन्हे धोडू भैया के भागने का समाचार मिलते ही उन्होने हमे तार भेजा था। जब तार भेजने की बात शकर मामा को मालूम हुई तो उन्होंने हमे पत्र लिखा, "मैं उस शैतान का दर्शन नहीं करना चाहता, मेरी ओर से वह मर चुका। ऐसी सतान से तो नि.सतान होना अधिक अच्छा है। इस अंग्रेजी विद्या का यही गुण है कि अपने बाप का अपमान करना। यदि वह बम्बई मे हो तो मुझे सूचना देने की कोई आवश्यकता नहीं। मैं उसका मुँह देखना भी नही चाहता। गोपाल ने तुम्हे तार भेजा है

किन्तु उसका उत्तर देने की कोई आवश्यकता नही है। यदि वह तुम्हारे घर आया हो तो उसे लात मार कर घर से निकाल दो।" आदि

इस प्रकार तार और पत्र आने पर हमारे यहाँ कर्त्तव्यानुसार धोडू भैया की खोज करना आरम्भ हुआ। किन्तु महासागर मे सुई की खोज और बम्बई मे भागकर आए हुए लडके की खोज करना एक-सा है। धोडू भैया भागकर बम्बई मे आए होगे ऐसी कल्पना मात्र थी। निश्चित नही मालूम था। जहाँ तक हो सका उनका शोध करने का प्रयत्न किया गया किन्तु उनका पता नहीं चला। केवल यही आशा बनी रही थी कि वे स्वय आकर उपस्थित होगे। पन्द्रह दिन बीत जाने पर यह आशा भी जाती रही। किन्तु अचानक एक दिन एक पत्र आया। पत्र बनू दीदी के पति ने भेजा था। उसमे लिखा था, "इस प्रकार का एक लडका हमारे घर भागकर आया है; कहता है, कही नौकरी दिला दो। मैने उससे कहा कि घर लौट जाओ और अपनी पढाई पूरी करो। किन्तु उसने निश्चय कर लिया है कि वह पूना लौटकर नही जायगा आदि।" यह पत्र देखकर हम लोगो को आश्चर्य हो रहा था। क्योंकि जिनसे हमारा कोई सम्बन्ध नही रहा था, अपनी घर वाली का त्याग करने से जिन्हे हम लोग कोसा करते थे, उनके घर जाकर धोडू भैया ने आश्रय पाया है, इसकी हम कल्पना भी नही कर सकते थे। किसी बहाने से उन्हे वहाँ से वापस बुलाना आवश्यक था। इसलिए हमारे घर से पत्र भेजा गया। पत्र मे लिखा था कि न आने पर स्वयं लेने के लिए आ रहा हूँ। आखिर उन्होने आने की मान्यता दी। किराए के लिए रुपये भेजे गए और आखिर महाशय बम्बई मे पधारे। उनके आ जाने पर बहुत दिनो तक हम लोगो ने मौन व्रत धारण किया था। इसलिए कि फिर कही बात का बतगड बनाकर महाशय चले न जायँ। किन्तु एक दिन स्वयं उन्होने मुझे पूरा किस्सा सुना दिया। मैंने जो सुना था उससे कही अधिक धोडू भैया ने मुझे बताया। उन्होने अपनी माँ का पक्ष समर्थन किया था और पिताजी को खूब भला-बुरा कहा था। बीच-बीच मे जिसके घर मे आ जाने से यह अनर्थ हुआ था उसे वे खूब गालियाँ दे रहे थे। बातचीत मे वे तन्मय हो गए थे और अपने पिताजी की कई भयानक अत्याचार भरी घटनाओ का वर्णन कर रहे थे। उन बातो को सुनकर मेरे तो रोगटे खडे हो गए थे। जो शकर मामाजी घटो नाक पकड कर पूजा-पाठ करते थे, गोमुखी

मे हाथ डालकर घटो जप-जाप्य किया करते थे, सनातन परिपाटी के विरुद्ध जरा किसी का बर्ताव देखते ही जो घर को सिर पर उठा लेते थे और सुधारको की जहाँ-तहाँ खिल्ली उडाने मे जो अपने आपको कृतार्थ मानते थे, आज उन्ही का लडका उनकी यथेष्ट निन्दा कर उन्हे गालियाँ दे रहा था, यह चित्र नि-सदेह बडा ही चमत्कृतिपूर्ण था। शकर मामाजी की बहुत-सी बाते मै पहले भी सुन चुकी थी किन्तु आज प्रत्यक्ष उनके बेटे के मुँह से और भी अधिक सुन कर मैं दग रह गई थी। वास्तव मे शकर मामा के लिए यह बहुत ही अपमान-जनक था और इसमे उनके जीवन का पराजय निहित था। धर्म के नाम पर उन्होने जो स्वाग रचा था उसका उन्हे यथोचित प्रायश्चित् मिल रहा था। मै मन-ही-मन खुश हो रही थी। रात को जब हम सब एकत्रित बैठे थे तब धोडू भैया ने अपने पिताजी की गाथा सुनाना आरम्भ कर दिया। मैने उन्हे चुप करने का प्रयत्न किया किन्तु वे कब मानने वाले थे। दूसरे दिन भी उन्होने जब उसी गाथा के पन्ने उलटना आरम्भ किया तब मेरे पति ने उन्हे डाट दिया था। फिर भी वे कहते गए। तीसरे दिन उन्होने बनू दीदी के पति का किस्सा सुनाया। बनू दीदी को त्यागने पर भी उनकी गृहस्थी बडी रोचकता से चल रही थी। उस वर्णन को सुनकर मुझे बहुत दु ख हो रहा था। यद्यपि बनू दीदी मेरा मत्सर किया करती थी, सदैव मेरी बुराई मे ही आनन्द माना करती थीं, फिर भी वे मुझ-जैसी ही एक स्त्री थी। उनकी दुर्दशा का वर्णन सुनकर, और उनका भावी जीवन दु ख के अन्धकार मे डूबा देखकर मुझे खेद होना स्वा-भाविक ही था। उनकी दुर्दशा का दुखद वृतान्त कथन करना मैं उचित नही समझती। कुछ दिनो बाद धोडू भैया को हाई स्कूल मे भर्ती करा दिया गया, इतना कहकर मै अब कथा सूत्र को आगे बढाती हूँ।

७६

इस परिच्छेद मे मैं बहुत-सी बाते बता देना चाहती हूँ। न जाने मेरा मन थकता जा रहा है। उन दिनो की कई बातो की मुझे स्मृति हो आती है, किन्तु उन स्मृतियो पर कालिख पोतने वाली जो घटना घटी है उसकी स्मृति से उन बातो का मुझे विस्मरण हो जाता है। दिन-प्रतिदिन मेरी शक्ति क्षीण होती जा रही है और सदैव भय लगा रहता है कि मैं अपने इस कार्य को पूर्ण कर सकूँगी या नही। भैया की और मेरी भी बहुत इच्छा है कि इस जीवनी को मैं पूर्ण कर सकूँ। भैया मेरे स्वास्थ्य की ओर बहुत ध्यान देता है। किन्तु मैं··· ···नही, नही, मुझे इस प्रकार धैर्य नही खोना चाहिए। यदि मैं हताश हो गई तो भैया को बहुत दुख होगा। इसलिए निराशा को दुतकार कर मुझे अपने अगीकृत कार्य मे जुटना ही होगा। अब तक मैं कुछ सुख विषयक और कुछ दुखदायक घटनाओ का वर्णन करती रही हूँ। इस परिच्छेद मे भी मैं एक आनन्ददायक और एक दुखदायक घटना का वर्णन करना चाहती हूँ। गत परिच्छेद मे मैंने कहा था कि भैया की परीक्षा के लिए दो-तीन महीनो की अवधि रह गई थी। उसके अनुसार दो-तीन महीनो के पश्चात् भैया परीक्षा मे सम्मिलित हुआ था और आश्चर्य एव आनन्द की बात है कि उसमे वह उत्तीर्ण हो गया था। वकालत की परीक्षा मे पहले ही वर्ष पास होना दुर्लभ था किन्तु सौभाग्य से भैया पास हो गया। हम लोग खुशी से फूले नही समा रहे थे। मुझे लग रहा था जैसे भविष्य मे मेरे भाग्य मे अब केवल सुख ही लिखा है। अब चिता केवल उनकी परीक्षा के बारे मे लग रही थी, किन्तु उनके बारे मे चिता करना निरर्थक था। उनके पास होने मे आशका का कोई कारण ही नही था। चिता केवल भैया के बारे मे थी किन्तु वह भी पास हो गया था। जिसने सुना वही आनन्दित हो उठा था। दादी को तो हर्षोन्माद होने की नौबत आ गई थी। भैया स्वय बहुत खुश हुआ था। उसकी खुशी का विशेष कारण भी था, मन-ही-मन वह सोच रहा था कि पूना की अपेक्षा किसी जिले में जाकर सनद प्राप्त करली जाए। विशेष बुद्धिमान न होने पर भी प्रथम प्रयत्न मे ही यश प्राप्त होना उसकी दृष्टि मे बहुत महत्त्वपूर्ण था। जो निश्चय किया था उसके अनुसार आज दादी के लिए अपने पैरो पर खडे रहने की शक्ति उसे

प्राप्त हो गई थी। वह अब पूना जाने की व्यवस्था मे लग गया था। दादी की इच्छा थी कि मै भी चार दिन के लिए आकर उससे मिल आऊँ। आखिर हम पति-पत्नी ने एक योजना बनाई। उसके अनुसार तय किया गया कि मै भैया के साथ पूना जाऊँ और मई माह के अन्त मे वे स्वय पूना आकर मुझे साथ लिवा लाएँ। अब पढाई मे विशेष ध्यान देना आवश्यक था और पूना मे रहकर पढाई करना असम्भव था। इसलिए उन्होने बम्बई मे ही रहना निश्चय किया था। सासूजी ने भी मेरे जाने के लिए सम्मति प्रगट की थी। अत भैया के साथ मैने पूना के लिए प्रस्थान किया। पूना मे चार दिन बडे सुख से बीते थे। सुन्दरी को भेजने के लिए उसके पति एव ससुराल वालो को पत्र भेजा गया था, उसके अनुसार उन लोगो ने उसे पूना भेज दिया था। दो दिन के पश्चात् मै दुर्गी के घर गई थी वहाँ जाकर मैने उसकी पूछ-ताछ की थी। अब उसका स्वास्थ्य कुछ सुधर गया था किन्तु बच्चा पहले-जैसा ही दुर्बल था। उसे लेने के लिए हाथ बढाते ही रो देता था। अब दो-चार शब्दो का उच्चारण अवश्य कर लेता था। या यूँ कहा जाए कि उसकी सारी शक्ति और होशियारी उसके मुँह मे आ बसी थी। दुर्गी उसे पहले से भी अधिक प्यार करती थी। उसकी धारणा थी कि ससार के समस्त गुण उसके बच्चे मे वास करते है। मुझे देखते ही उसने बच्चे को मेरे सम्मुख करते हुए उससे कहा देखो, यह है तुम्हारी यमू मौसी। मैने बच्चे को ले लिया किन्तु वह रोता रहा जब वापस अपनी माँ की गोद मे जाकर बैठा तब लगा बडबडाने। यदि बच्चा हृष्ट-पुष्ठ होता तो सुन्दर दिखाई देता। बहुत होशियार मालूम होता था, बिलकुल अपनी माँ-जैसा। सभी बातो मे वह अपनी माँ की प्रतिमा था। माँ-जैसा ही स्वभाव मालूम होता था। किसी बात के लिए हठ करने पर यदि वह नही मिलती तो बच्चा उसके लिए अपना सिर तक फोड लेता। हमारी दृष्टि मे जो दोष थे उन्हे दुर्गी अपने बच्चे के गुण समझती थी। बच्चे के प्रति उसका इतना अधिक स्नेह देखकर मुझे आश्चर्य हो रहा था फिर भी सतोष हुआ था। क्योकि उसे बच्चे से जो अत्यधिक स्नेह था उसके कारण ही वह अब तक जीवित थी। अन्यथा कभी की चल बसती। उसके पति का कभी पता चल जाता और कभी वह फिर लापता हो जाता। किन्तु इस अवधि मे वह लौटकर घर नही आया था। कोई कहता था कि वह किसी नाटक मडली मे है, कोई कहता कि बेकार

कही घूमा करता है। घर उसने कभी पत्र नही भेजा। उसके बारे मे दुर्गी का क्या मत है यह जानने के लिए मैंने डरते हुए बात चलाई थी किन्तु उसका मत पहले-जैसा ही तिरस्कार पूर्ण था। तिरस्कृत स्वर मे उसने कहा, "आना होगा तो चले आयँगे—आखिर जायँगे कहाँ। मुझे तो बस मेरा मुन्ना·· ···" वह और भी कुछ कहने जा रही थी किन्तु इसी समय मुन्ना ने दूसरी ओर आले मे रखा हुआ दिया नीचे पटक दिया था। झट से बच्चे के पास जाते हुए उसने कहा, "तेरी चपलता से तो मैं तग आ गई हूँ। देखो, तुम्हारी मौसी तुम्हे पागल कह रही है। बताओ, क्या तुम पागल हो ?" ऐसा कहकर बच्चे को अपने पास आने के लिए वह मना रही थी। एक ही समय पति और पुत्र के सम्बन्ध मे दुर्गी का विचित्र भाव देखकर मैं दग रह गई थी। पति के बारे मे बोलते समय उसके स्वर मे तिरस्कार, द्वेष, क्रोध आदि झलक रहा था और पुत्र के बारे मे बोलते समय उसके स्वर से वात्सल्य भाव उमड रहा था। कितना विचित्र विरोध था। कुछ भी हो, किन्तु उसकी स्थिति मे सुधार होता देखकर मुझे सतोष हुआ था। उसके मायके वालो की भी स्थिति सुधर गई थी। उसके पिता के वेतन मे कुछ वृद्धि हो गई थी। दुर्गी का भाई भी मैट्रिक पास हो गया था। भैया परीक्षा मे पास हो गया है और शीघ्र ही वह वकालत करना आरम्भ कर देगा यह समाचार सुनकर उन लोगो को बडी खुशी हुई थी। यदि अपना दामाद भी कुछ ढग का होता तो ऐसी ही परीक्षा पास करके कहीं अपनी आजीविका कमाता, ऐसा वहिना काकू के कहने पर उत्तर मे उनकी बहू ने कहा था, "अब उनकी बात छोडो। जो होना था सो हो गया, अब यह मुन्ना भगवान की दया से बडा होने पर अवश्य अपना नाम उज्ज्वल करेगा।" इस प्रकार उन लोगो से बातचीत कर तथा दुर्गी को अपने घर किसी दिन भोजन करने के लिए आने को निमत्रित कर मैं अपने घर लौट आई थी।

भैया के पास होने की खुशी मे हम सब लोग थे और मुझे आशा थी कि भाभी के स्वभाव मे अवश्य परिवर्तन होकर ही रहेगा। मेरा मन नही माना और मैंने भैया के पास अपने विचार को प्रकट कर दिया। किन्तु भाभी के बारे मे भैया का मत अडिग था। उसने हँसकर भाभी की ओर देखते हुए कहा, "परिवर्तन तो अब केवल एक बार ही हो सकता है।" भैया के एक बार का

अर्थ मेरे ध्यान मे नही आया। सहज भाव से मैंने कहा, "पहेलियाँ न बुझाओ भैया। तुम्हारे एक बार का क्या अर्थ है ?"

मेरा प्रश्न सुनकर भाभीजी ने मुँह बिगाड लिया और मुझ पर आँखे गडाते हुए उत्तर मे कहा, "तुम्हारी समझ मे नही आया दीदी ? एक बार से मतलब है मेरे श्मशान मे चले जाने के बाद।"

इस पर कोई क्या कह सकता है। उसका भाषण सुनकर मेरे तो रोगटे खडे हो गए। भैया ने कुछ नही कहा। वह भाभी से सहसा बातचीत नही करता था। जहाँ तक हो सकता था भैया उसके प्रसग को टाल ही देता था। भैया के पास होने से अवश्य ही भाभी का स्वभाव बदल जायगा, ऐसी जो मेरी धारणा थी वह अनुभव से असत्य सिद्ध हुई और अत मैं मैने भाभी के स्वभाव की तुलना कडवे करेले से और कुत्ते की टेढी दुम से ही की थी। वह क्या चाहती थी इसे कोई नही जानता था। मैने केवल अन्दाज लगाया था कि स्वतन्त्र होने की उसे तीव्र इच्छा है। किन्तु स्वतन्त्र होने का मुख्य साधन जो भैया का परीक्षा मे पास होना था, वह हो जाने पर भी उससे भाभी को सतोष नही हुआ था। दूसरा भी एक कारण दिखाई दे रहा था। भैया और मेरे बीच जो एक अकृत्रिम स्नेह था वह भी सम्भवत उसे अच्छा नही लगता था। यह हमारा केवल तर्कमात्र था। प्रत्यक्ष प्रतीति नही हो पाई थी। उसके लिए अभी कुछ समय शेष था। यथावकाश उसकी भी प्रतीति आगे चलकर होनी थी।

पूना मे मायके मे आई थी। फिर भी कुछ दिन ससुराल मे जाकर रहना भी आवश्यक था। तदनुसार मै ससुराल गई थी। मेरे इस आगमन के समय एक दु खदायक घटना, किन्तु जिसके सम्बन्ध मे वह घटी थी उसके लिए वह सुख-दायक ही कही जा सकती है। इन दिनो उमा मामीजी को बुखार आ रहा था। किन्तु किसी को पता नही था और बुखार मे ही वे ठडे पानी से नहाया करती थी। दिन-प्रतिदिन उनका स्वास्थ्य गिरता जा रहा था। वे स्वय अपने स्वास्थ्य की ओर जरा भी ध्यान नही देती थी। मेरी तो धारणा है कि वे जान-बूझकर ऐसा कर रही थी। वे अपने जीवन से ऊब गई थी और शीघ्र छुटकारा पाने के लिए हर साधन से मृत्यु को आमत्रण दे रही थी। मैं अब बडी हो चुकी थी, विशेषत हम दोनो मे अत्याधिक प्रेम-भाव होने से मैने उनसे कहा, "आपका स्वास्थ्य बहुत गिर गया है। आपको ज्वर तो नही आता ?" कितु

उस साध्वी ने अपने बारे मे एक शब्द भी नही कहा, उल्टे हम लोगो की, और सासूजी की पूछ-ताछ करती रही। एक दिन एकान्त मे उन्होने मुझ से कहा, "क्या मेरी ननदजी से अब भेट नही होगी ?" अब की बार तुम जब पत्र लिखोगी तो उसमे लिख देना कि आप कुछ दिनो के बाद यहाँ आयँगी ही, सो जरा पहले ही आ जाइएगा। यह कहते समय उनके चेहरे पर जो निराशा छाई थी उसे मैं आज तक नही भूल पाई हूँ। मैंने उनके कहने के अनुसार पत्र लिख दिया था और फिर वे बार-बार मुझसे उत्तर के बारे मे पूछ-ताछ किया करती थी। चार दिन के बाद उन्होने फिर मुझ से कहा था, "तुम अब यही रुक जाओ।' उनका आशय मेरी समझ मे नही आ रहा था। सम्भवत उन्हे मालूम हो गया था कि अब वे अधिक दिन की साथिन नही है और तभी इस प्रकार कहा करती थी। इसके बाद दो ही चार दिन मे उनका ज्वर बढता गया और अन्त मे उन्होंने खटिया पकड ली। गोपाल मामाजी ने डाक्टर को बुलाया था किन्तु उमा मामीजी ने दवा लेनें से इकार कर दिया। डाक्टर को बुलाने से शकर मामाजी नाराज़ हो गए थे। उन्होने औषधियो की एक सूची बनाकर काढे की पुडिया लाकर दी और काढा लेने के लिए आज्ञा दी, किन्तु उमा मामीजी ने काढा लेने से भी इकार कर दिया। मेरे और गोपाल मामाजी के अतिरिक्त और कोई उनके पास आने पर वे आँखे मूदकर मौन हो जाती थी। उनकी देख-भाल करने के लिए मुझे अब उनके पास रहना आवश्यक हो गया था और इसलिए मैं ससुराल मे ही रुक गई थी। बनू दीदी को तो वे अपने पास तक नही आने देती थी। गोपाल मामाजी ने जब वारु दीदी को बुलवाने के लिए पूछा तो उन्होने कहा, "देखो आ जाय तो ?" गोपाल मामाजी ने वारु दीदी को लाने की व्यवस्था की थी। अजिया सासूजी और छोटी मामीजी का बर्ताव उनके साथ अच्छा हो रहा था। फिर भी वे बार-बार मुझ से मेरी सासूजी के आने के बारे मे पूछा करती थी। धोडू भैया से उन्हें प्यार था। कैसा भी हो किन्तु वह उनका इकलौता बेटा था। मैंने दो-तीन पत्र भेजे थे और गोपाल मामाजी ने भी एक पत्र लिखा था, उसके अनुसार माताजी को लेकर मेरे पति बम्बई से एक दिन आ गए थे। क्या ही विचित्र बात है, मानो मेरी सासूजी से मिलने के लिए ही उमा मामीजी ने अपनी जीवन-यात्रा स्थगित कर रखी थी। सध्या के समय सासूजी बम्बई से आई थी और उसी रात मे, सुबह होते-होते उमा मामीजी के

प्राण पखेरू उड गए। अतिम क्षण तक वे होश मे थी। मरने से पहले घर के प्रत्येक व्यक्ति को नाम से पुकार कर उन्होने अपने पास बुलाया था। अन्त मे कराहते हुए उन्होने कहा, "अब मै जा रही हूँ, कुछ कहा-सुना हो तो उसका बुरा न मानना।" गोपाल मामाजी को उन्होने दो-चार बार बुलाया था किन्तु जो कहना था, न कह सकी। सभवत उनका बोल ही न निकल सका। कुछ देर बाद वे पुन बर्राने लगी थी, "एक जन्म के लिए आपके आश्रय मे आई थी—आखिर छुटकारा पा रही हूँ। अब आनन्द से रहिए। चाहो तो और चार " आगे मुँह से शब्द नही निकल पाए। उनके ये अतिम शब्द किसे लक्ष्य कर कहे थे, इसे बताने की आवश्यकता नही। सुनकर किस पर क्या परिणाम हुआ था, इसे मै आज नही बता सकती। वे शब्द सुनकर मेरे मन पर बहुत बुरा परिणाम हुआ था। उन शब्दो ने उमा मामीजी के जीवन भर के गुप्त सचित भाव को प्रगट कर दिया था। उमा मामीजी-जैसी स्त्रियो को जीवन दुस्सह होकर मृत्यु का वे सहर्ष स्वागत करती है, इसके उपरान्त उनके मुँह से शब्द नही निकला था। कुछ देर के बाद उन्हे घर्रा लग गया था और उनकी जीवन यात्रा समाप्त हो गई थी।

•

७७

उमा मामीजी के मृत्यु के कारण किसे कितना दुख हुआ था इसका वर्णन करना व्यर्थ है। आज तक का उनका जीवन ध्यान मे लेने से हर किसी को इसका अन्दाज लग सकता है। मुझे, मेरे पति को, सासूजी को और गोपाल मामाजी को उनके चले जाने से बहुत दुःख हुआ था। हम लोगो की इच्छा थी कि कुछ दिन के लिए बम्बई आकर वे हमारे घर ठहरे। किन्तु भगवान ने हमारी इच्छा पूर्ण नही होने दी। उनका स्वभाव, सरलता और हम दोनो तथा हमारी

सासूजी से उनका जो अपार स्नेह था, उसके स्मरण मात्र से हमे रह-रहकर दुख हो रहा था। गोपाल मामाजी से उन्हे बहुत प्रेम था और वे भी भक्ति-भाव से उन्हे बहुत अधिक चाहते थे। उमा मामीजी को अपने देवर पर बडा अभिमान था और देवर भी हमेशा इसी प्रयत्न मे रहते थे कि भाभी को कभी किसी बात की कमी न हो। वे कभी नही भूलते थे कि उनका जरा-सा दुर्लक्ष होने पर उनकी भाभी को इस घर मे कुत्ते की जिन्दगी-सा जीना होगा। बडे भाई के नाते वे शकर मामाजी का अपमान नही कर सकते थे किन्तु उनका अपनी पत्नी के साथ जो दुर्व्यवहार होता रहा था उसके लिए वे सदैव अपने बड़े भाई से रुष्ट बने रहे थे। अजिया सासूजी अथवा छोटी मामीजी को उमा मामीजी से कुछ कहते सुनकर वे झट से बीच मे आ जाते थे और बीच-बचाव कर दिया करते थे। उन सभी बातो का अब वर्णन तो नही किया जा सकता किन्तु इतना कह देना ही पर्याप्त होगा कि जीवन मे उमा मामीजी को यदि सुख की किञ्चित मात्र छाया कही से प्राप्त हुई हो तो वह गोपाल मामाजी से ही हुई थी। अन्यथा उनका जीवन अति दुस्सह था इसमे सन्देह नही। उमा मामीजी की मृत्यु के कारण अजिया सासूजी बहुत रोई थी। किन्तु विशेष आश्चर्य की बात यह थी कि छोटी मामीजी के आँसू चार दिन तक नही सूखे थे। रह-रहकर उनकी हिचकियाँ बँध जाती थी। वे कभी मेरे साथ अनावश्यक सभाषण नही करती थी किन्तु उमा मामीजी के मृत्यु के बाद तीसरे दिन वे मेरे पास आकर बैठी थी और उमा मामीजी की सरलता, सुस्वभाव आदि का स्मरण कर बहुत देर तक रोती रही थी उन-जैसी साध्वी को व्यर्थ मे तग किया गया, यह बात उनके हृदय मे शूल-जैसी चुभ रही थी। और जब मैंने उनसे, उनके मायके से उनकी साडी के लिए दिए गए रुपयो की सत्य बात सुनाई तब तो उनकी सरलता का स्मरण होकर वे धायँ-धायँ रोने लगी थी। मुझे कल्पना तक नही थी कि उन्हे इस प्रकार पश्चाताप हो सकेगा। सत्य तो यही है कि मृत्यु मे विलक्षण शक्ति होती है जो हर किसी का पूर्वग्रह बदल देने मे समर्थ होती है। उसके दर्शन मात्र से पाषाण भी पसीज उठता है। विशेषत जब इस बात का विश्वास हो जाता है कि मरे हुए व्यक्ति को व्यर्थ मे तग किया गया था और वास्तव मे वह आदर और भक्ति का पात्र था तो फिर कहना ही क्या है।

अजिया सासूजी को भी दुःख हुआ था किन्तु उनका और शकर मामाजी का दुखावेग एक-दो दिन से अधिक नही रहा था। दूसरे ही दिन से उन दोनो के लिए जो एक महत्त्वपूर्ण कार्य था उस ओर उन्हे ध्यान देना आवश्यक हो गया था। अब शीघ्र ही विवाह की व्यवस्था किस प्रकार की जाय, वधू का नियोजन झट से किस तरह किया जाय, इन बातो की उन दोनो को चिन्ता लग रही थी। बैशाख मास समाप्त हो रहा था, और तेरह दिन होना आवश्यक था। इस कारण बैसाख के अन्त मे विवाह के जो दो मुहूर्त थे उनका उपयोग नही किया जा सकता था। फिर भी ज्येष्ठ मास मे सात मुहूर्त्त थे, उनमे से सर्व प्रथम मुहूर्त मे विवाह कार्य सम्पन्न करना अति आवश्यक हो गया था। इस प्रकार महत्त्वपूर्ण कार्य की ओर ध्यान देना आवश्यक होने से उमा मामी के शोक के लिए उन्हे अवसर ही कहाँ था। घर मे चल रही इस चर्चा को सुनकर हम दोनो क्रोध से पागल हो उठे थे, किन्तु हमारे बस की बात तो थी नही थी। मन-ही-मन कुढते रहने के अतिरिक्त हम क्या कर सकते थे। आपस मे बहुत कुछ बोलते रहे, निन्दा करते रहे, मनुष्य की निर्दयता पर आश्चर्य प्रगट करते रहे और चुपचाप अपनी जगह बैठे रहे। एक दिन तो वे क्रोध मे आकर शकर मामाजी को खरी-खरी सुनाने के लिए उद्यत हो उठे थे, किन्तु मैंने आग्रहपूर्वक उन्हे रोक दिया था। मैंने कहा, "इससे कोई लाभ नही होगा। उल्टे आपको गालियाँ मिलेगी। आपकी खिल्ली उडाई जायगी। और यह सब सह लेने पर भी उपयोग कुछ नही होगा। हमारे कहने से अथवा निन्दा करने से वे अपना विवाह विषयक निश्चय त्याग तो नही देगे। उल्टे इस दुखद वातावरण मे व्यर्थ का बखेडा खडा हो जायगा।"

मेरा भाषण सुनकर, चिढकर उन्होने कहा, "बस, तुम स्त्रियो का यही हाल है। हर बात मे कदम पीछे। स्वय तो पीछे रहती है और दूसरे को भी पीछे घसीटती है।"

मैंने सब कुछ चुपचाप सुन लिया था किन्तु उन्हे इस झमेले मे नही पडने दिया। तब नाराज होकर उन्होने कहा, "ठीक है, तो कल ही बम्बई चला जाऊँगा। मैं यह सब कुछ नही देख सकता।" इसके उत्तर मे भी उन्हे शॉत करते हुए मैंने कहा, "नही, नही, ऐसे समय इस प्रकार नही किया जा सकता। चौदह दिन हो जाने तक आप कही आने-जाने का नाम तक नही निकालिएगा। यह

मैंने कह तो दिया किन्तु मेरा मन कह रहा था कि चौदह दिन यहाँ ठहरने से क्या लाभ होगा । इन दिनो मे विवाह विषयक चर्चा चलती रहेगी और किसी समय असह्य होने पर वे कही कुछ सुना न दे । यह सोचकर सहज ही मे मेरे मुँह से निकल गया, "आपका यहाँ न रहना ही उत्तम होगा ।" मेरे उद्गार सुनकर उन्होने झट से कहा, "यही तो मै कह रहा हूँ । आप भी मेरे साथ चलिएगा । क्या तुम बारई-तेरई का भोजन करके विवाह की पगत मे सम्मिलित होना चाहती हो ?"

उत्तर मे शान्त स्वर से मैने कहा, "कोई बहाना बनाकर आप तो जा सकेगे । मै कैसे जा सकती हूँ ? मुझे तो यही रुकना होगा । तेरई को भी रहना होगा और विवाह मे भी सम्मिलित होना होगा । कोई बहाना बनाकर यदि आप मुझे अपने साथ ले जा सकते है तो जाने मे मुझे बडी खुशी होगी । क्या मै स्वय यहाँ रुकना पसन्द कर सकती हूँ ? क्या मुझे इस आयोजन से घृणा नही है ? क्या अब इनकी उम्र विवाह के योग्य है ? ये नाना बन चुके है । अब धोडू भैया का विवाह करना चाहिए अथवा स्वय अपना ? जीवन-भर की साथिन साथ छोडकर चली गई और इनकी आँखो से एक आँसू भी न टपका ! न मुँह से एक आह निकली । बैठने के लिए आए हुए लोगो के सम्मुख उन्होने केवल इतना ही कहा था, "ह, आज तक का हमारा उसके साथ जो ऋणानुबन्ध था वह समाप्त हो चुका ।" इससे अधिक उन्होने और कुछ नही कहा था । उनका इस प्रकार का बर्ताव देखकर क्या मुझे उनसे घृणा नही होगी ? क्या मैं क्रुद्ध नही हूँ ? किन्तु क्या कर सकती हूँ ? जिस बात मे हमारा बस नही चल सकता उन्हे देखते रहने से अधिक हम और क्या कर सकते है ? आपकी नाराजगी से उनकी शादी थोडे ही रुक सकती है । इन दो दिनो मे दो लडकियो के बारे मे बातचीत आरम्भ हो गई है । तीन बार जोशीजी के यहाँ जन्म-कुण्डली जा चुकी है ।"

"क्या कह रही हो ? और दहेज के बारे मे क्या तय हुआ ?"

यहाँ किसे मालूम है । होता रहे जो कुछ होना है । हम लोगो का ध्यान न देना ही उत्तम है । आप तो भोजन के उपरान्त सीधे भैया के घर चले जाते है। यहाँ की सुध-बुध भी नही रहती । यह भी नही सोचते कि घर मे बैठी यह क्या कर रही होगी ।"

"जी हॉ, घर बैठी क्या कर रही होगी। तो हम अपनी पढाई को ताक मे रखकर तुम्हारे इस विवाह के बारे मे चर्चा चलाते रहे। निरी पागल हो तुम। खैर, छोडो इन बातो को। मै चाहता हूँ कि तुम भी मेरे साथ बम्बई चलो। इन लोगो को जो चाहे सोचने दो।"

"कह तो दिया मैने कि मै तैयार हूँ। किन्तु व्यवहार मे यह अच्छा नही होगा। कोई बहाना बनाया जा सकता हो तो बताइएगा।"

"मेरे मस्तिष्क मे कोई बहाना नही आता। तुम ही तो हर बार मुझे बहाना बनाने के लिए सिखाया करती हो। इस बार भी तुम्हे कोई बहाना बनाना होगा।"

"तो यही ठीक है कि आप अकेले चले जाइएगा। यदि विवाह मे कुछ देर होगी तो मै आपको सूचना दे दूँगी, तब कोई बहाना बनाकर आप मुझे वहॉ बुलवा ले। भैया को साथ मे लेकर मैं चली आऊँगी।"

"तो अभी चलो ना मेरे साथ।"

"इस समय कैसे चल सकती हूँ? लोग-बाग क्या कहेगे? अजिया सासूजी आग-बबूला हो जायँगी। यह नही हो सकता। आपसे यहॉ का चरित्र नही देखा जा सकता, इसलिए आप चले जाइएगा।"

ठीक है, मै चला जाऊँगा। आप बाराती बनकर विवाह के मान-सम्मान को ग्रहण कीजिएगा।"

"आप तो व्यर्थ मे नाराज हो रहे है। आपके जाने के लिए तो बहाना है किन्तु मेरे जाने के लिए क्या बहाना बनाया जा सकता है?"

इस प्रकार जैसे-तैसे मैने समझा-बुझाकर उन्हे राजी कर लिया था। दूसरे दिन जाने के बारे मे घर मे बात चलाकर उन्होने अपनी नानी से कहा, "मुझे लौटकर जाना बहुत ही आवश्यक है। यहॉ पढाई नही हो पाती।" बात सुनकर आँखो को आँचल से ढाँकते हुए नानीजी ने कहा, "हम पर तो वज्र गिरा है बेटा। क्या इस घटना के बिना भगवान का कोई काम रुक गया था? किन्तु हमारे बस का क्या है। जो होना है वह होकर ही रहता है। अब आगे की व्यवस्था मे जुट जाना होगा। उससे निपटते ही फिर तुम चले जाना।"

उन्होने समझा कि नानी बारई-तेरही के बारे मे कह रही है, इसलिए उन्होंने झट से कहा, "आपका कहना ठीक है, किन्तु अब रुककर भी क्या

होगा ? हम रहें या न रहें, परलोकवासी मामीजी को उससे क्या लाभ होना है ?"

"उसके लाभ-हानि से हमे क्या करना है। मेरा मतलब है कि, अब कार्य होना निश्चित-सा ही है। यदि हो सका तो सोलहवें-सतरहवे दिन ही·· "

इसी समय जरा दूर हटकर गर्दन झुकाए बैठे शकर मामाजी ने कहा, "हाँ, जो भाग्य मे बदा है उसे करना ही होगा। उसका हमारा इतना ही साथ था, अब किसी और का साथ बदा हो तो· "

शकर मामा के उद्गार सुनते ही वे क्रोध से तिलमिला उठे थे। मैं भय-भीत हो उठी थी कि अब अवश्य ही कुछ झगडा हो उठेगा। किन्तु इतने ही पर बात समाप्त हो गई थी। दाँत पीसते हुए वे वहाँ से चल दिए थे। बाद मे गोपाल मामाजी मर्म को समझ चुके थे, फिर भी उन्होने कहा, "यदि रुक सकते हो तो बारई-तेरई हो जाने तक रुक जाओ।" किन्तु फिर झट से कहा, "नही, नही तुम जा सकते हो। यहाँ रहने से भी क्या लाभ है ?"

उसी रात को मुझ से कहकर वे बम्बई चले गए। जाते समय बार-बार उन्होने मुझ से कहा था, "देखो, मैं जब आने के लिए पत्र भेजूंगा तो कोई बहाना बनाकर शीघ्र चली आना।"

७८

ग्यारह दिन हो गए थे। श्राद्धादि क्रियाकर्म होकर चौदह दिन भी बीत चुके थे। कहना न होगा कि धोडू भैया बहुत दु खी थे। विशेषतः अब सौतेली माँ आएगी, यह सुनकर तो क्रोध के मारे उनका मस्तिष्क चकरा रहा था। सभवत यह सोचकर कि माँ के आभूषणादि अब अपने उपयोग मे नही लाए जा सकते, बनू दीदी भी मन-ही-मन रुष्ट हो रही थी। माँ के आभूषणो के

लिए वे आशा लगाए बैठी थी, ऐसा लिखना उचित प्रतीत नही होता किन्तु सत्य बात को छुपाया भी तो नही जा सकता, इसलिए लिखना मैने आवश्यक समझा। उनकी यह धारणा नही थी कि माँ के आभूषणो का उपयोग करने के लिए अन्य स्वामिनी इस घर मे आ सकती है। किन्तु जब उन्हे यह मालूम हो गया तब वे गुस्से के मारे आपे से बाहर हो गई थी। हम लोगो को भी मन-ही-मन खेद हो रहा था। विशेषत बम्बई मे मैने जो अच्छी सगत पाई थी उसके कारण और बीच मे रामकृष्ण की जो घटना हुई थी उसका स्मरण हो जाने से रह-रहकर मेरे मन मे विचार आता था कि हमारे समाज मे स्त्री और पुरुषो की अवस्था मे कितना महान् अन्तर है। रामकृष्ण के मरने से उसकी स्त्री की कितनी विडबना की गई थी और उमा मामीजी के मरते ही शकर मामाजी विवाह के लिए तैयार हो उठे थे। इस प्रकार के प्रत्यक्ष ज्वलन्त उदाहरण देखकर मेरा मन उद्विग्न हो उठा था और खेद तथा क्रोध के कारण मेरा मन किसी बात मे नही लग रहा था।

चौदहवें दिन की शाम से ही लडकियो का चुनाव करना आरम्भ हो गया था। किसी एक भिक्षुक ब्राह्मण की एक तेरह-चौदह वर्ष की लडकी पसन्द की गई थी और उमा मामी की तेरही के लिए एकत्रित की गई सामग्री मे कुछ और सामग्री मिलाई जाकर सोलहवे दिन शकर मामाजी ने हमारे लिए नई उमा मामी ब्याह कर ला दी थी। इस ब्याह का विस्तृत वर्णन करने पर मुझ पर कई आरोप लगाए जा सकते है किन्तु वर्णन किए बिना मन भी तो नही मानता, फिर भी इतना ही कह देना पर्याप्त होगा कि इस ब्याह मे शकर मामाजी ने उन समस्त रस्मो और रिवाजो को बड़े चाव से पूर्ण किया था जो उनके पहले विवाह के समय भी की गई थी। करते समय उन्हे अपनी वृद्धावस्था का तनिक भी ध्यान नही था। घोडे पर सवार होकर वे वधू के घर उसे ब्याहने के लिए बारात के साथ निकले थे, बचपन के विवाह मे की जाने वाली रस्मे, जैसे वधू के मुँह मे पकडी हुई पान के बीडे को वर का अपने दाँतो से कुतरना, वधू द्वारा अपनी साडी मे छुपाई हुई सुपारी को ढूँढकर देना आदि करते समय उन्हे किसी बात की लज्जा नही आई थी। वर-वधू द्वारा एक थाली मे भोजन करना और झूठे हाथो से एक-दूसरे के मुँह मे निवाले देना आदि बच्चो-जैसी बाते करने मे भी वे चूके नही। उनकी इन मर्कट

गालियाँ दी थी। आखिर मे उसने कहा था अपने लडके का विवाह रचाने की अपेक्षा यह बूढा स्वय दूल्हा बन बैठा—हद्द कर दी इस बूढे ने—"

बीच ही मे उसकी बात काटकर मैने कहा, "कोई कुछ भी करता रहे, तुम्हे दूसरो की बातो मे दखल देने की क्या आवश्यकता है ?"

इसके बाद बहुत देर तक हम दोनो मे बातचीत होती रही। शकर मामा जी के काले कृत्यो की जहाँ तक उसे जानकारी थी, उनका उल्लेख कर वह उनकी खिल्ली उडा रहा था। उसका विशेष कटाक्ष उनके भजन-पूजन और धर्माभिमान के अभिनिवेश पर था। और जब मैंने उसे विवाह के समय शकर मामाजी द्वारा की गई बचकानी बातो के बारे मे कहा तब तो गुस्से से वह तिलमिला उठा था और उसने उन्हे हजारो गालियाँ सुनाई थी। यह बात नही कि मुझे उसकी बकवास पसन्द नही थी, उल्टे उनके बारे मे और नवीनतम बाते सुनाकर मै उसका क्रोध बढा रही थी। फिर भी बीच-बीच मे मै कह रही थी "जाने दो भैया, हमे उनसे क्या लेना है ? यदि उन्हे पसन्द है तो वे खूब करे। और उनके धर्माभिमान से भी हमे क्या सरोकार है। उन्होने कब सुधारो को अपनाया है ? वे तो उसी पुरानी परम्परा के अभिमानी है, फिर उन्हे गालियाँ सुनाने से क्या लाभ ?"

"नही, नही, ऐसे लोग जो धर्म का स्वाँग रचते है ....."

"स्वाँग क्यो कहते हो ? उन्हे पुरानी परिपाटी पसन्द है, इसलिए उनका बर्ताव उसके अनुमार होता है।" यह सुनकर भैया का क्रोध और भी बढ गया था। उसने कहा, "देखो यमू, मुझे गुस्सा दिलाने की कोशिश न करो—तुम्हे नही मालूम, यदि मुफ्त मे मिल जाय तो वह चाहे जितनी बोतले और वेश्या ...."

गुस्से मे आकर अब वह क्या कहना चाहता है यह जानकर मैंने बीच ही मे बात को काटते हुए कहा, "हाँ, हाँ, ठीक है—अब चुप रहो ना। मेरी ही गलती हुई कि मैने इस विषय को चालना दी। खैर छोडो इस विषय को।" इतना कहकर मैने उस बातचीत को समाप्त करवा दिया था।

आठ-दस दिन के बाद बम्बई से पत्र आया था, उसमे लिखा था, "मैंने गोपाल मामाजी को एक पत्र लिख दिया है। उस पत्र मे मैंने लिखा है कि मेरी परीक्षा समीप है। खाने-पीने की अव्यवस्था हो रही है, जिसके कारण

पढाई मे व्यत्यय आ रहा है। घर का किराया भी व्यर्थ मे दिया जा रहा है, इसलिए अच्छा होगा यदि आप माताजी को यहाँ भेज दे। गोपाल मामाजी को ध्यान मे मेरा आशय आ जायगा और वे तुम लोगो को यहाँ शीघ्र ही भेजने की व्यवस्था अवश्य कर देगे।"

पत्र का मतलब समझकर दूसरे ही दिन मैं ससुराल चली गई थी। वहाँ इसी विषय को लेकर चर्चा चल रही थी। आखिर तीसरे दिन हम लोगो का प्रस्थान निश्चित हुआ था। तदनुसार मै एक दिन जाकर दुर्गी से मिल आई। जी भरकर उसके साथ बातचीत की। फिर एक दिन मायके मे रह गई। दादी से जो कहना-सुनना था कह सुन लिया और भैया से हमेशा पत्र लिखने के लिए बार-बार कहकर दूसरे दिन फिर ससुराल लौट आई थी। जाते समय भैया हमेशा की तरह मुझे पहुँचाने के लिए स्टेशन पर आया था। दोपहर की गाडी मे बिठा दिया जाय मैं बम्बई स्टेशन पर लेने आ जाऊँगा, ऐसा पत्र मे लिखा था—तदनुसार हम दोनो को गाडी मे बिठा दिया गया। आखिर हम सास-बहू ने पूना से प्रस्थान किया। जिस खुशी मे हम लोगो ने प्रस्थान किया था उसके विपरीत अवस्था मे···

७९

बम्बई आने पर गाडी फिर रास्ते से लग गई थी। अर्थात् पहले कुछ दिनो मे पूना की बाते और उस पर की गई टीका-टिप्पणी आदि विनोदपूर्ण बातचीत होती रही थी। उसके बारे मे विशेष कुछ कहने की आवश्यकता नही है। इस प्रकार लगभग एक महीने तक सुयत्रित कार्यक्रम चलता रहा था और तभी एक दिन अचानक धोडू भैया का हमारे घर आगमन हो गया। पहले एक बार जब वे घर से भाग कर आए थे तब उनके खाने-पीने की अच्छी व्यवस्था की गई थी।

अब उनमे कुछ सुधार होता जा रहा था। विशेषत मेरी दोनो सहेलियो ने एक-दो बार उन्हे आडे हाथो लिया था और विष्णुपन्त एव नाना साहब ने भी उन्हे बहुत कुछ समझाया-बुझाया था, तब से उनका ध्यान पढाई की ओर विशेष रूप से लग गया था। उनकी बुद्धि विशेष तीव्र तो नही थी किन्तु पूना मे उनकी जो स्थिति थी उसमे अब बहुत कुछ सुधार हो गया था। सगत और प्रत्यक्ष उदाहरण का परिणाम क्या हो सकता है इसे धोडू भैया को देखकर जाना जा सकता था। गत वर्ष सवा-वर्ष की कलावधि मे बाप-बेटे मे जो मन-मुटाव हो गया था और जिसके कारण वे हमारे घर आकर रहे थे उसके कारण उनमे बहुत कुछ परिवर्तन हो गया था। किन्तु माँ की मृत्यु के समय वे पूना गए थे और जब पिताजी के विवाह मे सम्मिलित होकर लौट आए थे तब तो उनमे बहुत विलक्षण परिवर्तन हुआ दिखाई देता था। पिताजी के नाम का उल्लेख होते ही उनकी क्रोध से त्योरियाँ चढ जाती थी। विशेष महत्त्व की बात यह थी कि माँ के बारे मे अब उनकी विशेष भक्ति प्रकट हुआ करती थी। जिस माँ का वे सदैव अनादर करते रहे थे उसी का स्मरण कर उन्होने कई बार आँसू बहाए थे। उसी माँ को उनके पिताजी ने हमेशा तग किया था और उसके मरते ही फिर से दूसरा ब्याह कर लिया था इस बात के स्मरण से वे आग-बबूला हो उठते थे। हम लोग ऐसे समय किसी प्रकार उस बात को बरका दिया करते थे। एक दिन यशोदाबाई के पास बैठकर वे अपनी माँ के बारे मे बहुत कुछ कहते रहे और फिर पिताजी की दूसरी शादी का उल्लेखकर क्रोध से उन्होने कहा, "एक बार उनसे भेट होने पर मै उन्हे ऐसी खरी-खरी सुनाऊँगा।" कभी कहते, "मै एक बार उनकी खूब फजीहत करना चाहता हूँ। मैं उनकी बाते सुनकर हमेशा उन्हे शान्त करने का प्रयत्न किया करती थी। फिर भी उनका क्रोध शान्त नही हो रहा था। कई लोगो के बारे मे यही देखा जाता है कि वे जिस ओर झुक जाते है उस ओर से उन्हें पीछे खीचना कठिन हो जाता है। धोडू भैया भी इन्ही लोगो मे से थे। जिस माँ को उन्होने सदैव तग किया था आज उसके प्रति उनकी भक्ति उमड रही थी। हम दोनो के बारे मे पहले उनका मत अच्छा नही था किन्तु अब इतना अच्छा हो गया था कि हमे छोडकर जाना उन्हे बिलकुल नही भाता था। अस्तु।

मैं पहले कह चुकी हूँ कि पूना से लौटने पर उनमे बहुत ही परिवर्तन हो

चुका था। आने के पश्चात् पन्द्रह दिन तक पिता के प्रति क्रोध और माँ के प्रति भक्ति का प्रदर्शन होता रहा। एक दिन न जाने किसके घर बैठकर उन्होने अपने पिताजी को एक खूब लम्बा-चौडा बेतुका पत्र लिख मारा। मुझे कल्पना तक न थी कि वे कभी इस प्रकार का पत्र लिख सकेगे। किन्तु जो लोग विक्षिप्त होते है उनके बारे मे कभी कुछ कहा नही जा सकता। उन्होने इस पत्र मे अपने पिता के धर्माभिमान विषयक ढोग, उनकी गन्दी आदते, मत्सरपूर्ण स्वभाव एव माँ को हमेशा तग करके उसका खून किया गया आदि आरोप लगाए गए थे। उनकी दूसरी शादी के लिए अत्यैन्त कटु शब्दो मे उनका परिहास किया था। इस पत्र की विशेषता यह थी कि उसके अन्त मे हम दोनो की अमर्याद स्तुति की गई थी। हम लोगो को सुधारक कहकर व्यर्थ मे बदनाम किया गया है—वास्तव मे हम लोगो के पैरो से भी उनके पिता की तुलना नही की जा सकती। आदि जैसी ऊटपटाग बाते लिखकर दो-तीन ताव कागज खर्च करके उन्होने अपने पिताजी को भेज दिया था। हम लोगो को इसका पता नही था अन्यथा मै उस पत्र को फाडकर फेक देती। पत्र पूना पहुँचने भर की देर थी, फिर क्या था। दूसरे ही दिन एक लम्बा पत्र हमारे नाम से लिखा गया—हमे प्राप्त हुआ। इस पत्र मे शकर मामा ने हम लोगो की इतनी निन्दा की थी, इतनी विडबना की थी, कि उसके बारे मे कुछ लिखा ही नही जा सकता। यद्यपि मै शकर मामा के पत्रो से पूर्णतया परिचित थी, फिर भी इस पत्र को पढकर चार घन्टे तक मेरे आँसू सूख नही पाए थे। हम दोनो को, मेरी सहेलियो को तथा नाना और विष्णुपन्त को यथेच्छ गालियाँ दी गई थी। सुधारक कहकर हमारी खूब खिल्ली उडाई गई थी। हम स्त्रियो का नाम लेकर वेश्या कुटनी-जैसे शब्दो से सम्बोधन किया गया था। पुरुषो के लिए तो इतने नीच शब्दो का उपयोग किया गया था कि आज भी उसके स्मरण मात्र से मेरे रोगटे खडे हो जाते है। पत्र के आरम्भ मे उन्होने लिखा था कि वह पत्र हम लोगो ने ही उनके लडके से लिखवाया है। उसे इस प्रकार पत्र लिखने की बुद्धि नही हो सकती। आखिर वह मेरा ही लडका है, वह अपने बाप को इस प्रकार पत्र नही लिख सकता। तुम लोगो ने उससे लिखवाया और अपना नाम लिखने को कहा। इस प्रकार मेरे कलेजे को डश किया गया है। मै इसे कभी नही भूल सकता। इसके बाद हम लोगो की अत्यन्त घृणित शब्दो का उपयोग

करके यथेच्छ निन्दा की गई थी। आज भी वह पत्र मेरे पास सुरक्षित है किन्तु अपनी जीवनी मे उसका अन्तर्भाव करना योग्य न समझकर मै उसे उद्धृत करना नही चाहती।

धोड़ू भैया को बुलाकर उनसे पूछ-ताछ करने पर उन्होने अपने भेजे हुए पत्र का पूर्ण ब्यौरा सुना दिया था। उन्होने अपने पास रखी हुई पेन्सिल से लिखी उस पत्र की प्रतिलिपि ही हमे दिखा दी थी। उसे पढकर मेरे पति ने उन्हे बहुत कुछ धमकाया, किन्तु उन पर कोई परिणाम नही हुआ। आखिर वे भी धोड़ू भैया को अधिक क्या कह सकते थे। उन्होने शकर मामा को एक छोटा-सा पत्र भेज दिया था। पत्र मे लिखा था कि धोड़ू भैया ने जो पत्र आपको लिखा उससे हमारा कोई सम्बन्ध नही। केवल इतना ही नही तो आपका पत्र प्राप्त होने तक हमे इस बात की कल्पना भी नही थी कि धोड़ू ने आपको कोई पत्र लिखा है। प्रत्यक्ष बेटे द्वारा पिता को इस प्रकार का पत्र लिखवाने की नीच प्रवृत्ति मुझ मे नही है और न भविष्य मे भी कभी हो सकती है। मैं चाहता हूँ कि आप मेरी बात का विश्वास करे, आगे आपकी मर्जी।

तत्काल इस पत्र का उत्तर प्राप्त हुआ। शकर मामा ने लिखा था कि आपका इस पत्र से कोई सम्बन्ध न होना असम्भव-सा है। प्रत्यक्ष आपका सम्बन्ध न हो किन्तु आपके अतिविद्वान सुधारक पडोसियो का तो अवश्य ही सम्बन्ध रहा होगा। इस पत्र को पढकर उन्हे बहुत क्रोध हो आया था। उत्तर मे उन्होने स्पष्ट लिख दिया था कि आपको विश्वास हो या न हो किन्तु उस पत्र से हम लोगो का कोई सम्बन्ध नही है और भविष्य मे मैं इसके बारे मे अधिक कुछ नही लिखना चाहता। धोड़ू भैया को भी उन्होने खूब आडे हाथो लिया था।

इस प्रकार व्यर्थ मे एक झमेला उपस्थित हो गया था। एक सप्ताह तक हम दोनो पर उदासी छाई रही थी। शकर मामाजी पहले से ही हम लोगो के विरुद्ध थे और अब उन्हे इस पत्र के बहाने एक नवीन शस्त्र प्राप्त हो गया था। धोड़ू भैया से कुछ अधिक कहने पर उनके भाग जाने का डर लगा रहता था। इतना हो जाने पर अब वे पूना तो जा नही सकते थे। पिताजी उन्हे अब दरवाजे पर भी पैर नही रखने देते। पहले-जैसे ही वे न जाने कहाँ भाग जाते, इसलिए सौम्य शब्दो मे ही उन्हे समझाया गया था। उनके पिताजी की ओर

से आया पत्र भी उन्हे नही दिखाया गया था। यदि उसके उत्तर मे वे फिर कुछ ऊट-पटाग लिख देते तो क्या किया जा सकता था। कुबुद्ध व्यक्ति का मन सभालना याने हवा की पोटली बाँधने-जैसा ही विकट काम था। दुर्भाग्य से यही विकट काम हमारे पल्ले पडा था।

मैंने उस पत्र का उल्लेख कही नही किया था। मेरी सहेलियो तक को इसके बारे मे कुछ नही कहा था। ऐसी बाते छुपाए नही छुपती किन्तु बडी सावधानी से मैंने छुपाया था। किन्तु जब किसी बात की अति हो जाती है तो उसे कही न कही प्रकट किए बिना मन को शान्ति नही मिलती। आखिर मैंने भैया को एक विस्तारपूर्वक पत्र लिखा था। उस पत्र मे मैंने सभी बातो का वर्णन किया था। साथ ही मे मैंने शकर मामाजी और घोडू भैया का पत्र भी उसे भेज दिया था।

इसके बाद एक महीना और बीत गया था। इस बीच मे भैया की ओर से एक पत्र आया था। भैया ने अपने पत्र मे लिखा था, "मै इसी सोच-विचार मे पडा हूँ कि आगे क्या किया जाय। इस बात की पूछ-ताछ कर रहा हूँ कि किस जिले की सनद निकालने पर लाभदायक हो सकेगी। इच्छा तो यह है कि पूना की सनद निकालूँ किन्तु पूना रहने पर घर मे किस तरह निभाव हो सकता है। एक ही गाँव मे दूसरा घर बनाकर रहना असम्भव-सा है—दुनिया की दृष्टि मे वह ठीक न होगा और मैं भी अलग रहना पसन्द नही करूँगा। और यदि ऐसा न किया जाय, घर की बाते मुझसे देखी नही जा सकती और न मै अपनी इच्छा के अनुसार इस घर मे रहकर कुछ कर सकता हूँ। मै बडी दुविधा मे पड गया हूँ। केवल कोर्ट मे जाकर पैरवी देखा करता हूँ। बिलकुल सध्या समय हो जाने पर केवल भोजन करने के लिए घर लौटता हूँ और भोजन होते ही अपने कमरे मे जाकर बैठ जाता हूँ। पिताजी ने मुझसे अब तक नही पूछा कि मै क्या करना चाहता हूँ और न मैंने ही उनसे कहा कि मुझे क्या करना चाहिए। हर जिले मे पत्र लिखकर वहाँ की जानकारी प्राप्त कर रहा हूँ। जहाँ लाभदायक वातावरण हो वही चला जाऊँगा—नही तो पूना बना बनाया है। कैसे भी हो किन्तु पूना मुझे बहुत प्रिय है। आपकी परीक्षा हो जाने पर आप भी पूना मे ही अपनी प्रेक्टिस जमाइएगा। आप लोगो के यहाँ आ जाने पर फिर मुझे किसी बात का डर नही है। मेरा घर-बार आप ही

के घर होगा। फिर मेरे घरवाले मुझे चाहे जो कहते रहे। तुम्हारा क्या मत है ?" इस आशय का उसका पत्र था। आज तक कई बार इस विषय को लेकर हम दोनो मे बातचीत होती रही थी। आज भी हम नए सिरे से इस गुत्थी को सुलझाने का प्रयत्न कर रहे थे। मेरी भी यही इच्छा थी कि चाहे किसी गॉव मे क्यो न हो किन्तु भैया और हम साथ-साथ रहे। पूना हम दोनो को बहुत प्रिय था किन्तु पूना मे स्वतन्त्रतापूर्वक नही रहा जा सकता था। उनकी इच्छा थी कि बम्बई मे एकदम हाईकोर्ट की सनद निकाली जाय। इस प्रकार मतभेद हो रहा था। अभी परीक्षा भी नही हो पाई थी और हम अपने मनसूबे बॉधने मे व्यस्त हो रहे थे। दूसरे के मन के विचार जानने का साधन उपलब्ध नही है, अन्यथा मेरे मन मे चल रहे विचारो को जानकर सब लोगो ने अवश्य ही मेरा मजाक उडाया होता। पूना से मै जव पहली बार बम्बई मे आई थी तब के मनोरथो से मेरे भविष्यकालीन मनोरथ बहुत विशाल और विस्तृत थे।

भैया के पत्र का मैने शीघ्र ही उत्तर भेज दिया था। मैने उसे लिख दिया था कि मेरे पति की परीक्षा हो जाने तक तुम प्रतीक्षा करते रहो। समय निकालने के लिए चाहो तो पूना की सनद ही निकाल लो—आदि।

और एक महीना बीत गया था। अब परीक्षा मे केवल दो महीने शेष थे। पढाई बहुत जोरो से चल रही थी। रात-बे-रात मे जगकर पढाई हो रही थी। मैं हर प्रकार से उनकी सेवा-सुश्रूषा मे मग्न थी। कार्यक्रम व्यवस्थित रूप से चल रहा था। और इसी समय भैया की ओर से एक विचित्र पत्र प्राप्त हुआ।

८०

तुम लोगो के यहाँ से जाने के बाद जो कुछ हुआ है उसका कहाँ तक वर्णन किया जाय। अब कुछ ही दिनो मे हमे यहाँ से अपना डेरा-डडा उठाना

होगा। नई माँ से अब बिलकुल बेबनाव हो गया है। इसका कारण यह है—चार दिन पहले मै अपने नित्यक्रमानुसार कोर्ट मे गया था। वहाँ कोई काम न होने से मैने सोचा कि घर पर जो लिखने का काम पडा है उसे ही जाकर निपटा लूँ, इसलिए घर लौट आया। शायद मेरे घर लौटने का नई माँ को पता नही था। मै अपने कमरे मे जाकर बैठ गया था। कमरे का दरवाजा मैंने बन्द कर लिया था। तभी मुझे आभास हुआ कि बगल वाले कमरे मे कोई बोल रहा है। मै ध्यान से सुनने लगा। मैने इस प्रकार बातचीत होते सुनी।

"मै अब कुछ नही सुनना चाहती। मुझे मेरी चीजे सीधी तरह लाकर दो।"

"जब मेरे पास है ही नही तो मै लाकर कहाँ से दूँ? यदि मेरे पास होती तो क्या मै एक क्षण के लिए भी उन्हे अपने पास रख सकती थी। महात्माजी का कहना है कि.. " आगे मै नही सुन सका। कुछ देर तक बहुत ही धीमी आवाज मे बातचीत होती रही। कुछ देर बाद बातचीत का स्वर फिर उच्च हो गया था। मैने सुना—

"देखो, मुझे बाल-बच्चा नही चाहिए। मुझे तुम मेरे आभूषण लौटा दो। न जाने इस माँ ने तुम्हे कैसे ."

"यह तुम क्या कह रही हो यशोदा? माँ ने जो कुछ किया वह तुम्हारी भलाई के लिए ही तो किया। तुम ही तो बच्चे के लिए......"

"यह मैं कुछ नही जानती। तुम डायन हो, तुम्ही ने मेरे आभूषण......" इसके बाद झगडा होकर बहुत कुछ विवाद होता रहा होगा। अन्त मे रोने और सिसकियाँ भरने की आवाज सुनाई दी। मेरा जी चाह रहा था कि दरवाजा खोलकर बाहर जाऊँ और क्या मामला है सो देख लूँ। यमुना, तुम कह सकती हो कि किसी का सभाषण छुपकर सुनना ठीक नही। मैं भी इसे मानता हूँ किन्तु आरम्भ के, "सीधी तरह मेरी चीजे लाकर दो" यह शब्द सुनकर मेरे मन मे घर के आभूषणो का विचार आया और छुपकर न सुनने की बात भूल गया। कई दिनो से मै आभूषणो के रहस्य को जानना चाहता था। सभवत इस समय उस रहस्य का पता चल जायगा। यह सोचकर मै अच्छी-बुरी बात की ओर ध्यान न दे सका। विशेषत यह सोचने के लिए मुझे

अवसर ही न मिला। आभूषण शब्द सुनकर मै सब कुछ भूल गया था। चाहो तो इसके लिए तुम मुझे दोषी कह सकती हो। नई माँ की आवाज मैने पहिचान ली थी। और उनके साथ जो स्त्री बातचीत कर रही थी उसे भी मै तर्क से जान गया था। उस स्त्री के बारे मे मैने तुमसे कई बार कहा है। मैने उसे देखा भी कई बार है। मुझे पहले से ही सशय था कि आभूषणो से उस स्त्री का अवश्य ही कुछ सम्बन्ध है। आखिर मेरा तर्क सत्य सिद्ध हुआ। यह वही स्त्री थी। तुमने जब उस स्त्री की बातचीत सुनी थी तब उसने जिनका उल्लेख किया था वही ये महात्माजी है। अब भी पूरा रहस्योद्‌घाटन नही हो रहा है, फिर भी आशय समझ मे आ चुका है। किन्तु मैं जो कहना चाहता हूँ वह तो अभी मैने कहा ही नही। मुझसे रहा नही गया और मै दरवाजा खोलकर बाहर आ गया। बाहर आने पर मुझे रोने और सिसकियो की आवाज स्पष्ट सुनाई दी थी। साथ ही उन दोनो का वाग्युद्ध भी सुनाई दिया, "न जाने मेरा कैसा बुद्धि भ्रंश हो गया और मै इस चुडैल की बातो मे आ गई।" "खबरदार जो मुझे चुडैल कहा, शरम नही आती ऐसी बाते करते।" आदि। यह सुनकर मुझे क्रोध आ रहा था, फिर भी मैं घूँट पीकर चुप खडा रहा। किन्तु दुर्भाग्य से इसी समय पास की खूँटी पर टगे हुए छाते की डोर टूट गई और छाता दरवाजे पर गिरने से कुछ अधिक आवाज हुई। आवाज सुनते ही नई माँ का रोना-धोना काफूर हो गया। "कौन है" कहकर वे कमरे के बाहर निकल आई, न जाने मुझे देखकर उन्होने क्या सोचा होगा। अवश्य ही वे डर गई थी। उन्हे कल्पना तक नही थी कि बगल वाले कमरे मे बैठा मै उनकी बातचीत सुन रहा हूँ। जब मालूम हुआ तो उनका डरना स्वाभाविक ही था। उनके कौन है, प्रश्न का उत्तर उन्हे न मिलने से उन्होने दुबारा तुम्हारी भाभी का नाम लेकर पुकारते हुए कहा, "क्या तुम बैठी हो कमरे मे ?" आखिर अब उत्तर देना आवश्यक समझकर मैने कहा, "कोई नही, मैं हूँ।" मेरा उत्तर सुनकर उनका दिल बैठ गया होगा। किन्तु कर क्या सकती थी। वे एक मिनट के लिए भी वहाँ नही ठहरी। उत्तर देकर मै कमरे के बाहर आ गया था, किन्तु वहाँ कौन था ? वे लोग वहाँ से चले गए थे। मेरे मन मे विचार आ रहा था कि उनका पीछा करके एक बार उस स्त्री को गौर से देख लूँ। किन्तु फिर सोचा कि उन्हे यह तो मालूम हो चुका है कि मैंने सब कुछ सुन लिया है।

अब उन्हे अधिक लज्जित करने से क्या लाभ ? यह सोचकर मैं उसी जगह रुक गया। कुछ देर बाद नई माँ ने मेरे कमरे मे आकर मुझसे कहा, "क्यो आज कोर्ट नही है, इसलिए नीद ले रहे हो क्या ? तुम्हे नीद बडी प्यारी है। किन्तु हम लोगो की बातचीत से तुम्हारी नीद उचट तो नही गई ?"

अपने समीप प्रत्यक्ष बिजली गिरते देखकर मैं जितना चकित न होता उतना नई माँ की बात सुनकर हो गया था। मैंने नही सोचा था कि इस प्रकार आकर नई माँ मुझसे उपरोक्त प्रश्न पूछने की कभी ढिठाई कर सकती है। किन्तु मनुष्य जब हताश हो जाता है तब उसकी बुद्धि कुठित हो जाती है, यही हाल नई माँ का हो रहा था। उनके प्रश्न का आशय भी मेरी समझ मे आ चुका था। वे जानना चाहती थी कि मैंने उनका सभाषण सुना था अथवा नही। किन्तु मै उन्हे लज्जित करना चाहता था इसलिए उत्तर मे मैने कह दिया, "नही, नही, कोर्ट से आकर मै वैसे ही पडा-पडा कुछ पढ रहा था।" मेरा उत्तर सुनकर उनका चेहरा बदल गया। कुछ क्रोध, लज्जा एव खेद का मिश्रण उनकी मुद्रा पर दिखाई दे रहा था। त्योरियाँ चढाकर उन्होने केवल 'हूँ' कहा और वे वहाँ से चली गई। मैं अपनी जगह पडा-पड़ा सोचता रहा। चार दिन हो गए किसी काम मे मेरा चित्त नही लग रहा है। नई माँ तो रूठी-सी है—स्पष्ट रूप से मेरे साथ वे लड नही सकती। किन्तु उनकी चाल-ढाल से मालूम होता है कि बहुत जल्द हमे अब इस घर से अपना डेरा-डडा उठाना होगा। दो दिन से मै देख रहा हूँ कि तुम्हारी भाभी को भी बहुत तग किया जा रहा है। किन्तु यह देखकर कि लातो के देवता बातो से नही मानते, मै चुप हूँ। इन दिनो रग कुछ बदला हुआ दिखाई देता है। अब मैं इस पत्र को समाप्त कर रहा हूँ। आगे कुछ अधिक मालूम होने पर तुम्हे सूचित करूँगा। यमुना बहन, जिस दिन से यह घटना घटी है, मैं सोच रहा था कि इसकी सूचना तुम्हे दूँ अथवा नही, आखिर आज मैने तुम्हे पत्र लिख ही दिया। एक बार आभूषणो के इस रहस्य का भडा-फोड करके ही मैं चैन लूँगा। यह सोचकर मै इस समुद्र मे गोता लगाकर उसकी तह तक पहुँच गया हूँ। अब देखना है क्या होता है। रघुनाथरावजी की पढाई का क्या हाल है ? वैसे तो उनकी पढाई के बारे मे पूछ-ताछ करना ही व्यर्थ है। वे परीक्षा पास कर ले—सब झझट मिट जायगी। परीक्षा के उपरान्त क्या बम्बई मे ही रहने

का विचार है ? मैने सुना है तुम दोनो विलायत जाने की सोच रहे हो ? क्या मुझे अपने साथ नही ले जाओगे ? ...”

उससे आगे पत्र का अश विनोदपूर्ण था। उसे उद्धृत करने की आवश्यकता नही। महत्त्व का अश तो इतना ही था। आभूषणो की कहानी पढकर मै दग रह गई थी, आखिर यह रहस्य क्या है, मेरी समझ मे नही आ रहा था। उस स्त्री के द्वारा ही आभूषण किसी के पास गए थे इसमे कोई सन्देह नही रहा था। फिर भी आभूषण क्यो और कैसे गए, यह प्रश्न अब भी शेष था। घर के सब जेवरो का इस प्रकार खोना बहुत ही खेदजनक था। इसमे अवश्य कोई भेद छुपा है। यह सोचकर मेरा दिल बैठा जा रहा था। पिताजी का वह हाल था—किसी दुष्कर्म मे फॅसकर वे हमेशा के लिए कलकित हो चुके थे—नई माॅ का यह हाल था—न जाने उन्होने क्या करने की ठानी थी। यह सब सोचकर मुझे मेरी माॅ की याद आ रही थी। रह-रहकर भैया और उसकी दु स्थिति का स्मरण होकर मन दु खी हो उठता था। उनकी पढाई मे व्यत्यय आने के भय से मैने उन्हे वह पत्र नही दिखाया। वैसे ही दबाकर रख दिया। भैया को मैने स्वय उत्तर भेज दिया। “भैया, तुम इस झमेले मे न पडो, इसके बिना हमारा कोई काम अड नही रहा है। जेवर गए तो जाने दो—तुम दूसरे नवीन बना सकते हो। उन आभूषणो के चक्कर मे न पडो। जो होना है वह होने दो।” बहुत दिन तक भैया की ओर से मेरे पत्र का उत्तर नही आया था। मुझे चिन्ता लग रही थी। इसलिए मैंने फिर उसे एक पत्र भेजा था। इस पत्र का भैया ने उत्तर दिया था, पत्र मे लिखा था, “मैने कुछ दिन पहले तुम्हे एक खूब बडा पत्र लिखा था, बहुत दिन तक उसका उत्तर न आने से मैं तुम्हे फिर पत्र लिख रहा था और इसी समय तुम्हारा पत्र मिला। तुम कहती हो मैंने तुम्हारे पत्र का उत्तर क्यो नही दिया। इससे स्पष्ट होता है कि इसके पूर्व तुमने मुझे एक पत्र भेजा था। किन्तु वह मुझे नही मिला। अवश्य वह किसी दूसरे के हाथ लग गया और उसने उसे दबा लिया। मुझे उस पत्र का पता लगाना ही होगा।”

भैया का पत्र पढकर मै दग रह गई। मैने पत्र भेजा था, फिर वह कहाँ गया ? किसने उडा मारा ? उडाने वाला कौन हो सकता है ? आज तक तो कभी ऐसा हुआ नही, फिर यह किसका कृत्य है ? कहावत है न कि जिस बात

को दुश्मन नही सोच सकता उसे मन सोचा करता है। हजारो बाते मेरे मन मे उठ रही थी। उन सबको बताने से एक महाभारत बन जायगा। मैंने भैया को पत्र लिखकर सूचित कर दिया था कि मैने पत्र लिखा था और अवश्य उसे किसी ने दबा दिया है। भैया ने उत्तर मे लिखा था कि मै जानता हूँ यह किसका कृत्य है और मै इसकी खोज किये बिना नही रहूँगा। इसके बाद कुछ दिन के लिए यह प्रकरण यही समाप्त हो गया था। इस बीच मे मेरा चित्त भी और दूसरी बातो की ओर लग गया था। इस कारण आभूषण विषयक बात को मै कुछ भूल-सी गई थी।

८१

कुछ समय और बीत गया था। हम लोगो का कार्यक्रम यथारूप चल रहा था। पढाई जोरो मे चल रही थी। मालूम हो रहा था कि अब कोई विशेष बात नही होगी। किन्तु ऐसा क्योकर हो सकता था। मानो किसी न किसी बात की हमेशा चिन्ता लगी रहना, यह मेरे भाग्य मे ही लिखा था। भैया का पत्र आया था, आभूषणो के बारे मे उस पत्र मे कोई उल्लेख नही था, किन्तु भैया ने लिखा था, "दुर्गी का पति लौटकर घर आ गया है। दुर्गी के पिताजी ने मुझे बताया है कि वह दुर्गी को बहुत तग किया करता है। दुर्गी के दिन कुछ सुख से बीत रहे थे और इसी समय इन महाशय जी का आगमन हुआ। जिस दिन वह आया उस दिन दुर्गी ससुराल मे नही थी। किसी त्यौहार के कारण मायके आई थी। शाम को उसे ससुराल जाना था किन्तु किसी कारण-वश मायके मे रुक गई थी। सध्या समय से महाशय उग्ररूप धारण कर उसके मायके आए थे। और लगे गाली-गलौच करने। दुर्गी का बाप बेचारा बहुत ही सीधा-सादा आदमी है। उसने उसी समय दुर्गी को ससुराल

जाने के लिए कहा, किन्तु इसी बीच उसके पति ने दुर्गी को घसीटकर ले जाने की नौबत ला दी थी। वह बेचारी भी क्या कर सकती थी। चुपके से बच्चे को उठाकर उसने ससुराल का मार्ग अपनाया। उस दिन से लेकर हर रोज वह कमीना उसके मायके मे आकर उसके माँ-बाप, दादी और छोटे भाई को गाली दिया करता है। कल दुर्गी का भाई भी मिला था। कह रहा था कि माताजी के आँसू नही सूख रहे है। कहती है कि अच्छा होगा यदि बेटी मर जाय तो। सभी लोगो का छुटकारा तो होगा।"

भैया का पत्र पढकर मेरा मन अस्वस्थ हो उठा था। दुर्गी की दुरावस्था सुनकर मन रो उठा था। कितनी अभागी लडकी थी वह। गृहस्थी का और सुख तो दूर रहा किन्तु वह शैतान उसे दोनो समय पेट-भर खाना भी नही खाने देता था। उसकी दादी तो हमेशा कहा करती थी—अरे ये पति नही, पूर्वजन्म के बैरी है। सुनने के लिए उसकी बात कडवी हो किन्तु निःसन्देह वह यथार्थ थी। मुझे तो उस कमीन का नाम सुनते ही चिढ हो जाती है। भैया का पत्र पढकर मै क्रोध से पागल हो उठी थी। मन-ही-मन मैने उसे लाखो गालियाँ सुनाई थी। बेचारी दुर्गी अपने बच्चे को देख-देखकर जी बहलाया करती थी। बच्चा न होता तो दुर्गी जीवित नही रह सकती थी। उसका पूर्ण ध्यान उस बच्चे पर ही केन्द्रित था। उसका सुख, उसका सारा ससार उस बच्चे मे समाया था। पति की ओर उसका जरा भी ध्यान नही था। उसे कल्पना भी नही थी कि किसी दिन अचानक आकर उसका पति उसे इस प्रकार तग करेगा। किन्तु अब उसके आ जाने से उसकी दुर्दशा का अन्त नही था। मुझे डर था कि कही किसी दिन अपने बच्चे को भूलकर वह अपने प्राण तो नही त्याग देगी ? अथवा अपने पश्चात् अपने बच्चे की बहुत दुर्दशा होगी यह सोचकर कही वह बच्चे को लेकर ही कुएँ मे तो नही कूद पडेगी। इस प्रकार बच्चे को कमर से बाँधकर बहुतेरी स्त्रियो को कुएँ मे गिरते देखने की कहानियाँ मैने सुनी थी। इसलिए दुर्गी की कथा सुनकर मेरा मन कह रहा था कि अवश्य किसी दिन उसके बारे मे भी यही होना है। इस प्रकार की कोई बात मेरे मन मे गढ जाने पर वह मुझे तब तक सताया करती थी जब तक उससे भीषण कोई दूसरी बात मेरे मन मे आकर घर न कर ले। इस कारण जब से भैया का पत्र आया था मेरे मन को चैन नही था। दुर्गी, दुर्गी

का बच्चा, उसका वह कमीना, दुष्ट पति, और कुआँ अथवा अफीम, यह चीजें मेरे मन से दूर नही हट रही थी। मेरी बचपन की सहेली इस प्रकार आपद-ग्रस्त हो और मै उसके लिए कुछ नही कर सकती, यह बात तीर की भाँति मेरे मन मे चुभ रही थी। मैने जब उनके सामने अपने विचार प्रगट किए तब उन्होने कहा, "हम क्या कर सकते है ? यदि तुम कुछ करना चाहो तो अवश्य करो। मैं तो सदैव तुम्हारे विचारो से सहमत हूँ।" उनका उत्तर सुनकर मुझे बडा समाधान मिला था। मै सदैव तुम्हारे विचारो से सहमत हूँ यह कहने वाला मुख और उस बेचारी दुर्गी को तग करने वाला उसके कमीने पति का मुख मेरे अन्तश्चक्षू देख रहे थे। मेरा मन अपने सुख के लिए अभिमान से फूल उठा था और दुर्गी के लिए दु ख से रो रहा था। "यदि तुम कुछ करना चाहो तो अवश्य करो, मै सदैव तुम्हारे विचारो से सहमत हूँ।" उनके शब्द सुनकर मैं गद्‌गद् हो उठी थी। बहुत देर तक मैं चिन्ताक्लान्त होकर बैठी रही थी। आखिर अपनी सहेलियो की शरण मे जाने की सोचकर मैं लक्ष्मीबाई और यशोदाबाई के पास यह पत्र लेकर गई थी। उस पत्र को पढकर हम तीनो बहुत देर तक दुर्गी के बारे मे बातचीत करती बैठी रही थी। हम लोगो को इस बात का सर्वाधिक दु ख था कि इतनी दुरावस्था मे भी हम अपनी सहेली के काम नही आ सकती है। कुछ सोचकर लक्ष्मीबाई ने कहा,

"क्यो, उसके पिता से तुम लोगो का खूब घनिष्ट सम्बन्ध है ना ?"

"हाँ, हाँ, है तो।"

"तो फिर तुम अथवा तुम्हारे भैया यदि कोई बात उनसे करने के लिए कहे तो क्या वे नही मानेंगे ?"

"सम्भवत मान लेगे।"

"तो तुम गणपतराव को पत्र लिख दो किसी बहाने से दुर्गी को चुपचाप एक दिन मायके मे बुलवालें और चुपचाप सीधे बम्बई को तुम्हारे यहाँ भिजवा दे। किसी को पता न चलने पावे। फिर तो सभी बखेडा समाप्त हो जायगा।"

प्रथमतः तो मुझे उनकी बात जँच गई थी किन्तु सोच-विचार के बाद वह असम्भव-सी प्रतीत हुई थी। किस प्रकार भैया दुर्गी के पिताजी को समझा-बुझा सकता है ? दुर्गी चुपचाप मायके कैसे आ सकती है ? आदि शकाएँ मन मे

उठ रही थी। किन्तु लक्ष्मीबाई ने केवल दो ही शब्दो मे मेरी शकाओ का निराकरण कर दिया था। उन्होने कहा, "अरे, हर बात मे रुकावटे तो आती ही रहती है। मन मे आते ही इच्छा पूर्ण थोडे ही होती है। उसे सहायता करने का यही एक मार्ग हो सकता है। इसे अपनाकर देखना चाहिए। यदि यश नही आता है तो उसमे हमारा क्या दोष है ? किन्तु जैसा तुम कह रही हो, उस प्रकार यदि वह कुएँ मे गिरकर प्राण त्याग दे तो हमे पश्चाताप नही होना चाहिए कि उसे सहायता करने का मार्ग हमने खोजा था किन्तु उसे पूर्ण करने का प्रयत्न हमने नही किया था।"

उनका भाषण सुनकर मेरा कुछ धैर्य बँध गया था। भैया को पत्र भेजने का मैंने निश्चय कर लिया। हम तीनो ने मिलकर क्या योजना बनाई है इसका ब्यौरा जब मैंने उन्हे सुनाया और उनका मत जानना चाहा तब उन्होने कहा, "मैंने कह तो दिया एक बार कि जो कुछ तुम करना चाहती हो, अवश्य करो, मैं सदैव तुम्हारे विचारो से सहमत हूँ, फिर दुबारा पूछने की क्या आवश्यकता है ? किन्तु देखो, गणपतराव को लिख दो कि जो कुछ करना है वह बहुत सावधानी से किया जाय। यदि उसके पति को पता चल गया तो वह अपने सास-ससुर को छोडकर यहाँ आ धमकेगा और हमारे दरवाजे पर गाली-गलौच करता हुआ धरना देकर बैठेगा, तब तुम क्या करोगी ?"

"ठीक कहते है आप। अच्छाई के बदले मे बुराई हमारे पल्ले पडेगी।"

"धत् तेरे की। ऐसा कह देने से ही काम नही चल सकता। तुम्हे तो यह कहना चाहिए था कि यदि अपनी सहेली के प्राण बचाना है तो गाली-गलौच को सहना ही होगा। और तुम कह रही हो कि अच्छाई के बदले मे बुराई हमारे पल्ले पडेगी। "निरी पगली हो तुम। डरपोक !"

"तो फिर लिख दूँ भैया को पत्र ?"

"हाँ, हाँ, अवश्य लिख दो। देखा जायगा आगे क्या होता है।"

इतना सुन लेने पर फिर मुझे पत्र लिखने मे क्या देरी थी। मैंने झट से पत्र लिख दिया। लौटती डाक से भैया की ओर से उत्तर आया था। भैया ने लिखा था—

"किसी तरह मै दुर्गी को अवश्य बम्बई भेज दूँगा। तुम लोगो ने बहुत उत्तम मार्ग खोजकर निकाला है। मेरा ख्याल है कि इस प्रकार उसे बम्बई ले जाने से

अवश्य ही उसकी जान बच जायगी। मैं आज जाकर उसके पिताजी से बात-चीत करूँगा। सभवत वे मान लेगे। क्योकि उस कमीने की गाली-गलौच से वे बिलकुल तग आ गए है। लोगो से वे सुना करते है कि दुर्गी का पति दुर्गी की खूब पिटाई करता है। इस कारण वे बिलकुल उकता गए है।

दुर्गी के बारे मे भैया को पहले ही बहुत सहानुभूति थी। और उसे जो कष्ट दिए जा रहे थे उन्हे देखकर वह दुखी था, इस बात को मैं भली-भाँति जानती थी। मेरी धारणा थी कि दुर्गी की भलाई के लिए भैया किसी बात को करने के लिए पीछे नही हटेगा। केवल शका इसी बात की थी कि आयोजित कार्य मे उसे कहाँ तक यश प्राप्ति हो सकेगी।

भैया का दूसरा पत्र आने पर मैं जान गई थी कि मेरी शका व्यर्थ नही थी। हम लोगो का पत्र ले जाकर भैया ने दुर्गी के पिताजी को दिखाया था, पत्र देख-कर वे कुछ हिचकिचाए। कहने लगे, "यह कैसे हो सकता है ? दुर्गी को घर कैसे लाया जा सकता है ?" कई रुकावटो का पाठ उन्होने गाया था। भैया ने उन्हे बहुतेरा समझाया किन्तु उनका समाधान नही हो रहा था। फिर भी भैया ने अन्त मे लिखा था, "मैं निराश नही हुआ। मेरे पास एक अन्तिम उपाय है—इस उपाय की योजना करते ही कार्य मे सिद्धि प्राप्त हो सकती है। बताओ, यह उपाय क्या हो सकता है ?"

मेरी समझ मे भैया का उपाय नही आ रहा था। मैने बहुतेरा सोचा किन्तु भैया के इस अन्तिम उपाय को मै नही जान पाई। आखिर यह क्या हो सकता है ? भैया कोई अटपटी बात तो नही करना चाहता ? किन्तु भैया के बारे मे इस प्रकार शका कर लेना व्यर्थ था। मुझे अधिक समय तक प्रतीक्षा नही करनी पडी। तीसरे दिन भैया का फिर पत्र आया था। भैया ने लिखा था, "उपाय योजना की गई—सफलता अवश्य प्राप्त होगी। मैं जानता था कि दुर्गी की माँ से कहने पर अवश्य काम बन जायगा। मै उससे मिला और सब बाते उसे समझा दी। अब अवश्य काम बन जायगा। दुर्गी की माँ ने हमारी योजना को मान्य कर लिया। मैने उसे तुम्हारा पत्र पढकर सुनाया, सुनकर उसने कहा, "योजना तो ठीक है किन्तु वहाँ जाकर वह शैतान कोई नया तमाशा न आरम्भ कर दे। नही तो अच्छाई के बदले बुराई पल्ले पडेगी।" मैंने झट से कहा, "अरे, वहाँ जाकर वह क्या कर सकता है ? वहाँ उसकी एक भी नही चलेगी।" इस

प्रकार बाते बनाकर मैने उसे राजी कर लिया है। अब केवल दुर्गी के बाप का ही प्रश्न शेष है। उनकी ओर से कोई रुकावट निर्माण न हो। दुर्गी की दादी भी अनुकूल है, उसने तो स्पष्ट शब्दो मे कहा, "मै तो स्वय सोच रही थी कि उसे कही किसी गॉव मे भेज दिया जाय किन्तु कहाँ भेजा जा सकता है। उस दुष्ट ने तो उसे और हमे परेशान कर रखा है। कल उसकी सास भी यहाँ आकर रो गई। उसे क्या दोष दिया जा सकता है? उस बेचारी का इसमे क्या दोष है? वह तो केवल जन्म दे सकती थी, कर्म नही।" अब कल क्या होता है इसकी मैं तुम्हे सूचना दूँगा।

मै और मेरी दोनो सहेलियाँ उसके पत्र की बडी उत्सुकता से राह देख रही थीं। किन्तु दूसरे दिन नही, तीसरे दिन नही और चौथे दिन भी जब भैया का पत्र नही आया तब हम लोग निराश हो गए, सोचा कि सब काम बिगड गया। किन्तु दो दिन के बाद भैया का पत्र आया था, उसने लिखा था कि रविवार को दुर्गी का भाई उसे लेकर बम्बई आ रहा है। यह पत्र पढकर मै प्रसन्न हो उठी। अपनी स्थिति अच्छी होने से अपनी सहेली कुछ दिन अपने घर सुख से बिता सकेगी, यह सोचकर मुझे सुख हो रहा था। उसका दिल बहलाने की मैंने बहुत सारी योजनाएँ अपने मन मे निश्चित करली थी। उसको यहाँ लाने के लिए क्या योजना बनाई गई थी, इसे मै नही जानती थी और न मैने उसे जानने के लिए तर्क ही किया था। उसके यहाँ आ जाने पर सब मालूम हो जायगा यह सोचकर मैं स्वस्थ थी। उसका आना निश्चित हो जाने पर मैने सासूजी को सब वृत्तान्त सुना दिया। उन्हे दुर्गी के बारे मे कुछ जानकारी पहले ही थी। और वैसे भी वे बेचारी देवी थी। उनकी ओर से आपत्ति उठने का प्रश्न ही नही था। उन्होने उसके आगमन का सहर्ष स्वागत किया।

इस प्रकार दुर्गी के स्वागत की पूर्ण व्यवस्था की गई। इतवार के दिन अपने भाई के साथ वह बम्बई आ गई। उसका भाई उसे पहुँचाकर वापस लौट गया। निश्चिन्त हो जाने पर मैने दुर्गी से उसका सारा वृतान्त सुनाने के लिए कहा। उसने अपने पति की लीलाओ की गाथा सुनाई। सुनकर मेरे शरीर पर रोगटे खडे हो गए। उसकी चुटिया पकडकर वह दुष्ट हमेशा झटका मारता था। जिसके कारण दुर्गी के बाल उखड गए थे। दुर्गी जब पति द्वारा अपने बच्चे की पिटाई का हाल सुना रही थी तब उसकी चर्या शेरनी-जैसी दिखाई

दे रही थी। उसने कहा, "यमू, मै तो उस दिन आत्मघात करने जा रही थी। जिन हाथो ने मेरे बच्चे को मारा है वे झड जायँगे। झडे विना कभी नही रहेगे। मुझे मारते रहे तो मैंने कभी कुछ नही कहा। चुपचाप सहती रही। एक जन्म के लिए तुम्हारे पल्ले पडी हूँ सो मेरा जो करना चाहो करलो। किन्तु बच्चे को—मेरे मुन्ना को इतना कहकर उसने अपने बच्चे को कसकर छाती से जकड लिया और वह रोने लगी। मै तो उसकी बचपन से सहेली थी, उसका वृतान्त सुनकर मुझे दुःख होना स्वाभाविक था किन्तु लक्ष्मीबाई और यशोदा-बाई भी उसका दर्द-भरा वृतान्त सुनकर रो उठी थी। दुर्गी के आ जाने पर दो-चार दिन तक उसकी दर्द-भरी कहानी सुनने और उसको सात्वना देकर उसका मन रिझाने मे दो-चार दिन बीत गए थे। फिर हम लोग अपने नित्यकर्म मे व्यस्त हो गए थे। परीक्षा के दिन अति निकट थे, इस कारण इन दिनो मैं उनका समय बहुत कम लिया करती थी। दिन भर दुर्गी को सात्वनापूर्ण बाते सुनाने और उसका दिल बहलाने मे ही व्यतीत हो जाता था। पहले सप्ताह मे हमारी सभाएँ आदि कार्य-क्रम को देखकर दुर्गी ने कुछ नापसन्दी व्यक्त की थी किन्तु कुछ ही दिनो के बाद वह स्वय हमारे कार्य-क्रमो मे सम्मिलित होने लग गई थी। एक ही महीने मे उसमे वहुत कुछ परिवर्तन हो गया था। सहसा हम उसके पति का उल्लेख नही किया करती थी। इस कारण उसे भी उसका कुछ विस्मरण सा हो जाता था और वह अपने बच्चे को लाड-दुलार और हम लोगो के सुख सहवास मे आनन्द से काल व्यतीत करती रही थी। पूना मे उसका पति पागलो-जैसा सुबह शाम अपनी ससुराल के दरवाजे मे बैठकर उन लोगो को गालियाँ सुनाया करता था और अपनी स्त्री को भगाने के आरोप मे न्यायालय मे मामला चलाने की धमकियाँ देता रहता था। दुर्गी का बाप घबडाकर भैया से जाकर सब हाल सुनाता और भैया उसे सात्वना देता रहता, ऐसा क्रम चल रहा था। अब तक उसे पता नही था कि दुर्गी बम्बई मे हमारे घर है। अन्यथा वह यहाँ आकर हगामा मचा देता। किन्तु हमारे अथवा दुर्गी के सौभाग्य से उसे पता नही चला। उसका अधिकाधिक पागलो-जैसा बर्ताव होता देखकर दुर्गी के माँ-बाप सोचते थे कि यदि इस समय दुर्गी यहाँ आ जायगी तो यह दुष्ट अवश्य ही उसकी जान ले लेगा। इससे तो वह जहाँ है वही बनी रहे तो ठीक होगा।

× × ×

नियोजित दिनाक से परीक्षा आरम्भ हो गई थी। प्रतिदिन परीक्षा से लौट आने पर मै पूछा करती थी कि आज का पर्चा कैसा रहा ? जैसे मुझे सब बातो की पूरी जानकारी थी। किन्तु पूछे बिना मेरा मन मानता ही नही था। तीसरे दिन जब वे घर लौट आए थे तो मैने अपना वही नित्य का प्रश्न पूछा था। उसे सुनकर मेरा खूब मजाक उडाया गया। कोट, टोपी उतारकर उन्होने दोनो-तीनो पेपर सामने रखते हुए मुझसे कहा, "यहाँ आओ, मै तुम्हे बताता हूँ कि पर्चे कैसे किये गए ? दुबारा तुम ही हमारी परीक्षा ले लो, जिससे स्वय जान जाओगी कि पर्चे कैसे रहे ? मैने भी उत्तर मे झट से कहा, "हाँ, हाँ, अवश्य परीक्षा लूँगी। इसमे कौन-सी बडी बात है ? क्या कभी स्त्रियाँ परीक्षा नही ले सकेगी ? इस प्रकार हँसी उडाने का क्या कारण है ?"

"बाप रे बाप ! अपनी जाति की पक्ष-पुष्टि हो रही है ?"

"पक्ष-पुष्टि की कौन-सी बात है ? पुरुषो को लगता है जैसे सब कुछ उनके लिए ही है और उन्ही के स्वाधीन है। जब तक हम आगे नही बढी है तभी तक आपकी बाते चलती रहेगी।"

"अब तो हमारी वाचा ही कुठित हो गई। तो आप एल० एल० बी० होने जा रही है ? तो फिर इन किताबो को यही रखना होगा। आज से अब तुम यहाँ अपनी बैठक जमाओ।"

"अब आज से बैठक जमानी है तभी तो यहाँ आई हूँ। एक महीना हो गया, कभी मैने मुँह से शब्द भी निकाला था ? किन्तु अब आपको किताब को छूने तक नही दूँगी।"

'हे राम ! तब तो हमारे लिए बिलकुल कारागार हो गया है ?"

"आज ही क्यो, विवाह के दिन से ही कारागार मे डाला गया है।"

"यदि इस प्रकार का बन्दीगृह मिल जाय तो इससे छुटकारा पाने की कौन इच्छा कर सकता है ?"

"किन्तु आजीवन यह बन्दीगृह ऐसा ही बना रहेगा न ?" न जाने क्या सोचकर मैने यह प्रश्न किया था।

यह प्रश्न पूछकर मै उनके समीप जा रही थी और ठीक इसी समय दुर्गी की पुकार मुझे सुनाई दी। मानो पुकार कर उसने मुझे स्वप्न से जगा दिया था और अपनी परिस्थिति का मुझे स्मरण दिलाया था। मैंने उत्तर मे कहा,

"आ रही हूँ, "और फिर दुर्गी की दुरावस्था के बारे मे कुछ देर तक हम दोनो बातचीत करते रहे। हमारा मन उदास हो गया था।

उस दिन से लेकर परीक्षा का परिणाम घोषित होने तक केवल बातचीत करते रहना, कुछ उपन्यास, कहानियाँ आदि पढते रहना, उन्हे किसी प्रकार का परिश्रम नही करने देना आदि की योजना मैने पहले से ही बना रखी थी और अब सब योजना को कार्यान्वित करने मे मै लग गई थी। विविध-रूप से हम अपना मनोरजन करने मे मग्न हो गए थे। दुर्गी की भी लाज-शरम हटाकर हमने उसे बहुत कुछ ढीठ बना दिया था। दुर्गी का स्वभाव भी ऐसा था कि जिस काम मे उसे लगा दो उसी मे वह प्रगति कर उठती थी, किन्तु उसका भाग्य ही फूटा था, इसे वह स्वय या दूसरे क्या कर सकते थे। अब वह रात को कभी-कभी हम लोगो की बैठक मे सम्मिलित होकर बिना किसी हिचकिचाहट के बातचीत करती थी। अब उसे पढाई-लिखाई मे भी रुचि हो गई थी। इस प्रकार हम लोगो के दिन बडे सुख से बीत रहे थे। भैया को भी मैंने पत्र लिख दिया था, "चार दिन के लिए तुम अवश्य यहाँ आ जाओ। काम तो हमेशा लगा ही रहता है।" परीक्षा के परिणाम के लिए चिन्ता करने का कोई कारण ही न था। परीक्षा के बाद परिणाम घोषित होने तक का समये बहुत ही सुखा-वह होता है। इसलिए मेरी इच्छा थी कि भैया आकर हमारी खुशी का सह-भागी बने। पूना मे उसके लिए सुख नही के बराबर था। मेरी और उनकी ओर से भैया को साग्रह निमत्रित किया गया था, साथ मे यह भी लिख दिया था कि छुट्टियो मे हम सब लोग धारापुरी की गुफाएँ देखने जा रहे है। इतना अनुरोध किया जाने पर भैया क्यो न आता ? भैया आ गया और फिर हमारे घर मे सुख का साम्राज्य हो गया। चौबीसो घण्टे हास्य-विनोद, नई-पुरानी घटनाओ को लेकर बातचीत, भावी जीवन विषयक मधुर कल्पनाएँ आदि मे व्यतीत हो रहे थे।

परिणाम घोषित होने मे अब केवल तीन दिन शेष थे और इसी समय धारापुरी की गुफाएँ देखने जाने का प्रस्ताव किया गया। सोमवार को परिणाम घोषित हो रहा था और शनिवार को नाना साहब ने धारापुरी जाने का प्रस्ताव रखा। इस पर उन्होने कहा, "परिणाम घोषित हो जाने पर चला जाय। परिणाम की चिन्ता लग रही है—इस समय कैसे जाना होगा ?" यह

सुनकर भैया ने गत परीक्षा का उल्लेख करके कहा कि, इन्हे परिणाम की सदा चिन्ता बनी रहती है और घोषित होते है फर्स्ट क्लास। भैया ने अब इस प्रकार उनका खूब मजाक उडाया, तब अन्त मे उन्होने कहा, "अच्छा भाई! रहने दो हमारी परीक्षा और उसका परिणाम! चलो चले ट्रिप को।" तब जाकर भैया ने उनका पीछा छोडा। ट्रिप को जाना निश्चित हो जाने पर हम सब सहेलियाँ खाद्य-पदार्थ आदि की व्यवस्था मे जुट गई।

दूसरे दिन प्रात-काल मे प्रस्थान था और रात मे मै जब गाढ निद्रा मे सो रही थी तभी मुझे जगाकर उन्होने कहा, "न जाने मुझे क्या हो रहा है? नीद नही आ रही है और इस जगह पर बहुत दर्द हो रहा है।"

यह सुनकर न जाने क्यो मै भयभीत हो उठी।

८२

"क्या हो रहा है? कहाँ दर्द है?" मैंने घबडाकर पूछा।

किञ्चित हँसकर उन्होने कहा, अरे "इस प्रकार घबडाने की कौन-सी बात है? जरा-सा दर्द है कहते ही इतनी घबडा गई और फिर कोई बडी बीमारी हो जायगी तो क्या करोगी?"

"बडी बीमारी हो आपके दुश्मनो को। आप ऐसी बात न करे।"

"क्यो? केवल बोलने से क्या होता है? कह देने से क्या बीमारी हो जाती है? और न बोलने से क्या बीमारी टल जाती है?"

मैंने कुछ त्रस्तभाव से कहा, "छोडिए इस बात को। पहले मुझे बताइए दर्द कहाँ हो रहा है?"

"यहाँ दर्द हो रहा है। न जाने नस चढ गई है या क्या, कुछ समझ मे

नही आ रहा है। नस चढी कहूँ तो पसली मे दर्द नही मालूम होता, यहाँ··· · इस जगह "

'तो तेल मलकर ईट से सेक दूँ ? या फलालेन भीगोकर गरम पानी से सेक दूँ ?"

"क्या पागल हो गई हो ? आधी रात मे अब उधर जाकर सब को जगाओगी ? क्या इतनी बडी बीमारी है ? तुम लोग तो जरा-सी बात मे घबडा उठती हो ? बात का बतगड बना देती हो। मुझे नीद नही आ रही थी, इसलिए तुम्हे जगा दिया·· "

"किन्तु यथासमय इलाज करने मे क्या बुराई है ?"

"निरी पागल हो तुम। इलाज काहे का करना है ? घन्टे-भर मे सब ठीक हो जायगा।"

मै चुप रह गई। कुछ समय और बीत गया—किन्तु इस बीच कई बार वे करवटे बदलते रहे। यह देखकर मुझसे नही रहा गया, मैने उठकर कहा, "ऐसे काम नही चलेगा। मुझे बताइए, दर्द किस जगह हो रहा है ? जब से देख रही हूँ, आप कई बार करवटे बदल चुके····· कहाँ दर्द है, जरा देखूँ तो।"

कुछ त्रस्त भाव से उन्होने कहा, "क्या करूँ—कुछ समझ मे नही आ रहा है—दर्द अधिक नही है, फिर भी बेचैनी बढती जा रही है।"

"टूक भर जाने से ऐसा ही होता है। मैं अभी तेल लेकर आती हूँ।" इतना कहकर मैं वहाँ से चली गई। रसोई-घर मे आग थी उसमे लकडी डालकर मै फूँकने लगी। फिर एक ईट का टुकडा आग मे गरम होने के लिए रख दिया और कुछ पानी भी गरम करने के लिए रख दिया। तेल की शीशी लेकर मै जब उनके कमरे मे दाखिल हुई तो उन्हे कहते सुना, "बडी जोर से चक्कर आ रहे है··· ··" इसके साथ ही उन्हे कै हो गई जिसका रग लाल था—और वे बैठे थे वही गिर गए।

उनका यह हाल देखकर मेरा दिल बैठ गया—मेरे हाथ-पैर काँप उठे और हाथ का दीपक छूटकर नीचे गिर गया और बुझ गया—मैने चीखकर पुकारा, "भैया।" कराहते हुए उन्होने कहा, "इस तरह पागल न बनो।"

पास मे जाकर भयभीत स्वर मे मैंने कहा, "यह क्या हुआ ? भैया को

बुलाऊँ ? नाना साहब को बुलाऊँ ?" उन्होने हाथ के सकेत से मना कर दिया। किन्तु मुझ से नही रहा गया। इस प्रकार खून की कै होने का दुष्परिणाम मैं पहले सुन चुकी थी। मै भैया को बुलाकर ले आई। वह गाढ निद्रा मे सो रहा था, सुनकर वह भी धक्क रह गया। फिर भी ऊपरी भाव से कहता रहा—इसमे घबडाने की क्या बात है ? कभी किसी को ऐसा हो जाता है।" उनके पास जाकर उसने कहा, "एकदम यह आपको क्या हो गया ?" किन्तु उनकी ओर से कोई उत्तर प्राप्त न होने पर उसने कहा, "मै नाना साहब और विष्णुपन्त को बुलाकर लाता हूँ।" कुछ ही समय मे वे दोनो भी आ पहुँचे। सारी स्थिति देखकर उन्होने कहा, "अ घबडाने की कोई बात नही है। रघुनाथराव, जरा उस ओर सरक जाइए—भाभी, उस चादर को हटा दीजिए।"

भैया और विष्णुपन्त मे कुछ कानाफूसी हो रही थी। विष्णुपन्त ने धीमे स्वर मे कहा, "फिर भी सावधानी बरतना ठीक होगा।" इतना कहकर वे बाहर चले गए। मै हत्-बुद्धि हो गई थी। पागलो-जैसी यहाँ से वहाँ घूम रही थी। उनकी ओर देख रही थी, नाना साहब से कह रही थी कि यह एकदम क्या हो गया ? वे मुझ से बार-बार कह रहे थे, "भाभी, धीरज धरो।" कुछ ही देर मे मेरी दोनो सहेलियाँ भी वहाँ आ गईं। वे भी मुझे समझा-बुझा रही थी। उनके सात्वनापूर्ण शब्द सुनकर मुझे कुछ ढाढस बँध जाता था किन्तु फिर भी भय लग रहा था कि कही रक्त की कै और तो नही होगी ? दुर्गी भी उठकर वहाँ आ गई। मै घबडा रही थी और सब लोग मुझे सात्वना दे रहे थे। कुछ देर के लिए उन्हे नीद आ गई थी किन्तु फिर वे उठ बैठे और फिर रक्त की कै हुई। देखकर मेरा रहा-सहा धैर्य टूट गया। रोते हुए मैने कहा, "अरे कोई जाकर माताजी को बुला लाओ।" यह देखकर उस बुढिया का क्या हाल होगा यह सोचने का भान भी मुझे नही रहा। कोई स्नेहशील व्यक्ति आकर उपाय खोजकर निकालेगा, यही धुन मुझ पर सवार थी। इसलिए मै सभी अनुपस्थित लोगो को बुलवाने के लिए कह रही थी। सासूजी निचली मजिल पर गोपिका काकी के यहाँ सोती थी—उन्हे अब तक इस बात का पता नही था, इसलिए मैने दुर्गी से कहा, "जाओ, उन्हे बुला लाओ।" यह सुनकर उन्होने हाथ के सकेत से मना कर दिया। मैंने उनके समीप जाकर कहा, "यह

आज क्या हो रहा है ?" अत्यन्त धँसे हुए स्वर मे उन्होने कहा, "कुछ नही है—तुम रोओ नही।" किन्तु मुझ से नही रहा गया। रोते हुए मैंने कहा, "भैया, अरे डाक्टर को तो बुलवाओ। नाना साहब, कुछ तो कीजिए।" भैया ने सात्वनापूर्ण स्वर मे कहा, "यमुताई, जरा धीरज से काम लो। विष्णुपन्त डाक्टर को लाने के लिए ही गए है—आते होगे। तुम यदि धैर्य छोड दोगी तो फिर सब लोगो का क्या हाल होगा ?" इसी समय उन्होने सकेत से बताया कि उनके शरीर मे आग-सी छू गई है। मै पखा लेकर हवा करने लगी। मन-ही-मन सहस्रो देवी-देवताओ की मानता कर रही थी। पूर्ण लक्ष्य उनकी ओर केन्द्रित था। दूसरी कँ होकर कुछ समय बीत चुका था। मन मे आशा सजोकर मै धीमे स्वर मे पास के लोगो से पूछ रही थी "क्यो, अब तो कँ नही होगी ? अब तो उन्हे नीद लग जायगी ?"

विष्णुपन्त डाक्टर को लेकर आए। डाक्टर हम लोगो के पूर्ण परिचित थे। उन्होने रोगी की परीक्षा करके कहा, "अ, विशेष कोई बात नही है। लेकिन एक बात का ध्यान रखा जाय। इनके पास एक-दो से अधिक लोग न बैठने पायें। ऐसी हालत मे पूर्ण शान्तता बडी आवश्यक होती है। गणपतराव सब लोगो से जाने के लिए कह दो।'

यह सुनते ही नाना साहब उठ खडे हो गए। विष्णुपन्त ने उठकर अपनी और नाना की श्रीमतीजी से उठने का सकेत किया। सब लोग मुझसे चलने का आग्रह कर रहे थे। मै वहाँ से हटना नही चाहती थी। मैं कैसे जा सकती थी ? भैया ने कहा, "तुम यहाँ बैठकर रोती हो—तुम यहाँ से जाओ। दुर्गी ताई, तुम इसे यहाँ से ले जाओ। मै अकेला यहाँ रहूँगा—चाहे तो विष्णुपन्त और यशोदाबाई यहाँ बैठ सकती है—किन्तु तुम यहाँ से जाओ।"

मै वहाँ से न जाने के लिए हठ कर रही थी। किन्तु मेरी कौन मानता। दुर्गी और लक्ष्मीबाई मुझे वहाँ से ले गई। मैंने उनके पैर छूकर कहा, "अरे, अब हम दोनो को इस प्रकार दूर न हटाओ।" इस प्रकार रोती-चीखती मै कमरे से बाहर आई। बाहर सासूजी आई थी। उन्हे देखकर मेरे दुख का बाँध फूट पडा। रोते हुए मैंने कहा, "कम-से-कम आप ही भीतर जाकर बैठिए—देखो न क्या अनर्थ हो गया है। यह क्या हो गया माताजी ?" घबडाकर वे मेरी

ओर देख रही थी—लक्ष्मीबाई को ताक रही थी। दुर्गी से उन्होने पूछा, "क्या बात है ? क्या इसे कुछ हो गया है ?"

"हाँ, हाँ—अपना दुर्भाग्य है—हरे राम, कितनी भयानक रक्त की कै—मुझे वहाँ से हटा दिया है। दुर्गे, तू ही जाकर देख ले, फिर तो कै नही हुई—मुझे उस कमरे मे जाने से रोकते है—कम-से-कम तुम लोग बार-बार आकर मुझे उनका हाल सुनाओ—अरे तुम सब लोग क्यो निर्दय बन गए हो ?"

" इस प्रकार पागलो-जैसी मैं न जाने क्या बक-झक कर रही थी। सासूजी उनके कमरे मे चली गई, किन्तु वहाँ जाकर उन्हे मुझ-जैसा ही आक्रोश करते देख यशोदाबाई और गोपिका काकी उन्हे मनाकर जैसे-तैसे बाहर ले आई। डाक्टर ने और सब लोगो ने उनसे कहा, घबडाओ नही, बीमारी कुछ विचित्र अवश्य है किन्तु घबडाने की बात नही—मैने दवा दी है—दो-चार घटो मे सब ठीक हो जायगा। और फिर मै भी तो यही ठहरा हूँ। तुम लोग आक्रोश न करो। रघुनाथराव जैसे तुम्हारे बेटे है वैसे ही मै भी उन्हे अपना भाई मानता हूँ। भाभी, काकीजी, तुम चिन्ता न करो। यदि वैद्य शास्त्र मे कुछ करामात है तो चार घन्टे मे मै इन्हे पूर्ववत भला-चगा कर दूँगा।" डाक्टर के इन सात्वना पूर्ण शब्दो से मुझे कुछ हिम्मत आ गई किन्तु वह कब तक टिक सकती थी ? कुछ ही देर मे मै फिर कहने लगी "अरे जाओ, कोई जाकर तो देखो डाक्टर क्या करते है ? फिर खून की कै तो नही हुई उन्हे ?" जब किसी को जाता नही देखती तो स्वय उठकर भागने का मैं प्रयत्न करती—तब कोई जाकर मुझसे कुछ आकर कहता—सासूजी को लेकर गोपिका काकी नीचे गई थी किन्तु वे वहाँ अधिक देर तक नही ठहर सकी। ऊपर आकर वे मेरे पास बैठकर कहने लगी—"बेटी, आज यह हमारे भाग्य मे क्या लिखा है ?" मेरी तरह वे भी देवी-देवताओ को मना रही थी। इस हालत मे कब सवेरा हो गया इसका हमे पता भी न चला। हम लोग निराश होकर जब मिन्नते करने लगते तब कोई जाकर भीतर से डाक्टर को बुलाकर लाता और डाक्टर हमे साँत्वना देते, यही चल रहा था। इसी समय मेरे मन मे आ रहा था कि कम-से-कम गोपाल मामाजी को तार कर दिया जाय, इसलिए मैने धोडू भैया से कहा किन्तु मेरे सुझाव के उत्तर मे कहा गया कि क्यो व्यर्थ मे उन्हे चिन्तित किया जाय। मुझे लग रहा था कि कोई नया व्यक्ति आकर अच्छी दवा-दारू

करेगा। जो लोग यहाँ उपस्थित थे वे क्या कम हितैषी और कम दौड-धूप करने वाले थे किन्तु डूबते को तो तिनके का सहारा भी बहुत हो जाता है। जब मैने और सासूजी ने बहुत आग्रह किया तब उन्हे तार भेजा गया। डाक्टर भीतर से बाहर चक्कर लगा रहे थे। उनके मुँह से जो कुछ निकलता उतना ही हम जान पाती थी। दोपहर के बारह बज चुके थे फिर भी हमे उनके कमरे मे जाने की मनाई थी। केवल उन्हे कब कै हुई, नींद कब तक लगी रही आदि बाते ही हम से कही जा रही थी, किन्तु कहने वालो की असत्य बातो को मैं उनके चेहरे से ताड रही थी। कहने वालो की बातो को असत्य जानकर मैं और सासूजी अन्दर जाकर बैठने के लिए आक्रोश कर उठी। जैसे-जैसे हमारा आक्रोश बढता जा रहा था वैसे-वैसे दूसरे लोग हमे भीतर न जाने के लिए आग्रह कर रहे थे। सासूजी ने तो यहाँ तक कह दी कि, क्यो माँ-बेटे को पृथक कर रहे हो ? इस जुदाई से तुम्हे क्या लाभ होगा ? फिर भी किसी पर कोई परिणाम न हुआ। दोपहर के दो बजे एक गोरा डाक्टर देखने आया। उसे देखकर तो मेरा दिल बैठ गया। मन-ही-मन मैंने निश्चय कर लिया कि उसके जाते ही मै भीतर जाऊँगी। मै उसके जाने की राह देख रही थी। किन्तु वह भीतर बैठा रहा और उसके लिखे दो-तीन पर्चे लेकर हमारे डाक्टर बाहर आए, मैने दीन वाणी से पूछा, "गोरे डाक्टर का क्या कहना है ?" उत्तर मे उन्होने बताया "उनका कहना है कि बिलकुल शाँतिमय वातावरण की आवश्यकता है। किसी प्रकार की बातचीत नही होनी चाहिए।" इतना कहकर उन्होने नाना को पर्चे दे दिए और फिर भीतर जाकर उन्होने दरवाजा बद कर लिया। मन मे आ रहा था कि वैसे ही जाकर दरवाजा तोड दूँ और अन्दर जाकर बैठूँ, किन्तु फिर विचार आया कि कही ऐसा करना अपने हाथो अपने पैर पर पत्थर पटकना सिद्ध न हो। मजबूर होकर सासूजी के पास जाकर बैठ गई। और कर भी क्या सकती थी। सासूजी माला लेकर जप करने बैठ गई। मैं रोना चाहती थी किन्तु सासूजी के विचार से बरबस अपने को रोक रही थी। रोकने वालो को निर्दय कहकर अन्दर जाने का मैने बहुतेरा प्रयत्न किया किन्तु दुर्गी और लक्ष्मीबाई मुझे वहाँ से हिलने नही दे रही थी। इसी समय एक गोरा तथा दो देशी डाक्टर और आए। अन्दर बैठकर वे लोग क्या कर रहे थे इसका मुझे बोध नही हो रहा था। कुछ देर बैठकर वे लोग चले गए।

मुझसे नही रहा गया, मैंने पूछा तो कहा गया, "कुछ नही, सब ठीक है। अभी सबने मिलकर जो दवा दी है वह बहुत अच्छी है। अब वे स्वस्थ हो जायेंगे। तुम घबडाओ नही, तुम्हारे घबडाने से फिर हमारा कोई बस नही चलता। इस प्रकार मेरा समाधान किया जा रहा था किन्तु जब चार बजे का समय हो गया तब मुझसे नही रहा गया और लोगो के मना करने पर भी मैं उनके कमरे मे घुस गई। ठहरो, ठहरो, कहकर सब लोग मना कर रहे थे किन्तु सबके चेहरे चिन्ता से स्याह हो रहे थे। मैंने भीतर जाकर देखा—खून से भीगे हुए कपडो का ढेर-सा लगा था। देखकर मैंने कहा, "भैया, तुम भी इस प्रकार निर्दय हो गए? तुमने मझसे यह क्यो छिपाया?" भैया ने केवल इतना ही कहा, "यमुताई, तुम यदि यहाँ होती तो क्या इससे कुछ अधिक कर सकती थी?" रुआसा होकर उसने अपना मुँह फेर लिया। मैंने किसी की ओर ध्यान नहीं दिया और सीधी जाकर उनके सिरहाने बैठ गई। उनकी स्थिति देखकर अब मेरे आँसू रुक गए थे। समझ मे नही आ रहा था कि क्या करूँ। बार-बार उनके माथे पर, छाती पर हाथ फेर रही थी, किन्तु एक टक देखने के अलावा उन्होने और कुछ नही किया। उनमे हाथ उठाने की भी शक्ति नही रही थी। यहाँ तक उनकी हालत बिगड गई थी और फिर भी मुझे उनके पास नही आने दिया गया, इसका मुझे क्रोध हो रहा था। समीप रहकर मैं कुछ अधिक नही कर पाती—उनकी बीमारी को कम नही कर सकती थी, फिर भी कह नही सकती कि क्या कर सकती थी। यहाँ से उठकर वहाँ जाना, सिरहाने से उठकर पैरो के पास बैठना, कभी उनके हाथ अपने हाथो मे उठा लेना, बिस्तरे को साफ करना, वे कही कुछ कह तो नही रहे, यह सोचकर उनके मुह के पास कान ले जाना आदि बातो मे मैं व्यस्त थी। एक बार डाक्टर की ओर मुडकर मैंने कहा, "क्या आपके पास अब कोई दवा नही है? मुझे कोई ऐसी दवा दे दो जिससे मैं भी साथ-साथ......"

मेरा इतना ही कहना था कि उसी समय उनके मुँह से वह कालरक्त फिर बाहर आया। उसे देखते ही मेरी आँखो तले अधेरा छा गया और मे पछाड खाकर भूमि पर गिर पडी। कब तक मैं मूछित पडी रही इसका मुझे भान नही था। मुझे कौन, कब वहाँ से उठाकर ले गया यह भी मैं नही जानती। बहुत देर तक मैं मुर्दे-जैसी पडी रही। किन्तु मैं इतनी पुण्यात्मा कहाँ थी। मैं

कलमुँही कुछ देर बाद होश मे आ गई। दियाबत्ती का समय था—मुझे लाकर कही लिटाया गया था और मेरे पास दुर्गी तथा लक्ष्मीबाई बैठी थी। होश आते ही मैं फिर बडबडाने लगी, "अरे तुम लोग मुझे यहाँ उठाकर क्यो लाए ? मैने क्या अपराध किया है जो मुझे इस तरह परेशान किया जा रहा है ?" मुझे रोकने का प्रयत्न किया गया किन्तु मै न रुकी और फिर उनके कमरे मे जा पहुँची। वहाँ सब लोग बैठे थे। सासूजी वहाँ नही थी। समीप जाकर बैठने पर उन्होने मेरे हाथ पर अपना हाथ रख दिया और कुछ बोलने की इच्छा प्रगट की। मैने भैया को बुलाया। भैया के समीप आते ही उन्होने उसका हाथ पकडकर मुझ से बोलने की इच्छा सकेत से प्रगट की। न जाने मुझ मे कैसे धैर्य आ गया, मैने अपना कान उनके मुँह से सटा दिया। "माँ को·· ··· सम्हालना ·· · उसका · · कोई · नही · शकर मामा · ·· " इतना ही मैं सुन पाई। फिर भैया की ओर मुडकर "पॉलिसी ·· ··सदूक मे ···" इतना ही उन्होने कहा। वे और क्या कहना चाहते थे, कह न सके। क्योकि खून की कै के साथ उनके शब्द विलीन हो गए। एक बारगी सारा शरीर ऐठता हुआ दिखाई दिया। मैने चीखकर कहा, "अरे, कोई माताजी को तो बुलाओ।" मुझे उनके शब्दो का स्मरण हो रहा था, "मै तो सदैव तुम्हारे विचारो से सहमत हूँ।" इसलिए मैने कहा, "अब क्यो मुझे ठुकरा कर जा रहे हो ?" मैंने बलपूर्वक उनका हाथ पकडकर कहा, "ठहरो, मै भी आपके साथ आ रही हूँ—" और मैने अपना सिर भूमि पर पटक मारा। बस इतना ही मुझे स्मरण है। फिर तो एक दम अधकार हो गया। लेकिन वह अधकार हमेशा के लिए बना रहना मेरे भाग्य मे कहाँ था—आगे मुझे होश नही था—भ्रम-सा हो गया था। जब मेरी सुध-बुध जाती रही जब मुझे होश आ रहा था, तब मैंने सुना, "मैं कलमुँही जहाँ जाऊँगी वहाँ यही होगा।" वे शब्द दुर्गी के थे। उसके समीप भैया खडा था। वे नही जानते थे कि मैं होश मे आ गई हूँ। भैया कह रहा था, "दुर्गी ताई, क्यो व्यर्थ मे अपने आपको कोस रही हो ? तुमने क्या किया है ? इसमे तुम्हारा क्या दोष है ? मरते समय माँ ने मेरे कान मे यही बात कही थी। मुझे तो इस बात का स्मरण भी नही था—और कभी स्मरण हो जाता तो मैं उस विचार को मन से बाहर निकाल देता था।"

फिर दोनो मौन हो गए। मैने एक दम उठकर कहा, "भैया, अब तुम

किसके साथ रहकर पूना मे वकालत करोगे ? और तुम्हें यह मालूम था तो तुमने मुझ से क्यो नही कहा ? कहते थे कि मै सदैव तुम्हारे विचारो से सहमत हूँ, फिर मुझे ठुकराकर वे कैसे चले गए ? कहते थे कि आजीवन तुम्हारी कैद मे रहूँगा—आखिर केद से भाग गए—" इस प्रकार बक-झक करने का मुझे धुँधला-सा स्मरण है। इसके बाद शायद मुझे फिर भ्रम हो गया था। क्योकि क्रमवार सब बातो का मुझे स्मरण नही है। सासूजी कहाँ है, स्वय मैं कहाँ हूँ, भैया कहाँ है आदि बातो का मुझे भान नही था। किन्तु इस सम्भ्रमावस्था से मैं किस प्रकार जाग उठी थी इसका मुझे अच्छा स्मरण है। जिस कमरे मे मैं थी उसमे चौथे दिन और दूसरा कोई नही था। मै भूमि पर पडी छटपटा रही थी। इसी समय मैने अपने पास किसी की पदचाप को सुना था। "कौन ? भैया ?" मैने पूछा था। उत्तर मे मैने सुना, "नही, मै हूँ। बहू, जो होना था सो हो गया—अब वह लौटकर नही आ सकता, किन्तु परम्परा के अनुसार सभी बाते होनी चाहिए······" मैंने जोर से चीख मारी, "कौन शकर मामाजी ?—भैया।" मेरी आँखो के सामने उस अतिम क्षण का चित्र खिच गया था। मेरे पति के मुख से अन्त मे निकले हुए, "शकर मामा · " शब्द फिर सुनाई दे रहे थे। मुझे भास हो रहा था कि उनके मुख से शब्द निकल रहे हैं—"सावधान ! वह तुम्हारे गले पर छुरी चलाएगा।" जैसे कोई घटना स्वप्न मे देखी जाती है उसी प्रकार मुझे भास हो रहा था। और इसी समय प्रत्यक्ष शकर मामा की मूर्ति सामने देखकर मेरा दिल बैठ गया—घबडाकर मैं चीख उठी, "भैया—" भैया को आते न देखकर शकर मामा ने आगे बढते हुए कहा, "अरे, तुम पर यह क्या पागलपन सवार हो रहा है ? तुम क्या उसे नरकपुरी मे भेजना चाहती हो ? जीते जी तुमने उसके हाथो जो पाप करवाए है क्या उससे तुम्हारा मन नही भरा ?"

हे परमात्मा ? ऐसे कटु शब्द सुनने के लिए मुझे क्यो जीवित रखा ? मैंने ऐसा कौन-सा अपराध किया था ? किन्तु परमात्मा को भला-बुरा कहने से क्या लाभ होगा ? मेरे भाग्य मे जो लिखा था वही हुआ। शकर मामा के कटु शब्दो को सहना पडा। मै अधिक बोल नही सकती थी·· ···वहाँ से उठकर जा भी नही सकती थी। केवल चीखना मेरे बस की बात थी किन्तु अपने सम्मुख दुष्ट मूर्त्ति को देखकर मेरी जीभ तलुए से चिपक गई थी। मुँह से आवाज नही

निकल रही थी केवल मामाजी की ही बात मानूँगी। "इन सुधारक मतो से तुम्हे बचकर रहना होगा। अब हमारे कुल को कलक न लगाओ। जो तुम से हो गया उसके लिए मै तुम्हे क्षमा कर दूँगा। समझ रही हो मेरी बात ? तुम्हारा भाई तो बडा ही विक्षिप्त है। मैंने परसो बात चलाई तो कहने लगा जान ले लूँगा। उसमे तो बात करने का भी ढग नही है।" उनका एक-एक शब्द तप्त सलाई की तरह मेरे कलेजे मे चुभ रहा था। उनका वहाँ ठहरना मुझे अखर रहा था, किन्तु मै क्या कर सकती थी ? उन्होने फिर कहा, "क्यो, जवाब क्यो नही देती ? क्या तुम अपने पति का नरक मे सड़ना पसन्द करती हो ?" इन शब्दो को सुनकर मैं हताश हो उठी ? अपनी पूरी शक्ति सजोकर मै जोर से चिल्ला उठी, "भैया, उत्तर मे बाहर से आवाज आई। हाँ" उसे सुनकर शकर मामाजी ने झल्लाकर कहा, खूब रोओ तेरे पति के भाग्य मे यही लिखा होगा तो तू क्या करेगी और तेरे कारण उसका समूचा घात होना है तो हम भी क्या कर सकते है। हम तो केवल हमारी आबरू के लिए उठते है। इस प्रकार बडबडाते हुए वे जल्दी से कमरे के बाहर चले गए। बाहर जो सभाषण चल रहा था वह मै सुन रही थी, "पिताजी, क्या तुम भाभीजी के कमरे मे गए थे ? ऐसी हालत मे उस कमरे मे जाते तुम्हे शरम नही आई ?"

"चुप रह बदमाश· ···मैं तेरी सूरत नही देखना चाहता सभी साले कुल कलक है।"

धोडू भैया और उनके पीछे भैया मेरे कमरे मे आ गया था। मैं दौडकर भैया के गले से लिपट गई। बात क्या है, उसकी समझ मे नही आ रही थी। वह मुझ से बार-बार रोने का कारण पूछ रहा था किन्तु मेरे मुँह से शब्द नही निकल रहा था और मैं कह भी क्या सकती थी ? किन्तु धोडू भैया ने कहा, "अभी पिताजी यहाँ आए थे ·· ।"

"कौन ? तेरा बाप यहाँ आया था ? इस कमरे मे ? अरे···· "

इतना कहकर भैया तैश से कमरे के बाहर चला गया। मुझे फिकर लग रही थी कि अब क्या होगा ?

८३

गत भयकर परिच्छेद को लिखे आज डेढ-दो मास बीत चुके। इस अवधि मे मैंने उन कागजो को देखा तक नही। जिस समय भैया के साथ मैने निश्चय कर लिया था कि अपनी जीवनी लिखूँगी, उस समय अपना अन्तिम दु खदायक भाग भी मुझे लिखना होगा, इसे मै जानती थी, किन्तु अब प्रत्यक्ष लिखने का समय आया तब उन सब दुःखभरी घटनाओ का चित्र सामने खिच जाने से मुझ अभागिन के मन पर जो परिणाम होना स्वाभाविक था वह हुए बिना कैसे रह सकता था। मन मे विचार आ रहा था कि जितना लिखा गया उतना ही पर्याप्त है। अब आगे नही लिखा जा सकता। साथ ही मेरी खाँसी और बुखार मेरे उक्त निश्चय के लिए सहायक सिद्ध हुए। किन्तु एक बार जिस कार्य को हाथ मे लिया है उसे पूर्ण करना आवश्यक है यह सोचकर और भैया को मैंने जो वचन दिया है उसे पूर्ण करने से पहले कही मेरी जीवन यात्रा समाप्त न हो जाय इस डर से मैने अपनी जीवनी को अमानत लिखने का पुन निश्चय किया है। परमात्मा की जो इच्छा होगी वही होगा। अपने बस मे क्या है ? आज जिन आपदाओ को सहते हुए अन्तिम क्षण की राह देखना यही एक मार्ग मेरे लिए शेष रह गया है।

भैया को मेरे कमरे से बाहर तैश मे जाते देखकर मुझे डर लग रहा था कि अवश्य अब कोई झगडा-फिसाद होगा। मैंने घबडाकर धोडू भैया से कहा, "जाओ, भागो, तुम उनके पीछे जाओ।' किन्तु वह बेचारा क्या कर सकता था। आगे क्या हुआ था, मुझे कुछ मालूम नही हुआ। मैं अपने दु ख की मारी कमरे मे पडी थी और ऐसी अवस्था मे कमरे मे आकर बोलने की शकर मामा को कैसे हिम्मत हुई ? क्या उनके कलेजा नही है ? इस प्रकार के विचार मेरे मन मे उठ रहे थे, आज यह हालत है तो आगे चलकर और क्या होगा ? यह सोच कर मेरा कलेजा फटा जा रहा था ? मैने निश्चय कर लिया था कि सासूजी को छोडकर मै कहीं नही जाऊँगी ? किन्तु केवल निश्चय कर लेने से ही काम नही बन सकता। सासूजी का भी निश्चय होना चाहिए। यदि वे सुसराल मे रहना चाहेगी तो फिर मेरा निभाव कैसे लगेगा। और फिर मै कहाँ रहूँगी ? मायके मे मेरी बन नही सकती। जब मुझे किसी की परवाह नही थी, तब सब

ठीक था, किन्तु अब इस निराधार अवस्था मे तो दु ख ही दु ख है। क्या लक्ष्मीबाई और यशोदाबाई की सलाह ली जाय ? उनके मार्ग-दर्शन के अनुसार कार्य किया जाय ? मेरे मन मे तूफान उठ रहा था । चार दिन पहले मैं स्वर्गीय सुख मे तैर रही थी अपने आप पर अभिमान किया करती थी और आज नरक-पुरी-जैसी यातनाओ से जर्जर हो उठी थी । एक ही दिन मे सारा प्रकाश जाता रहा और अँधेरे मे मुँह छिपाकर बैठने की नौबत आ गई । मेरी हालत दुर्गी से देखी नही जाती । वह मेरे पास नही आती उसे लग रहा था और उसने कई बार कहा भी कि जहाँ मेरा अस्तित्व होगा वहाँ दु ख के अतिरिक्त सुख की छाया भी की दिखाई नही देगी ।

दो दिन के बाद भैया मेरे पास आकर कहने लगा, जो होना था सो हो गया । अब आगे क्या व्यवस्था करनी है ? मालूम होता है कि शकर मामा तुम्हारी सास को अपने साथ ले जाना चाहते है । और तुम कहती हो कि सासूजी को छोडकर नही रहोगी । फिर क्या किया जाय । उनके यहाँ जाकर तुम्हारा निभाव कैसे लगेगा ? शकर मामा तुम्हे सुख से नही रहने देगे । मै चाहता हूँ कि तुम मेरे साथ रहो । हम लोग घर चलेगे । एक-दो महीने अनुभव करेगे, यदि वातावरण अच्छा रहा तो ठीक ही है, नही तो किसी दूसरे गाँव मे चलकर बसेगे लेकिन अब तुम मुझ से जुदा न हो और न मैं होने दूँगा ।

मुझे मालूम था कि किसी दिन यह प्रश्न उपस्थित होना है । तार गोपाल मामाजी को भेजा गया था और आए थे शकर मामाजी इसीसे मे अन्दाज लगा चुकी थी कि यह प्रकरण ठीक से नही निपटेगा । मैं यह भी सुन चुकी थी कि आए दिन से शकर मामा ने घर की चीज वस्तु को खोजना-खाजरा शुरू कर दिया था । दुर्गी मुझे सब कहा करती । मैं एक कमरे मे पडी रहती, सासूजी दूसरे कमरे मे । हम दोनो की भेंट नही होती । अपने कमरे से बाहर निकलने की मुझे इच्छा नही होती । वे भी मुझे नही मिलना चाहती । लक्ष्मीबाई अथवा यशोदाबाई मे से कोई हमेशा मेरे साथ रहती । घर की व्यवस्था दुर्गी देखा करती इसलिए शकर मामा की करतूतो को वो देख आती और सब आकर मुझ से कहा करती । आज मेरा कपडो का बक्स खोला गया ··कल मेरी आभूषणो की सन्दूक खोली गई, ऐसी कार्यवाहियाँ चल रही थी । आठवे दिन स्वय अजिया सासूजी पूना से आ गई । सब व्यवस्था यथोचित की गई किन्तु

जब रीति के अनुसार मेरे सम्बन्ध मे जो किया जाना था वह नही किया गया, यह देखकर वे सतप्त हो उठी। आग मे तेल डालने के लिए शकर मामा सिद्ध होकर बैठे थे माँ के आ जाने से अब उन्हे दुगुना जोर आ गया था। मेरे पति की जो इच्छा थी उसके विरुद्ध बर्ताव न करने का मैंने निश्चय कर लिया। स्वतन्त्र रहकर मै अपना जीवन यापन कर सकूँ ऐसी मेरे पति ने व्यवस्था कर दी थी, इसलिए इन लोगो के बहकावे मे न आने का मैंने सकल्प कर लिया था। नवाँ दिन आ गया। दूसरे दिन दसवाँ दिन होने से अजिया सासूजी की जबान कतरनी-जैसी चल रही थी। दसवे दिन अपनी इच्छानुसार मेरे सम्बन्धी धार्मिक कार्य-पूर्ण करने का उनका आग्रह था उस दिन रात मे भैया मेरे कमरे मे सोया था। आते ही उसने एक दम कहा, "जाइए, निकल जाइए यहाँ से, मैं तब से आपकी बकवास सुन रहा हूँ। देखता हूँ मेरे जीते जी इसके शरीर को कौन छूता है। या तो मै अपनी जान दे दूँगा या जो आगे बढेगा उसकी जान ले लूँगा। दस दिन भी नही बीत पाए और तुम्हारा यह हाल है? तुम्हे चाहिए तो उसके जेवर, आभूषण आदि सब उठाकर ले जाओ, मुझे तुम्हारी कानी-कौडी की भी आवश्यकता नही है, किन्तु यदि किसी ने उसके शरीर को स्पर्श किया तो .... "

"क्या अब तक जेवर, आभूषण आदि बचे है? जेवर और कपडा-लत्ता तो शकर मामा ने कभी का पार कर दिया ." बीच ही मे दुर्गी बोल उठी। फिर क्या था, एक ही हगामा मच गया। मै रो रही थी। बात किस हद तक पहुँचेगी इसका अन्दाज नही लग रहा था, किन्तु भैया के चुप हो जाने से बात बढ नही पाई। दूसरी ओर से बकवास चल रही थी। शकर मामा मौन थे, केवल अजिया सासूजी की जबान चल रही थी। जेवर, आभूषण आदि हजम हो जाने की खुशी मे शायद शकर मामा चुप बैठे थे। अन्त मे उन्ही ने कहा, "गणपत-राव, नाराज क्यो होते हो? हम पुराने लोगो की विचारधारा भी पुरानी होती है, उसके अनुसार हमने कहा, भाई तुम्हे नापसन्द है तो हम क्या कर सकते है? क्या हमारी इच्छा थी कि ऐसा हो। अब जो होना था सो हो गया। बुढिया को लगा कि जो आज तक अपने कुल मे नही हुआ वह अब भी न हो। उसकी अपनी विचारधारा है, जाने दीजिए, छोडिए उसकी बातो को, आयन्दा हम एक शब्द भी नही कहेगे। व्यर्थ मे दुश्मनी थोड़े ही बढाना है?

क्या उसके चले जाने से हम लोगो मे बैर होना है ? वह चला गया फिर भी तुम्हारी बहन क्या हमारी बहू नही कहलाएगी ? हम तो उसे त्याग नही सकते ? आखिर उसके लिए हमे ही भागकर आना पडा न ? क्या कोई पराया आ सकता था ? बस, समझ लो । नाराज न हो · हम आपस मे लडते रहे तो इन दोनो की क्या व्यवस्था होगी । ऐसा नही मेरे मत मे कल हम लोग यहाँ से चल दे । पूना जाकर ही जो करना है सो करेगे । जो करना है वह तुम्हारे और हमारे विचार से ही किया जायगा ।" इस प्रकार बहुत देर तक उनका प्रवचन होता रहा । मुझे आश्चर्य तो इस बात का था कि भैया चुपचाप बैठा किस प्रकार सुनता रहा ? कुछ देर बाद भैया ने कहा, "ठीक है, आपका कहना उचित है। हम लोग साथ ही चलेगे, किन्तु मै उसे आपके साथ नही भेजूगा, उसे मैं अपने घर ले जाऊँगा । फिर यदि वह चाहे और आपकी आज्ञा हो तो आगे वह आपके घर आ-जा सकती है । अभी दस दिन भी पूरे नही हो पाए और उस बीच झगडा करने की मेरी तो इच्छा नही है किन्तु भाई आप उस घृणित प्रस्ताव को रखेगे तो मै सहन नही कर सकता·· "

उन दोनो का सभाषण चल रहा था और मेरे मन मे विचार आ रहा था कि सासूजी से एकान्त मे किस प्रकार भेट की जाय । आगे कैसी व्यवस्था की जाय, इसके सम्बन्ध मे उनका परामर्श आवश्यक था, किन्तु क्या किया जाय । उनसे एकान्त मे बातचीत करने का अवसर मिलना कठिन था और मिल जाने पर भी अपनी इच्छा के अनुसार उन्हे लेकर स्वतन्त्र रहने का विचार क्या वे पसन्द कर सकती थी । अन्तिम क्षण मे मेरे पति ने मुझसे कहा था कि, "माँ को अपने से दूर न करना ।" और इसीलिए मेरी इच्छा थी कि भगवान ने जिस अवस्था मे लाकर पटक दिया है, उसमे कम-से-कम माताजी को लेकर आखिरी दम तक स्वतन्त्र जीवन यापन करू । किन्तु वही असम्भव मालूम हो रहा था । आखिर अब मैं क्या करू ? भैया के साथ मे रह सकती थी किन्तु भाभी के साथ कैसे निभाव हो सकता है ? यदि माताजी मेरे साथ रहेगी तो समस्या आसानी से हल हो सकती है । यदि पूना से शकर मामा और अजिया सासूजी का आगमन न होता तो सभवत माताजी मेरी बात मान लेती, किन्तु अब असम्भव था । गोपिका काकी द्वारा मैंने सासूजी से एकान्त मे भेंट करने का बहुतेरा प्रयत्न किया किन्तु वह निष्फल रहा और दूसरी बात यह थी कि

उन्होने भाषण बन्द कर दिया था, और यदि बोलती तो क्या बोल रही है इसका उन्हे ज्ञान नही था।

दूसरे दिन अजिया सासूजी, सासूजी, शकर मामा आदि लोग पूना जाने के लिए तैयार हुए। भैया का कहना था कि हम लोग बाद मे चलेगे, किन्तु मैंने उसका कहना नही माना। मैने उसे साफ कह दिया कि सासूजी को छोडकर मैं पीछे नही रह सकती। चाहो तो तुम रह सकते हो, मै नही रहूँगी। हम सब लोगो ने रात की गाडी से पूना के लिए प्रस्थान किया।

८४

पूना की वह यात्रा। इसके पूर्व की गई यात्रा और आज की यात्रा। जमीन आसमान का फरक हो गया था। केवल एक बन्धन टूट जाने से सारी दुनिया बदल गई। वही मै और वही मेरी सासूजी, किन्तु उस बन्धन के टूट जाने से आज मै उनसे भाषण करने मे हिचक रही थी। मेरे पति के होते हुए मुझे शकर मामा की परवाह नही थी किन्तु आज मुझे उनका भय लग रहा था। बम्बई की स्मृतियाँ मुझे पागल बना रही थी।

दुर्गी मेरे समीप बैठी थी, उसके पास कोने मे मै रोती बैठी थी। सासूजी मेरे पास ही कुछ अन्तर पर बैच पर पडी थी ·····शायद सो रही थी। अजिया सासूजी दूसरी बैच पर पडी सो रही थी। शकर मामा, धोडू भैया और भैया दूसरे कम्पार्टमेण्ट मे बैठे थे। रात के दो बजे का समय होगा। गाडी पूर्ण वेग से चली जा रही थी। इसी समय सासूजी ने एकदम उठकर पास मे बैठी दुर्गी का हाथ पकड कर उसे अपनी ओर जोर से खीचते हुए बडे ही विचित्र स्वर मे चीखकर कहा, "नही, नही बेटा, अब मै तुझे नही छोडूँगी, इसी तरह जकड लूँगी"······दुर्गी घबडा गई और मेरे पास सरकने लगी। "यह क्या ? आज

यह क्या कर रहा है ?" ऐसा कहकर सासूजी जोर से हँसने लगी। यह देखकर मेरे मन मे विचार आया कि कही इन्हे उन्माद तो नही हो गया ? क्या यह उन्माद है ? यह सोचते ही मै जोर से रोने लगी। अजिया सासूजी जाग गई। उन्होने सासूजी से सोने के लिए कहा किन्तु किसी की बात मानने की अवस्था मे वे नही थी। मेरा तर्क सही था। वे सोई थी और उन्होने स्वप्न मे मेरे पति को देखा और उसी खुशी मे वे जाग उठी और जागने पर सदैव के लिए उसी स्वप्नावस्था मे बनी रही। अब उन्हे और कुछ दिखाई नही दे रहा था। कभी वे हँसा करती और कभी रोने लगती। कभी लेट जाती, फिर उठकर बैठ जाती ' '' उनका नाम लेकर जोर-जोर से पुकारने लगती। पूना स्टेशन आने तक यही हाल होता रहा।

पूना स्टेशन पर गाडी से उतरते ही शकर मामा ने अपनी माँ की ओर अर्थपूर्ण दृष्टि से देखा और अपना असबाब उठाकर हमसे बिना पूछ-ताछ किए चल दिए। जाते-जाते उन्होने धोडू भैया से कहा, "दीदी का हाथ पकडकर उसे ले आ। मेरी समझ मे नही आ रहा था कि मैं किसके साथ जाऊँ उनके साथ या भैया के साथ। फिर भी मै सासूजी का दूसरा हाथ पकडकर उनके साथ होली। भैया और दुर्गी अपना सामान उठाकर मेरे पीछे चले आ रहे थे। दरवाजे के बाहर आते ही शकर मामा ने त्योरियाँ चढाकर मेरी ओर देखा और सासूजी का पकडा हुआ मेरा हाथ झटक कर चुभते हुए स्वर मे कहा, "तू और तेरा वह सुधारक भाई ···जी चाहे वहाँ जाओ। अब इसका हाथ क्यो पकड रही है ? अब हमसे तेरा क्या सम्बन्ध ? मेरी आँखो मे आँसू झलक आए। लग रहा था कि मै अब गश खाकर जमीन पर गिर पडूँगी। अपने लोगो को गाडी मे बिठाकर शकर मामा चले गए। मै रोती खडी रही। देखने वाले क्या कहेगे इसका भी मुझे ज्ञान नही था। भैया पास ही तटस्थ खडा था। गुस्से से वह तमतमा रहा था। भैया ने गाडी बुलाई, सवार होते समय उसने कहा, "यमू, मैंने तो पहले ही कहा था कि इन लोगो के साथ नही चलेगे। मै तो जानता था कि यह दुष्ट अवश्य ही ऐसा खेल खेलेगा।"

"ठीक कहते हो भैया किन्तु माताजी का हाल तो तुम देख रहे हो ना ? क्या तुम्हारा यह कहना है कि उनकी ऐसी अवस्था मे मैं उनसे दूर रहूँ ? मैं तो एक क्षण के लिए भी उनसे दूर नही होना चाहती।"

"खैर, अब गाडी मे इसकी चर्चा करने से क्या लाभ" इतना कहकर उसने उस विषय को समाप्त कर दिया। रास्ते मे जाते-जाते दुर्गी को उसके मायके मे गाडी से उतार दिया। उसको उतारते समय मेरी आँखो से आँसू टपकने लगे। किस अवस्था मे मै उसे बम्बई ले गई थी और आज किस अवस्था मे उसे छोड रही हूँ। गाडी मे से उतरकर मै सीधी भैया के कमरे मे चली गई। मेरे लिए जी खोलकर रोने के लिए घर मे वही एक मात्र एकान्त स्थान था। मुझे देखकर दादी का क्या हाल हो रहा था इसे कल्पना से ही जाना जा सकता है। दुखद वार्ता सुनकर दादी ने बम्बई मे आना चाहा था किन्तु कई अडगे लगा कर नई माँ ने उसे नही जाने दिया।

समय के आवरण के नीचे सब कुछ दबता चला जाता है। पद्रह दिन हो चुके थे, मेरा दुख काम नही हुआ फिर भी उसका आवेग अवश्य कम हुआ था। मै घर से बाहर नही जा सकती थी इसलिए सासूजी का वृत्तान्त मुझे मालूम नही हो रहा था। प्रतिदिन मै भैया से कहा करती, "अरे, किसी तरह उनका समाचार प्राप्त करो, मुझे उनके पास जाना चाहिए...... हो सके तो उनके पास रहना चाहिए।" किन्तु भैया ध्यान नही दे रहा था। आखिर एक दिन मैंने चिढकर कहा, "यदि कल तुम उनका समाचार न ला सके तो मैं चाहे सो करूँगी .. उठकर स्वय चली जाऊँगी।" जब मैने इतना कह दिया तब दूसरे दिन उसने मुझे कहा, "उनका वही हाल है और अब बुखार आने लगा है।" यह सुनकर मेरा दिल धडकने लगा। मेरे पति के अतिम शब्दो का मुझे स्मरण हो आया . "माँ को दूर नही करना ." किस प्रकार मै माताजी के पास जा सकूंगी? आखिर मैंने भैया से कहलवाकर धोडू भैया को बुला लिया। पूछ-ताछ करने पर धोडू भैया ने कहा, "फूफी का हाल वही है। दिनो-दिन हालत बिगडती जा रही है, वे किसी बात को समझ नही पाती। अपने बेटे का और तुम्हारा नाम लेकर पुकारा करती है। कई बार गोपाल काकाजी ने तुम्हे बुलाने के लिए कहा किन्तु पिताजी नही मानते। "हमारे घर मे हम ऐसा अनाचार नहीं सहेंगे" ऐसा कहकर वे बात टाल देते है।"

धोडू भैया का भाषण सुनकर क्षण-भर के लिए मेरे मन मे विचार आया कि हो जाने दो इन लोगो की इच्छापूर्ण......उनके कहने के अनुसार ही किया जाय। किन्तु इसी समय पति की तिरस्कार भरी मुद्रा से मेरी ओर

देखते हुए मूर्ति मुझे दिखाई दी । साथ ही मै यह भी सोच रही थी कि क्या इतना कर लेने पर भी शकर मामा मुझे सुख से रहने देगे ।

और पद्रह दिन बीत गए ···मरते समय उन्होने भैया से जो दो शब्द कहे थे उनका मुझे स्मरण नही था । किन्तु भैया और बम्बई के मित्र उसी व्यवस्था मे लगे थे । बम्बई से नाना साहव का पत्र आया था, उन्होने लिखा था, सब कार्यवाही की गई । अब केवल रकम मिलना शेष है, कागज भेजे हैं सही करवाकर लौटा दीजिए ।"

भैया ने जब मुझे बताया तब मुझ से रहा नही गया । समस्त बातो का स्मरण होने से मैं फूट-फूटकर रोने लगी। कुछ देर बाद सम्हल कर मैंने भैया से कहा, "तुम जाकर गोपाल मामाजी से इसके बारे मे परामर्श लो । सासूजी को लेकर स्वतन्त्र रहना अब असम्भव मालूम हो रहा है । रकम ले जाकर गोपाल मामाजी को सौप दो । जब तक सासूजी जीवित है तब तक मैं उस धन को छुऊँगी नही । जिन्होने पाल-पोसकर मेरे पति को बडा किया, उनकी कमाई पर उनकी माता का ही अधिकार है ।" भैया ने मुझे बहुतेरा समझाया-बुझाया किन्तु मैंने उनकी कोई बात नही मानी । आखिर भैया गोपाल मामा के पास गया । उन दोनो मे व्यवस्था के बारे मे बातचीत होती रही । मालूम नही कि इस बातचीत को शकर मामा ने सुना या नही । धोडू भैया ने कहा कि शकर मामा ने छुपकर सुना था । इस बातचीत के बाद शकर मामा का मेरे प्रति जो रुख पलटा था उससे भी मालूम होता है कि उन्होने भैया और गोपाल मामा की बातचीत सुनली थी । दूसरे ही दिन उन्होने घर मे कहा—

"अब वह हमारा कहना नही मानती तो जाने दो । उसे यदि अपनी सास से इतनी भक्ति है और सास भी जब उसे यदा-कदा बुलाया करती है तो एक बार उसे बुलावा लिया जाय ।" सास से मिलने के लिए मुझे सदेशा आया । दो-चार दिन के बाद स्वय शकर मामा बुलाने आए । पिताजी और भैया ने मिलकर उनसे कहा,

"सास-बहू का इतना प्रेम है तो इसे भेज दीजिए । आकर मिल जाया करेगी ।" फिर उन रुपयो के बारे मे उन्होने भैया से कुछ कहा । उन्हे पूरा पता नही था, अन्दाज से ही उन्होने बात निकाली थी और गोपाल माना ने कहा ऐसा बहाना बनाया था । गोपाल मामा से जब भैया ने कहा तो उन्होने

बताया कि शकर मामा से इसके सम्बन्ध मे उन्होने कुछ नही कहा। आखिर भैया और गोपाल मामा ने यह निश्चित किया कि यदि वह रकम लेना नही चाहती तो उसे कम्पनी अथवा बैंक मे जमा कर दी जाय। किन्तु इस व्यवस्था का पता शकर मामा को न लगने दिया जाय। शकर मामा को जब तक इस व्यवस्था का पता न चला··· · वे भैया से बहुत मीठी बात करते रहे। यह अच्छा ही हुआ।

८५

बीमे की बहुत बडी रकम मुझे मिलना है, यह जानकर शकर मामा का मेरे सम्बन्ध मे रुख पलट गया था। विशेषत मुझे यही लाभ हुआ कि मै ससुराल अब जा सकती थी। जो शकर मामा मुझे देखना भी पसन्द नही करते थे वे स्वय अब घर आकर भैया और पिताजी से कहने लगे, "इसे भेज दो। उसकी सास बीमार है, उन दोनो मे बहुत प्रेम-भाव है तो हम क्यो उसमे विघ्न उपस्थित करे। हमारी प्रथा के अनुसार वह नही मानती—मुण्डन नही कराती—तो अब क्या किया जाय ? साल भर के बाद मान लेगी। कई घरो मे आजकल यही हो रहा है। हमसे देखा नही जाता। किन्तु क्या करे ?" मुझे घर जाने की आज्ञा मिलते ही मैंने भैया से कहकर जाने की व्यवस्था की। सासूजी की हालत दिन-प्रतिदिन बिगडती जा रही थी। वे हम दोनो का नाम लेकर पुकारा करती उनका उन्माद बढता जा रहा था। उनकी ऐसी अवस्था मे मैं उनसे दूर कैसे रह सकती थी ? भया ने मेरा विचार सुन लिया। कुछ देर चुप रहकर उसने कहा, "यमुताई, तुम ससुराल जा सकती हो किन्तु वहाँ रहने का विचार त्याग दो। तुम प्रतिदिन वहाँ जाकर शाम को घर लौट आया करो। वहाँ तुम्हे बहुत कष्ट होगा।"

. "भैया, जो हो गया उससे अधिक बुरा अब क्या होगा ? फिर अब इन कष्टो से मै क्यो डरूँगी ? सासूजी की प्रकृति अस्वस्थ्य है और मैं जीवित होकर क्या उन्हे अकेली छोड दूँ।" • "तुम्हारा कहना ठीक है किन्तु वहाँ उन्हे बहुत तकलीफ होगी, इसके लिए शाम को तुम लौट आया करो।"

मैने उत्तर मे कुछ नही कहा। दूसरे दिन शाम को मै ससुराल चली गई। मैने देखा सब लोग मेरी ओर तिरस्कृत दृष्टि से देख रहे है, किन्तु मैंने ध्यान नही दिया और सीधी सासूजी के कमरे मे चली गई। उनकी हालत देखकर गद्गद् भाव से मै उनके पैरो के पास बैठ रही थी तभी पास मे बैठी अजिया सासुजी ने चीखकर कहा, "दूर··· 'दूर · हट, उसके पानी मे छूत लग जायगी।" यह सुनकर मुझसे नही सहा गया, हिचकियाँ बाँधकर मैं रोने लगी। बनू दीदी कही समीप ही खडी थी। मुझे रोती देखकर कह उठी, "यह क्या ? हमारे भरे पूरे घर मे सध्या समय क्यो रो रही है ? तेरा भाग्य फूट गया, अब हमे परेशान करने क्यो आई है ?" यह सुनकर मेरी छाती फट गई। लग रहा था कि कही जाकर जान दे दूँ। किन्तु जान देना कोई सहल बात तो नही है ?

पहली बार ससुराल जाते ही यह रग-ढग देखकर आगे क्या हाल होगा इसे मै जान सकती थी, फिर भी सब कुछ सहकर सासूजी की सेवा करने का मैने दृढ-निश्चय कर लिया था। मेरा निश्चय था कि मैं रोज आऊँगी और सासूजी के पैरो के पास बैठी रहा करूँगी। सौभाग्य से शकर मामा कुछ नही कहते थे। केवल यदा-कदा इतना ही कहा करते, लोग-बाग हँसी उडाते है, क्या किया जाय। अब भी इसके मन मे विचार नही आता। अब इन बालो की क्या शोभा है ? "जाने कब इसका मन चाहेगा······"

विधवा स्त्री जब तक सिरका मुडन नही करती उसे खाने-पीने की चीजो का स्पर्श करने का अधिकार नही होता था ···चौके के लिए उसे अछूता माना जाता था।

शकर मामा कुछ न कर किन्तु कहने के लिए घर मे और लोग भी तो थे। ममिया सासूजी, अजिया सासूजी, बनू दीदी आदि दिन-भर मेरे पीछे पडी रहती, "यह मत करो, उसे रहने दो, इसे हाथ न लगाना, उसे छूना नही।" इस प्रकार कहकर वे लोग अवहेलना किया करते। एक दिन मे अकेली

सासूजी के पास बैठी थी। किसी चीज को वे सिरहाने टटोल रही थी। मैने पूछा, क्या चाहिए तो उन्होने 'पानी" कहा। मुझे ध्यान नही रहा। मैंने झट से उठकर लोटे मे से गिलास मे पानी उडेल लिया और गिलास उनके मुँह मे उडेलने जा रही थी तभी बनू दीदी वहाँ आ गई। उन्होने हल्ला मचा दिया। मैंने सासूजी को पानी पिला दिया ऐसा कहकर वे अजिया सासूजी को वहाँ ले आई। फिर क्या था, वाग्बाणो की मेरे ऊपर बौछार होने लगी। "सिर पर रखे उस छप्पर को पहले नष्ट कर तब आकर हमारे घर की किसी वस्तु को छूना। हमे परेशान कर रखा है, बम्बई मे जो किया क्या वह पूरा नही हुआ ? अब उसका जो होना है होने दो। तू यहाँ क्यो आती है ? बडी सास की चिन्ता है। अब तेरी दृष्टि मे सास मरे या रहे, तुझे उससे क्या, जा पहले अपने सिर के भार को हल्का कर तब......" कहाँ तक लिखा जाय। बहुत देर तक मै रोती रही।

ससुराल का यह हाल था। मायके मे इतना नही, फिर भी कम नही था। नई माँ कभी-कभी ऐसा ही कुछ कह देती। दादी के कारण वे अधिक नही कह सकती थी। किन्तु यह आधार भी मेरे भाग्य मे अधिक दिन नही था। एक सकट आ जाने पर अब सकटो की परम्परा लग गई। मेरी दादी एक दिन मुझे छोडकर सदैव के लिए चली गई। हारी नही, बीमारी नही, सुबह स्नान, ध्यान करके उपवास होने से चार मूँगफलियाँ खाई थी, रात को दस्त और उलटियाँ होती रही और सुबह होते-होते चल बसी। मरते समय दादी ने कहा, 'यमू, यदि यही चार महीने पहले मै चली जाती तो तेरा दुख तो नही देखती। वे चले गए, उनके बदले मे मै ही उस समय चली जाती तो कितना अच्छा होता।"

दादी के मर जाने से घर पर सम्पूर्ण अधिकार अब नई माँ का हो गया। उनके बर्ताव से भैया बहुत त्रस्त था। किसी दूसरे गाँव मे जाकर बसने की उसे इच्छा हो रही थी किन्तु मै नही जाना चाहती थी। इसलिए उसे भी रहना पडा। सासूजी को इस हालत मे छोडकर मैं कैसे जा सकती थी। घर के लोग मुझे परेशान किया करते, सासूजी की सेवा भी नही करने देते थे। गोपाल मामाजी का मुझे सहारा था परन्तु वे हमेशा घर मे नही रह सकते थे। जब कभी वे सुन लेते तो घरवालो को ऐसा न बकने के लिए समझाया-

बुझाया करते किन्तु उनकी कौन मानता था ? धोडू भैया अनाडी थे इसलिए चाहे जिसे मन मे आ जाता सो कह देते । अपनी दादी और बनू दीदी को डॉट देते थे । स्वय पिताजी से भी खूब झगडा हो जाता ।

एक दिन शकर मामा को मालूम हो गया कि बीमे की रक्म जो मिलनी थी उसकी कुछ व्यवस्था की गई है और धन अब उनके हाथ नही लगेगा । यह मालूम हो जाने पर उनका रुख पलट गया । वे मुझे तग करने लगे । किन्तु कोई परेशानी अब मेरे लिए नवीन नही थी ।

इसी समय एक दिन लक्ष्मीबाई और यशोदाबाई का पत्र आया इसके पहले भी उनकी ओर से दो-तीन पत्र आए थे किन्तु मैंने उत्तर नही भेजा था । इस पत्र मे उन्होने बहुत उपदेश किया था । जो हो गया उसे भूल जाने को समझाया था । मेरे मृत पति की इच्छा के अनुसार स्त्री-जाति के लिए कुछ कार्य करने का उत्तरदायित्व हम लोगो पर है । इसका स्मरण दिलाया था । अन्त मे लिखा था कि इस पत्र का उत्तर न आने पर उनमे से कोई एक आकर मेरे पास रहेगी ।

पत्र को पढकर मेरी स्मृतियो मे उबाल आ गया । उन दिनो का चित्र सामने दिखाई देने लगा । अब भी सब लोगो का मुझसे पूर्ववत् प्रेम है यह देखकर मैं गद्गद् हो उठी । मैंने पत्र का उत्तर लिखा । जिन बातो का मै अनुभव कर रही थी उन सभी बातो को मैंने ब्यौरे से लिखा । ससुराल और मायके के वातावरण का पूरा चित्र खीच दिया । मेरे पति की इच्छानुसार स्त्री-जाति के लिए कुछ करने की मुझे इच्छा है······कम-से-कम बिना मूल्य किसी को पढाने का सत्कार्य करूँ ऐसा लग रहा है, किन्तु माताजी की हालत बहुत खराब है, उन्हे अकेली छोडकर कही जा नही सकती । अन्त मे मैंने उनसे प्रार्थना की थी कि पत्र भैया को छुपाकर भेजा है । पढते ही फाडकर फेक देना । क्योकि पत्र मे मैंने भाभी और नई मॉ के बर्ताव के सम्बन्ध मे बहुत कुछ लिखा था और मेरी इच्छा थी कि भैया उन बातो को यदि जान लेगा तो उसे बहुत दु ख होगा । मैं पत्र लिखकर समाप्त कर रही थी और तभी धोडू भैया आए । उन्होने बताया कि सासूजी की हालत बहुत बिगड गई है । साथ ही उन्होने यह भी बताया कि उनकी नई माँ आज स्यानी हुई है ।

मुझे बुलाया नही था फिर भी सासूजी की हालत बिगड गई है यह सुनकर मुझसे नही रहा गया। मै ससुराल चली गई। मै जब वहाँ पहुँची तब समारोह की तैयारियाँ हो रही थी। नाते रिश्तेदारो के यहाँ मिठाई भेजी जाने की व्यवस्था की जा रही थी। अजिया सासूजी व्यस्थ थी। मुझे आई देखकर अजिया सासूजी की त्योरियाँ चढ गई और जबान चलने लगी। ऐसे मगल अवसर पर मुझ-जैसी अभागिन का सामने आ जाना उन्हे बहुत अखरा था। उनकी गालियाँ सुनकर मुझे रोना आ गया, किन्तु मुझे रोती देखकर और सब लोग मुझ पर टूट पडे। ऐसे मगल कार्य के समय मेरा रोन-धोना कौन सहन कर सकता था। मैने किसी की ओर ध्यान नही दिया और सीधी सासूजी के कमरे मे चली गई। मगल कार्य मे व्यस्थ होने से सासूजी की ओर ध्यान देने की किसे फुरसत थी ? वे बेचारी अकेली पडी थी। मुझे अनायास उनकी सेवा करने का अवसर प्राप्त हुआ और उन चार दिनो मे मैने भी उनकी मन लगाकर सेवा की। उन दिनो उन्हे दस्त लग रहे थे और ऐसी अवस्था मे उनकी सेवा कौन कर सकता था, इसलिए जान-बूझकर मुझे उनकी सेवा करने का अवसर दिया गया। उनकी दुखद स्थिति देखकर मैं उनके पास से उठना नही चाहती थी। मैं उन चार दिनो मे मायके नही गई। रात को भैया बुलाने आया था किन्तु मैंने सासूजी की हालत उसे बताकर जाने से इन्कार कर दिया। सात-आठ दिन तक सासूजी की हालत खराब रही। भैया फिर बुलाने आया था। उसे आया देखकर अजिया सासूजी की जबान चल उठी, "जा, चली जा यहाँ से। तुझे अपने सास की चिन्ता थोडे ही है ? मर क्यो न जाय वह, तुझे उससे क्या सरोकार। तू अपने मायके मे जाकर सुख से रह जा।" इतना सुन लेने पर मैं भैया के साथ कैसे जा सकती थी ? मै रह गई। दो-चार दिन बाद नई उमा मामीजी का गर्भाधान सस्कार होना था उनकी तैयारियाँ हो रही थी। एक दिन रात को मैंने शकर मामा को अपनी माँ से यह कहते सुना। "बडी आफत है······अब कुछ दिनो के लिए उसे मायके भेज दो। उसके घर मे होते हुए कोई ब्राह्मण हमारे घर पुँसवनादि सस्कार का होम-हवन करने के लिए नही आएगा।" दूसरे दिन शाम को मुझे मायके जाने का हुक्म दिया गया। गर्भाधान विधि समाप्त हो जाने तक ही नही तो भविष्य मे फिर कभी इस घर मे पैर रखने की मुझे सख्त मनाई की गई। सासूजी की

तबीयत अब कुछ ठीक थी और शकर मामा के उन अश्लील सस्कारो को देखने से मुझे तीव्र घृणा हो रही थी इसलिए मैं अपने मायके चली गई ।

८६

मै जिस दिन मायके गई उस दिन भैया उदास मालूम हो रहा था । मैंने पूछ-ताछ की किन्तु उसने कारण नही बताया । भोजनोपरान्त रात को जब मै उसके पीछे पड गई तब उसने कहा, "यमुताई, मुझे लगने लगा है, कि मेरे भाग्य मे बिलकुल सुख नही है । चार महीने 'पहले मै क्या आशा कर रहा था, किस प्रकार मनसूबे बाँध रहा था, और आज'' ''''" इससे अधिक वह बोल न सका । उसका कन्ठ रूध गया ''उसकी बाते सुनकर मेरी स्मृतियाँ भी जाग उठी । बम्बई के वे समस्त चित्र आँखो के सामने आ गए '''मेरी हिचकियाँ बँध गई और मैं भैया की गोद मे पडी रोने लगी । कुछ देर रो लेने के बाद हम दोनो मौन बैठे रहे । फिर भैया ने कहा, "जो होना था सो हो गया, किन्तु मन कह रहा है कि इससे भी अधिक भयकर और होना''''''" इसी समय बाहर से कुछ शब्द सुनाई दिए । शायद भैया ने कुछ सुना था । किवाड खोलकर वह बाहर चला गया और बहुत देर तक वापिस नही लौटा । निम्नानुसार मैंने भी सभाषण होते सुना '''

"क्या किया जाय'' '' कई बार मै कह चुकी यह सब क्या है ? किन्तु आपकी तो लाडली बेटी है ना ? आप, उसे क्या कह सकते है ? लोग-बाग मुँह पर थूँकते है । हमे मिलने वाला कहा करता है, "इतना होनहार लडका चल बसा और इसके सिर के इस छप्पर का इसे मोह नही छूटता ऐसी ही बेहया तो'' '''और कुछ नही, अब एक ही इलाज है '' ''और भाई को भी'' '''इससे अधिक मै नही सुन सकी । मुझे डर लग रहा था कि कही भैया खिसियाकर लडने पर आमादा न हो जाय । उसका चेहरा क्रोध से तमतमा रहा था । मेरा हाथ पकड कर वह मुझे कमरे मे ले आया । मेरी ओर विचित्र

दृष्टि से देखते हुए उसने कहा, "यमुना, जो होना था उसे मैं तो क्या ब्रह्मा भी टाल नही सकता था, किन्तु अब जो होना है, उसे मै··· मै अपनी जान की बाजी लगा दूँगा किन्तु यह नही होने दूँगा। यदि कोई हाथ आगे बढायगा तो उसका गला घोट दूँगा।" उसका चेहरा देखकर ···मुझे भय लग रहा था। उसे शान्त करने के लिए मै कुछ कह रही थी तभी उसने फिर कहा, "परसो मुझे काम के लिए गाँव जाना है, वहाँ से मैं एक-दो दिन मे लौटकर आ जाऊँगा· · आते ही दो-चार दिन मे हम लोग यहाँ से दूसरी जगह जाकर रहेगे। अब इस घर मे नही रहूँगा। न जाने ये लोग किस समय क्या करेगे ? पिताजी तो अब गऊ बन गए है। वे कुछ नही कहेगे। अब शका हो गई है तो इस घर मे रहना उचित नही।

इसी समय पानी का लोटा लेकर भाभी जी वहाँ आ गई। आते ही उन्होने कहा, "दीदी, अब तो मुझे नीद आ रही है, सोच रही थी कि अब उठेगी · "किन्तु इससे अधिक सुनने के लिए मै वहाँ नही रुकी, उठकर चली गई।

बिस्तरे पर मै पडी थी और मेरा मन भूतकाल मे परिभ्रमण कर रहा था। बचपन से लेकर आज तक की समस्त घटनाएँ मेरे सामने आकर खडी थी। मेरे पति की विचारधारा और स्त्री-जाति की उन्नति करने विषयक उनकी इच्छा का स्मरण हो रहा था। मैं मिशनरी स्त्रियो-जैसा सेवा कार्य नही कर सकूँगी। दूरदर्शी होने से मेरे पति ने मेरे भरण-पोषण की व्यवस्था करदी है। मैं चाहे जहाँ स्वतन्त्र-रूप से रह सकती हूँ। भैया-जैसे उदार जी का मुझे सहारा है। लक्ष्मीबाई और यशोदाबाई-जैसी सहेलियो का सहकार्य प्राप्त है, फिर मैं क्या न कर सकूँगी। स्वय पढकर मुझ-जैसी ही अभागिनो को पढाकर उन्हे स्वावलम्बी बनाने मे सहायक होना यही मेरा कर्त्तव्य है। मेरे पति की कृपा से मुझे कम-से-कम दूसरो का मुँह ताकने की आवश्यकता नही है। आजीवन सुख से बैठकर खाने की उन्होने मेरे लिए व्यवस्था कर दी है। किन्तु ऐसी हजारो अबलाएँ है जो निराधार है और जिन्हे शकर मामा-जैसे दुष्टो के सहारे रहकर जीवन बिताना है। ऐसी अभागिन स्त्रियो की क्या दुर्दशा हो सकती है, इसे मुझसे अधिक कौन जान सकता है, ऐसी स्त्रियो की सेवा करना, उन्हे किसी तरह अपने पैरो पर खडे रहने के लिए हर तरह से सहायता करना

यही अब मेरी कर्त्तव्य शेष है, इसे करने से ही मैं अपने मृत पति की तीव्र इच्छा की अशत पूर्ति कर सकूँगी।

उसी समय अपने विचार लक्ष्मीबाई और यशोदाबाई को लिखकर भेजने के लिए मेरा मन छट-पटा रहा था। किन्तु उस आधी रात मे कलम-दवात आदि कहाँ से मिल सकती थी ? आखिर चुप पडी रही। पडे-पडे दुर्गी की स्मृति हो आई। इन दिनो उस बेचारी का बहुत बुरा हाल हो रहा था। उसका वह दुष्ट पति लौट आया था। दुर्गी पूना मे आ गई है इस समाचार को पाते ही वह उसके मायके मे जाकर उसे घर ले गया। रातें-दिन वह उसे पीटा करता था। पीटकर जब थक जाता तो उसे कोठरी मे बन्द कर देता था। वह बेचारी बहुत त्रस्त थी। मैंने सोचा, यदि परोपकार करना है, तो दुर्गी से ही आरम्भ किया जाय। उसे सहायता दी जाय।

कुछ देर बाद मुझे भी नीद लग गई और स्वप्न मे मैंने दुर्गी को देखा। दूसरे दिन स्वय दुर्गी मुझ से मिलने आई थी। उसकी इतनी बुरी दशा हो गई थी कि उसे पहचाना नही जा सकता था। उसने अपनी जो दर्द-भरी कहानी सुनाई उसे सुनकर मै अपने आँसुओ को रोक नही सकी। बड़ी देर तक हम दोनो अपने सुख-दु ख की बाते करती बैठी थी। कुछ देर बाद भाभी जी वहाँ आई और कहने लगी। आप लोगो की बातचीत आखिर कब समाप्त होगी ? मुझे इस कमरे मे झाड़ू लगाना है।

फिर मैं वहाँ कैसे रह सकती थी ? दुर्गी को लेकर बाहर आ गई और उसे उसके घर रवाना कर दिया। शाम को नई माँ ने मुझे रसोई-घर मे बुलाया। बडे प्रेम से वे मुझे उपदेश कर रही थी कि मैं अपना दुराग्रह छोड दूँ और अपनी पुरानी परम्परा के अनुसार सब लोगो का कहना मान लूँ किन्तु मैने कोई उत्तर नही दिया, चुपचाप उनकी बाते सुनती रही।

दूसरे दिन सुबह भैया ने मेरे पास आकर कहा, "यमुताई, मैं आज गाँव जा रहा हूँ......मन कह रहा है कि न जाऊँ किन्तु गए बिना चारा नही है। मैं मुवक्किल से फीस ले चुका हूँ और मेरे न जाने से उसका मामला बिगड जायगा। इसलिए जाना आवश्यक है। न जाने क्यो मन जाना नही चाहता खैर, तुम मेरे लौट आने तक ससुरालें न जाना। वहाँ का वह समारोह तुमसे

देखा नही जायगा। तुम्हारे आँखो मै आँसुओ की झडी लगेगी और वे लोग गाली-गलोच करेगे।"

"अरे इन लोगो ने तो जान-बूझकर मुझे वहाँ भेज दिया फिर मै कैसे जाऊँगी।" इसी समय तागा आ जाने से उसमे बैठकर भैया चला गया। उसका यह पहला महत्त्वपूर्ण मुकद्दमा था और रकम भी अच्छी-खासी मिलनी थी, इसलिए उसके जाने की मुझे खुशी थी।

दोपहर के समय मुझे ससुराल से सन्देशा आया कि बुलाया है किन्तु मैं नही गई। क्योंकि मुझे अपमानित करके वहाँ से निकाल दिया गया था इसलिए अब वहा जाने को मेरा जी नही चाहता था। शाम के समय नौकरानी फिर बुलाने आई। उसकी आवाज मे घबडाहट थी और उसने कहा कि मेरी सासूजी की हालत बहुत खराब हो रही है और इसी समय मुझे आने को कहा है। यह सुनकर मुझ से नही रहा गया। सासूजी की हालत इतनी नाजुक हो रही थी……कि किस समय क्या होगा यह कहा नही जा सकता था, इसलिए तुरत मै नौकरानी के साथ हो ली। घर मे मैं सीधी सासूजी के कमरे मे चली गई। वहाँ शकर मामाजी बैठे थे, उन्हे देखकर मै सहम गई। इसी समय अजिया सासूजी ने बडे मीठे स्वर मे कहा, "आओ बेटा, अभी-अभी कुछ देर पहले इसकी हालत बहुत खराब हो गई थी अब कुछ ठीक है। तिलमिला रही थी, आँखे फेर रही थी। तुम्हारा नाम लेकर चीख रही थी, मुझे लगा न जाने अब क्या होना है। इसलिए तुम्हे बुलावा भेजा। अब जरा नीद लग गई है, लेकिन अब तुम लौटकर नही जाना, यही रहो।" अजिया सासूजी का यह प्रेम भरा भाषण सुनकर मैने निश्चय कर लिया कि सासूजी को छोडकर मैं अब कही नही जाऊँगी। शकर मामा भी मेरी ओर बडी स्नेह-भरी दृष्टि से देख रहे थे। मुझे लगा कि परमात्मा ने बडी कृपा की जो मेरे आने से पहले सासूजी का भला-बुरा नही हुआ। अब मैं उनकी खूब सेवा करूँगी। शकर मामा ने कहा, "बैठ जाओ, खडी क्यो हो ?" और वे वहाँ से चले गए। कुछ देर बाद अजिया सासूजी भी चली गई। मैं सासूजी के पास बैठी रही। मैंने देखा तो मुझे उनमे विशेष फर्क नही दिखाई दिया मैं उन्हे जिस हालत मे छोडकर गई थी वैसी उनकी हालत अब भी थी। फिर भी न जाने यकायक बिगड गई हो।

रात को मै वही सोई थी। मन उद्विग्न होने से मुझे नीद नही आ रही रही थी। चार-पाँच बजे मुझे नीद लग गई और उस नीद मे मैंने एक स्वप्न देखा स्वप्न मे मैंने अपनी माँ को देखा। माँ को अपने दु खो की गाथा सुना रही थी और उत्तर मे उसने कहा, "यमू, घबडाओ नही, मैं अब बहुत जल्द तुम्हे अपने पास बुला लूँगी।" इसी समय अपने सिरहाने किसी के पैरो की आहट पाकर मै जाग गई। मुझे शब्द सुनाई दिए, "सीता, बेटी जरा यहाँ आओ। "अधेरा था फिर भी उल धुँधले उजाले मे मैंने अजिया सासूजी को पहिचान लिया। मै उठकर बैठ गई। उन्होने फिर कहा। "जरा उस कमरे से मुझे एक चीज उठाकर ला दो।" यह वही कमरा था जिसमे मैं रोती बैठी थी और प्रथम बार मेरे समीप आकर मेरे पति ने मुझे सात्वना देकर समझाया था। मैं कमरे मे चली गई। मेरे पीछे अजिया सासूजी और जनू दीदी भी आ गईं। उन्होने कहा," अब जो हो रहा है, उसे चुपचाप हो जाने दे। व्यत्यय लाने का प्रयत्न करेगी तो फिर देख लेना, दरवाजे मे शकर मामा और वह नाई ······

उसे देखते ही सब कुछ मेरे ध्यान मे आ गया। मै चीख रही थी तभी, "अब चाहे जितना चीख ले, चिल्लाती रह, तेरी करतूतो से होम-हवन के लिए, ब्राह्मण इस घर मे पैर रखना नही चाहते। और तू क्या अपने पति को नरक मे सडाएगी। चलरे, आगे बढ······माँ ·····" किन्तु उस कसाई शकर मामा के इससे अधिक शब्द मुझे सुनाई नही दिए। मुझे गश आ गया······ लग रहा था कि मैं किसी का हाथ झटक रही हूँ। और मैं मूर्छित होकर गिर पडी।

अंतिम परिच्छेद

यमुना देवी के भाई गणपतराव के हाथो लिखा हुआ :

जिस हाथ ने हम दोनो की जीवनी इतने सूक्ष्म रूप से लिखी उस हाथ को अब मै फिर कभी देख न सकूँगा। गत परिच्छेद लिखने के बाद वह मेरी प्यारी अत्यन्त शुद्ध और पवित्र बहन पद्रह दिन भी जीवित नही रही। जिस दिन उसने यह परिच्छेद लिखा उसी दिन रात को उसने एक स्वप्न देखा। स्वप्न मे वह भयकर घटना देखकर वह नीद मे चिल्ला उठी और उसे बुखार चढ आया। बुखार के साथ ही जोरो की खाँसी भी थी और उसका जीर्ण शरीर इसे सहने मे असमर्थ होने से पद्रहवे दिन उसका अन्त हो गया। मैं उसके समीप बैठा रहता। दुर्गीताई प्रतिदिन आया करती थी। उस दिन मैंने उसे आग्रहपूर्वक रोक लिया था, वह भी मेरे बहन के अन्त समय मेरे पास थी। उसकी हालत बिगडती देखकर मैंने बम्बई को तार भेज दिया था और उसकी दोनो सहेलियाँ आ गई थी। उन्हे देखकर मेरी बहन बहुत प्रसन्न हुई थी। उससे बोला नही जाता था। उन दोनो के हाथ पकडकर उसने अत्यन्त विह्वल दृष्टि से हम सबको देखा—उसकी वह दृष्टि मैं कभी नही भूल सकता। कई दिनो से वह क्षय रोग से क्षीण होती जा रही थी फिर भी उसका अन्त बहुत शातिपूर्वक हुआ था। पिताजी के अतिरिक्त उसके सभी प्रियजन अन्त समय मे उसके समीप थे। उस दिन मध्यरात्रि मे उसने मुझे अपने समीप बुलाकर कहा, 'भैया मेरी बात मानोगे ?' मैंने उसका हाथ पकडकर अश्रुपूर्ण नेत्रो से उसे देखते हुए कहा, "मैंने आज तक तुम्हारी कौन-सी बात नही मानी जो अब नही मानूँगा।" उससे बोला नही जाता था। हाथ के इशारे से, सिरहाने खडी अपनी भाभी को लक्ष्य कर अत्यत क्षीण स्वर मे उसने कहा, "कुछ भी हो किन्तु इसकी अवहेलना न करना।" उसकी बात सुनकर मुझे बहुत आश्चर्य लगा। जिस व्यक्ति ने हमेशा उसे दु ख दिया उसके हित के लिए वह अन्त समय मे भी दक्ष थी। मेरी बहन के सुख के दिनो मे तो जाने दो, किन्तु उसके दु खी जीवन मे भी मेरी पत्नी ने उसे कभी सात्वना नही दी। मुझे कल्पना नही थी कि मेरी पत्नी उसे कितना तग किया करती थी। जब कभी मेरे ध्यान मे कोई बात आ जाती तो मै अपनी पत्नी को डाट देता किन्तु यमू को यह पसन्द नही था, इसलिए सब कुछ चुपचाप सहकर

मुझ से ऐसी बातो को छिपाया करती थी। आगे चलकर जब मैंने यमुताई के कागजो को समेटा तब मुझे ऐसे ही दो-चार लिखे हुए कागज के टुकडे मिले। उन टुकडो को पढने से पता चला कि उसको किस कदर परेशानियाँ उठानी पडी थी।

तीन बजे तक वह एक टक देखती हुई पडी रही। फिर उसने मेरा हाथ पकड लिया। मैंने क्या है कहकर पूछने पर उसने दुर्गी की ओर इशारा किया। "इसका क्या होगा ?" इस प्रश्न का उत्तर कैसे दिया जा सकता था। तब उसने फिर से कहा, "मेरे रुपये मिलने पर इसकी व्यवस्था कर देना, इसे भूलना नही।"

झट से मैंने कहा, "नही, नही, तुम्हारे रुपये मिलें या न मिले, मैं इसे कभी नही भूलूँगा। मुझ से बन सकेगा वह सहायता मैं सदैव करता रहूँगा। तुम चिंता न करो।" मेरा उत्तर सुनकर उसे सतोष हुआ था। इसके बाद मैंने पूछा, " और कुछ तुम्हारी इच्छा है ?" किन्तु इशारे से उसने 'नही' कहा। कुछ देर के बाद इशारे से उसने हम लोगो को अपने बिलकुल समीप आने को कहा। हम लोगो के पास आने पर उसने लक्ष्मीबाई की गोद मे अपना सिर रख दिया, एक हाथ से यशोदाबाई का हाथ पकड लिया, इसका दूसरा हाथ मेरे हाथ मे था, दुर्गी उसके शरीर पर हाथ रखकर बैठी थी—ऐसी अवस्था मे वह मेरी अत्यन्त प्रिय भगिनी और सहेली हमे छोडकर हमेशा के लिए चली गई।

कागजो के उपरोक्त टुकडे

जब किसी बात की अति हो जाती है तो मन चाहता है कि किसी से कह कर मन का भार हल्का कर लिया जाय। भैया का मुझ से अत्यन्त प्रेम था—मेरे लिए वह अपनी जान तक देने मे नही हिचकता। फिर भी कई बातें ऐसी है जो मैं उसे अथवा वह मुझ से दिल खोलकर नही कह सकता। ऐसी बातें कहने से उसे दु ख होगा यह सोचकर मैं उन्हे छिपाने की कोशिश किया करती। यही हाल भैया का था। क्या मैं भैया से कह सकती थी कि भाभी ने मुझ से कहा, "आखिर अब तो हमारे यहाँ आकर ही रहना पडा। तब बडा गर्व किया करती थीं ? और उनको तो बिलकुल मुट्ठी मे कर रखा है। बहन के इशारे पर वे चला करते है। अपनी घरवाली की उन्हें चिंता नही। मर भी जाय तो उन्हे परवाह नही। हम पति-पत्नी मे तुम इस प्रकार क्यो बेबनाव को बढा रही

हो ? क्या ऐसा करने से तुम्हारा फूटा हुआ भाग्य फिर जुड जायगा ?" इस प्रकार उसकी चोटो को मै चुपचाप सहा करती थी। क्या मै कभी स्वप्न मे भी सोच सकती थी कि भैया की गृहस्थी उजड जाय, उसे उसकी पत्नी से प्रेम न हो। किन्तु भाभी को किस प्रकार समझाया जा सकता है ? और ऐसी बाते कहकर भैया को क्यो दु खी करूँ ? मै भैया से अलग रह सकती हूँ, मेरे अलग घर करके रहने से तो शायद भाभी खुश होगी, किन्तु मुझे अब इस दुनिया मे कितने दिन रहना है ? आठ-पन्द्रह दिन भी जिऊँगी या नही, इसकी शका है।

भैया कहता है कि मुझ-जैसी अभागिन अबलाएँ यदि लिखना-पढना जानती हो, और यदि वे अपनी जीवनी लिख सके तो उसे पढकर समाज मे जागृति होगी और ऐसी स्त्रियो का दु ख भी कम होगा। किन्तु भैया का यह भ्रम है। धर्म और पाखड के नाम पर ऐसी अनाथ अबलाओ को तग करने वाले लोग क्या इन बातो को जानते नही ? धर्म और नीति का ढिढोरा पीटने वाले ८० प्रतिशत पुरुष ही ऐसी अनाथ अबलाओ को कुचलने मे उत्तरदायी होते है। आँखे खोलकर देखने वालो को सब दिखाई देता है। जो ध्यान देगा उसी के ध्यान मे ये सब बाते आ सकती है। किन्तु कौन ध्यान देता है ?

कीजिए, मामाजी, हम दोनो की निन्दा, पेट भर के कर लीजिए। ऐसा किये बिना आपका कुलाभिमान और धर्माभिमान लोगो की दृष्टि मे कैसे आ सकता है ? यह करने से ही आपको सुख क्यो न मिले। मैं तो अब कुछ दिनो की मेहमान हूँ। चल बसने पर तो इन बातो को सुन नही सकूँगी। आपने जो किया उससे आप सतुष्ट नही है। और कीजिए जो करना चाहे, जी भर के विडबना कर लीजिए।

उस नराधम ने धर्म का सहारा लेकर जो विश्वासघात का अघोर कृत्य किया था उस दिन मैं पूना मे नही था, इसका उल्लेख यमू के लिखने मे आया है। उसके आगे का हाल मै लिखना चाहता हूँ—किन्तु यमुना-जैसा लिख नही सकता और न लिखने की मुझे इच्छा है, इसलिए ये साराँश रूप मे कहना चाहता हूँ।

तीसरे दिन मैं गाँव से लौटकर आया। यमु कहाँ है पूछने पर मुझे बताया गया कि उसकी सास बहुत बीमार हो जाने से वह ससुराल चली गई। दूसरे

दिन मेरे आने का पता पाकर धोडू मेरे पास आया और उसने मुझे उस अघोर कृत्य की जानकारी दी। उसने जो बताया उसका सारॉश इस प्रकार है —

बहुत दिनो से शकर मामा मौका देख रहा था किन्तु उसे मेरा और गोपाल मामा का डर लगा रहता था। हम दोनो पूना से बाहर चले गए है यह देखकर उसने अपनी इच्छा पूर्ण कर ली। गर्भाधान के होम-हवन के लिए ब्राह्मण घर मे पैर रखना नही चाहते ऐसा बहाना बनाकर उसने अपनी माॅ को भडका दिया और सास की बीमारी का बहाना बनाकर यमू को बुलाकर अपने घर ले गए। और उस असहाय नाथ अबला के साथ क्रूर कृत्य किया गया। उसकी मूर्छित अवस्था मे उस नराधम ने यह क्रूर कृत्य करवाया था। होश मे आने पर जब वह चिल्लाने लगी तो वह दुष्ट कहने लगा—पुनर्विवाह करना चाहती है? ले करले पुनर्विवाह। तुम-जैसो की नाक इसी तरह काटनी होगी। हो हल्ला सुनकर धोडू वहाॅ आ गया। उसने अपने माॅ-बाप को सैकडो गालियाॅ सुनाई, किन्तु उस बेशरम पर उन गालियो का क्या असर होना था?

धोडू के मुॅह से यह सब सुनकर मैं भागकर यमू की ससुराल मे गया। वहाॅ वह शैतान अपनी नई दुल्हन को लेकर होम-हवन करता, बैठा था। मैंने उसे खूब खरी-खोटी सुनाई—मुकद्दमा चलाने की धमकी दी। उसी दिन शाम को मैंने दूसरा घर किराए पर ले लिया और अपने साथ यमू को लेकर मैं उसमे जाकर रहा। क्योकि मुझे शका थी कि इस क्रूर कृत्य मे हमारी नई माँ का भी हाथ था और जाॅच करने पर मेरा यह तर्क सही साबित हुआ था। उस शैतान पर मुकद्दमा चलाने के लिए मैंने यमुना को बहुतेरा कहा किन्तु वह नही मानी। वह सदैव चिताक्रात बैठी रहती थी। उस दिन उसे जो बुखार आया था वही उसकी बीमारी का आरम्भ था। कुछ दिनो के बाद उसकी सास मर गई। यमुना की खाॅसी भी बढ गई और बीमारी ने क्षय रोग का रूप धारण कर लिया। मैं उसे एक-दो बार बम्बई ले गया। किन्तु अब उसका किसी बात मे चित्त नही लगता था। किसी प्रकार उसका मन बहलाने के लिए हम लोगो ने एक योजना बनाई और उसे उसकी जीवनी लिखने का आग्रह किया। उसने इसे मान लिया और वह लिखने लगी। उसकी प्रकृति क्षीण होती जा रही थी किन्तु जैसे-तैसे उसने अपनी जीवनी को लिखा और अतिम घटना लिखने के

दिन उसकी कलम रुक गई—उसे बुखार चढ आया और उसके पद्रहवे दिन इस लोक से हमेशा के लिए चल बसी।

उसकी यह जीवनी पुस्तक रूप से प्रकाशित होने पर किसे अर्पण की जाय, इस विषय को लेकर हम दोनो मे कभी-कभी विनोदपूर्ण चर्चा चला करती और इसलिए मैंने उसके हाथो एक अर्पणपत्रिका लिखवा ली थी, वह भी मेरे पास है।

* समाप्त *

उपसंहार

जिस समय यह जीवनी मेरे हाथ लगी और इसे छापकर प्रकाशित करने की अनुमति मेरे मित्र गणपतराव ने दी तब मैंने गणपतराव से अतिम भाग का उत्तरार्ध लिखवा लिया। यमुनादेवी की मृत्यु के सम्बन्ध मे गणपतराव ने पहले ही लिखकर रखा था। मैंने जब इस जीवनी को प्रथम बार पढा तब मैं इसके पढने मे इतना तल्लीन हो गया कि इसमे कुछ बाते अधूरी रह गई है, यह मेरे ध्यान मे नही आया, किन्तु छपाई की दृष्टि से जब मैंने दुबारा इसे पढा तो कुछ बातो का स्पष्टीकरण करने के लिए मैंने गणपतराव से कहा। उन्होने इस उपसहार मे छापने के लिए उन बातो के सम्बन्ध मे निम्नॉकित पत्र भेजा है।

॥ श्री ॥

सादर नमस्ते,

आपकी पूछी हुई बातो मे से मैंने कई बातो का स्पष्टीकरण कर दिया है किन्तु जीवनी की पूर्णता के लिए आपने मेरा लिखा हुआ पत्र चाहा है और आप-जैसे परम प्रिय मित्र की आज्ञा मेरे लिए शिरोधार्य है, इसलिए यह पत्र भेज रहा हूँ। जीवनी मे अधूरी रह गई ऐसी दो बाते हैं। एक घर के जेवरो के सम्बन्ध मे—जेवरो का क्या होना है? हमारी नई माँ की माताजी जब काशी यात्रा करने गई तब अपनी एक परिचिता से अपनी लडकी के घर आती रहने के लिए कह गई। वह स्त्री नई के पास आया-जाया करती थी। होते करते रुपए पैसो का उनमे व्यवहार होना आरम्भ हो गया। सतान होने के लिए मत्र-तत्रो का आधार लेने का सुझाव उस स्त्री ने नई माँ को दिया। मात्रिको के घर चक्कर लगने लगे। उत्सव समारोह मे देवी को चढाने के लिए मात्रिक ने नई माँ से आभूषणो की माँग की—नई माँ ने भोलेपन मे आकर घर के मब आभूषण उठाकर दे दिए, किन्तु वे वापस नही मिले। फिर नकली आभूषण बनवाकर घर मे रखे गए। मुझे शका हो जाने से मैंने निर्णय कर लिया—पिताजी से भी मैंने कह दिया किन्तु "जिसका भाग्य उसके साथ" कहकर वे चुप हो गए। वे उदास हो गए थे। यमुताई की दुर्दैवी घटना से

उन्हे जबर्दस्त चोट लगी थी। दूसरा विवाह करने से हर बात मे उन्हे उदासीनता आती गई—किसी तरह वे अपने दिन व्यतीत कर रहे थे—दूसरा विवाह और वह भी ऐसी स्त्री के साथ हो जाने से उन्हे पश्चाताप हो रहा था फिर भी यह एक रहस्य है कि पिताजी का जो स्वभाव पहले था उसमे द्वितीय विवाह के कारण इतना परिवर्तन कैसे हुआ ?

यमुताई पर जो अंतिम सकट आया था उसमे नई माँ सहभागी होने की मेरी शका सही सिद्ध हुई थी। नई माँ पिताजी के पीछे पडी रहती थी कि यमुना के केशो का वपन किया जाय, किन्तु पिताजी ने स्पष्ट शब्दो मे कह दिया था कि ऐसा क्रूर कृत्य वे नही देख सकते। इसलिए उन्होने सास की बीमारी का बहाना बनाकर यमू को सुसराल भिजवा दिया। शकर मामा ने ब्राह्मण घर न आने का बहाना बना कर अपनी माँ को भडका दिया और मैं तथा गोपालराव पूना के बाहर चले गए है यह मौका देखकर सब मिलकर मेरी बहन पर टूट पडे। उस दुष्ट कृत्य मे नई माँ का पूरा-पूरा हाथ था।

उन पाँच हजार रुपयो के सम्बन्ध मे आपने जानकारी चाही है, किन्तु उस जानकारी को इस समय प्रगट करना मैं उचित नही समझता। मैं आपको प्रत्यक्ष मे आकर कहूँगा। और भी कई बातो का स्पष्टीकरण आपने चाहा है किन्तु उनका उत्तर मै नही दे सकूँगा। ध्यान देने योग्य बात यह है कि मनुष्य का जीवन जब असामयिक रूप से समाप्त हो जाता है तो उसके जीवन मे बहुत-सी बाते अधूरी रह जाती है। यमुताई के बारे मे भी यही हुआ है। कई बाते अधूरी रह गई है, फिर भी उनके अभाव मे इस जीवनी की सुबोधता मे रुकावट नही आ सकती। अब जो रह गया है उसे रहने दीजिए। जिन हाथो से इतनी सुन्दर जीवनी लिखी गई है उसमे अब अपने हाथो से लिखा भाग मिलाकर पैबन्द लगाना व्यर्थ है। मेरी बहन ऐसे दैवी गुणो से अलकृत होगी इसकी मुझे वास्तव मे कल्पना नही थी। मेरी भगिनी और रघुनाथराव यदि जीवित रहते तो उनके हाथो अवश्य ही बहुत बडा सामाजिक-कार्य होता। रघुनाथराव ने बीच ही मे साथ छोड दिया था किन्तु अकेली यमुना भी अवश्य कुछ करके दिखाती—हम लोगो के आग्रह से वह समाज कार्य करने के लिए अवश्य आगे बढ जाती किन्तु उसका स्वास्थ्य बिगड जाने से उसका क्या बस था ? फिर भी मेरे साथ रहते

हुए अपनी उस क्षीण अवस्था मे भी उसने जो समाज कार्य किया था उतना मैं आजीवन नही कर सकूँगा उसके द्वारा किए गए सत्कृत्यो को कहाँ तक गिनाया जाय ? यदि वह जीवित रहती तो बहुत बडा कार्य करती, किन्तु एक अँग्ल कवि ने जो कहा है, वही सत्य है—

Of all words of tongue and pen
The saddest are these—
It might have been

यमुनादेवी का अभागा भाई
तथा
आपका परम मित्र
गणपति

जिस दिन रघुनाथराव की मृत्यु विषयक परिच्छेद 'करमणुक' पत्रिका में प्रकाशित हुआ उसी दिन हमारे परम मित्र श्री गणपत केशव भाटवडेकर, बी० ए० एल० एल० बी० उसी प्रकार के रोग से अचानक खून की उलटियाँ होकर इस लोक से सिधार गए। एल० एल० बी० की परीक्षा पास किए केवल ८-१० दिन ही हुए थे, यह घटना अत्यन्त शोचनीय होने से उसका उल्लेख किये बिना नही रहा गया।

प्रकाशक